॥ श्री ॥

स्वपरसमयपारावारपारीणशासनसम्राट्तीर्थरक्षक-
तपोगच्छाधिराज-भट्टारकाचार्यश्रीविजय-
नेमिसूरिभगवद्भ्यो नमः ॥

॥ नवतत्त्वविस्तरार्थः ॥

यन्त्र-परिशिष्ट-टिप्पण्यादिविभूषितः ॥

प्रकाशक—
श्री जैनग्रन्थप्रकाशकसभाना—
ओनररी--सेक्रेटरी,
वाडीलाल बापुलाल शाह द्वारा
शा. जेशींगभाइ कालीदास शेरदलाल.
अमदावाद.

नकल १००१, प्रथमावृत्ति- सन्ने १९२३

वीर सं. २४५०

आ पुस्तक जैन एडवोकेट प्री. प्रेसमां शा. चीमनलाल
गोकलदासे छाप्युं, ठे; घीकांटा जेशंगभाइनीवाडी
अमदावाद.

मूल्य. ४-०-०



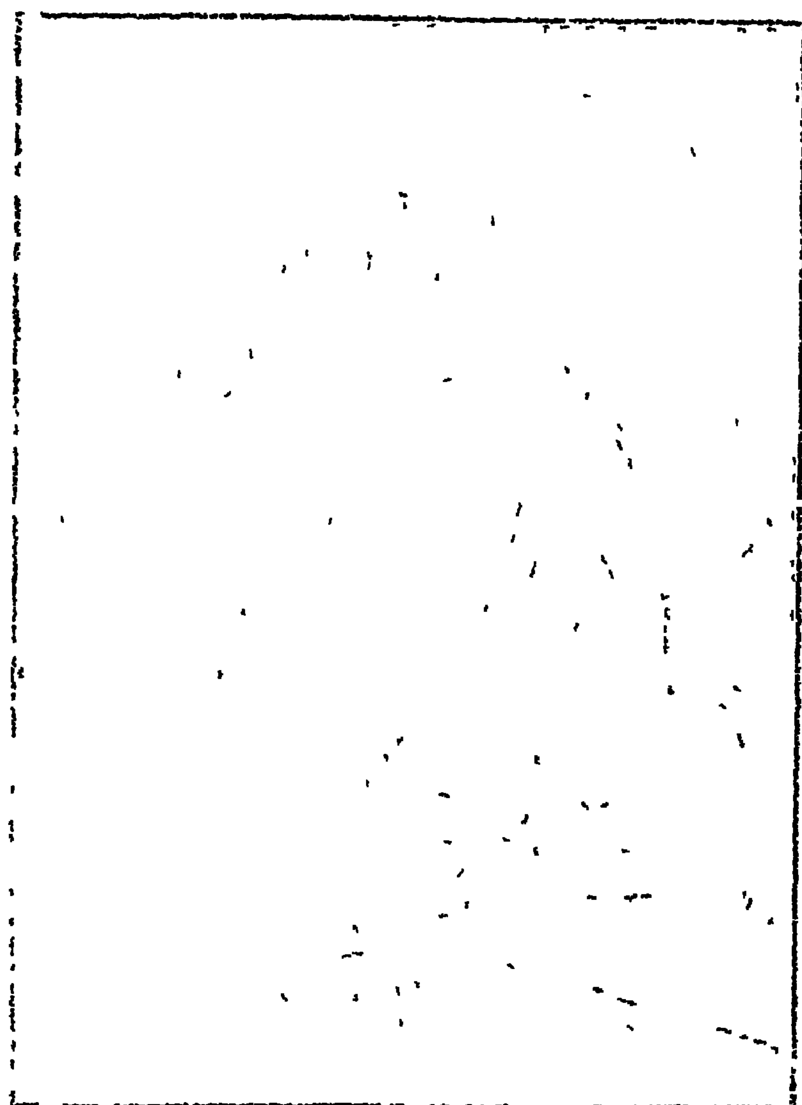
सारस्फारसुवर्णराशिकलितं सर्वार्थसिद्धिप्रदं,
विस्तीर्णैर्नवभिः सुतत्त्वनिधिभिः संपूरितं सर्वदा
प्रस्फूर्जद्गुणसाधुवृत्तविलसद्रत्नाञ्चितं श्रीपदं,
शास्त्रं भव्यजनोपकृत्यभिमतं विश्वे चिरं नन्दतात् ॥१॥





[illegible]गवारपारीण-शासनसम्राट्-तीर्थोद्धारक-[illegible]-

[illegible]-[illegible]धिराज-सूरि[illegible]-

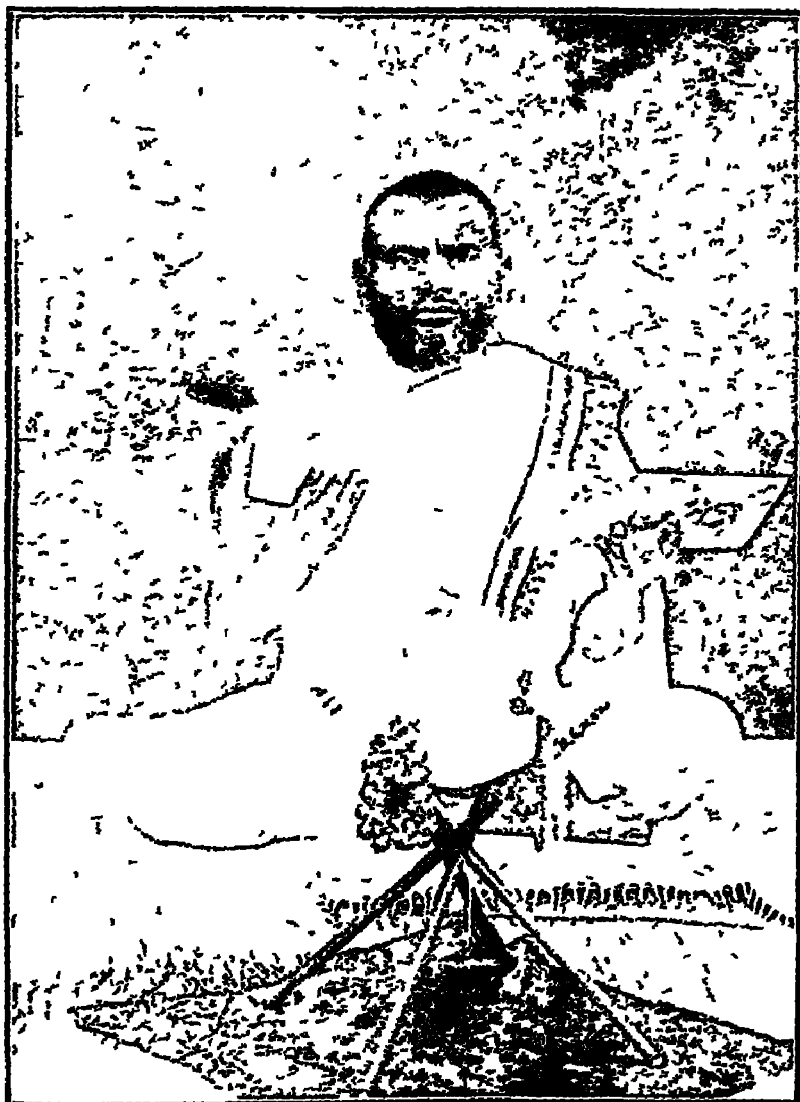


आचार्य श्री [illegible]

[illegible] १९[illegible]	[illegible] १[illegible]	[illegible] १[illegible]
[illegible] सु. १	[illegible]	[illegible]

[illegible] १९[illegible]	[illegible] १९६[illegible]
[illegible]	[illegible]

स्वपरसमयपारावारपारीण-शासनसम्राट्-तीर्थरक्षाप्रवण-परोपकारै-
कार्पितकरण-तपोगच्छाधिराज-सूरिचक्रचक्रवर्ति-



आचार्य श्री विजयनेमिसूरीशः

जन्म सं १९२९ कार्तिक शु १	दीक्षा सं १९४५ ज्येष्ठ शु. ७	गणिपद सं १९६० कार्तिक कृष्ण ७

पन्यासपद सं १९६० मागशर शुद ३	सूरिपद सं १९६४ ज्येष्ठ शुद ५.

पूज्यपाद सिद्धान्तवाचस्पति न्यायविशारद विद्वद्वर्य

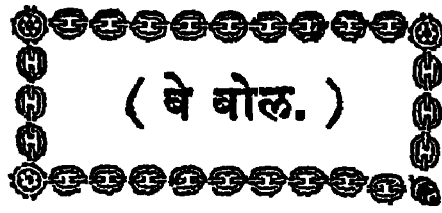
आचार्य महाराजाधिराज



श्रीमान् विजयोदयसूरिः

जन्म स १९४४	दीक्षा स १९६२	पन्यासपद स १९६९	महोपाध्यायपद स १९७२
पौष शु १२	वैशाख शु ६	अषाड शुद ९.	मागशर वद ३

आचार्यपद स १९७९ वैशाख वद २



आ आपणुं परमपवित्र अमितगुणास्पद अमेयमहिमरत्नरत्नाकर देवगुरु अने धर्मनी त्रिपुटीशुद्ध कष-छेद--तापादि परीक्षामां सो टचना सानानी जेम उत्तीर्ण थयेल पूर्वापर अविरोधादिगुणविभूषित शाश्वतप्रभावशाली त्रिकालाबाधित सनातन श्री जैनदर्शन सूक्ष्मतत्त्वो तेना यथार्थस्वरूप--लक्षणविभाग--गुणधर्मपर्याय आदि प्रतिपादन करवामां सकलदर्शनोमां अग्रपद भोगवे छे एमां किंचिन्मात्र पण अतिशयोक्ति नथी.

आत्मविचारणा--कर्मविचारणा पुद्गलादिद्रव्यो विगेरेनी विचारणाओ जैनदर्शनना ग्रन्थो जे विस्तारथी बतावे छे तेनी आंशिक विचारणा पण अन्य ग्रन्थोमां दृष्टिगोचर थती नथी. अमे घणाज मगरूर थइये छीये के पाश्चिमात्य प्रजा के जे वखतनो, अनर्गल द्रव्यनो अने अगाध परिश्रमनो लांबो भोग आपी घणा प्रयोगोनी अजमायशथी "वायरलेसटेलीग्राफ फोनोग्राफ हाइड्रोजन ऑक्सीजन वायुमांथी पाणीतत्त्व" विगेरे विज्ञानकलाओ जे पोते नवीन शोध कर्यानो दावो करे छे ते सर्व कलाओ करामलकवल्लोकालोकवर्तिभावोनी त्रिकालसत्ता तथा परिवर्तनाने देखनार सर्वज्ञभगवन्तो—तीर्थंकरदेवो जेमणे आरंभ परिग्रहादिनो सर्वथा पच्चक्खाण (त्याग) होवाने लइने कोइपण जातनो प्रयोग अजमाव्या वगर "शक्रेन्द्र परमात्माना जन्ममहोत्सवादि समये हरिणैगमेषिद्वारा सुघोषाघंटा वगडावे छे तेमज "भाषा वर्गणाना पुद्गलपरिणामरूप शब्दो बीजा पुद्गलोनी जेम यन्त्रादिद्वारा पकडाय छे" "वायुयोनिज अप्काय" इत्यादि जे जे तत्त्वो केवलज्ञानथी लोकालोकना भावो देखी पहेलेथीज फरमाव्या छे ते समजनाराओने सहेजे समजी शकाय तेम छे!!! वळी नैयायिक वैशेषि

कादि अन्यदर्शनकारो ज्यारे शब्दने आकाशनो गुण मानता हता त्यारे जैनसिद्धान्त उद्घोषणाथी जाहेर करी रह्युं हतु अने करेछे के शब्द ए भाषावर्गणाना पुद्गलो छे. ते आज फोनोग्राफनी कलाए साबीत करी बताव्युं जे शब्द पुद्गल होवाथी ज पकडाय छे, द्रव्य अलग रहे अने गुणमात्र पकडाय ते बनी शके नहि, तेमज डॉ० बोझ के जेमणे जाहेर करेली वनस्पत्यादि स्थावरोमां जीवत्व साबीत करनारी युक्तिओ सांप्रतकालमां केटलाक लोकोने नवीन भासे छे, परन्तु ते युक्तिओ प्राचीन आचार्य भगवन्तोए श्रीआचारांग-दशवैकालिकवृत्ति षड्दर्शनसमुच्चय वृत्ति आदिमां फरमावेल अनुमान आदि प्रमाण युक्तिओनो एक लेशमात्र छे. तेमज पाश्चिमात्य वैज्ञानिको जुदा जुदा पदार्थ परिवर्त्तनना कारणभूत अनेक जातना अणुओ छे तेम प्रथम कहेता अने हवे तेओज जाहेर करे छे जे एकज प्रकारना परमाणुओ जुदा जुदा प्रकारे परिणाम पामी जुदी जुदी पार्थिवादि द्रव्य परिवर्त्तना बतावे छे, ज्यारे श्री सर्वज्ञदेवनो अचल सिद्धान्त डंको वगाडीने अनादिकालथी घोषणा करी रह्यो छे जे परमाणुमां अनन्तकाले अनन्तपदार्थ रूपे परिवर्त्तन पामवानी अनन्ती शक्तिओ छे.

अबाध्यसिद्धान्त अतिशयसपन्न सर्वजन प्रसिद्ध ते जैनदर्शन चार विभागे तत्त्वोनुं प्रतिपादन करे छे. १ द्रव्यानुयोग--जे षड्द्रव्यो, कालने जीवाजीवमां अन्तर्भाव करवाथी पांच अथवा धर्मास्तिकायादिने अजीवमां दाखल करवाथी जीव अने अजीव ए बे द्रव्यो, दरेकनुं यथास्थित लक्षणस्वरूप, सह भाविगुणो-क्रमभाविपर्यायो अनेक परिणामो, भिन्नभिन्नकाले जुदी जुदी परिवर्त्तनाओ दरेक समये उत्पाद--व्यय--ध्रौव्यनुं घटवुं, इत्यादि तत्त्व निश्चायक सम्यक्त्वशुद्धि तथा कर्मनिर्जराना हेतुभूत विचार बताव-

वामां समर्थ छे. २ चरणकरणानुयोग मुक्तिमार्ग, साधु श्रावक धर्मनो आचार, क्रिया, शुभभावमां केवी रीते वर्त्तवुं, अशुभभावमांथी केवी रीते निवर्त्तवुं, हेयोपादेय कर्त्तव्याकर्त्तव्यादि विवेक, पापबन्धनो त्याग शी रीते थाय, इत्यादि संवरना अनेनिर्जराना विचारोने बतावे छे, ३गणितानुयोग—जीवाजीवादि द्रव्योनी संख्या, परस्पर अल्पबहुत्व, कायस्थिति, भवस्थिति, संवेधादि, ज्योतिश्चक्रना चारादिनु गणित, द्वीप, समुद्र, नरक, विमानादिक्षेत्रमान तथा तेनी गणत्री विगेरे विचारो दर्शावे छे. ४ धर्मकथानुयोग—महापुरुषोनी जीवनप्रणालिका, तेमांथी झलकती उत्तमनीति, सदाचरण, पूर्वकालीन इतिहास, दीर्घदृष्टिए विचारता पूर्वापरकालनो अनुभव, उपादेयवस्तु प्रत्येनो आदरभाव, असदाचारिना चरित्रथी थतो असदाचार प्रत्येनो गर्हा साधु, श्रावकोना आचार प्रत्ये पडतो उत्तम चत्कार, विगेरे विचारो समजावे छे. आ चारे अनुयोगो पैकी आगमोनी अपेक्षाये सूत्रकृतांगमां द्रव्यानुयोग प्रधान छे. आचारांगमां चरणकरणानुयोग, जंबूद्वीपपन्नत्तिआदिमां गणितानुयोग, ज्ञाताधर्मकथांगादिमां धर्मकथानुयोग प्रधानतया वर्तेछे. आ नवतत्त्वप्रकरण पण जोके मुख्यतया द्रव्यानुयोगप्रधान छे. तो पण बीजा अनुयोगोना वर्णनमां ते अलग पडतुं नथी कारण समिति गुप्ति परिषह यतिधर्म भावना आदिना तथा हेयतया आश्रवबन्धादि उपादेयतया संवर-निर्जरा आदिना वर्णनथी चरणकरणानुयोग पण तेमां छे. रूप्यरूप्यादिभेद, मोक्षतत्त्वमां अल्पबहुत्वादि वर्णन विगेरेमां गणितानुयोग, समिति-गुप्ति साचवनार तथा परिषहो जय करनार पंदरभेदमां सिद्धिपद पामनार महापुरुषोना वर्णनद्वारा

१ चारे अनुयोगोना जुदा पणा संबन्धी विचार माटे जुओ साथेनी प्रस्तावना पेज ३-४

धर्मकथानुयोग पण तेमां संगत ज छे अने तेथीज आ ग्रन्थ महत्पद भोगवनारो छे.

जैनदर्शनमां नवतत्त्वग्रंथ एटलो बधो प्रसिद्ध अने महिमाशाली छे के जेना परिचयमाटे कांइ पण बोलवुं के लखवुं ते एक "लंकावासि मानवोनी आगल सुवर्णवर्णन तुल्य" छे. सूत्रथी सिद्धान्त भणवाना अनधिकारी श्रावक वर्गमां पण उत्तमपंक्तिना श्रावको नवतत्त्वज्ञानथी सुशोभित थइ रह्या छे जे माटे सकल आगमोमां पूज्यतमश्री भगवती आदिमां श्रावकोनी ज्ञानसमृद्धिनुं वर्णन करतां " अभिगयजीवाजीवा उवलद्धपुण्णपावा आसवसंवरणिज्जरकिरियाहिगरणबंधप्पमोक्खकुसला " विशेषणान्तर्गततया नवतत्त्वोनी मुख्यता दर्शावी छे, वली सकलतत्त्वसंग्रह सूत्र समवायांगबीज-श्रुतरत्ननिधानस्कन्ध-दृष्टिवादना झरणथी पुष्ट-तत्त्वोरूप पत्र फुल अने मुक्तिफलवालो चतुर्थोपाङ्ग श्री पन्नवणा सूत्र कल्पवृक्ष पण आ तत्त्वोना मूल उपरज रूढ थयेलो छे.

जुओ श्री पन्नवणावृत्तिकार पूज्य आचार्य भगवान् मलयगिरिजी महाराजना वचन " सर्वे च ते भावाश्च सर्वभावा 'जीवाजीवाश्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षाः । तथाहि—अस्यां प्रज्ञापनायां षट्त्रिंशत् पदानि, तत्र प्रज्ञापनाबहुवक्तव्यविशेषचरमपरिणामसंज्ञेषु पञ्चसु पदेषु जीवाजीवानां प्रज्ञापना । प्रयोगपदे क्रियापदे चाश्रवस्य 'कायवाङ्मनःकर्मयोग आश्रव' इति वचनात् । कर्मप्रकृतिपदे बन्धस्य प्ररूपणा । समुद्घातपदे केवलिसमुद्घातप्ररूपणायां संवरनिर्जरामोक्षाणां त्रयाणां, शेषेषु तु स्थानादिषु पदेषु क्वचित्कस्यचिदिति " श्रमण भगवान् जगद्बन्धु परमात्मा श्री महावीर प्रभुना चरमोपदेशरूप अपृष्टव्याकरण श्रीउत्तराध्ययनसूत्रना मोक्ष-

मार्गने दर्शावनार अठावीशमा मोक्षमार्गगति अध्ययनमां पण आज तत्त्वोनो उद्देश छे-जूओ गाथा १४-१५ "जीवाजीवा य बन्धो य पुण्णं पावासवो तहा । संवरो निज्जरा मोक्खो, सन्ते ए तहिया नव ॥१॥ तहियाणं तु भावाणं, सब्भावे उवएसणं । भावेणं सद्दहंतस्स सम्मत्तं तं वियाहियं ॥२॥" तेमज अनूनापूर्वदशपूर्वधर भगवान् श्रीउमास्वातिवाचकनिर्मित तत्त्वार्थसूत्रप्रासाद पण आज तत्त्वोना पाया उपर रचावेल छे. 'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्' 'जीवाजीवाश्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वम्' उपरना वचनोमां पुण्यतत्त्व पापतत्त्वनो बन्धतत्त्वमां अन्तर्भाव करेल होवाथी नवसंख्यामां विरोध नथी, प्रशमरति, त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्रान्तर्गत तीर्थंकरोपदेश, योगशास्त्रवृत्ति धर्मरत्नप्रकरणवृत्ति, समयसारप्रकरण इत्यादि अनेक ग्रन्थोमां आ तत्त्वोने उद्देशी वर्णन करवामां आव्युं छे,

तत्त्वोनो स्वतन्त्र बोध लेवा माटे आ नवतत्त्वप्रकरण अति प्रसिद्ध छे. जो के आ प्रकरण उपर संस्कृतमां अवचूर्णि टीका–विवरण विचारसारोद्धार विगेरे, भाषामां टबा बालावबोध विगेरे अने एनाज अनुवाद तरीके भाषामां पद्यबन्ध विविधस्तवनो रासो चोपाइओ--जोड छन्दोबद्ध अनुवाद गद्यबन्धविचार विगेरे घणुंज लखायुं छे, छतां पण कालानुभावथी वहोळे भागे संस्कृतभाषानु अज्ञान, प्राचीनशैलीनो अनवबोध इत्यादि कारणने उद्देशी संस्कृतछाया--शब्दार्थ अर्थ विगेरेनी खास अ रचना हती ते केटलेक अंशे आ पुस्तकथी पूरी पडशे एम धारी आ पुस्तक प्रसिद्ध करवामां आव्युं छे. संस्कृत छाया--शब्दार्थ-- विस्तरार्थ, मास्तर चंदुलाल नानचन्द पासे लखा-

---

१ पुण्यपापयोश्च बन्धेऽन्तर्भावान्न भेदेनोपादानम्,
(तत्त्वार्थवृत्तिः)

ज्यो छे, जो के-- आ लघु प्रकरण उपर प्रस्तावनानी आवश्यकता न ज होय तो पण अमारा उपर अनुग्रह करी ' पंचकल्याणकपूजादिसंग्रह' विगेरेना प्रणेता मुनि महाराजश्री पद्मविजयजी महाराजे ' किंचित्प्रास्ताविक ' तथा तदन्तर्गत घणोज उपयोगी अनेक ग्रंथोना सार रूप सम्यक्त्वविचार लखी आप्यो छे, आवाज स्वतंत्र नवतत्त्वोनो वोध आपनारा जयशेखरसूरिकृत नवतत्त्व, देवगुप्तसूरिकृत नवतत्त्व ते उपर अभयदेवसूरिकृत नवतत्त्वभाष्य देवानन्दसूरिकृत समयसारप्रकरण विगेरे अनेक प्रकरणोछे,तथापि ते सर्व करतां आ प्रकरण घणुं प्रसिद्धि पामेलुं अने अध्ययन अध्यापनमां तेनो वहोलो प्रचार थयेलो होवाथी आनेज प्रसिद्ध करवामां आव्युं छे, वीजा प्रकरणो पैकी तथा ग्रन्थान्तर्वर्त्ति नवतत्त्वविचारो पैकी केटलाक अमोए नवतत्त्वसाहित्यसंग्रह नामना पुस्तकमां गुर्जरानुवाद साथे प्रसिद्ध कर्या छे. नवतत्त्वना प्रणेतानी गवेषणा करतां हजु सुधी कांइ निर्णय थइ शक्यो नथी

नवतत्त्व टवावाळी एकज प्राचीन प्रतिमां साठमी एक गाथा

" इय नवतत्तवियारो । अप्पमइनाणजाणणाहेउं ॥
संखित्तो उद्धरिओ । लिहिओ सिरिधम्मसूरीहिं ॥ १ ॥

देखवामां आववाथी श्रीधर्मसूरि महाराज आ प्रकरणना कर्त्ता होय तेम जणाय छे, धर्मसूरिजी महाराजनो समय निर्णय करवो अशक्य छे? वृत्ति-अवचूर्णि वालाववोधकारो आ गाथा जणावता नथी जेथी जणाय छे जे मूळ सत्तावीश गाथाओ अन्यकर्तृक होवी जोइये अने तेना प्रणेता तेरमा सैकानी पूर्वे थयेला होवा जोइए तेम तेनी वृत्तिओ उपरथी अनुमान थायछे, वळी वीजा एक प्राचीन पुस्तकमां " इति श्री वादिदेवसूरिविरचितं नवतत्त्वप्रकरणम् " ए प्रमाणे वाक्य जोवामां आव्युं हतु जे उ-

परथी स्याद्वादरत्नाकरग्रन्थनिर्माता जे अपूर्व ग्रंथमां स्त्रीनिर्वाण सिद्धिमाटे लगभग ४२ हजार श्लोक प्रमाणनो भाग हतो महाराज सिद्धराजनी सभामां कुमुदचन्द्र जेवा दिगम्बर वादीओने जीतनार अढार देशमां अमारिना प्रवर्त्तक परमार्हत महाराज कुमारपाल नृपप्रतिबोधक कलिकालसर्वज्ञ भगवान् हेमचन्द्राचार्य महाराज विगेरेना विद्यागुरु भगवान वादिदेवसूरि महाराज आ प्रकरणना रचयिता होय तेम पण अनुमान थाय छे. उपरनी गाथा तथा वाक्य ए बन्ने तरफ विचार करता एक वाक्यता विषयक एवुं पण अनुमान थइ शके के मूळ गाथा२७ना कर्त्ता श्रीवादिदेवसूरि महाराज अने प्रक्षिप्त गाथाओना संग्राहक श्रीधर्मसूरि महाराज होय ? ! !

आ प्रकरणनी मूळ गाथाओ·टीका-अवचूर्णि-बालावबोध विगेरेनी प्राचीन प्रतिओना आधारे २७ जणाय छे. केटलीक टबावाळी प्रतिओ विगेरेना आधारे गाथाओनी संख्यानो नियम नथी ते २७ मूळ गाथाओ पैकी३ गाथाओ जीवतत्त्वमां,४ अजीवतत्त्वमां,२ पुण्यतत्त्वमां, ४ आश्रवतत्त्वमां, १ संवरतत्त्वमां, १ निर्जरा अने बंधतत्त्वमां, अने१०मोक्षतत्त्वमां, मोक्षतत्त्वनी अंदर श्री साधुरत्नसूरिकृत अवचूर्णिमां २ गाथाओ अधिक छे जे अपेक्षाए मूळगाथाओ २९ थायछे, छतां पण पठन पाठनमां५९गाथाओ प्रचलित होवाथी:अमोए पण तेज संख्या राखी छे २७ या२९थी बाकीनी गाथाओ प्रासंगिक अर्थ याद राखवामाटे महापुरुषोए उत्तराध्ययन-कर्मग्रन्थविगेरेनी प्रक्षेपकरेली जणायछे अने आवीज रीते प्रक्षेपगाथाओ मेळवीने १४० गाथाना नवतत्त्व(बृहन्नवतत्त्व)वाळी प्रतिओ पण देखायछे जे उपरथी अमोए पण ते १४० मूळगाथाओ आ पुस्तकने अन्ते अलग प्रसिद्ध करीछे.

पुस्तकना विषयमाटे संक्षेपमां आगळनी प्रस्तावनामां लखाये-ल होवाथी तथा स्वतंत्र विशाल विषयानुक्रमणिका राखेल होवाथी अहीं तेनी चर्चा करता नथी. जो के पुस्तकनुं शुद्धिपत्रक दाखल कर्युं छे, तोपण दृष्टिदोष या अनुपयोगभावथी अशुध्ध रह्यु होय तो ते वाचकवर्ग क्षन्तव्य गणी सुधारी वांचशे.अने अमोने सूचना करशे तो बीजी आवृत्तिमां सुधारवामां उपयोगी थशे,

आग्रन्थमां भारतमेदिनीमार्त्तण्ड स्वपरसमयपारावारपारीण न्यायालोक टीका (तत्त्वप्रभा)-खंडनखाद्यटीका (न्यायप्रभा)–न्यायसिन्धु-अनेकान्ततत्त्वमीमांसा विगेरे न्यायग्रन्थो, वृहत्‌हेमप्रभा-लघुहेमप्रभा-परमलघुहेमप्रभा व्याकरणग्रन्थो, प्रतिमामार्त्तण्डादि औपदेशिकग्रन्थो विगेरेना निर्माता श्रीतीर्थरक्षणादिमाटे अखंड अमोघ परिश्रम करी श्रीसंघ उपर अनुपम अनुग्रह करनार शासनसम्राट् तपोगच्छाधिराज सकलसूरिसार्वभौम,भट्टारक आचार्य-महाराजश्रीमान्‌विजयनेमिसूरीश्वरजीना पट्टालंकार सिद्धान्तवाचस्पति-न्यायविशारद- आचार्य महाराजश्रीमान् विजयोदयसूरीश्वरजीमहाराजे वहोळो सुधारो, वहोळो वधारो, टिप्पण, सूचना, परिशिष्ट विगेरे करी आपी अमारा उपर तेमज वाचक वर्गउपर अगाध उपकार कर्यो छे, ! ॥

छेवटे आ नवतत्त्वविस्तरार्थ केटलो उपयोगी छे ?ते प्रश्ननो उत्तर वाचक वर्ग उपर राखी वाचकवर्गप्रत्ये सविनयनम्रपणे " आद्यन्त आ ग्रन्थने वांची यथार्थ तत्त्वज्ञान मेळवी सम्यक्त्वप्राप्ति-दृढता संपादनकरी सिद्धिपद मेळवो" तेवी प्रार्थना करुं छु

सं० १९८०
कार्तिक शुक्ल
पूर्णिमा

श्री संघचरण सेवक-
श्री जैन ग्रन्थप्रकाशक सभा.

॥ श्री ॥

॥ नवतत्त्वसाहित्यग्रन्थोनी सूचि ॥

(प्राकृत संस्कृत साहित्य)	प्रणेतानुं नाम.
१ नवतत्त्व प्रकरण मूल	
२ नवतत्त्व विचार	२ श्रीभावसागर
३ बृहन्नवतत्त्व	
४ नवतत्त्वविचार सारोद्धार गा-८	
५ नवतत्त्वसार प्रकरण [कुलक]	५ आंच० श्रीजयशेखरसूरि
६ नवतत्त्वसार	
७ नवतत्त्ववृत्ति	७ श्रीअंबप्रसाद सं १२२०
८ " "	८ श्रीदेवेन्द्रसूरि
९ " "	९ श्रीकुलमंडनसूरि
१० " "	१० श्रीसमयसुन्दरगणि
११ " विवरण	११ श्रीपरमानन्दसूरि
१२ " "	१२ श्रीदेवचन्द्र
१३ " अवचूर्णि	१३ श्रीसाधुरत्नसूरि
१४ " "	१४ श्रीमानविजयगणि
१५ " "	
१६ " प्रक्षेपगाथा ११३ अवचूर्णि	१६ तपोगच्छाचार्य श्रीविजयनेमिसूरिशिष्य सि०वा०न्या०वि० श्रीविजयोदयसूरि

१ आ लीस्ट अमोए प्राचीन भंडारोना लीस्टो तथा जैन-ग्रन्थावलिना आधारे आप्युं छे,

२ नवतत्त्व संबन्धी प्रकरणो प्रशमरति-योगशास्त्रवृत्ति-त्रिपष्टिशलाकापुरुषचरित-धर्मरत्नप्रकरणवृत्ति-विगेरे अनेक ग्रन्थोमां आवे छे,

१७ नवतत्त्वप्रकरण	१७ श्रीदेवगुप्तसूरि
१८ " भाष्य	१८ श्रीअभयदेवसूरि
१९ " " वृत्ति	१९ श्रीयशोदेवोपाध्याय (हर्षवर्धनगणी)
(प्राकृतभाषा साहित्य)	
२० नवतत्त्व बालावबोध	२० श्रीसोमसुन्दरसूरि शि०श्री-
२१ " "	२१ श्रीपार्श्वचन्द्र
२२ " (कुलक)बालावबोध	२२ श्रीमेरुतुंगसूरिसन्तानीय
२३ " टबो	२३ श्रीमानविजयगणी
२४ " "	२४ श्रीमणिरत्नसूरि.
२५ " "	
(भाषा साहित्य)	
२६ नवतत्त्व रास	२६ श्रीऋषभदास
२७ " "	२७ श्रीभावसागर
२८ " "	२८ श्रीसौभाग्यसुन्दर
२९ नवतत्त्व जोड	२९ श्रीविजयदानसूरि
३० नवतत्त्व स्तवन	३० श्रीभाग्यविजयजी
३१ " "	३१ श्रीविवेकविजयजी
३२ " चोपाइ	३२ श्रीकमळशेखर
३३ " "	३३ श्रीसौभाग्यसुन्दर
३४ " "	३४ श्रीवर्धमानमुनि
३५ " "	३५ श्रीलुम्पकमुनि
३६ नवतत्त्व छन्दोबद्धभाषा	३६. श्रीज्ञानसारमुनि
३७ " सार	
३८ समयसार प्रकरण	३८ श्रीदेवानन्दसूरि
३९ " वृत्ति	



॥ किञ्चित्प्रास्ताविकम् ॥

જે વિશ્વગુરૂ ગુરૂ દેવના ન ગણીશકે ગુણ જેહના,
જિનધર્મ શાસન તીર્થરક્ષણ દક્ષ ભોગે દેહના;
ઉપદેશ દે ભવિજીવને દ્રષ્ટાન્તથી નિત મેહના,
"ગુરૂનેમિસૂરીશ" વંદું ભૂષણ વિમલ શીલવ્રતગેહના.

સર્વજ્ઞ શાસન રસિક પ્રિય બન્ધુઓ? પરમ કારૂણિક શ્રીતીર્થંકર મહારાજાએ, સુખાભિલાષવાળા છતાં વિપર્યાસ બુદ્ધિબલે ક્લેશથી પરિપૂર્ણ ચતુર્ગતિક સંસારમાં પરિભ્રમણશીલ-સકલ જીવોના હિતને ઉદ્દેશી ઉપદેશેલ મોક્ષરૂપ પ્રાસાદમા ચઢવાને નિઃશ્રેણિ સમાન દર્શનજ્ઞાન ચારિત્રમાર્ગમા દર્શનપદની મુખ્યતા બતાવેલ છે. ખરેખર તે વ્યાજબીજ છે. કારણ કેઃ—**दंसणभट्ठो भट्ठो, दंसणभट्ठस्स नत्थि निव्वाण। सिज्झंति चरणरहिया, दंसणरहिया न सिज्झंति॥ १ ।** મિથ્યાત્વમોહનીય અને અનંતાનુબંધિ-ચતુષ્કના ઉદયે દરેક સંસારિઆત્માને અનાદિ સંસારમાં અનન્તીવાર ભટકવું પડ્યુ છે. તેમા કોઇ જીવ આત્મવીર્યની પ્રબલતા તથા ભવ્યત્વ દશાનો પરિપાકકાલ, સાત પ્રકૃતિયોના ક્ષયોપશમ વિગેરે કારણો પામી યથાપ્રવૃત્તિઆદિ ત્રણ કરણ કરવાપૂર્વક સમ્યગ્ દર્શનરૂપ ભાવરત્નને પ્રાપ્ત કરે છે. જે પ્રાપ્ત થયેથી "**तमेव सच्चं निस्संकं जं जिणेहिं पवेइय**" (શ્રી વીતરાગ પ્રભુએ પ્રરૂપેલ ભાવો તેજ સત્ય અને શંકારહિતપણે સ્વીકારવા લાયક છે) એવા પ્રકારનું શ્રદ્ધાન પ્રકટે છે. અને તે જીવને અર્ધ પુદ્ગલ પરાવર્ત્ત કાલથી અધિક સંસાર હોતો નથી. એજ રહસ્યને જણાવતાં શાસ્ત્રકાર મહારાજા કહે છે કે-જે જીવ-સમ્યગ્દર્શનથી પતિત થયો, તે દર્શનસહચારિ જ્ઞાનચારિત્રથી પણ પતિત થયો સમજવો. એટલે સમ્યક્ત્વ વમીને મિથ્યાભાવને પામેલ જીવોને યથાર્થ જ્ઞાનચારિત્ર સંભવતા નથી. તેમજ દ્રવ્યચારિત્ર (મુનિવેષાદિ) રહિત જીવો શ્રીભરત મહારાજાદિની માફક મુક્તિપદ પામી શકે, પરંતુતત્વાર્થ શ્રદ્ધાનથી રહિત આત્માઓ અંગારમર્દક-વિનયરત્ન વિગેરેના દૃષ્ટાન્તે નિર્વૃત્તિ સૌખ્ય મેલવવા અસમર્થ નીવડે છે. તેમજ તેજ સમ્યગ્દર્શનના પ્રતાપે કૃષ્ણ અને શ્રેણિક મહારાજા જેવા જીવો પણ દ્વિવિધ શ્રાવક (સમ્યગ્દૃષ્ટિ શ્રાવક, અને દેશવિરતિ શ્રાવક) પૈકી સમ્યગ્દૃષ્ટિ શ્રાવક તરીકે પ્રસિદ્ધિ પામેલ છે. એ ઉપરથી સાબીત થાય છે કે-સમ્યગ્દર્શન સિદ્ધિપદ મેલવવામા મુખ્ય કારણ

છે, અને તેથી તે મુક્તિને આકર્ષણ કરવામા આકર્ષિણી વિદ્યા સમાન કહેવાય, એ નિર્વિવાદ છે. ઇત્યાદિ ભાવને જાણે પ્રકટજ ન કરતા હોય તેમ પૂજ્યપાદ શ્રીમદ્ ઉમાસ્વાતિવાચકમહારાજાએ પણ શ્રીતત્ત્વાર્થસૂત્રમાના 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः' આ આદ્ય સૂત્રમાં સમ્યગ્દર્શનનુજ પ્રથમ ઉપાદાન કરેલ છે.

જોકે અન્યત્ર 'नाणकिरियाहिं मोक्खो' આવાક્યમાં દર્શનપદનુ અગ્રહણ હોવાથી તેની (દર્શનની) શી જરૂરછે? એવી વગર સમજણની શંકા ન કરવી. કારણકે અન્વય વ્યતિરેકથી દર્શન અને જ્ઞાનનું સહચારિપણું છે—એટલે જ્યાં જ્ઞાન ત્યાં દર્શન, અને જ્યાં દર્શન ત્યા જ્ઞાન હોય છે દર્શન વિનાનું જ્ઞાન તે અજ્ઞાન કહેવાય છે કારણ કે 'आद्यत्रिकमज्ञानमपि भवति मिथ्यात्वसंयुक्तम्" એ પ્રમાણે પ્રશમરતિમા કહેલ છે. તેથી દર્શનનો જ્ઞાનમા અન્તર્ભાવ કરીને –"ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षः" એમ કહેલ છે.

હવે સમ્યક્ત્વનું સ્વરૂપ શું ! તે જણાવવું, જોઇએ

१ "दंसणमिह सम्मत्त । तं पुण तत्तत्थसद्दहणरूव" (દર્શન તે સમ્યક્ત્વ જાણવું. અને તે તત્ત્વાર્થ શ્રદ્ધાન રૂપ છે.)
२ -जिनोक्ततत्त्वेषु रुचिः । शुद्धा सम्यक्त्वमुच्यते- । (શ્રી વીતરાગ પ્રભુએ કહેલ તત્ત્વોને વિષે શુદ્ધ રૂચિ એટલે શ્રદ્ધા તે સમ્યક્ત્વ કહેવાય છે)
३--तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनमिति (તત્ત્વભૂત પદાર્થોનુ–યથાર્થ શ્રદ્ધાન તે સમ્યક્ત્વ જાણવુ.) એ પ્રમાણે અનેક ગ્રંથોનુ રહસ્ય છે. તેમાં પણ સૂક્ષ્મદષ્ટિયે વિચારતાં જે તત્ત્વાર્થ વિષયક શ્રદ્ધાન તે સમ્યક્ત્વરૂપ કારણનું કાર્ય, અને મિથ્યાત્વાદિના ક્ષયોપશમ વિગેરેથી પ્રકટ થયેલ, મોક્ષને અનુકૂલ પ્રશમ સંવેગાદિ ચિહ્નવાળો ઉત્તમ આત્મપરિણામ તે સમ્યક્ત્વછે. આ બાબત પૂજ્યપાદ શ્રીભદ્રબાહુસ્વામિ મહારાજા કહે છે કે– "से अ संमत्ते पसत्थसंमत्तमोहणीअकम्माणुवेअणोवसमखयसमुत्थे पसमसंवेगाइलिंगे सुहे आयपरिणामे पण्णत्ते" આ લક્ષણ સર્વત્ર વ્યાપક છે અને તેથીજ મનઃ પર્યાપ્તિ નહિ થવાને લઇને માનસિક અધ્યવસાયરૂપ શ્રદ્ધાન ન હોવા છતાં પણ અપર્યાપ્તકજીવોમા તેમજ સિદ્ધ પરમાત્માદિમા પણ તે (સમ્યક્ત્વ) ઘટી શકે છે, એ પ્રમાણે જ્યારે સમ્યક્ત્વ હોય ત્યારેજ કહેલ સ્વરૂપવાળું શ્રદ્ધાન પ્રકટે છે અને તેથી તે શ્રદ્ધાન સમ્યક્ત્વ વિના સંભવતુ નથી. એવા પ્રકારની વ્યાપ્તિ એટલે શ્રદ્ધાનવાલા જીવોને અવશ્ય સમ્યક્ત્વ હોય છે એ નિયમ જણાવવા માટે શ્રદ્ધાન એ સમ્યક્ત્વનું

કાર્ય છે તો પણ તેને વિષે સમ્યક્ત્વ રૂપ કારણનો ઉપચાર કરીને શ્રદ્ધાનને સમ્યક્ત્વ કહેવામાં આવે છે.

૧-પ્રશસ્ત આત્મપરિણામરૂપ સમ્યક્ત્વ પણ તત્ત્વને પ્રતિપાદન કરનાર શાસ્ત્રના જ્ઞાનદ્વારા પ્રકટ થાય છે કહ્યું છે કે—' **जीवाइनवपयत्थे, जो जाणइ तस्स होइ सम्मत्तं ।** " જ્યારે-તત્ત્વજ્ઞાનથી સમ્યક્ત્વ પ્રકટે છે, તો પછી " **भावेण सद्दहंतो, अयाणमाणेवि सम्मत्तं** " આ વચનથી તત્વજ્ઞાન ન હોય, તો પણ જે ભાવથી શ્રીવીતરાગ-પ્રભુએ કહેલ પદાર્થ સ્વરૂપની યથાર્થ શ્રદ્ધા રાખે તે જીવ સમ્યગ્દૃષ્ટિ કહેવાય એ વાત કેવી રીતે સંભવે? આ સંબંધમાં મહાપુરૂષોનુ સમાધાન છે કે **अयाणमाणे वि** ઇત્યાદિ વચન જ્ઞાનના અભાવને કહેનાર નથી પરંતુ વિસ્તારપૂર્વક તત્વજ્ઞાનની અપેક્ષાએ અજ્ઞાન (અલ્પજ્ઞાન) અર્થને જણાવનાર છે. એટલે જે જીવ--વિસ્તારથી તત્ત્વોને જાણતો નથી, તો પણ જો ભાવથી શ્રીવીતરાગ પ્રણીત તત્વોની યથાર્થ શ્રદ્ધા રાખે, તો તે સમ્યગ્દૃષ્ટિ કહેવાય દૃષ્ટાંત—જેમ બહુ લક્ષ્મીવાલાની અપેક્ષાએ ઓછી ઋદ્ધિવાલો નિર્ધન કહેવાય, તથા તુચ્છ જીર્ણ વસ્ત્રવાલો માણસ પણ જેમ વિશિષ્ટ વસ્ત્રોના અભાવે વસ્ત્ર રહિત કહેવાય, તેવી રીતે ભલે તત્ત્વોનું (વિસ્તારથી જ્ઞાન ન હોય, તો પણ "**तमेव सच्चं निस्संकं जंजिणेहिं पवेइयं**",તથા"**इणमेव निग्गंथे पावयणे सच्चे, सच्चेणं पममट्ठे परमट्ठे सेसे अणट्ठे** ઇત્યાદિ શુભ પરિણામ જન્ય શ્રદ્ધાનવાલા જીવને સમ્યગ્દૃષ્ટિ કહી શકાય અને જો તેમ ન માનીએ તો દર્શનના અભાવે જ્ઞાન,અને જ્ઞાનના અભાવે ચારિત્ર પણ ન સંભવે અને તેથી મોક્ષ પણ કેવી રીતે પ્રાપ્ત થશે ? માટે ઉપર કહેલ સ્વરૂપવાલા શ્રદ્ધાન યુક્ત જીવને સમ્યક્ત્વ હોય એમ અંગીકાર કરવાથીજ વિસ્તાર જ્ઞાનરહિત શ્રીમાષતુષ આદિ મુનિ મહાત્માઓની આગમોમાં મુક્તિ કહેલી ઘટે છે.

જ્યારે સમ્યક્ત્વ (તત્વશ્રદ્ધાન) એ મુક્તિનું પરમકારણ છે. એમ સાબિત થઇ ચુક્યું, ત્યારે હવે નવતત્વોનું સમ્યક્ત્વમા સહાય્યકારિત્વ શી રીતે છે? તે જણાવવું અવસરોચિત છે.

પૂજ્યપાદ સર્વજ્ઞ પ્રભુશ્રીતીર્થંકર મહારાજાએ સકલ જીવોપકારિણિ સુધા-સમાન વાણીદ્વારા લોકોત્તર શ્રી જૈનદર્શનનું તત્વજ્ઞાન દ્રવ્યાનુયોગ,ચરણકરણાનુયોગ,ગણિતાનુયોગ. અને ધર્મકથાનુયોગ એમ ચાર અનુયોગ ગર્ભિત વર્ણવ્યું. અને તેજ સ્વરૂપે પૂજ્ય શ્રી ગણધર મહારાજાએ બીજબુદ્ધિના પ્રતાપે શ્રી આચારાંગાદિ સૂત્રો ગુંથ્યા, કેટલોક સમય વીત્યાબાદ કાલાનુભાવે મતિ મંદતાદિ કારણોને ઉદ્દેશી સમગ્ર સાધુમંડલના

ઉપકારાર્થે પૂજ્યપાદ જગદ્ગુરૂ શ્રીમદાર્યરક્ષિત સૂરિ મહારાજાએ દરેક સિદ્ધાન્તોમા પૃથક્ પૃથક્ અનુયોગ દાખલ કર્યા જેમકે—શ્રીસૂત્રકૃતાંગાદિમ દ્રવ્યાનુયોગ. શ્રીસૂર્યપ્રજ્ઞપ્તિ તથા શ્રીચંદ્રપ્રજ્ઞપ્તિ વિગેરેમા ગણિતાનુયોગ. શ્રીઆચારાંગાદિમાં ચરણકરણાનુયોગ, શ્રીજ્ઞાતાસૂત્ર,ઉપાશકદશાગ, વિપાકશ્રુત, ઉત્તરાધ્યયન વિગેરેમા ધર્મકથાનુયોગ. તે ચારે અનુયોગોમાં પણ વિશેષે કરી સમ્યગ્દર્શનને માટે દ્રવ્યાનુયોગ ઉપયોગી છે, કહ્યું છે કે—" **દવિય દંસણસોહી** " દ્રવ્યાનુયોગમય સિદ્ધાન્તોનો પણ સાધુવર્ગ શિવાય અન્યવર્ગ લાભ લઈ શક્તો નથી. કારણ કે-દરેક સિદ્ધાન્તના અભ્યાસમાં કારણભૂત યોગોદ્વહનની ક્રિયા છે. જેમાં સાધુવર્ગજ અધિકારી છે, તો પણ દરેક વર્ગને તેઓમા કહેલ ભાવોનો બોધ થાય, તે સારૂ પરોપકાર ધુરીણ પૂર્વાચાર્ય ભગવંતોએ-તત્ત્વાર્થ-ધર્મસંગ્રહણિ પ્રવચનસારોદ્ધાર પંચસંગ્રહ, -કર્મપ્રકૃતિ – લોકપ્રકાશ, વિગેરે ગ્રંથોરચ્યા. પરન્તુ તે ગ્રન્થો ઘણાજ વિસ્તીર્ણ ગંભીરાર્થવાલા, ગહનબુધ્ધિગમ્ય અને સંસ્કૃત પ્રાકૃત ભાષાબદ્ધ હોવાથી વિશેષબુદ્ધિવાલાઓનેજ ઉપકારક છે. તેથી મન્દબુદ્ધિવાલા જીવોના ઉપકારાર્થે તેજ પ્રાચીન મહાપુરૂષોએ જીવવિચાર-નવતત્વ-દંડક (વિચારષટ્ત્રિંશિકા) સંગ્રહણી-ક્ષેત્રસમાસ- વિચારપંચાશિકા આદિ પ્રકરણગ્રન્થો બનાવ્યા. આ તમામ પ્રકરણોમા પણ સમગ્ર જૈનદર્શનપ્રક્રિયા તત્ત્વોનો સંક્ષિપ્તસંગ્રહ અને ગહન ફીલોસોફીનો બોધ વિગેરે સાધન સંપન્ન આ શ્રીનવતત્વ પ્રકરણ જ છે, જો કે પ્રકરણ ગ્રન્થો પરિમિતગાથાઓવાલા હોવાથી પાઠ કરવામા સુખે લાભ લઇ શકાય તેવા છે તો પણ મહાર્થવાલા હોવાથી કેવલ ગાથાઓ પાઠ કરી ગયે, તત્વોની સમજણ વિગેરે જોઇતો સગીન લાભ મલી શકતો નથી. માટેજ પ્રાચીન મહાપુરૂષોએ તે તે પ્રકરણો ઉપર વૃત્તિ-અવચૂર્ણીઓ વિગેરે બનાવી તેપણ સંસ્કૃતભાષાબદ્ધ હોવાથીજીવોના બોધને માટે પ્રાચીન મહાપુરૂષોએ બાલાવબોધ ટબા વિગેરે અર્થો લખ્યા છે તેમાં પણ પ્રાચીનશૈલી અને ભાષાની પરિવર્તનાને લઇને સાંપ્રતકાલીન જીવો પૂરતો લાભ લઇ શકતા નથી વલી પ્રસંગાનુપ્રસંગ પ્રાપ્ત પદાર્થોના બોધને માટે અનેક ગ્રન્થોની મદદ લેવી પડે છે ઇત્યાદિ અનેક હેતુઓને અવલંબી આ પ્રસ્તુત વિસ્તરાર્થ તથા તેના પરિશિષ્ટરૂપ નવતત્વસાહિત્યસંગ્રહ બહાર પાડવામા આવ્યા છે.

હવે પૂર્વે કહેલ સમ્યગ્દર્શન પામવાની પ્રણાલિકા કહેવાય છે. સમ્યક્ત્વ પામનાર જીવ પરિણામ અર્થવાલા ૩કરણો કરે છે. ૧-યથાપ્રવૃત્તિકરણ ૨—અપૂર્વકરણ. ૩ અનિવૃત્તિકરણ યથાપ્રવૃત્તિ કરણનું સ્વરૂપ——જન્મ જરા અને મરણરૂપ જ.

લતરંગોથી વ્યાપ્ત ભયંકર સંસાર સમુદ્રમાંમિથ્યાત્વમોહનીયાદિ કર્મોની પ્રેરણાથી અનંત પુદ્ગલ પરાવર્તકાલસુધી અવ્યવહાર રાશિ સૂક્ષ્મનિગોદના ભવોમાં અનેક-અસહ્ય દુઃખોનો અનુભવ કરતા કરતા અકામ નિર્જરાદિ હેતુના સંનિધાનથી વ્યવહાર રાશિમાં આવેલા જીવને દ્રવ્યાદિકારણને અનુસારે તથાભવ્યત્વદશાનો પરિપાક થવાથી પ્રકટ થયેલ અધ્યવસાયોનું નામ યથાપ્રવૃત્તિકરણ કહેવાયછે. આ અધ્યવસાયો સાગરોપમ કોડા કોડી પ્રમાણ દીર્ઘકર્મ સ્થિતિનો નાશ કરનાર છે. તેથી તેના પ્રતાપે પાંચમા આયુષ્કકર્મ શિવાય જ્ઞાનાવરણીયાદિ સાત કર્મો પૈકી પ્રત્યેક કર્મને પલ્યોપમના અસંખ્યાતમા ભાગે ન્યૂન એક કોડા કોડી સાગરોપમ પ્રમાણ સ્થિતિવાલા કરે છે. એટલે શેષ સ્થિતિનો નાશ કરી અન્ત: કોડા કોડી સાગરોપમ પ્રમાણ સ્થિતિ કરવી, એ પ્રથમકરણનું કાર્ય છે "અન્તર્મુહૂર્ત પ્રમાણ સ્થિતિવાલા જે વિશિષ્ટ અધ્યવસાયો તે યથાપ્રવૃત્તિ કરણ અને ઉત્તરોત્તર સમયે પૂર્વ પૂર્વ સમયની વિશુદ્ધિ કરતા અનંતગુણી વિશુદ્ધિ એ તેનું કાર્ય એવો પણ અભિપ્રાય અન્યત્ર સમજાય છે

આયુષ્કકર્મની અલ્પ સ્થિતિ હોવાથી આ પ્રસ્તાવે તેનું વર્જન કરેલછે. તથા ઉપર કહ્યા પ્રમાણે સ્થિતિનો નાશ કરવાનું કારણ એ કે—જેમ વસ્ત્રની ઉપર લાગેલ ઘીનો ડાઘ જ્યાં સુધી તેનાં ઉપર ચોટેલ ધૂળને દૂર કરવામા ન આવે ત્યાં સુધી દેખાય નહિ, તેમ ઉપર કહેલ પ્રમાણે કર્મ સ્થિતિનો લાઘવ થયા વિના અન્તઃસ્થ ગ્રંથિસ્થાન પ્રકટ થતુ નથી.

પ્રશ્ન—જો ૩૦ કોડા કોડી ઈત્યાદિ યાવત્ ૭૦ કોડા કોડી સાગરોપમ પ્રમાણ કર્મસ્થિતિને બાંધી છે, તો તે કર્મ તેટલા કાલ સુધી ભોગવવું જોઇએ. અને તમે તો અન્તર્મુહૂર્ત પ્રમાણ અધ્યવસાયોના સમૂહ સ્વરૂપ યથાપ્રવૃત્તિ કરણે કરી લાંબી સ્થિતિનો નાશ કરવાનુ કહો છો, તો તે વાત કેવી રીતે સંભવી શકે? અને જો તેમ સંભવે તો બાંધેલ સ્થિતિ પ્રમાણે તે કર્મ તેટલા કાલ સુધી ભોગવવામાં ન આવવાથી 'कृतनाश' ૧ અને ઓછી સ્થિતિનું તે કર્મ બાંધ્યું નથી, તો પણ અલ્પ સમયમાં ભોગવે છે, તેથી 'अकृतागम' ૨ આ બે દોષો કેમ નહિ પ્રાપ્ત થાય?

ઉત્તર—અધ્યવસાયની તાકાત એટલી તીવ્ર છે, કે જેને લઇને જો અશુભ અધ્યવસાય હોય તો તેના યોગે અન્તર્મુહૂર્ત જેવા લઘુકાલમાં સાતમી નરકને લાયક કર્મદલિકો એકઠા કરે છે. અને શુભ

અધ્યવસાયના પ્રતાપે શ્રીમરૂદેવામાતા વિગેરેના દ્રષ્ટાન્તે અલ્પકાલમાં મોક્ષપદ પણ મેલવી શકે છે એજ અધ્યવસાય વિશેષથી અનિકાચિત એવા સર્વ કર્મોના સ્થિતિરસની અપવર્ત્તના ઘટાડો થાય છે. તથા જ્ઞાનપુર્વક ક્ષમા પ્રધાન તીવ્ર તપશ્ચર્યાના યોગે નિકાચિત બંધવાલા કર્મોના સ્થિતિરસનો પણ ઘટાડો થઇ શકે છે, કહ્યું છે-**सव्वपगईणमेयं, परिणामवसादुवक्कमो होज्जा। पायमनिकाइयाणं, तवसाओ निकाइयाणं पि १**અર્થ ઘણુ કરીને અનિકાચિત બંધવાલી સર્વ કર્મ પ્રકૃતિયોનો એટલે તેઓના સ્થિતિરસનો એ પ્રમાણે પરિણામના યોગે ઘટાડો થઇ શકે છે. તાત્પર્ય એ છે કે-જેમ ઘણા કાલ સુધી ચાલે તેટલું ઘણુ અનાજ પણ ભસ્મકવ્યાધિના યોગે કોઇ માણસ અલ્પ સમયમાં ખાઈ જાય. એટલે તે ધાન્યની વર્તમાન સ્થિતિનો નાશ થયો નથી. પરંતુ વ્યાધિના બલથી ઘણું ધાન્ય થોડા કાલમાં ખવાઇ ગયું, તેવીજ રીતે લાંબી મુદ્દત સુધી ભોગવવા લાયક કર્મો પણ પરિણામના યોગે થોડા સમયમા ભોગવાય છે તથા જેમ આમ્રફલાદિને ખાડામાં નાંખી ઉપર ઘાંસ વિગેરેથી ઢાંકી રાખીયે, તો તે ફલો અલ્પ સમયમાં પરિપક્વ થાય છે તેવી રીતે તેવા પ્રકારના અનિકાચિત કર્મો પણ અધ્યવસાયાદિ સામગ્રીના યોગે અલ્પકાલમાં ભોગવાય, એમાં કોઇજાતનો વિરોધ નથી. અને તેથીજ અબાધાકાલના જઘન્યોત્કૃષ્ટ ભેદો તથા ઉદયાવલિમાં આવતા કર્મની નિષેક તથા ગુણ રચના ઘટે છે, કર્માનુભવ સંબંધમાં એટલું તો અવશ્ય જાણવું જોઇએ કે કર્મના "**पयइठिइरसपएसा तं चउहा**"–૧ પ્રકૃતિકર્મ. ૨ સ્થિતિકર્મ,૩ રસકર્મ, ૪ પ્રદેશકર્મ એમ ચાર પ્રકારો છે,તેમાં "**अवश्यमेव भोक्तव्यमित्यादि**" વચનો પ્રદેશકર્મની અપેક્ષાએ અને અપવર્ત્તના સ્થિતિ રસની અપેક્ષાએ જાણવી. કારણકે પ્રજ્ઞાપનાવૃત્તિમાં બે પ્રકારનો કર્માનુભવ કહેલ છે. ૧ પ્રદેશકર્માનુભવ, ૨ વિપાકકર્માનુભવ, તેમા પ્રદેશકર્મની વિચારણાએ દરેક કર્મ અવશ્ય ભોગવવું પડે છે. અને રસથી કર્મનો અનુભવ વિકલ્પે થાય છે એટલે કોઇ કર્મનોરસ અનુભવાય છે અને કોઇ કર્મનોરસ નપણ અનુભવાય. કારણકે શુભપરિણામના યોગે તે કર્મના રસની અપવર્ત્તના થાય છે આવી રીતે જો કે શુભપરિણામથી સ્થિતિ રસની અપવર્ત્તના થાય છે. તો પણ તેમા કૃતનાશાદિ દોષો લાગુ પડતા નથી કારણકે તેવા પ્રકારના ઉત્તમ પરિણામથી જો રસક્ષય પામે તો તેમાં અનિષ્ટ કાંઇ નથી જેમ સૂર્ય કિરણના તાપથી શેલડીમાં રહેલ રસ સુકાઇ જાય છે. તેમા કૃતનાશ અને અકૃતાગમનામનો દોષ નથી. તેમજ સ્થિ-

તિ પણ રસાધીન હોવાથી રસના નાશથી સ્થિતિનો નાશ અવશ્ય થાય છે, વળી જે કર્મ જેવી રીતે બાંધ્યું, તે કર્મ તેવી રીતે જ અવશ્ય ભોગવવું પડતું હોય, તો અશુભ કર્મોનો ક્ષય નહિ થવાથી તપોવિધિ, જિનપૂજાદિ વિધાનો વ્યર્થ થશે; પરંતુ તેમ તો છે જ નહિ, તેમજ, તે ભવમાં મુક્તિગામી જીવોને પણ પૂર્વકર્મ તે તે વિપાકોદયસ્થિતિમાં ભોગવતાં નવીન નવીન કર્મોનો બંધ થવાથી મુક્તિ થવી ન જોઇયે. માટે કોડાકોડીસાગરોપમપ્રમાણ દીર્ઘસ્થિતિવાળું કર્મ પણ નીરસપણે પ્રદેશથી ભોગવાય છે, એમ માનવું જ જોઇએ અને તેથીજ અસંખ્યાતાભવોમાં તેવા પ્રકારના વિચિત્ર અધ્યવસાયથી ભિન્ન ભિન્ન ગતિને આપનાર બાંધેલ કર્મ તે ભવમાં પણ સત્તામાં હોય તો પણ ચરમભવમાં શુભાધ્યવસાયની તીવ્રતાથી સર્વ કર્મોનો ક્ષય થઈ શકે છે, તથા જે કર્મ બંધસમયે તેવા પ્રકારની રસાપવર્તનાને યોગ્ય પરિણામવડે બાંધ્યું હોય, તે કર્મ તેવીરીતે નીરસ ભોગવાય છે કારણકે—કર્મબંધના કારણભૂત અધ્યવસાયસ્થાનકો દ્રવ્યાદિપાંચમાંના કોઇપણ કારણથી ઉત્પન્ન થતાં ક્ષયોપશમાદિની માફક વિચિત્ર હોવાથી સ્થિતિરસનો ઉપક્રમ (ઘટાડો) કરી શકે છે. તાત્પર્યએકે અસંખ્યેય લોકાકાશના પ્રદેશ પ્રમાણ તે અધ્યવસાય સ્થાનકોમાં કેટલાએક સોપક્રમ (જેના સ્થિતિ રસનો ઘટાડો થઇ શકે એવા) કર્મબંધમાં કારણ છે., અને કેટલાએક અધ્યવસાયસ્થાનકો નિરૂપક્રમ કર્મબંધને ઉત્પન્ન કરનાર છે. જેથી જે કર્મ જેવા અધ્યવસાયથી બાંધ્યું હોય તે કર્મ તેવી રીતે અનુભવાય આપ્રમાણે વસ્તુ સ્થિતિ હોવાથી કૃતનાશ, અકૃતાગમદોષો અવકાશ પામતા નથી,વળી એકજ વિષયમાં પરિણામભેદથી કાલભેદ દેખાય છે, જેમ ઘણા શિષ્યો એકજ શાસ્ત્રનો સાથે અભ્યાસ કરતા હોય છતાં પણ તેમા બુદ્ધિની તરતમતાથી ભેદ પડે છે. તથા જેમ અમુક યોજનના લાંબા માર્ગમા ઘણા માણસો એક સાથે ચાલ્યા ', છતાં તેઓની ગતિની તરતમતાથી ઇષ્ટસ્થલે પહોંચવામાં કાલભેદ થાય છે (કોઈ પહેલો પહોચે અને કોઇ પછી પહોચે) તેવીજરીતે ઘણા જીવોએ સમાન સ્થિતિવાળું કર્મ બાંધ્યુ હોય તેમા પણ પરિણામની તરતમતાથી અનુભવકાલ જુદો જુદો દેખાય છે ઇત્યાદિ ઘણોજ વિશાલ વિચાર વિશેષ જીજ્ઞાસુ જીવોએ અન્યગ્રંથોથી જાણવો.

આ યથાપ્રવૃત્તિકરણ તથા આગલ કહેવામાં આવનાર બન્ને કરણો પૈકી દરેક કરણ અન્તર્મુહૂર્તપ્રમાણસ્થિતિવાળું જાણવુ તથાત્રણે કરણનો સમગ્ર કાલ પણ અન્તર્મુહૂર્ત પ્રમાણ છે પરંતુ તે દરેકના કરતા મોટુ જાણવું, આ યથાપ્રવૃત્તિકરણ ભવ્ય તથા અભવ્ય બન્ને પ્રકારના જીવોને હોય છે;

કર્મસ્થિતિની અપવર્ત્તના કરવાના સંબંધમાં ધાન્યના પ્યાલાનું દૃષ્ટાન્ત શાસ્ત્રમાં બતાવ્યું છે કે-જેમ એક માણસ પ્યાલામાં થોડું થોડું અનાજ નાંખતો જાય, અને વધારે વધારે કાઢતો જાય, એમ કરતા કરતાં કેટલેક કાલે તે પ્યાલામાં ઘણું અનાજ ઘટવાથી થોડું ધાન્ય બાકી રહે છે. તેમ ભવ્યજીવ અનાભોગસ્વરૂપ આ કરણે કરી દીર્ઘ સ્થિતિનો નાશ અને અલ્પસ્થિતિનો બંધ કરે છે, એ પ્રમાણે કોઇક ભવ્ય જીવ આ કરણે કરી કર્મસ્થિતિનો લાઘવ કરી ગ્રન્થિસ્થાનની નજીકમાં આવે છે આ કરણનું બીજું નામ " પૂર્વપ્રવૃત્ત " છે. કારણકે શેષ કરણોથી પૂર્વ-પ્રથમ પ્રવર્ત્તે છે. ઉપર કહેલ તે ગ્રંથિસ્થાન સુધી અભવ્યજીવો પણ પ્રથમ કરણવડે કર્મસ્થિતિનો લાઘવ કરી અનંતીવાર આવે છે, પરંતુ તેઓ તેને ભેદી શકતા નથી. કારણકે તેઓ રાગાદિપરિણામને પાછા હઠાવવાના કારણભૂત વિશિષ્ટઅધ્યવસાયરહિત છે અને તેથીજ એટલે મિથ્યાત્વમોહનીયની સર્વોપશમના ન કરી શકવાથી ઔપશમિક સમ્યક્ત્વ પામીશકતા નથી. અને તે સ્થલે તેઓ સંખ્યેય અથવા અસંખ્યેય કાલસુધી રહે છે. તેમાં કોઇ અભવ્ય જીવ ઉત્તમ મુનિ મહાત્માઓની ચક્રવર્તિ વિગેરે રાજાઓએ કરેલ શ્રેષ્ઠ પૂજા, સત્કાર, સન્માનાદિ જોઇને અથવા શ્રીતીર્થંકર ભગવંતની અનુપમઅતિશયાદિ ઋદ્ધિના દેખવાથી, અથવા સ્વર્ગસુખની અભિલાષાદિ પ્રયોજનથી પ્રવજ્યા ગ્રહણ કરી દ્રવ્યથી સાધુપણાને ઉ શીને પોતાની મોટાઇ વિગેરેની અભિલાષાથી પ્રતિલેખનાદિ ક્રિયાકલાપને આચરે છે. અને તેથી તે ઉત્કૃષ્ટથી નવમા ગ્રૈવેયક સુધી પણ જઇ શકે છે. સાચુંજ છે કે દ્રવ્યચારિત્રનો મહિમા પણ અપૂર્વ છે આ બાબત પંચાશક ટીકામા કહ્યું છે કે—सव्वजियाणं जम्हा, सुत्ते गेविज्जगेसु उववाओ । भणिओ जिणेहिं सो नय, लिंगं मोत्तुं जओ भणियं ॥१॥ जे दंसणवावण्णा, लिंगग्गहणं करिंति सामन्ने। तेसिं पि य उववाओ, उक्कोसो जाव गेविज्जा ॥ २ ॥ અને કોઇ અભવ્ય જીવ નવમા પૂર્વસુધી માત્ર સૂત્રપાઠ જાણે છે, તેથી જ તે શ્રુતસામાયિક પામી શકે છે. કહ્યું છે કે—तित्थंकराइपूअं, दट्ठूणण्णेण वावि कज्जेण । सुयसामाइयलाहो, होज्ज अभव्वस्स गंठिम्मि ॥१॥ (ગંઠિમ્મિ-ગ્રન્થિસ્થાનના નજીક પ્રદેશમાં) તે અભવ્યો પૂર્વધરલબ્ધિના અભાવે અર્થ જાણતા નથી. અને તેથી જ તેમનું શ્રુત તે દ્રવ્યશ્રુત છે. વલી કોઇ મિથ્યાત્વી ભવ્યજીવ ગ્રન્થિદેશમાં રહી કાંઇક ઊણા દશપૂર્વસુધી દ્રવ્યશ્રુત મેળવે છે. તેથીજ ' ' મિથ્યાત્વિગૃહીત કાંઇ ઊણા દશપૂર્વ સુધી શ્રુત પણ મિથ્યાશ્રુત કહેવાય છે " જ્યારે પૂર્ણ દશપૂર્વનું જ્ઞાન હોય, ત્યારે નિયમે સમ્યક્ત્વ

હોય છે. બાકીમાં ભજના છે કહ્યું છે કે- **चउद्दस दसय अभिन्ने, नियमा सम्मं तु सेसए भयणा ।** ગ્રંથિસ્થાનની નજીકમાં આવેલા કેટલાએક ભવ્યજીવો પણ રાગાદિ ભાવશત્રુથી જીતાયા છતાં પાછા વળે છે, તેમજ પૂર્વની માફક દીર્ઘસ્થિતિવાળા કર્મો બાંધે છે. અને કેટલાએક અવસ્થિત પરિણામિ ભવ્યજીવો તેજ સ્થલે રહે છે. તેઓ અવસ્થિત પરિણામવાળા હોવાથી કર્મોની સ્થિતિ ઓછી તેમજ વધારે પણ બાંધતા નથી. અને જેઓને અર્ધપુદ્ગલપરાવર્તકાલમા મોક્ષ નિશ્ચિત છે, એવા ચારે ગતિના સંજ્ઞિપર્યાપ્તપંચેન્દ્રિયજીવો કુહાડાની તીક્ષ્ણધારસમાન અપૂર્વકરણનામના નવીન અધ્યવસાયોનાસમૂહે કરી ગ્રન્થિનો ભેદ કરે છે. જેમ કોઇ મોટા નગરમાં જવાની ઇચ્છાથી ત્રણ માણસો પોતાના ગામથી સાથે નીકલ્યા ચાલતા ચાલતા તેઓ ચોરોના ઉપદ્રવવાળી અટવીમાં આવી પહોચ્યા. ત્યાં આવતાં તેઓને બે ચોરોએ દેખ્યા. એક માણસ ભયપામી પાછો હઠી ગયો. બીજા માણસને ચોરોએ પકડયો ત્રીજો માણસ બલવાન હોવાથી તેઓને હરાવી અટવીનો પાર પામી ઇષ્ટનગરે પહોંચ્યો દ્રષ્ટાન્તની ઘટના આ પ્રમાણે છે– ત્રણ માણસ તે સંસારી જીવો, અટવી તે સંસાર, માર્ગ તે કર્મોની દીર્ઘસ્થિતિ, ચોરોના રહેઠાણવાળું ભયંકર સ્થાન તે ગ્રન્થિસ્થાન, બે ચોર તે રાગદ્વેષ, ચોરોથી ભયપામી પાછોવળેલ માણસ તે ગ્રંથિદેશમાં આવી ખરાબ પરિણામના યોગે પાછો ફરી જ્યેષ્ઠસ્થિતિનો બાંધનાર જીવ, તેમજ ચોરોના પંજામાં આવેલ માણસ તે રાગાદિથી ત્રાસ પામેલ ગ્રંથિની નજીકમાં રહેલ જીવ, વિશિષ્ટપરિણામના અભાવે તે જીવ ગ્રંથિને ભેદતો નથી અવસ્થિતપરિણામવાળો હોવાથી પાછો પણ વળતો નથી. તથા ઇષ્ટનગરે પહોંચેલ પરાક્રમિ માણસ તે અપૂર્વકરણે કરી રાગદ્વેષને દૂર કરી સમ્યગ્દર્શન પામનાર જીવ જાણવો. તથા આકરણમા અનેકજીવાશ્રયોની અપેક્ષાએ દરેક સમયે અસંખ્યેય લોકાકાશના પ્રદેશરાશિપ્રમાણ અધ્યવસાયસ્થાનો પ્રાપ્ત થાય છે તથા પૂર્વપૂર્વસમયની અધ્યવસાયવિશુદ્ધિથી આગળ આગળના સમયની અનંતગુણી વિશુદ્ધિ હોય છે. તેનો યથાર્થભાવ દર્શાવનાર બે પુરૂષની વિવક્ષા શ્રીકર્મપ્રકૃતિટીકાથી જાણવી પુન: આ કરણવિષે વિશિષ્ટ અધ્યવસાયોના અભાવે સ્થિતિ ઘાતાદિ પ્રવર્ત્તતા નથી. તેમજ આ કરણવર્ત્તિ જીવ દ્વિસ્થાનક રસવાલા અશુભકર્માને. અને ચારઠાણીયા રસવાળા શુભકર્મોને બાંધે છે. તથા સ્થિતિબંધ પણ પૂર્વ પૂર્વસમયની અપેક્ષાએ પલ્યોપમના અસંખ્યેય ભાગે હીન આગળ આગળના સમયે કરે છે. એ પ્રમાણે ગ્રન્થિસ્થાનની નજીકમાં પ્રથમ કરણે કરી ભવ્યાત્મા કેવી રીતે આવે તે સંક્ષેપમાં કહ્યુ –

હવે ૨–અપૂર્વકરણ– જે અધ્યવસાયોના યોગે પહેલાં નહિ કરેલાં એવા– ૧ સ્થિતિઘાત, ૨ રસઘાત, ૩ ગુણશ્રેણી, ૪ અભિનવસ્થિતિબંધ– આ ચાર પદાર્થો થઈ શકે– તેવા નવીન અધ્યવસાયોનું નામ અપૂર્વકરણ છે. જીવને પોતાના દુષ્કર્મથી ઉત્પન્ન થયેલ કઠોર અને મજબુત, તેમજ લાબા કાળની ઉગેલ ગુપ્તવાસની ગાંઠ જેવી દુ:ખે કરી ભેદી શકાય એવી અને પૂર્વે નહિ ભેદાએલ રાગદ્વેષના પરિણામ રૂપ ગ્રંથિ છે. આ ગ્રન્થિનો ભેદ કરવો તે અપૂર્વકરણનું ફલ છે હવે ગ્રન્થિ ભેદવા માટે આ કરણમાં પ્રવેશ કરવાની સાથે પ્રથમસમયથી માડી સ્થિતિઘાતાદિ ચાર ક્રિયાઓ કરેછે.

૧. સ્થિતિઘાત– સીધીલાઇન રૂપ સત્તામાં રહેલિ અંતઃકોડાકોડિસાગરોપમ પ્રમાણ સ્થિતિ સબધિ ઉપરના ભાગમાંથી વધારેમાં વધારે સેકડો સાગરોપમ પ્રમાણ અને ઓછામાઓછા પલ્યોપમના અસખ્યેયભાગ પ્રમાણ સ્થિતિખડને ઉકેરે છે. એટલે તે ભાગમા રહેલા કહેલ પ્રમાણ સ્થિતિવાલા કર્મદલિકોને ત્યાથી ઉઠાવે છે. અને તેઓને નીચેની પ્રથમ સ્થિતિ જેમાં રહેલા દલિકો અનુભવાતા નથી, તે સ્થિતિમા ગોઠવે છે. આ ક્રિયા અન્તર્મુહૂર્તમા પૂરી થાય છે. તે વાર પછી પ્રથમસ્થિતિ ખડની અનતર રહેલા– જઘ૦-વા-ઉત્કૃ૦ સ્થિતિખડને અંત૦માં ઉકેરે છે. અને પૂર્વની માફક દલિક પ્રક્ષેપ કરે છે. એ પ્રમાણે અપૂ૦ના કાલમા હજારો સ્થિતિખડના દલિકો ઉઠાવી નીચેની સ્થિતિમા દાખલ કરે છે, તેમ કરતા અપૂ૦ના પ્રથમ સમયની સ્થિતિમાથી સંખ્યેય ગુણહીન સ્થિતિ થાય છે. એટલે તેટલા પ્રમાણ સ્થિતિવાલા દલિકો તે ભાગમાંથી ખાલી થાય છે.

૨ રસઘાત– અશુભ પ્રકૃતિયોના સત્તામાં રહેલ રસાણુઓના અનતભાગ કરી તેમાંના એક ભાગ શિવાય બાકીના રસાણુઓને અત૦કાલમા નાશ કરે તેવારપછી પહેલા ત્યાગ કરેલ અનંતમા ભાગના અનંત ભાગો કલ્પી એકભાગ શિવાયના શેષભાગના રસાણુયોને અંતર્મુહુત્ત કાલમા નાશ કરે. એપ્રમાણે– વિવક્ષિત સ્થિતિઘાતના કાલમા હજારો રસઘાત થાય છે, અને હજારો સ્થિતિઘાતો અપૂર્વ કરણમાં થાય છે.

૩ ગુણશ્રેણિ– ઉપરની સ્થિતિમાથી ઉઠાવેલ દલિકોને પૂર્વ પૂર્વ સમય કરતાં ઉત્તરોત્તર સમયોમાં અસંખ્યેયગુણ વૃદ્ધિએ દાખલ કરવા તે.

૪ અભિનવસ્થિતિબધ– આકરણમાં શરૂઆતથીજ માંડી દરેક સમયે પહેલાં નહિ કરેલ એવો પલ્યોપમના અસંખ્યભાગે હીન સ્થિતિબધકરવો તે.

(સ્થિતિઘાતાદિ સ્વરૂપ સમજવામાં કપૂનાઇન-ખુકપુનાઇનિનું દષ્ટાન્ત સુગમ છે) આ કરણમા પણ દરેક સમયે અસખ્યેય લોકાકાશ પ્રદેશ પ્રમાણ અધ્યવસાય સ્થાનો છે. આ રીતે ચાર કાર્ય કરવાદ્વારા ગ્રન્થિ ભેદ કરી ત્રીજા અનિવૃત્તિકરણમાં પ્રવેશ કરે છે

૩ અનિવૃત્તિકરણ- આ કરણમાં વર્ત્તનારા ત્રિકાલવર્તિ જીવોની સમાન સમયમાં પરિણામવિશુદ્ધિ 'અનિવૃત્તિ'- ફેરફારવિનાની એક સરખી હોય છે તેથી આ કરણનું અનિવૃત્તિ એવુ નામ છે. સમાન સમયમાં એટલે ઉપર કહેલ પરિણામવિશુદ્ધિ ઉત્તરોત્તર સમયોમાં પૂર્વના જેવી હોતી નથી. કારણ અનંતગુણી કહેલ છે. પરંતુ વિવક્ષિત કોઇપણ સમયમાં ત્રણે કાળના જીવોની પરિણામવિશુદ્ધિ એક સરખી હોય છે. તેમજ બીજી રીતે એપણ અર્થ થાય છે કે- જે અધ્યવસાયો સમ્યક્ત્વ પમાડ્યા શિવાય પાછાહઠે નહી, એટલે તેઓના પ્રાપ્ત થવાથી અવશ્ય સમ્યક્ત્વ પામે, તે અનિવૃત્તિકરણ કહેવાય. ઉપર કહ્યા પ્રમાણે ત્રણે કરણોની અનુક્રમે જ પ્રાપ્તિ થાય છે. જેને માટે કહ્યું છે કે- " जा गंठि ता पढमं, गंठिं समइच्छओ भवे बीअं ।
अनियट्टिकरणं पुण, सम्मत्तपुरक्खडे जीवे ॥ १ ॥ "

આ અનિવૃત્તિકરણના જેટલા સમયો છે, તેટલાજ તેના અધ્યવસાયો અને તેઓ પૂર્વ પૂર્વ સમયની વિશુદ્ધિથી ઉત્તરોત્તરસમયોમા અનત ગુણવિશુદ્ધિવાલા જાણવા તથા જેમ અપૂર્વકરણમાં શરૂઆતથી જ સ્થિતિઘાતાદિ ચાર કાર્યો કરે છે તેવીરીતે અહીં પણ તે કાર્યો કરે છે. અન્તર્મુહૂર્ત્તપ્રમાણસ્થિતિવાલા આ કરણના કરેલા સંખ્યાતા ભાગોમાથી ઘણા ભાગો વ્યતીત થાય અને એક સંખ્યાતમો ભાગ બાકી રહે ત્યારે સીધી લાઇન રૂપ મિથ્યાત્વની સ્થિતિસંબધિ નીચેનો અન્તર્મુહૂર્ત્તપ્રમાણ ઉદયાવલિકાનો ભાગ છોડી દઇ શેષભાગમાં અંતર કરણ કરે છે અંતરકરણનો અર્થ એ છે કે- અન્તર્મુહૂર્ત્તકાલસુધી ભોગવવા લાયક એવા મધ્યભાગમાં રહેલા દલિકોને પ્રથમસ્થિતિ અને દ્વિતીયસ્થિતિમાં દાખલ કરવાના કારણભૂત જે ક્રિયાવિશેષ અથવા અધ્યવસાય તે અંતરકરણ કહેવાય. આ અતરકરણની નીચેની સ્થિતિનું નામ પ્રથમસ્થિતિ તથા ઉપરની સ્થિતિનું દ્વિતીયસ્થિતિ નામ છે તથા આગળ પામવા લાયક અંતર્મુહૂર્ત્તપ્રમાણસ્થિતિવાલા ઔપશમિક સમ્યગ્દર્શનને મિથ્યાત્વના પુદ્ગલો વિઘ્ન ન કરે તે સારૂ અતર્મુહૂર્ત્તકાલ પ્રમાણ અતરકરણ કરેછે- આ અંતરકરણ કરે ત્યારે મિથ્યાત્વની સ્થિતિના બે વિભાગ પડે છે તેમાં ૧ પ્રથમસ્થિતિ અતર્મુહૂર્ત્તપ્રમાણવાલી છે ૨ દ્વિતીયસ્થિતિ અંતઃકો-

ડાકોડી સાગરોપમપ્રમાણ જાણવી. તથા પ્રથમ સ્થિતિમાં વર્ત્તમાન જીવ ઉદીરણા પ્રયોગથી તે (પ્રથમસ્થિતિ) ના દલિકોને ખેંચી જે ઉદયાવલિકામાં દાખલ કરે, તેનું નામ ' ઉદીરણા ' અને દ્વિતીયસ્થિતિમા રહેલ દલિકોને તેજ (ઉદીરણા) પ્રયોગવડે ખેચી ઉદયાવલિકામા દાખલ કરે તે 'આગાલ' કહેવાય આગાલ તે ઉદીરણાનો એક ભેદ છે. ઉદય અને ઉદીરણાવડે પ્રથમસ્થિતિનો અનુભવ કરતો કરતો જ્યારે તે સ્થિતિ બે આવલિકા પ્રમાણ શેષ રહે ત્યારે આગાલરૂપ ઉદીરણા પ્રવર્ત્તતી નથી તે પહેલા તે અને ગુણશ્રેણિ પ્રવર્ત્તે તે વખતે માત્ર મિથ્યાત્વનો સ્થિતિરસઘાત અને ઉદીરણા જ ચાલુ છે જ્યારે પ્રથમસ્થિતિ આવલિકા કાલ પ્રમાણ શેષ રહે ત્યારે મિથ્યાત્વનો સ્થિતિઘાત રસઘાત અને ઉદીરણા પણ બધ પડે છે તે આવલિકામા રહેલ દલિકોને ઉદયવડે જ અનુભવે છે, તેમાં પ્રથમસ્થિતિમા વર્ત્તમાનજીવ મિથ્યાત્વદલિકોને અનુભવે છે, તેથી તે મિથ્યાદૃષ્ટિ જાણવો મિથ્યાત્વની પ્રથમસ્થિતિકાલના ચરમસમયે એટલે અનિવૃત્તિકરણના છેલ્લા સમયે બીજી સ્થિતિમા રહેલા દલિકોનેમદનકોદ્રવના દૃષ્ટાન્તે અનુભાગની તરતમતાવાળા ત્રણપુંજ કરે,

કહ્યું છે કે- " त कालं बीयठिइं, तिहाणुभावेण देसघाइत्थ ।
सम्मत्त सम्मिस्सं, मिच्छत्त सव्वघाइत्थ ॥ १ ॥ "

અર્થઃ— તે કાલે એટલે જે સમયથી અનન્તર ઔપશમિક સમ્યગ્દર્શન પામશે તે સમયે અથવા પ્રથમ સ્થિતિના છેલ્લા સમયે મિથ્યાત્વભાવમાં રહ્યો છતો બીજી સ્થિતિમા રહેલા કર્મદલિકોને અનુભાગવડે ત્રિધા શુદ્ધ, અર્ધ શુદ્ધ, અશુદ્ધ, એમ ત્રણ પ્રકારના કરે છે તેમા શુદ્ધદલિકો તે સમ્યક્ત્વમોહનીયનો પુંજ જાણવો. અને તે દેશઘાતિપ્રકૃતિ છે. કારણકે તે પ્રકૃતિમાં રહેલ રસ વિશિષ્ટ શ્રદ્ધાન રૂપ દેશને રોકે છે પરતુ સામાન્ય શ્રદ્ધાનને રોકતો નથી તથા અર્ધશુદ્ધ દલિકો તે મિશ્રમોહનીયનો પુંજ અને અશુદ્ધ દલિક તે મિથ્યાત્વમોહનીયનો પુંજ જાણવો. તે બન્ને પણ સર્વઘાતિ પ્રકૃતિ છે. કારણકે તેઓમા સર્વાંશ શ્રદ્ધાનનો ઘાત કરનાર રસ રહેલો છે તથા चरमसमयं मिच्छदिट्ठि से काले उवसमसम्मद्दिट्ठि होहीइ ताहे विइयठिइं तिहाणुभागं करेइ, तं जहा- सम्मत्त, सम्ममिच्छत्त, मिच्छत्तं चेति, આ પ્રમાણે કમ્મપયડી તથા તેની ચુર્ણિનો અભિપ્રાય છે, અને ઔપશમિક સમ્યગ્દર્શન પામ્યા પછી ત્રણ પુજ કરે એમ શતકચુર્ણિઆદિ નો અભિપ્રાય છે તે આ પ્રમાણે—' पढमं सम्मत्तं उप्पार्डितो तिन्नि करणाणि करेउ । उवसमसम्मत्तं पडिवन्नो मिच्छत्तदलियं ति-

पुंजी करेइ सुद्धं, मीसं, असुद्ध चेत्ति" હવે પ્રથમસ્થિતિના અનુભવકાલમાં કરણત્રિક કરનાર સંસારિજીવ મિથ્યાત્વદલિકોનો અનુભવ ચાલુ હોવાથી મિથ્યાદષ્ટિ હોય છે કારણ પ્રથમ સ્થિતિના દલિકોને જ્યારે સંપૂર્ણ અનુભવી રહે, ત્યારે અંતરકરણના પ્રથમ સમયે સેનાધિપતિને દુર્જયશત્રુના જયની માફક અપાર આનંદના કારણભૂત ઔપશમિક સમ્યક્ત્વ અનાદિ મિથ્યાદષ્ટિ જીવ પ્રાપ્ત કરે છે જેમાં સાતે પ્રકૃતિ (અનં૦ચતુષ્ટય દર્શનમોહત્રિક) નો પ્રદેશોદય તથા રસોદય પણ હોતો નથી. અને એ હેતુથી તેને શ્રીતત્ત્વાર્થસૂત્રની વૃત્તિમાં અપૌદ્ગલિક સમ્યક્ત્વ કહેલ છે, અને તેજ હેતુથી ક્ષાયિકદર્શન, ઔપશમિકદર્શન તે ભાવસમ્યક્ત્વ કહેલ છે. એ પ્રમાણે અનાદિ મિથ્યાદષ્ટિ જીવ શરૂઆતમાં ઔપશમિક દર્શન જ પામે, એ અભિપ્રાય કર્મગ્રંથકારનો છે. કારણકે તેઓ ઉપર કહેલા કમ્મપયડી શતકચુર્ણીઆદિના પાઠોથી ઔપશમિક સમ્યગ્દર્શન પામવાના પૂર્વ સમયે અથવા પામ્યાબાદ ત્રિપુંજ કરે એમ સમ્મત છે. અન્યત્ર પણ કહ્યુ છે કે– "कम्मग्गथेसु धुवं, पढमोवसमी करेइ पुंजतिअं । तच्चडिओ पुण गच्छइ सम्मे मीसंमि मिच्छे वा ॥१॥" અને સિદ્ધાન્તકારના અભિપ્રાયે કોઇ અનાદિ મિથ્યાદષ્ટિ જીવ વિશિષ્ટ અધ્યવસાયાદિ સામગ્રીના યોગે અપૂર્વકરણે ત્રિપુંજ કરે, તે વખતે સમ્યક્ત્વમોહનીય પુંજના ઉદયમા વર્ત્તમાન તે જીવ ક્ષાયોપશમિક દર્શન પામે છે અને કોઈ અનાદિ મિથ્યાદષ્ટિ જીવ ત્રણ કરણ કરવા પૂર્વક અંતરકરણના પ્રથમ સમયે જો ઔપશમિક દર્શન પામે, તો તે જીવ ત્રિપુંજ ન કરે કારણકે તેની અલ્પસ્થિતિ છે. અને તેનો ઉત્કૃષ્ટથી છ આવલિકાકાલ, તથા જઘન્યથી એક સમય કાલ બાકી રહે ત્યારે તે વમીને અવસ્ય મિથ્યાત્વ જ પામે. આ બાબત **શ્રીકલ્પભાષ્યમાં** કહ્યુ છે કે–आलंवणमलहन्तो जह सट्ठाणं न मुंचए इलिया । एवं अकयतिपुंजी. मिच्छंचिअ उवसमीएइ ॥ १ ॥ સમ્યક્ત્વના પ્રાપ્તિકાલમા કોઇ પ્રકૃષ્ટવિશુદ્ધિવાળો જીવ દેશવિરતિ અથવા સર્વવિરતિ પણ પામે છે કહ્યુછે કે– उवसमसम्मद्दिट्ठी अंतरकरणे ठिओ कोइ । देसविरइंपि लहेइ, कोई पमत्तापमत्त-भावंपि सासायणो पुण न किंपि लहेइ ॥ આ સ્થલે એપણ જાણવું કે– સૈદ્ધાન્તિક મતે જેમ પ્રથમ સમ્યક્ત્વના લાભમાં ત્રણ કરણ કહ્યા, તેમ દેશવિરતિ અને સર્વવિરતિના લાભમા ત્રણ કરણ કરવામાં આવતા નથી, કારણકે– અપૂર્વ કરણના પ્રથમસમયેજ તે બેમાના એકનો લાભ હોવાથી અનિવૃત્તિકરણ અપ્રયોજક છે તથા તેનો લાભ થયા પછી અંતર્મુહુર્ત્તસુધી વધતો પરિણામી જીવ હોય છે. તેમજ જે નિરૂપયોગ ભાવે વિરતિભાવનો

ત્યાગ કરે, તે જીવ ત્રણ ક્રિયા કર્યા વિનાજ ફરી વિરતિ પામે છે. અનેજે ઉપયોગ અવસ્થામા વિરતિરહિત થાય, અને તેવીજરીતે મિથ્યાભાવને પામે તે જીવ જઘન્યથી અંતર્મુહુર્ત્તકાલમાં અને ઉત્કૃષ્ટથી લાબે કાળે પણ પૂર્વે કહેલ કરણોની ક્રિયા કરીનેજ ફરી વિરતિ અંગીકાર કરી શકે, એ પ્રમાણે કર્મપ્રકૃતિવૃત્તિ-મા કહેલ છે, સૈદ્ધાન્તિકમતે– જે જીવો પામેલ સમ્યગ્દર્શન વમી ફરી સમ્યગ્દર્શન પામ્યા તે જીવોમા કોઇ જીવોમા કોઈ જીવ ઉત્કૃષ્ટથી છઠ્ઠી નરક સુધી પણ જઈ શકે છે, પરંતુ કાર્મગ્રંથિકમતે તે જીવ વૈમાનિક દેવજ થાય એમ શ્રીપ્રવચનસારોદ્ધારવૃત્તિમાં કહેલ છે. વળી કર્મગ્રંથકારના મતે સમ્યગ્દૃષ્ટિજીવ જ્યારે મિથ્યાભાવ પામે ત્યારે કર્મોની ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિ બાધે પણ તેઓનો તેવો રસ બંધન કરે. અને સૈધ્ધાન્તિકમતે ગ્રંથભેદ કરનાર જીવ ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિબંધ ન કરે. આ સમ્યગ્દર્શનના મહિમાને જણાવતા શાસ્ત્રકાર મહારાજા કહે છે કે–જે જીવને અંતર્મુહુર્ત્ત જેટલો અલ્પકાલ પણ જો સમ્યગ્દર્શન પ્રાપ્ત થયુ હોય તો તે જીવને લાબા કાલ સુધી સંસારચક્રમાં પરિભ્રમણ હોતું નથી, તો પછી લાબી સ્થિતિવાલા સમ્યગ્દર્શનધારિ જીવોને અલ્પસંસાર હોય, તેમાં શું આશ્ચર્ય હોય ? તથા ચક્રવર્ત્તિરાજા પણ સમ્યગ્દર્શનના અભાવે ભિક્ષુક જેવો ગણાય છે અને તે દર્શનના પ્રતાપે ભિક્ષુક પણ તેથી અધિકગણાય છે તથા સંસારમા પરિભ્રમણ કરતા દરેક વસ્તુ અનેકવાર પ્રાપ્ત થાય છે, પરન્તુ સમ્યગ્દર્શન પામવુ દુર્લભ છે, અને તેજ હેતુથી તેને રત્નની ઉપમા આપેલી છે, છેવટે સર્વ સંપત્તિઓનુ નિધાન અને જ્ઞાનનુ કારણ પણ એક સમ્યગ્દર્શન છે. એ પ્રમાણે મોક્ષરૂપી કલ્પવૃક્ષના બીજ સમાન સમ્યગ્દર્શનનુ સક્ષેપમાં સ્વરૂપ જણાવ્યુ સમ્યગ્દર્શનને પામેલ જીવ પરમપૂજ્ય શ્રીતીર્થંકર ભગવંતોએ પ્રતિપાદન કરેલ અને પૂજ્યશ્રી ગણધર મહારાજાદિ પુર્વાચાર્યોએ સૂત્રરૂપે ગુંથેલ આગમોમાં કહેલ અર્થો યથાર્થજ છે, એમ માને છે. કદાચ તેતે આવરક કર્મોના દોષોને લઇને પોતાને આત્મસ્વરૂપ કર્મસ્વરૂપ વિગેરે ગહન અર્થો ન સમજાય તોપણ અસત્યના કારણભૂતાદિનો રાગ નાશકાર જિનેશ્વર ભગવંતો વિપરીત ભાવ કહે જ નહિ, એવી શ્રદ્ધા રાખે છે

હવે "તત્ત્વાર્થશ્રદ્ધાન તે સમ્યગ્દર્શન" એમ પૂર્વે કહ્યું તેમા વાસ્તવિક તત્ત્વો કેટલા છે ? અને તે બાબતમા અન્યદર્શનકારોએ માનેલ ન્યુન- વા અધિક તત્ત્વો સત્યકોટીમા દાખલ થઇ શકે છે કેમ ? આ સ બધી વિચા- કરીએ– અપેક્ષાની અપેક્ષાએ સ્યાદ્વાદમતાવલમ્બિ રસિક આર્હતો શ્રીભગવતી આદિ

સૂત્રની સાક્ષીએ પ્રમાણુસિદ્ધ નવતત્ત્વો માનેછે. જોકે-શ્રીયોગશાસ્ત્રવૃત્તિ અને શ્રીસમયસારપ્રકરણ વિગેરેમાં સાતતત્ત્વો કહેલછે, તોપણ તે વ્યામોહનેમાટે નથી, કારણકે પુણ્યતત્ત્વને શુભાશ્રવ અને પાપ તત્ત્વને અશુભાશ્રવ તરીકે ગણી આશ્રવમાં પુણ્ય, પાપનો અંતર્ભાવ કરીને તેમ કહેલ છે. એક બીજામા અંતર્ભાવ કરવાથી તો પાંચ અને બે તત્ત્વો પણ કહેવાય છે પરંતુ યથાસ્થિતભાવે તત્ત્વો નવ જ છે, નવ એ અભેદસંખ્યા છે. અભેદસંખ્યાનું લક્ષણ એ કે- જેને કોઇપણ સંખ્યાએ ગુણ્યાપછી સરવાળો તેના (ગુણ્યસંખ્યાના) જેટલોજ થાય, તે અભેદસંખ્યા કહેવાય. જેમ ૯ સંખ્યાને ૪ આ સંખ્યાએ ગુણવાથી ૩૬ આ બેનો સરવાળો કરવાથી ૯ અને ગુણ્યસંખ્યા પણ તેટલી જ છે, એવી રીતે ૯ ને કેઇ પણ સંખ્યાએ ગુણ્યાપછી ગુણાકારના અંકનો સરવાળો ગુણ્યસંખ્યાનો જેટલો જ થશે તેથી ૯ એ અભેદસંખ્યા છે. પરંતુ બીજી ૭ વિગેરે સંખ્યા અભેદ ન કહેવાય. કારણકે તેને કોઇપણ સંખ્યાએ ગુણ્યાપછી ગુણાકારના અંકના સરવાલા જેટલી ગુણ્યસંખ્યા થતી નથી. જેમ ७ + ८ = ५६) ५ + ६ – ११) ઇત્યાદિ યુક્તિથી પણ નવતત્ત્વો ઘટી શકે છે, તોપણ મિથ્યાદર્શનકારો જેવાકે અક્ષપાદ, કપિલ, બૌદ્ધ, વૈશેષિક વિગેરે પોતાની સકદાગ્રહ માન્યતાને અનુસારે ન્યુનાધિકતત્ત્વો પ્રરૂપે છે, જેમ અક્ષપાદ (નૈયાયિક) ૧૬ પદાર્થને, કપિલ ૨૫ તત્ત્વોને, બૌધ્ધ ૧૨ આયતનોને, વૈશેષિક ૭ પદાર્થોને માને છે, વિગેરે પરંતુ વાસ્તવિકરીતે તેઓ તત્ત્વરૂપજ નથી કારણકે તત્ત્વની વ્યાખ્યા એ છે કે–' तस्य भावस्तत्त्वं ' તેનું એટલે પદાર્થનું યથાર્થ સ્વરૂપ તે તત્ત્વ કહેવાય ઇત્યાદિ તત્ત્વનું લક્ષણ તથા સ્વરૂપ તેઓના માનેલ તત્ત્વોમા ઘટતુ નથી. તે લક્ષણાદિ તત્ત્વેરૂપલક્ષ્યમા કેવી રીતે નથી ઘટતા, તેનો વિસ્તાર ' ષડ્દર્શનસમુચ્ચય ' નામના ગ્રંથથી જાણી લેવો.

સજ્જનો ! જાણુંમાંજ હશે કે- પરિચય એ પ્રવૃત્તિનું કારણ છે તેથી હવે પ્રસ્તુત ગ્રંથોના પરિચય પરત્વે જણાવવું જોઇએ.

શ્રીનવતત્ત્વવિસ્તરાર્થ— જેમાં નવતત્ત્વોનું ટુંક સ્વરૂપ, તથા તેઓને શ્રીભગવતી આદિ સૂત્રોમાં કહેલ ક્રમે દાખલ કરવાનું પ્રયોજન, તથા ઉક્ત સ્વરૂપ પ્રતિપાદન કરેલછે. તેમાં–

૧ જીવતત્ત્વે— જીવોના અનેક ભેદોનુ સ્વરૂપ, લક્ષણ, શ્રીતત્ત્વાર્થાધિગમસૂત્રાદિને અનુસારે પર્યાપ્તિનુ વિસ્તરસ્વરૂપ, દશપ્રાણોનું સ્વરૂપ, તેઓનો એકેન્દ્રિયાદિ જીવોમાં વિભાગ, રહસ્ય, પરિશિષ્ટ—

૨ અજીવતત્ત્વે—મૂલોત્તરભેદોનું સ્વરૂપ, પરિણામિઆદિ દ્વારોની ઘટના પરિશિષ્ટ—

૩ પુણ્યતત્ત્વમાં— ૧૭-૨૫-૪૨ ભેદનુ સ્વરૂપ, પરિશિષ્ટ દર્શાવેલ છે.

૪ પાપતત્ત્વમાં— ૮૨ભેદનુ સવિસ્તરસ્વરૂપ, પરિશિષ્ટ પ્રતિપાદન કરેલ છે.

૫ આશ્રવતત્ત્વમાં—ઇન્દ્રિય, (૫) કષાય, (૪) અવ્રત. (૫) યોગ (૩) (૨૫) ક્રિયાઓનું સ્વરૂપ છે

૬ સંવરતત્ત્વમાં— સમિતિ (૫), ગુપ્તિ (૩), પરિષહ (૨૨) યતિધર્મ (૧૦), ભાવના (૧૨), ચારિત્ર (૫)નુ સવિસ્તરસ્વરૂપ દાખલ કરેલ છે.

૭ નિર્જરાતત્ત્વમાં— ૬ બાહ્યતપ, ૬ અભ્યંતરતપનુ સવિસ્તરસ્વરૂપ છે.

૮ બંધતત્ત્વમાં— ૮ કર્મોનું ભેદ પ્રભેદ સહિત વિસ્તારથી સ્વરૂપ છે.

૯ મોક્ષતત્ત્વમાં— સત્પદ પ્રરૂપણાદિ નવદ્વારોનું સવિસ્તર વર્ણન છે. તથા છેવટે પ્રક્ષિપ્ત ગાથા સહિત શ્રીનવતત્ત્વપ્રકરણની મૂલ ગાથાઓ દાખલ કરેલ છે વિશેષ સ્વરૂપના જિજ્ઞાસુજીવોએ અનુક્રમણિકા જોવી.

૧ શ્રીનવતત્ત્વસાહિત્યસંગ્રહ. ભાગ ૧-૨-૩-૪-જેમાં ચારભાગ પૈકી પ્રથમભાગમાં— પાંચ ગ્રંથરત્નો દાખલ કરેલ છે, તે આ પ્રમાણે— ૧-વાચકવર્ય શ્રીમદુમાસ્વાતિમહારાજાએરચેલું શ્રીનવતત્ત્વપ્રકરણ સાર્થ. ૨-શ્રી જયશેખરસૂરિપ્રણીત નવતત્ત્વપ્રકરણ સાર્થ. ૩-શ્રીદેવગુપ્તસૂરિપ્રણીત નવતત્ત્વ-પ્રકરણ સાર્થ. ૪-તેના ઉપર શ્રીનવાંગીવૃત્તિકાર શ્રીમદભયદેવસૂરિપ્રણીત ભાષ્ય સાર્થ. ૫-શ્રીદેવેન્દ્રસૂરિપ્રણીત નવતત્ત્વપ્રકરણ સાર્થ.

દ્વિતીયભાગમાં— શ્રીનવતત્ત્વપ્રકરણ ઉપર-૧-શ્રીપ્રાચીન આચાર્યપ્રણીત અવચૂર્ણિ-૨-શ્રીસાધુરત્નસૂરિપ્રણીત અવચૂર્ણિ-૩-શ્રીદેવેન્દ્રસૂરિપ્રણીત વૃત્તિ-૪-,ઉ-નવતત્ત્વની પ્રક્ષિપ્તગાથાઓ-૫-તે ગાથાઓની ઉપર- શ્રીતપાગચ્છાચાર્યજગદ્-ગુરૂ શ્રીમદ્વિજય નેમિસૂરીશ્વર પટ્ટપૂર્વાંચલ નભોમણિ શ્રીમદ્વિજયોદયસૂરિ પ્રણીતઅવચૂર્ણિ- આ પાચ ગ્રંથરત્નો દાખલ કરેલ છે.

તૃતીયભાગમાં—૧-કલિકાલસર્વજ્ઞ શ્રીહેમચંદ્રસૂરીશ્વરપ્રણીત સપ્તતત્ત્વ-પ્રકરણ સાર્થ ૨-શ્રીદેવાનંદસૂરિપ્રણીત સપ્તતત્ત્વપ્રકરણ સાર્થ, આ બે ગ્રંથ-રત્નો દાખલ કરેલ છે.

ચતુર્થભાગમાં— ૧-શ્રીભાગ્યવિજયજીએરચેલ તથા ૨-શ્રીવિવેકવિજયજી એરચેલ-શ્રીનવતત્ત્વસ્તવન ૩-શ્રીજ્ઞાનસારમુનિકૃત છંદોબદ્ધભાષા-નવતત્ત્વપ્રકરણ ૪-પ્રાચીન ગુર્જરભાષારૂપ શ્રીનવતત્ત્વવિચાર આ ચાર ગ્રંથો દાખલ કરેલછે વિસ્તારથી જાણવાની ઇચ્છાવાલા જીવોએ અનુક્રમણિકા જોવી.

આ પ્રસંગે મારે અવશ્ય જણાવવું જોઇયે કે- અત્ર શ્રીનવતત્ત્વના પ્રસ્તાવમાં પ્રાસંગિક વિષયોનું સંપૂર્ણજ્ઞાન સંપાદન કરાવવામાં સાધનભૂત શ્રીઆચારાંગનિર્યુક્તિ, શ્રીઉત્તરાધ્યયન, કર્મગ્રંથ, બૃહન્નવતત્ત્વ વિગેરે ગ્રંથોની પ્રક્ષિપ્ત ગાથાઓ સમેતપ્રકરણ કે જેની અંદર ૧૪૦ ગાથાઓ છે. જે ગાથાઓ રસસ્થાન, સ્થિતિસ્થાન વિગેરે જૈનકર્મફિલોસોફીનો અનુભવ કરવામાં સર્વાંશે સાધનભૂત છે. તેઓમાંની જોકે-૨૭ ગાથા સુજ્ઞેય છે. કારણકે તેઓની વૃત્તિ, અવચૂર્ણિઆદિક વિદ્યમાન છે. તોપણ બાકીની ૧૧૩ ગાથાઓ ઉપરકહેલ વૃત્તિઆદિ સામગ્રીના અભાવે બાલજીવોને સુબોધક થવી અશક્ય છે. એ હેતુ અવલંબીને વાસીચંદનની માફક સમાન બુદ્ધિએ ભવ્યજીવોને અધ્યાપનાદિદ્વારા ભાવદાન સમર્પી કૃતાર્થી બનાવનાર, આર્હત્તત્ત્વના વિશાલભાવોને સૂચવનાર શ્રીજૈનતત્ત્વપરિક્ષાદિ અપૂર્વ ગ્રંથસંદર્ભના રચનાર,- શાસનસમ્રાટ્-તીર્થરક્ષણપરાયણ વિદ્વદ્વૃન્દાવતંસ તપોગચ્છાચાર્ય ભટ્ટારક પરોપકારિ પૂજ્યપાદ, જંગમકલ્પતરુ અમારા સદ્ગુરુવર્ય શ્રીમદ્વિજયનેમિસૂરીશ્વર પટ્ટપૂર્વાચલ માર્તણ્ડ, મારા ઉપકારિ સિદ્ધાન્તવાચસ્પતિ ન્યાયવિશારદ પૂજ્યપાદ તપોગચ્છાચાર્ય શ્રીમદ્વિજયોદયસૂરિ મહારાજાએ સરલ અને સુબોધક અવચૂર્ણિથી ઉપર કહેલ ૧૧૩ ગાથાઓને અલંકૃત કરેલ છે. જેથી તેઓશ્રીનો આ અનહદ આભાર અનાગ્રહિ તત્ત્વરસિક ભવ્યજીવોને અવિસ્મરણીય છે. અંતમાં આ બે ગ્રંથોના પઠન પાઠન અને નિદિધ્યાસનદ્વારા ભવ્યજીવો આત્મસ્વરૂપ કર્મનો બંધ તથા મોક્ષ ઇત્યાદિ પદાર્થ તત્ત્વોને યથાર્થ સમજવા ઉપરાંત જિનમાર્ગમાં પ્રવૃત્તિ અને અજિનમાર્ગથી નિવૃત્તિ પામી સકલ કર્મ કલંકથી નિર્મુક્ત થઈ કલ્યાણનું ભાજન પરમપદને પામે, એમ નિવેદન કરી પદાર્થ સ્વરૂપનો વિશેષ અનુભવ આ ગ્રંથો--ના અધ્યયનાદિજન્ય પરિચયને આધીન હોવાથી હવે હું આ ટુંક પ્રસ્તાવનાને સંક્ષેપીલઇશ. અને તે વ્યાજબીજ છે કારણ કે સંક્ષેપરુચિજીવોને ટુંકામાં બોધ થઈ શકે છે. જેમ— ચંદનવૃક્ષનું સંક્ષિપ્તવર્ણન પણ તેમાં રહેલ શીતલતાનું જ્ઞાન કરાવવામાં નિબંધનભૂત સંપજે છે. તથા છદ્મસ્થજીવોને આવારકકર્મના પ્રતાપે અનાભોગ જન્યસ્ખલના અનિવાર્ય છે.

> यतः— अवश्यं भाविनो दोषाः, छाद्मस्थ्यानुभावतः ।
> समाधिं तन्वते सन्तः, किंनराश्चात्र वक्रगाः ॥ १ ॥

તેથી આ બે ગ્રંથોમા ગુણગ્રાહિ વિદ્વાન્વાચકવર્ગને સંશોધનજન્ય તથા મુદ્રણજન્ય જે કાંઇ યોગ્ય ભૂલચુક જણાય તેને મહાશયો સુધારીને વાચશે. અને કૃપાકરી જણાવવા તસ્દી લેશે તો બીજી આવૃત્તિમાં સુધારો પણ થઇ શકશે– ઇત્યલં વિસ્તરેણ, ભૂયાદ્ભદ્રં શ્રીશ્રમણસંઘસ્ય

નિવેદક—

શ્રીગુરૂનેમિસૂરીશ્વરચરણકિંકર

મુનિ પદ્મવિજય.



પ્રસ્તાવનાની સૂચના.

પેજ ૧૩ પંક્તિ ૩ મા 'કારણ' શબ્દ પ્રેસ દોષથી છપાયો છે.
પેજ ૧૪ પંક્તિ ૨૪ માં આવકારને બદલે 'આવારક' વાંચવું.

श्रीनवतत्त्वविस्तरार्थ तथा नवतत्त्वसाहित्यसङ्ग्रह

विषयानुक्रमणिका.

विषय. पृष्ठ.

॥ *नवतत्त्वसाहित्यसंग्रहनी विषयानुक्रमणिका ॥

(सानुवादसंस्कृतसाहित्यानुक्रमणिका)

(संस्कृतसाहित्यानुक्रमणिका.)

(गूर्जरभाषानुवादसमेतसप्ततत्त्वसाहित्यानुक्रमणिका)



* आ नवतत्त्वसाहित्यसंग्रह, नवतत्त्वप्रकरणविस्तरार्थना परिशिष्टरूपे योजेलुं हतुं. फरमाओ वधी जवाथी तथा विस्तरार्थ बहार पडतां प्रथम विगेरेनी अगवडताने लीधे विलंब थवाथी अलग बंधायो छे. पण तेनी विषयानुक्रमणिका त्यां दाखल थवी रही गयेल होवाथी अहीं दाखल करी छे.

(गूर्जरभाषासाहित्यानुक्रमणिका.)

॥ अथ शुद्धिपत्रकम् ॥

पृ.	पं.	अशु०	शुद्ध
१०	२२	कहयुं	कह्यु
११	२३	अघ०	अध०१,
१७	२१	जोवो	जीवो
१८	७	जेवो	जीवो
१८	१३	व्रष्टि	वृष्टि
२१	२४	तीज	तोज
२१	१७	शृंङ्गि	शृङ्गि
२१	२४	सिद्ध	सिद्धि
२२	१८	इहा	ईहा
२३	१	जाणा	जणा
२३	४	चैतत्य	चैतन्य
२३	७	नीगो	निगो
२३	१०	अ	अ-
२३	१२	कोइ	कोइने
२४	१४	अश	अंश
२४	१५	धीक	धिक
२५	२६	जीवो	जीवो
२६	४	उणो	ऊणो
३१	८	रुप	रूप
३२	२०	पुद्ग	पुद्ग
३२	२६	च्छवा	च्छ्वा
३३	१५	रुप	रूप
३३	२६	च्छवा	च्छ्वा
३३	२०	अत्तमा	आत्मा
३४	४	च्छवा	च्छ्वा
३४	१८	रुपे	रूपे
३५	२	अत्तमा	आत्मा
३६	४	च्छवा	च्छ्वा
३६	६	वन	नव
३६	१४	शेष	शेषे
३७	१७	मासा	भासा
३७	२०	च्छवा	च्छ्वा
३८	११	वैकि	वैक्रि
३९	१०	वंध	बंध
३९	२३	लब्धि	लब्धि
४०	२३	सभू	सम्भू
४०		र्याप्ति	र्याप्त
४०	१८	लब्धि	लब्धि
४०	१८	च्छवा	च्छ्वा
४१	३	रुप	रूप
४२	१९	सिध्धी	सिद्धि
४२	२०	सुघी	सुधी
४३	९	च्छवा	च्छ्वा
४३	२६	त्तेन	त्रने
४६	६	पर्पा	पर्या
५०	२१	थथ	थम
५४	२	पुद्गग	पुद्ग
७३	२	घ्राणे	घ्राणे
७३	२८	मण	मणण
७४	१७	अने	अने आकाश
७५	२६	सुघी	सुधी
७६	१	कत्ता	क्ता
७८	२१	भते	मते
७८	२४	आ	औ
८९	२४	घीजे	बीजे
९५	११	वाप्य	व्याप्य
९६	८	वाकी	बाकी
९८	११	१ प	१ अप
९९	७	(१	१
१०१	१८	गपती	गती
१०९	७	जीष	जीव

पृष्ठ.	पं.	शुद्ध.	अशुद्ध.
११०	४	ति	त्ति
१११	२	परा	पर
११२	१८	अवे	आवे
११४	४	धघो	धो
१२४	५	स्कं	स्क
१२४	२७	ग्ल	ग्ग
१३३	२७	भाषा	भाषा-उच्छ्वास
१३६	२२	पण	प्राण
१३९	१२	मास	वर्ष
१४०	१९	अजे	अने
१४१	२२	वा	वत्
१४९		भा	भां
१५२	१	जौ	जो
१५२	२३	द्रव्य	द्रव्य
१५५	१९	पी	पो
१५६	९	मेद	भेद
१५६	१४	गुण	०
१५६	१७	र्ता	तां
१५८	१०	लद्‌ग	द्‌गल
१६०	१	व्या	व्य
१६०	८	अत्म	आत्मा
१६१	२	अग	अग
१६६	८	थापे	मापे
१६६	२४	हवा	होवा
१७०	२१	जव्य	अव्य
१७२		द्रष्टि	दृष्टि
१७३	२३	भाव	बाद
१७६	१५	क्षरो	र्थो
१७६	१८	र्थो	क्षरो
१९३	१८	३१+६+३+१	
१९३	२१	तोशु	तो अशु
२००	१७	प्रप	प्रपं
२००	२१	मोह	मोह
२००	२२	क्रिया	क्रिया
२०१	१८	शक्ति	शक्ति
२०५	१७	,,	प्रायोगिकी
२०७	११	व्यपा	व्यापा
२०८		द्रष्टि	दृष्टि
२०८		क्ति	क्ति
२०९	७	र्मोणि	र्मोः
२२८	७	क्षी	क्षी
२२८	९	ता	ता
२२९	१६	ह	र
२३१	२	हि	रि
२३४	१	न	न्न
२३७		गा	गो
२४०	७	द्व	द्वं
२४०		यवो	जीवं
२४१	१०	धम	धम समजी
२५०	१५	(वस्तु	(भेद)
२५१	१८	षि	वि
२५५	१०	ग्र	ग्र
२५७	५	स्वा	स्व
२५९	३	द्धस्त	द्धांत
२५९	९	जीव	जीवि
२६२	१७	रस्त	रंत
२६३	२२	म	क
२६४	२७	नी	नीअनुमोदन
२६७	११	स्थावा	स्थापवा
२७२	१४	कौ	को
२७४	८	च	तिश्च

२७८	९	बध	बन्ध	३०२	८	जोवो	जीव
२७६	२२	थ	हिं	३०३	३	अंत	अंतरं
"	"	वा	वान्	३०३	१७	सिध्व	सिद्ध
२८८	२०	प	५	"	"	मउ	महु
२९२	५	क्षिरा	इया	३२५	१२	गद्धा	गयद्धा
२९८	१९	चार	प्रण	३२९	१७	पम	पम
२९९	१८	रुम	रूप	३३७	४	हिग	गिह

सूचना.

पा. १३४—२८ मी लाइनमां. भगवतीजी-पन्नवगावृत्ति आदि ने अभिप्राये तैजसवर्गणा अष्टस्पर्शी छे.अने तेथी ते गुरुलघुद्रव्य मान्युं छे. अने चतुः स्पर्शीभाषादि वर्गणाओ अगुरुलघुद्रव्य छे.

पा. १६५—३ जी लाइनमां "रुढ मुंड" ए शब्द पछी छट्ठी लाइनमां "जेनु" ए शब्दथी "पुण्यरूप छे" त्यां सुधीनुं वांचवुं पछीथी "आ प्रणे" विगेरे वांचवु.

पा. १८२-१४ मी लाइनमां एकेन्द्रियादि जातिनाम कर्म एकेन्द्रियादिव्यपदेश थवामां अने इन्द्रियपर्याप्ति नामकर्म स्पर्शनादि इन्द्रियो पामवामां कह्युं छे,

पा १८४—१५मी लाइनमां.'होय ते' ए शब्द पछी ८२ हुडक–जे कर्मना उदयथी शरीरना तमाम अवयवो लक्षणरहित होय ते.

पा. २०९—२० मी लाइनमां मनोयोगादिनी वृत्तिओने अशुभ व्यापारमांथी अथवा सर्वथा रोकवी ते गुप्ति

पा. २५ —१५ मी लाइनमां. भिक्षानासंसृष्ट असंसृष्ट-उध्धृत-अल्पलेपकृत-उद्गृहीत-प्रगृहीत-उज्झितधर्माए सात भेदो पैकी प्रथमना बेनो त्याग करी पांच भेदे भीक्षा ग्रहण करे तेमां पण निरन्तर बे भेदनो अभिग्रह राखे. नव मुनिगण पैकी अनुचारक तथा वाचनाचार्य (कल्पस्थित) निरन्तर आयंबिल करे छे. तप करनार तथा अनुचारकने अतिचारादि कारणे वाचनाचार्य प्रायश्चित्तादि आपे छे. परिहार विशुद्धिकल्प तीर्थंकरनी पासे अगर तीर्थंकर पांसे जेमणे ते कल्प अंगीकार कर्यो होय तेनी पांसे अंगीकार कराय छे.

पा ३३८—२० मी लाइनमां. १५०० तापसोए अष्टापदपर्वतथी ऊतरता गौतमस्वामी महाराज पांसे प्रव्रज्या ग्रहण करी अने साधु वेष लीधो हतो त्यारबाद पारणुं कराव्यु हतु. जेथी तेओ स्वलिंग सिद्धज गणी शकाय





सकलस्वपरसमयपारावारपारीणेभ्यः सत्संयमभृदवतंसकेभ्यो जगदनुग्रहकरणेभ्यस्तपोगच्छाचार्यभट्टारकश्रीमद्विजयनेमिसूरीश्वरपादपद्मेभ्यो नमो नमः

॥ श्रीनवतत्त्वविस्तरार्थः ॥

नत्वा वीरजिनेन्द्रं, नतविबुधेशं च नेमिसूरीशम् ॥
नवतत्त्वविस्तरार्थं, कुर्वेऽहं बालबोधार्थम् ॥१॥ (आर्या)

अवतरण-आ नवतत्व प्रकरणना प्रारंभमां ग्रन्थकार महाराज वस्तुसंकीर्तनरूपमंगलाचरण तथा ग्रन्थाभिधेयादि कहेवा माटे ९ तत्वनां नाम जणावे छे. मूळ गाथा १ ली.

जीवाऽजीवा पुण्णं, पावाऽसवसंवरो य निज्जरणा ॥
बंधो मुक्को य तहा, नवतत्ता हुंति नायव्वा ॥ १ ॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

जीवाऽजीवौ पुण्यं, पापश्रवौ संवरश्च निर्जरणा
बंधो मोक्षश्च तथा, नवतत्त्वानि भवंति ज्ञातव्यानि ॥१॥

शब्दार्थः

जीव-जीवतत्त्व.
अजीवा-अजीवतत्त्व.
पुन्नं-पुण्यतत्त्व.
पाव-पापतत्त्व.
आसव-आश्रवतत्त्व.
संवरो-संवरतत्त्व. य-अने.
निज्जरणा-निर्जरातत्त्व
बंधो-बंधतत्त्व.
मुक्खो-मोक्षतत्त्व.
तहा-तथा, तेमज, तत्स्वरुपे.
नवतत्ता-नवतत्त्वो.
हुंति-छे. नायव्वा-जाणवायोग्य.

गाथार्थः—जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध अने मोक्ष ए नव (९) तत्त्वो (सत्यस्वरूपे) जाणवा योग्य छे.

विस्तरार्थः—आ नवतत्त्व प्रकरणना प्रारंभमां प्रथम नवतत्वोनो संक्षिप्त अर्थ आ प्रमाणे छे–

व्यवहार नये (स्थूळ दृष्टिए) [1]शुभाशुभ कर्मोनो कर्त्ता, हर्त्ता अने भोक्ता (एटले शुभाशुभ कर्मोने विनाश करनार अने ते कर्मोना शुभाशुभ फलोने भोगवनार) ते जीव कहेवाय, [2] अथवा दुःख सुखादि ज्ञानना उपयोगरूप (अनुभवरूप) चैतन्य लक्षणवाळो ते जीव [3]कहेवाय, अथवा [4]दश बाह्य प्राणो पैकी यथायोग्य प्राणोने धारण करे ते जीव [5]कहेवाय, अने ए जीवनुं जे (लक्षण–भेदादि) स्वरूप ते जीवतत्व कहेवाय. १

जीवथी विपरीत लक्षणयुक्त एटले चैतन्यलक्षण रहित जे जड स्वभावी ते अजीव कहेवाय, अने ए अजीवनु जे लक्षण भेदादि स्वरूप ते अजीवतत्त्व कहेवाय. २

---

१ पुण्यकर्म अने पापकर्मनो.

२ यः कर्त्ता कर्मभेदानां भोक्ता कर्मफलस्य च.
संसर्त्ता परिनिर्वाता, स ह्यात्मा नान्यलक्षणः ॥

अर्थ– जे कर्मभेदनो करनार, कर्मफलनो भोगवनार, कर्मने अनुसारे एक गतिमांथी बीजी गतिमां जनार, अने कर्मनो अन्त करनार एज लक्षणवाळो आत्माछे, परन्तु बीजा लक्षणवाळो नहिं,

३ " चेतनालक्षणो जीवः " इति वचनात्,

४ ए दश बाह्य प्राणोनुं स्वरूप ७ मी गाथामां कहेवाशे.

५ "जीवति-दशविधान् प्राणान् धारयति इति जीवाः" इति वचनात्, संसारमां रहेला जीवनुं ए उपर कहेलुं लक्षण जाणवुं. सिद्ध भगवंतोमां तो ज्ञानादिस्वरूप भाव प्राणो होवाथी जीवपणुं कहेलुं छे,

जीव जेनावडे सुख भोगवे छे ते कर्म पुण्य कहेवाय, अने ते पुण्यनुं (शुभ कर्मनुं) जे लक्षण भेदादि स्वरूप ते पुण्यतत्त्व कहेवाय छे अहिं जीवने सुख भोगववामां कारणरूप जे शुभ कर्म ते [1]द्रव्यपुण्य कहेवाय, अने ते शुभकर्मने उत्पन्न करवामां कारणरूप जे जीवना शुभ अध्यवसाय (परिणाम) ते [2]भावपुण्य कहेवाय. अथवा पुण्यानुबंधिपुण्य अने पापानुबंधिपुण्य ए प्रमाणे पुण्य बे प्रकारे छे. त्यां जे पुण्य भोगवतां बीजुं नवुं पुण्य बंधाय ते पुण्यानुबंधिपुण्य, एना उदयथी आ भवमां सुख भोगवी आगळ पण सुख ज भोगवे भरतचक्रवर्ती विगेरेनी माफक आर्यावर्तना [3]महर्द्धिक दानेश्वरी अने धर्मी जीवो आ भवमां पुण्यकर्म भोगवी रह्या छे अने ते पुण्य भोगववाद्वारा बीजुं नवुं पुण्य पण उपार्जन करे छे, जेथी आ लोकमां अने परलोकमां (परभवमां) पण तेओने सद्गतिज प्राप्त थाय छे, माटे ते पुण्यानुबंधिपुण्य कहेवाय छे. अने जे पुण्य भोगवतां बीजुं नवुं पुण्य न बंधाय परन्तु पाप बंधाय ते पापानुबंधिपुण्य कहेवाय. जेमके आर्यावर्त्तना अने अनार्यदेशना जे महर्द्धिक जीवो केटलाएक एवा छे के आ भवमां घणां उंचा प्रकारनो अनेक जातनो वैभव भोगवी रह्या छे, परन्तु ते वैभव (पुण्यकर्म) भोगवतां छतां सत्कार्यो-सदाचार प्रवृत्ति नहि होवाथी बीजुं नवुं पुण्य उपार्जन नहि करतां असदाचार प्रवृत्तिथी अनेक प्रकारनां पापकर्म करी पाप मात्रज बांधी रह्या छे जेथी आ भवमां तो पुण्यकर्मथी सुख भोगवी रह्या छे, परन्तु

१ आ स्थाने द्रव्य एटले " लोकव्यवहारथी, " अथवा " स्थूल दृष्टिए " एवो अर्थ करवो.

२ आ स्थाने भाव एटले " वास्तविक रीते " अथवा "तत्त्वदृष्टिए" एवो अर्थ करवो. ए बन्ने शब्दनो अर्थ आश्रवादिकमां पण एज प्रमाणे जाणवो. ३ महाधनवान.

परभवमां तो ब्रह्मदत्तचक्रवर्तीनी माफक दुःखमय दुर्गतिज छे. एवा प्रकारना पुण्यने पापानुबंधि पुण्य कहेवामां आवे छे चालु प्रकरणमां विशेषतः पुण्यानुबंधिपुण्यनेज पुण्य तरीके मानवुं योग्य छे ३

जीवने दुःख भोगववामां कारणरूप जे अशुभकर्म ते द्रव्य पाप, अने ते अशुभ कर्मने उत्पन्न करवामां मूळ कारणरूप जे अशुभ अध्यवसाय (भाव—परिणाम) ते भावपाप कहेवाय, अने ए पापनुं जे लक्षण भेदादि स्वरूप ते पापतत्त्व कहेवाय. अहिं पाप पण (पुण्यतत्त्वमां कह्या प्रमाणे) वे प्रकारनुं छे. त्यां जे कसाइ मच्छीमार विगेरे जीवो आ भवमां द्ररिद्रतादि अनेक दुःखो (पापो) भोगवी रह्याछे (भोगवे छे) अने एज पाप भोगववाद्वारा बीजुं नवुं पाप उपार्जन करे छे जेथी आ भवमां तेओने सुख नथी अने परभवमां पण सुख नथी माटे ते पापानुबंधि पाप कहेवाय. तथा जे जीवो आ भवमां द्ररिद्रतादि दुःख (पाप) भोगवे छे परन्तु आ दरिद्रता ते पूर्वकृत पापनोज प्रभाव छे एम समजी पोतानी शक्ति प्रमाणे धर्मकृत्यो करे छे जेथी आ भवमां तो तेओने सुख नथी पण परभवमां तो अवश्य सुख थायछे ज माटे ते पुण्यानुबंधि पाप चण्डकौशिक सर्पादिनी माफक कहेवाय छे अत्रे बन्ने पापने पाप तरीके मानवुं योग्य छे, तोपण वास्तविक रीते पापानुबंधि पापने विशेषतः पाप तरीके मानवुं योग्य छे. ए प्रमाणे पुण्य पापनी चतुर्भंगी (चार भांगा—चार प्रकार) नीचे प्रमाणे थया. ४

१ पुण्यानुबंधि पुण्य—'सुख'[1] छे अने छे[2]—आ प्रकार आदरवा योग्यछे.

१ अर्थात् (पुण्यानुबंधि पुण्यथी) आ भवमां सुख छे, अने परभवमां पण सुख छे, ए रीते चार प्रकार समजवा.

२ वर्तमानकालनी अपेक्षाए, ३ भविष्यकालनी अपेक्षाए.

२ पापनुबंधि पुण्य–सुख[२]छे अने [३]नथी– ,, त्याग करवा योग्य
३ पापानुबंधि पाप–सुख[२] नथी अने [३]नथी–,, ,,
४ पुण्यानुबंधि पाप–सुख[२] नथी अने [३]छे ,, आदरवा योग्य

जीवोमां कर्मनुं जे आववुं ते द्रव्य आश्रव, अने कर्म आववामां कारण रूप जे जीवनो रागद्वेषयुक्त परिणाम ते भाव आश्रव, अने ए आश्रवनुं जे लक्षण भेदादि स्वरूप ते आश्रव तत्त्व कहेवाय. अहिं " आश्रव " ए शब्दनो अर्थ " आववुं " थाय छे. आ आश्रव तत्त्वमां पुण्यतत्त्व अने पाप तत्त्वनो पण समावेश थइ शके छे. कारणके शुभ कर्मनुं आववुं ते शुभाश्रव एज पुण्य, अने अशुभ कर्मनुं आववुं ते अशुभाश्रव एज पाप कहेवाय छे. ए प्रमाणे बे तत्त्वनो समावेश करवाथी सर्व तत्त्व सात छे एम पण शास्त्रोमां कहेलुं छे. ५

जीवमां आवतां कर्मोनुं जे रोकावुं (संवर–रोकावु, अटकवुं ए अर्थथी) ते द्रव्य संवर, अने आवतां कर्मोने रोकवामां कारणरूप जे जीवनो शुद्ध अध्यवसाय (भाव–परिणाम)ते भाव संवर, अने ए संवरनुं जे लक्षण भेदादि स्वरूप ते संवरतत्त्व कहेवाय. ६

कर्मोनो जे देशथी (अल्पांशे) क्षय थवो ते द्रव्यनिर्ज्जरा, अने कर्मोनो देशथी क्षय करवामां कारणरूप जीवनो जे विशुद्ध अध्यवसाय ते भाव निर्ज्जरा. अथवा सम्यग्दृष्टि जीवनी (सर्वज्ञकथित तत्त्वज्ञान पर संपूर्ण प्रतीति–श्रद्धावाळा जीवनी) जे निर्ज्जरा ते सकाम निर्ज्जरा, अने मिथ्यादृष्टि जीवनी (सर्वज्ञ कथित तत्त्वज्ञान पर अल्पांशे पण अप्रतीतिवाळा जीवनी) जे निर्ज्जरा ते अकाम निर्ज्जरा. अहिं चालु प्रकरणमां सकाम निर्जरा ज निर्जरा तरीके गणवी योग्य छे. कारण के

सम्यग्दृष्टि जीव जेटली निर्ज्जरा करे छे तेनाथी नवो कर्मबंध अति अल्प करी शके, अने मिथ्यादृष्टि जीव वो निर्ज्जरा अल्प करे अने नवीन कर्मबंध घणोज करे जेथी सर्वकर्मक्षयनो अवसरज न मले, माटे जेमां अल्पकर्मनो बंध छे अने घणा कर्मनी निर्ज्जरा छे एवी सम्यग्दृष्टिनी सकाम निर्ज्जरा ज सर्व कर्मनो क्षय करनारी (मोक्ष प्राप्तिमां कारणवाळी) होवाथी निर्जरा तरीके गणी शकाय. ७

जीवनी साथे कर्मोनुं जे परस्पर मली जवुं-बंधावुं ते द्रव्यबंध, अने ते कर्मोने बांधवामां कारणरूप जीवनो जे रागद्वेषयुक्त परिणाम ते भावबंध कहेवाय, अने ए बंधनुं जे लक्षण भेदादि स्वरूप ते बंधतत्त्व कहेवाय. लोखंडना गोळामां अग्नि जेम प्रवेश करीने रहे छे. तेम कर्मना अणुओ पण आत्मामां प्रवेश करीने रहे छे. ८

आत्मानी साथे लागेलां सर्व कर्मोनो जे सर्वांशे संपूर्ण क्षय थवो ते द्रव्यमोक्ष, ते कर्मोना कारणरूप रागद्वेषादिनो जे सर्वांशे संपूर्ण क्षय थवो ते भावमोक्ष, अने ए मोक्षनुं जे लक्षण भेदादि स्वरूप ते मोक्षतत्त्व कहेवाय. ९

उपर बतावेला स्वरूपवाळा नवतत्त्वो जे प्रमाणे सिद्धान्तो तथा ग्रन्थोमां वर्णव्या छे ते प्रमाणे जाणवायोग्य छे, कारणके तेनुं ज्ञान सम्यक्त्व स्थिरता तथा शुद्धिनु परम कारण छे.

९ तत्त्वोमां जीवाजीव विभाग.

नव तत्त्वमां जीव तत्त्व युक्त होवाथी जीवतत्त्व, तथा जीवगुणने (आत्माना गुणने) प्रगट करनार होवाथी संवर निर्ज्जरा अने मोक्ष ए चार तत्त्व जीवस्वरूप छे. अने पुण्य-पाप-आश्रव-ने बं-

ध ए चार तत्त्व जडपदार्थना (पुद्गलना विकार रूप होवाथी अजीव छे, अने अजीव तो अजीव छेज, ए प्रमाणे ५ तत्त्व अजीवस्वरूप छे.

९ तत्त्वोमां रुपी अरुपी विभाग.

नवतत्त्वमां जीव देहधारी होवाथी रूपी छे, तथा संवर निर्ज्जरा अने मोक्ष ए त्रणे जीवना परिणाम रूप होवाथी अरूपी छे, तथा पुण्य, पाप, बंध, अने आश्रव ए चारे जडनो (पुद्गलनो कर्मरूप) विकार होवाथी रूपी छे, अने अजीवना केटलाएक भेद रूपी अने केटलाएक भेद अरूपी (२जी गाथाना विवरणमां कहेवाशे ते प्रमाणे स्कंध–देश–प्रदेश–ने परमाणु ए चार पुद्गलना भेद रूपी छे, अने शेष १० भेद अरूपी) छे माटे अजीवतत्त्व रूपी अरूपी छे.

९ तत्त्वोमां हेय ज्ञेय अने उपादेय.

नवतत्त्वमां जीव ने अजीव ए बे तत्त्व ज्ञेय–जाणवा योग्य छे. कारणके ए बे तत्त्वनो आदर अथवा त्याग थइ शकतो नथी, तथा पाप आश्रव बंध ए त्रण तत्त्व आत्मगुणने आच्छादन करनार [ढांकनार–प्रकाशित नहि थवा देनार] होवाथी हेय–त्याग करवायोग्य छे. तथा संवर निर्ज्जरा अने मोक्ष ए त्रण तत्त्व आत्मगुणने प्रगट करनार होवाथी उपादेय–आदरवायोग्य छे. तथा पुण्यतत्त्व ए सुवर्णनी पण बेडी सरखुं होवाथी वास्तविक रीते त्याग करवायोग्य छे, तोपण आत्मगुणने प्रगट करवामां (मोक्षमार्गमां चालता मुमुक्षु जीवोने) सहायरूप [वळावा सरखुं] होवाथी उपादेय ज गणाय छे.

प्रश्न—संवरादितत्त्व जीवस्वरूप होवाथी ज्ञेय, अने आश्र-

वादितत्त्व पण अजीवस्वरूप होवाथी ज्ञेय केम न गणाय ? अथवा संवरादितत्त्वो जो जीवस्वरूप छे तो जीवतत्त्व उपादेय केम न गणाय ? अने आश्रवादितत्त्वो जो अजीव स्वरूप छे तो अजीव-तत्त्व हेय केम न गणाय ?

उत्तर—अहिं हेय ज्ञेयादि विवेचनमां मुख्यताये नवतत्त्वोनी विवक्षा करेली होवाथी स्वतत्त्वनी मुख्यताये जीवतत्त्व ते आत्मा ज जाणवो. अने अजीवतत्त्व ते धर्मास्तिकायादिक (आगळ कहे-वाता) १४ भेद जाणवा, परन्तु आश्रवादिरूप विकारोनी मुख्य-ताए ए बे तत्त्वो अहिं ग्रहण न करवां, जेथी ए बे तत्त्वो ज्ञेय मात्र ज छे.

बे अथवा सात तत्त्व.

चालु प्रकरणमां जो के तत्त्वो नव कहेल छे, परन्तु संवर नि-र्जरा अने मोक्ष ए त्रण तत्त्वने जीवस्वरूप (प्रथम कह्या प्रमाणे) गणवाथी अने पुण्य, पाप, आश्रव अने बंध ए चार तत्त्वो प्रथम कह्या प्रमाणे अजीव स्वरूप गणवाथी मुख्यत्वे जीव अने अजीव ए बेज तत्त्व गणी शकाय. अथवा प्रथम कही गया मुजब पुण्य अने पापने आश्रवतत्त्वमां अतर्गत गणतां जीव, अजीव, आश्रव, संवर, निर्ज्जरा, बंध अने मोक्ष ए प्रमाणे (तत्त्वार्थ सूत्रमां कह्या प्रमाणे) सात तत्त्व पण गणी शकाय, वळी नवतत्त्वोनी उत्पाद, स्थिति, अने व्यय स्वरूपसत्पणानी विवक्षाये सत्स्वरूप एकतत्त्व पण कही शकाय, तेम पांचतत्त्वो पण विवक्षा भेदे कही शकाय छे. परन्तु चा-लु विवेचन नवतत्त्वने अंगेज छे एम जाणवुं.

नवतत्त्वक्रम हेतुविचार,

सकलतत्त्वनो विचारकरनार—समजनार अजीव पुद्गलादिद्र-

न्योनी ग्रहणादि क्रिया करनार, पुण्य—पाप—आश्रव—संवर—बंध—निर्जरा-अने मोक्षतत्त्वनी क्रियाओमां प्रवृत्तिकरनार जीवज छे, तेमज जीव विना तेना विरोधी अजीवनी तथा पुण्यादितत्त्वोनी उपपत्ति पण थइ शके नही माटे प्रथम जीवतत्त्व कह्युं. जीवोना ते ते भेदोनी व्यवस्था तथा परभवमां गमनागमन विगेरे धर्मास्तिकायादि अजीवतत्त्व सिवाय थाय नहि,माटे बीजुं अजीवतत्त्व. ते अजीवना कर्मस्वरूप विकारोज पुण्य पाप छे, तेमां पण प्रशस्त होवाथी त्रीजुं पुण्यतत्त्व अने चोथुं पापतत्त्व. ते बन्नेनुं शुभाशुभ आश्रव विना ग्रहण थइ शके नही माटे पांचमुं आश्रवतत्त्व. ज्यारे आश्रवथी कर्म आवे छे त्यारे तेने रोकनार तत्त्व होवुं जोइये माटे छट्ठुं संवरतत्त्व जेम संवरथी नवां आवतां कर्मो अटके छे तेम जुना कर्मोने क्षयकरनार तत्त्व पण जोवुं जोइए माटे सातमुं निर्जरातत्त्व कह्युं. आश्रवथी आवेलां कर्मो जीवनी साथे स्नेचिकलापनादृष्टान्ते बद्धस्पृष्टादि अवस्थाये संबद्ध थया सिवाय फळ आपी शके नही. तेमज निर्जराथी जीवसंबद्ध जुनां कर्म ज्यारे वियुक्त थाय छे त्यारे तेनु विरोधी जीव साथे कर्मोने संयुक्त करनार तत्त्व पण कहेवुं जोइए माटे आठमुं बन्धतत्त्व कह्युं. ज्यारे जीवनी साथे कर्मोनो संबंध थाय छे त्यारे तेनो सर्वथा मोक्ष पण होवो जोइए. वळी ते (मोक्ष) सर्वोत्कृष्ट होवाथी अने तेने ज माटे सर्व ग्रन्थनी प्रवृत्ति होवाथी सर्व ग्रन्थना निःस्यन्द(सार) रूप नवमुं मोक्ष तत्त्व कह्युं.

प्रथम गाथानुं रहस्य.

आ प्रथम गाथाये करी शिष्टाचारने पाळवा माटे निर्विघ्नपणे ग्रन्थनी समाप्ति थाय ते माटे वस्तुस्वरूप संकीर्तन रूप मंगलाचरण १, तथा श्रोतृप्रवृत्तिना हेतुरूप ग्रन्थनुं अभिधेय २, तथा नवतत्त्वनुं ज्ञान मे-

१-२ पमां नमस्कार, आशीर्वाद, अने वस्तुसंकीर्तन. प

ळववुं ते अने परंपराए मोक्षरूप फळ ३, वळी अभिधेय अने ग्रन्थनो वाच्य वाचक भाव संबन्ध ४, तथा नवतत्त्वनो जिज्ञासु आत्मा अधिकारी ५, ए प्रमाणे मंगळ तथा अनुबन्ध चतुष्टयनुं वर्णन कर्युं, जेथी मोक्षाभिलाषी जीवोने आ ग्रन्थनी आदरयोग्यता प्रदर्शित करी.

अवतरण—पूर्वे गाथामां ९ तत्त्वनां नाम कहीने हवे आ-गाथामां कया तत्त्वना केटला भेद छे ? ते दर्शावे छे.

मूळगाथा २ जी,

चउदस चउदस बाया–लीसा बासी अ हुंति बायाला।
सत्तावन्नं बारस, चउ नव भेया कमेणेसिं ॥२॥

संस्कृतानुवादः

चतुर्दश चतुर्दश द्विचत्वारिंशत्, द्व्यशीतिश्च भवंति द्विचत्वारिंशत्॥
सप्तपंचाशत् द्वादश, चतुर्नवभेदाः क्रमेणैषां ॥२॥

शब्दार्थः

चउदस–चौद.
बायालीसा–बेंतालीस.
बासी–ब्यासी.
हुंति–छे.
बायाला–बेंतालीश.
सत्तावन्नं–सत्तावन.
बारस.–बार
चउ–चार.
नव–नव.
भेया–भेद.
कमेण–अनुक्रमे.
एसिं–ए ९ तत्त्वोना.

---

३ प्रकारनां मंगलाचरणमांथी त्रीजुं वस्तुस्वरूपसंकीर्तन नामनुं मंगलाचरण कह्युं छे. तथा नवतत्त्वोनां नाम कहेवाथी अभिधेय, "नायव्वा" ए पदथी प्रयोजन, अने अर्थापत्तिथी संबन्ध, तथा अधिकारी, ए प्रमाणे अनुबंध चतुष्टय कहेलुं जाणवुं.

गाथार्थ—ए ९ तत्त्वोमां अनुक्रमे जीवना १४, अजीवना १४, पुण्यना ४२, पापना ८२, आश्रवना ४२, संवरना ५७, निर्ज्जराना १२, बंधना ४, अने मोक्षतत्त्वना ९ ए प्रमाणे (सर्वे मळी २७६) भेद छे.

विस्तरार्थः—गाथामां कहेला सर्वे मळी २७६ भेद ते ते तत्त्वना विवेचन प्रसंगे कहेवाशे. तथा प्रथम गाथाना अर्थमां दर्शावेल जीव, अजीव, रूपी, अरूपी, हेय, ज्ञेय, ने उपादेय ए सात विभागमां कया तत्त्वना केटला केटला भेद प्राप्त थाय छे तेनो संक्षेप गाथा अने यंत्रद्वारा दर्शावाय छे.

"धम्माऽधम्माऽगासा, तिय तिय अद्धा अजीव दसगा य ॥
सत्तावन्नं संवर, निज्जर दुदस मुत्ति नवगा य ॥ १ ॥
अट्ठासि अरूवि हवइ, संपइ उ भणामि चेव रूवीणं ॥
परमाणु देस पएसा, खंध चउ अजीवरूवीणं ॥ २ ॥
जीवे दसचउ दुचऊ, वासी बायाल हुंति चत्तारी ॥
सय अट्ठासी रूवी, दुसय छस्सत्त नवतत्ते ॥ ३ ॥

गाथार्थः—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, अने आकाशास्तिकाय तेना [1]त्रण त्रण भेदो एटले के नव भेदो, तथा अद्धा एटले काळ ए अजीवना १० भेदो, तथा ५७ भेद संवरना, निर्जराना १२ भेद, मोक्षतत्त्वना ९ भेद. ॥१॥ ए ८८ भेद अरूपी होय छे, हवे निश्चयथी रुपीना भेदो कहुंछुं, परमाणु, देश, प्रदेश, अने स्कन्ध ए चार पुद्गलना भेदो रूपो अजीवना ॥२॥ तथा [2]जीवना १४ भेद, पुण्यतत्त्वना ४२, पापतत्त्वना ८२, आश्रवना ४२, बंधतत्त्वना ४, ए

१ धर्मस्तिकाय १, देश २, प्रदेश ३, ए प्रमाणे अध० देश, २ प्रदेश ३, आका० १, देश २, प्रदेश ३.

२ संसारी जीव सर्वदा कर्मयुक्त होवाथी.

सर्व मळी १८८ रूपीना भेदो जाणवा रूपी तथा अरूपीना मळीने नवतत्त्वना २७६ भेदो थया ॥ ३ ॥

तत्त्वना.	२७६ भेदमां.		२७६ भेदमां		२७६ भेदमां		
	जीव	अजीव.	रूपी	अरूपी.	हेय.	ज्ञेय.	उपादेय.
जीवतत्त्वना.	१४	०	१४	०	०	१४	०
अजीवतत्त्वना.	०	१४	४	१०	०	१४	०
पुण्यतत्त्वना.	०	४२	४२	०	०	०	४२
पापतत्त्वना.	०	८२	८२	०	८२	०	०
आश्रवतत्त्वना.	०	४२	४२	०	४२	०	०
संवरतत्त्वना.	५७	०	०	५७	०	०	५७
निर्ज्जरातत्त्वना.	१२	०	०	१२	०	०	१२
बंधतत्त्वना.	०	४	४	०	४	०	०
मोक्षतत्त्वना.	९	०	०	९	०	०	९
	९२	१८४	१८८	८८	१२८	२८	१२०

॥ अथ प्रथमं जीवतत्त्वम् ॥

अवतरण—पूर्वगाथामां सामान्यथी नवतत्त्वनी भेद संख्या

कहीने हवे आ गाथामां जुदी जुदी अपेक्षाएप्रथम जीवतत्त्वना भिन्न भिन्न भेद (आगळ ४ थी गाथामां कहेवाता १४ भेदथी) जुदे प्रकारे कहेवाय छे.

मूळगाथा ३ जी

एगविह दुविह तिविहा चउव्विहा पंचछविहा जीवा ॥
चेयण तसइयरेहिं, वेय--गई--करण--काएहिं ॥ ३ ॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

एकविधद्विविधत्रिविधा, श्चतुर्विधाः पंचषड्विधा जीवाः॥
चेतनत्रसेतरै--र्वेदगतिकरणकायैः ॥ ३ ॥

शब्दार्थः

एगविह--एक प्रकारना	चेयण--चेतन(ए एकज भेद वडे)
दुविह--बे प्रकारना	तस--त्रस (अने)
तिविहा--त्रण प्रकारना	इयरेहिं--स्थावर वडे
चउविहा--चार प्रकारना	वेय--वेद(ना भेद वडे)
पंच (विहा)-पांच प्रकारना	गइ--गति (ना भेद वडे)
छविहा--छ प्रकारना	करण--इन्द्रिय(ना भेद वडे)
जीवा--जीवो	काएहिं--काय(ना भेद वडे)

गाथार्थ--सर्वे जीवो चेतन (चैतन्य लक्षण युक्त) होवाथी एकज प्रकारना छे, अथवा (आ जीवतत्त्वमां सर्वत्र संसारी जीवोनो विचार करेल होवाथी सिद्ध जीव सिवायना) सर्वे जीवो त्रस अने स्थावर ए बे भेदमां अंतर्गत होवाथी २ प्रकारना छे, अथवा सर्वे जीवोनो त्रण वेदमां समावेश थतो होवाथी ३ प्रकारना छे, अथवा सर्वे जीवो गतिना चार भेदमां अंतर्गत होवाथी ४ प्रकारनाछे, अथवा सर्वे जीवो इन्द्रियोना ५ भेदमां अंतर्गत होवाथी ५ प्रकारना छे, अथवा सर्वे जीवनो छ कायमां समावेश थतो

होवाथी जीवो ६ प्रकारना पण छे.

विस्तरार्थः—सर्वे जीवो चैतन्य लक्षण युक्त होवाथी (चैतन्य लक्षण रूप भेदवडे सर्वे जीवो) एकज प्रकारना छे, परन्तु केटलाएक जीवो चैतन्य लक्षण युक्त अने केटलाएक जीवो चैतन्य लक्षण रहित एम बे प्रकारना जीवो नथी, माटे सर्वे जीवो चैतन्य लक्षणवडे एक ज प्रकारनाछे. लब्धिअपर्याप्ता सूक्ष्मैकेन्द्रिय जेवा जघन्य जीवोमां पण ज्ञान मात्रा अनन्तमा भाग जेटली सदा काळ होयज छे. जेनुं स्वरूप आगळ कहेवाशे.

अथवा संसारी जीवोमां केटलाएक जीवो त्रस (त्रास-भय पामी एक स्थानथी बीजे स्थाने गमन करनार) छे, अने केटलाएक जीवो स्थावर (भय पामीने पण स्थानान्तर जवाने अशक्त) छे, अहिं अग्नि अने वायु गतिवडे त्रस छे पण वास्तविक रीते स्थावरछे ए हेतुथी संसारी जीवो त्रस अने स्थावर एम बे प्रकारना पण गणी शकाय छे.

अथवा संसारी जीवोमां केटलाएक पुरुषवेद (स्त्री उपर अभिलाष) वाळा, केटलाएक जीवो स्त्रीवेद वाळा (पुरुष उपर अभिलाष वाळा), अने केटलाएक जीवो नपुंसकवेदवाळा (स्त्री अने पुरुष ए बन्ने उपर अभिलाषवाळा होवाथी संसारी जीवो पुरुषवेदी, स्त्रीवेदी, अने नपुंसकवेदी एम त्रण प्रकारना पण गणी शकाय.

अथवा संसारी जीवोमां केटलाएक देव, केटलाएक मनुष्य, केटलाएक तिर्यंच, अने केटलाएक नारक होवाथी गतिभेदे (देवादिक गतिना भेदवडे) संसारी जीवो चार प्रकारना पण गणी शकाय.

अथवा संसारी जीवोमां केटलाएक जीवो मात्र एक स्पर्श इन्द्रियवाळा, केटलाएक स्पर्श अने जीव्हा ए बे इन्द्रियवाळा, केटलाएक स्पर्श-जीव्हा-अने नाक ए त्रण इन्द्रियोवाळा, केटलाएक स्पर्श-जीव्हा-नाक अने चक्षु ए चार इन्द्रियवाळा, अने केटलाएक जीवो

स्पर्श-जीन्हा-नाक-चक्षु-अने कान ए पांच इन्द्रियो वाळा पण छे, ए हेतुथी संसारीजीवो एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-अने पंचेन्द्रिय एम पांच प्रकरना पण गणी शकाय.

अथवा संसारी जीवोमां केटलाएक जीवो पृथ्वीकाय (पृथ्वी रूप देहने धारण करनारा) छे, केटलाएक अपकाय (जळ-पाणी रूप देहने धारण करनारा), केटलाएक तैजस् (अग्नि रूप शरीरने धारण करनारा), केटलाएक वायुकाय (वायु-हवारूप देहवाळा) केटलाएक वनस्पतिकाय (वनस्पति रूप देहवाळा), अने केटलाएक जीवो त्रसकाय (त्रसनामकर्मना उदयथी गमन शक्तिवाळी देहने धारण करनार) होवाथी जीवो छ प्रकारना पण गणी शकाय.

शिष्य—बीजी गाथामां कहेला उद्देश प्रमाणे जीवना १४ भेद दर्शाववाने बदले आ विचित्र रीते जीवना ६ भेद दर्शाव्या ते शुं ?

गुरु—हे जिज्ञासु ! जीवना जे १४ भेद सामान्यथी बीजी गाथामां कह्या छे ते आगळनी ४ थी गाथामां विशेषतः कहेवाशे, परन्तु अत्रे तो प्रसंगोपात्त जुदी रीते ६ भेद दर्शाव्या छे. वळी आ गाथामां दर्शाव्या प्रमाणे जीवो जुदी जुदी रीते ६ प्रकारना छे एटलुं ज नहिं परन्तु एथी पण अधिक सात प्रकारना, आठ प्रकारना, नव प्रकारना इत्यादि अनेक प्रकारना छे, जे प्रज्ञापनादि सिद्धांतथी जाणवा योग्य छे.

अवतरण—पूर्व गाथामां जुदा प्रकारे जीवभेद करीने हवे आ गाथामां (बीजी गाथाना उद्देश प्रमाणे) जीवना १४ भेद कहे छे.

मूळ गाथा ४ थी.

एगिंदिय सुहुमियरा, सन्नियरपणिंदिया य सबितिचऊ॥
अपज्जत्ता पज्जत्ता, कमेण चउदस जियट्ठाणा॥४॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

एकेन्द्रियाः सूक्ष्मेतराः, संज्ञीतरपंचेन्द्रियाश्च सद्वित्रिचतुः॥
अपर्याप्ताः पर्याप्ताः, क्रमेण चतुर्दश जीवस्थानानि ॥४॥

शब्दार्थ.

एगिंदिय--एकेन्द्रिय जीवो.	बि--द्वीन्द्रिय.
सुहुम--सूक्ष्म.	ति--त्रीन्द्रिय.
[1]इयरा--बादर.	चउ--चतुरिन्द्रिय.
सन्नि--संज्ञिपंचेन्द्रिय.	अपज्जत्ता--अपर्याप्ता
[2]इयर--असंज्ञिपंचेन्द्रिय.	पज्जत्ता--पर्याप्ता.
(पणिंदिया--पंचेन्द्रिय.)	कमेण--अनुक्रमे.
य--अने, तथा.	चउदस--चौद.
स--सहित.	जियट्ठाणा--जीवना भेद.

गाथार्थः--सूक्ष्म एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय, तथा द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय, अने चतुरिन्द्रिय सहित संज्ञिपंचेन्द्रिय, तथा असंज्ञि पंचेन्द्रिय ए सात अपर्याप्ता अने साते पर्याप्ता गणतां अनुक्रमे १४ जीवभेद थाय.

१-२ त्रीजी गाथामां " इयरेहिं " शब्दनो अर्थ " स्थावर एटले " कहेल छे अने आ गाथामां इयरा तथा इयरना अर्थ जुदा जुदा कह्या तेनुं कारण ए छे केः--

इयर इतर शब्द जे नामने जोडायलो होय ते नामथी विपरीत अर्थ थाय छेजेमके सूक्ष्मनुं इतर बादर, स्थावरनुं इतर त्रस, संज्ञिनुं इतर असंज्ञि, पर्याप्तनुं इतर अपर्याप्त, अने लघुनुं इतर गुरु इत्यादि रीते इयर इतर शब्दनो अर्थ प्रतिपक्ष (विपरीत) करवो.

विस्तरार्थः—गाथामां कहेला जीवना १४ भेदनो अनुक्रम (अनुक्रमे १४ भेद) आ प्रमाणे छे.

१	अपर्याप्ता सूक्ष्म एकेन्द्रिय.	८	पर्याप्ता त्रीन्द्रिय.
२	पर्याप्ता सूक्ष्म एकेन्द्रिय.	९	अपर्याप्ता चतुरिन्द्रिय.
३	अपर्याप्ता बादर एकेन्द्रिय.	१०	पर्याप्ता चतुरिन्द्रिय.
४	पर्याप्ता बादर एकेन्द्रिय.	११	अपर्याप्ता असंज्ञि पंचेन्द्रिय.
५	अपर्याप्ता द्वीन्द्रिय.	१२	पर्याप्ता असंज्ञि पंचेन्द्रिय.
६	पर्याप्ता द्वीन्द्रिय.	१३	अपर्याप्ता संज्ञि पंचेन्द्रिय.
७	अपर्याप्ता त्रीन्द्रिय.	१४	पर्याप्ता संज्ञि पंचेन्द्रिय.

उपर कहेला १४ भेदमां सर्व संसारी जीवोनो समावेश थइ शके छे, अर्थात् ए १४ भेदथी व्यतिरिक्त (भिन्न-जुदो) कोइपण संसारवर्ती जीव नथी. ए १४ भेदमां जे जीवो (६ ट्ठी गाथामां कहेवाशे तेवा स्वरूपवाळी) स्वयोग्य पर्याप्तिओ पूर्ण कर्या विना मरण पामे ते अपर्याप्ता, अने स्वयोग्य पर्याप्तिओ पूर्ण करीनेज मरण पामे ते पर्याप्ता जीवो कहेवाय छे. सूक्ष्म एकेन्द्रियादिकनुं स्वरूप अन्य स्थले विस्तृत छे तोपण अति संक्षेपथीकहेवाय छे. आ सिवाय बीजा पण ३२–५६३ विगेरे भेदो थाय छे जे परिशिष्टथी देखवा.

जे एकेन्द्रिय जीवो (अर्थात् एकेन्द्रियजीवोनां शरीर) घणां एकत्र थया छतां पण चक्षुगोचर (दृष्टिगोचर) अथवा कोइपण इन्द्रियने ग्राह्य (इन्द्रिय गोचर) न थइ शके तेवा सूक्ष्मनामकर्मना-उदयवाळा एकेन्द्रिय जीवो सूक्ष्मएकेन्द्रिय कहेवाय छे. आ जीवो चौद राज प्रमाण लोकमां (आखा जगतमां) सर्वत्र रहेला छे. अर्थात् सकल विश्वमां एवी कोइ पण जग्या नथी के ज्यां सूक्ष्म एकेन्द्रियो न रह्या होय, ए जीवो सूक्ष्म होवाथी कोइ पण इन्द्रिय द्वारा जाणी शकाता नथी, परन्तु सर्वज्ञोक्त सिद्धान्तोमां तेओनुं अस्तित्व (विद्यमानता) कहेल होवाथी आपणे मानवा योग्य छे के जगत-

मां एवा प्रकारना पण [1]असंख्य तथा [2]अनंत सूक्ष्म जंतुओ रहेला छे. वळी सूक्ष्मदर्शक यंत्रथी जोवा इच्छीए तोपण ते देखी शकाय नहिं कारणके हवा बादर (एटले इन्द्रिय गोचर) होते छते पण गमे तेवा सूक्ष्मदर्शकथी जोइ शकाय नहिं तो ते सूक्ष्मदर्शक यंत्रथी सूक्ष्म एकेन्द्रिय जंतुओ केवी रीते देखी शकाय ? वळी ए सूक्ष्म एकेन्द्रियमां सूक्ष्म पृथ्वीना जंतुओ (सू० पृथ्वीकाय) असंख्य छे, तेमज सूक्ष्म अप्-कायादि (पाणी अग्नि अने वायुना) जीवो पण असंख्य छे. परन्तु सूक्ष्म वनस्पति जंतुओ तो आ जगतमां तेथी पण अधिक एटले अनंत छे. कारणके अनन्त सूक्ष्म वनस्पतिकायनुं एक शरीर जेने सूक्ष्म साधारणशरीर वा सूक्ष्म निगोद अथवा सूक्ष्म अनन्तकाय कहे छे तेवी असंख्यात निगोदोनो एक गोलक (गोळो) बने छे तेवा असंख्यात गोलको (गोळाओ) चौदराज लोकनी अंदर छे.

तथा जे पृथ्वी–जळ–अग्नि–अने वनस्पति दृष्टि स्पर्शनादि इन्द्रिय गोचर थाय छे अने जे हवा स्पर्शगोचर थाय छे ते पृथ्वी वगेरे सर्व बादर एटले स्थूळ छे, अने ए पृथ्वी–जळ–अग्नि–हवा अने वनस्पति सर्व जीव युक्त छे, माटे ए पृथ्वी विगेरे जीवो बादर एकेन्द्रिय कहेवाय छे. बादर वनस्पतिकायमां केटलाक [3]साधारण शरीरी छे, जेवां के जमीनकंद, आदू, मूळा, शेवाल विगेरे. केटलाक [4]प्रत्येक शरीरी छे, जेवा के आम्र, निंब, फळ, फुल विगेरे.

तथा शंख–कोडी–जळो-अलसीयां–पूरा-कृमी इत्यादि द्वीन्द्रि-

१ सूक्ष्म पृथ्वी अप् तेउ वायुकाय ए चारनी अपेक्षाये.

२ सूक्ष्मसाधारण वनस्पतिकाय (सूक्ष्मनिगोद)नी अपेक्षाये.

३ एक शरीरमा अनन्तजीवो होय ते साधारण शरीरी, के जेओ सरखी रीते उच्छ्वास आहारादि लेनारा छे.

४ एक शरीरमां एक एक जीव अलग अलग होय ते प्रत्येक शरीरी.

य जीवो छे, अने ते मात्र बादर ज होवाथी सूक्ष्म द्वीन्द्रिय अने बादर द्वीन्द्रिय एवा बे भेदवाळा नथी, एज प्रमाणे आगळ त्रीन्द्रियादि जीवो पण सर्वे एक बादर भेदवाळा ज छे परन्तु सूक्ष्म नथी.

शिष्य—द्वीन्द्रियादि जीवो बादर ज होय छे, एम केम कहेवाय? कारणके ए जीवो एवा सूक्ष्म पण होय छे के जे चक्षुथी देखी शकाता नथी, पण सूक्ष्मदर्शक यंत्रनी मददथी देखी शकाय छे, वळी एथीपण वधु सूक्ष्म होवानो संभवछे के जेओ सूक्ष्मदर्शकनी मददथी पण देखी शकाय नहिं, तो तेवा अतिबारीक द्वीन्द्रियादि जंतुओनो संभव होवाथी द्वीन्द्रियादि जीवो सूक्ष्म पण केम न कहेवाय?

गुरु—हे जिज्ञासु? तेवा अतिबारीक जंतुओ लोकव्यवहारमां भले सूक्ष्म कहेवाय, परन्तु वास्तविक रीते तो सूक्ष्मनामकर्मना उदयवाळा अने जे अनेक जंतुओनां देहपुद्गलो एकत्र पिंडित थया छतां पण न देखी शकाय ते जीवो सूक्ष्म गणी शकाय छे. अने द्वीन्द्रियादि जीवो तो एवा छे के तेओना देहपुद्गलोने घणा प्रमाणमां एकत्र पिंडित करतां अवश्य चक्षुआदि इन्द्रियने ग्राह्य थइ शके छे माटे तेवा जीवो अत्र सूक्ष्म तरीके गणी शकाता नथी.

तथा गधइया-धनेरीयां-येळ-मांकड-जू-कुन्थुआ-कीडी-मकोडा-घीमेल इत्यादि त्रीन्द्रिय जीवो छे

तथा भ्रमर-विच्छु-बगाइ-करोळीआ-कंसारी-तीड-इत्यादि चतुरिन्द्रिय जीवो छे.

तथा मातपिताना संयोग विना जळादिक सामग्रीथी एकाएक उत्पन्न थनारा देडका-सर्प-मच्छ इत्यादि तिर्यंच पंचेन्द्रियो, अने मनुष्यना मळमूत्रादि (१४) अशुचि पदार्थोमां उत्पन्न थता सम्मूर्च्छिम मनुष्यो सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय कहेवाय छे, पुनः ए सम्मूर्च्छिम

जीवो सर्वे तथा प्रकारना विशेष मनोविज्ञान रूप संज्ञा रहितज होय छे माटे असंज्ञि पंचेन्द्रिय कहेवायछे.

तथा जे जीवो मातपिताना संयोगवडे गर्भाशयमां उत्पन्न थाय छे ते गर्भज पंचेन्द्रिय जीवो (पर्याप्तावस्थायां) अवश्य मनोविज्ञान सहितज होय छे माटे ए जीवो संज्ञिपंचेन्द्रिय कहेवाय छे. ए प्रमाणे जीवभेदनुं कंइक स्वरूप स्थानशुन्य नहिं रहेवा माटे कह्युं, विशेष स्वरूप तो जीवविचारथी अथवा बीजा ग्रन्थोथी जाणवा योग्य छे.

अवतरण—पूर्वगाथामा जीवना १४ भेद कहीने हवे आ गाथामां जीवनुं लक्षण शुं ? ते कहे छे.

नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा ॥
वीरियं उवओगो य, एयं जीवस्स लक्खणं ॥५॥

(संस्कृतानुवादः)

ज्ञानं च दर्शनं चैव, चारित्रं च तपस्तथा ॥
वीर्यमुपयोगश्चै–तज्जीवस्य लक्षणम् ॥ ५ ॥

शब्दार्थः

नाणं—ज्ञान
च—अने (वा पदपूरणार्थे)
दंसणं—दर्शन
चेव—निश्चय
चारित्तं—चारित्र
च—अने (वा पदपूरणार्थे)
तवो—तप
तहा—तथा
वीरियं—वीर्य
उवओगो—उपयोग
अ—अने (वा पदपूरणार्थे)
एयं—ए
जीवस्स—जीवनुं
लक्खणं—लक्षण, चिन्ह

गाथार्थः—ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य, अने उपयोग ए जीवनां ६ लक्षण छे.

विस्तरार्थः—हवे नवतत्त्वमां प्रथम जीवतत्त्वना वर्णनमां जीव १४ प्रकारना छे एम कह्युं, परन्तु जीव एटले शुं? अने जीवनां लक्षण–चिन्ह शुं? ते आ गाथामां दर्शावाय छे. त्यां प्रथम ज्ञान ए जीवनुं लक्षण–चिन्ह छे, तेमज दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य अने उपयोग ए ६ जीवनां चिन्ह छे, अर्थात् ए ६ गुण जे पदार्थमां होय ते पदार्थ "जीव" कहेवाय छे. हवे ए ६ गुणनु (जीवना चिन्हनुं) स्वरूप, तथा कया जीवोने केवी रीते होय छे! ते कहेवाय छे.

---

१ जेनाथी वस्तु जणाय (" लक्ष्यते अनेनेति लक्षणम् " " असाधारणधर्मो लक्षणम् ") तेवो असाधारण [ते वस्तुथी अन्यमां नही रहेनारो] जे धर्म ते लक्षण कहेवाय. लक्षणनुं इतरभेद ज्ञान ए फळ छे, लक्षण अव्याप्ति-अतिव्याप्ति-असंभव ए त्रण दोष रहित होवुं जोइए तोज ते सद्‌लक्षण कहेवाय जे वस्तुनुं लक्षण अभिप्रेत होय ते वस्तुना अमुक अंशमां न रहेवुं ते अव्याप्ति, लक्ष्यथी अधिकमां रहेवु ते अतिव्याप्ति, लक्ष्य मात्रमां न रहेवु ते असंभव, जेम गायनुं 'कपिलत्व' अव्याप्ति दोषग्रस्त छे, 'शृंङ्गित्व' अतिव्याप्ति दोष दुष्ट छे 'एकशफत्व' असंभव दोषयुक्त छे अने 'सास्नावत्त्व' ए सद्‌लक्षण छे, सामान्य ज्ञानिओने अतीन्द्रिय पदार्थना ज्ञानने माटे अनुमाननी जरुर छे, जेम पर्वतमां वह्निज्ञान धूमहेतुथी महानस [रसोडा]ना दृष्टान्ते थाय छे, तेम पुद्गलनो आश्रय करनारा वर्णादिगुणना दृष्टान्ते ज्ञानादिगुणो आधारवाळा होवाथी तेना (ज्ञानादिना) आधारपणे आत्मा (जीव) नी सिद्ध थाय छे, "ज्ञानादयो द्रव्याश्रिताः गुणत्वाद्रूपवत् " " न पृथ्व्यादिभूताश्रिताः प्रत्येकं तेष्वनुपलभ्यमानत्वात्, यन्नैवं तन्नैवं यथा सत्त्वकठिनत्वादि " "भूतादिव्यतिरिक्त[जीव]द्रव्याश्रिताः भूताद्यनाश्रितत्वे सति साश्रितत्वात्, यन्नैवं तन्नैवम्.

जगत्ना सर्व पदार्थो सामान्य धर्म ('आ कंइक छे, अथवा [2] आ घट छे, आ पट छे इत्यादि सामान्य बोधक धर्म) अने विशेष धर्म (आ [3]अमुक छे, अथवा आ घट वा पट अमुक वर्णनो, अमुक स्थाननो, अमुक कर्त्ता नो इत्यादि विशेषबोधक धर्म) युक्त छे. तेमां पदार्थोना सामान्य धर्मनो अवबोध (ज्ञान) ते दर्शन, अने विशेष धर्मनो अवबोध ते ज्ञान कहेवाय छे. अथवा जीवनो सामान्य (वस्तुना सामान्य–साधारण धर्म संबंधी) उपयोग ते दर्शन, अने विशेष उपयोग ते ज्ञान, अथवा निराकार उपयोग ते दर्शन, अने साकार उपयोग ते ज्ञान, ए सर्व अर्थ परस्पर सरखा अर्थवाळा छे, ए प्रमाणे दर्शनगुण अने ज्ञानगुण ए जीवना मुख्यधर्म मुख्यलक्षण अथवा मुख्य चिन्ह छे, कारणके जीव सिवाय बीजा कोइ पदार्थमां थोडे अंशे वा घणे अंशे विज्ञानशक्ति लेश पण होती नथी, अने विज्ञानशक्ति वडेज आ जीव छे एम ओळखाय छे. आ दर्शन गुण, अने ज्ञान गुण अपर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रियथी प्रारंभीने पर्याप्त संज्ञि पंचेन्द्रिय सुधीना सर्व जीवभेदमां थोडे घणे अंशे होय छे, पुनः पृथ्वी जळ–अग्नि इत्यादि

१ ए नैश्चयिक अर्थावग्रहनी मुख्यताए दर्शन ते निराकार उपयोगमां गणाय छे, उपलक्षणथी नैश्चयिक इहा तथा व्यंजनावग्रह पण दर्शनरूप ज छे.

२ "आ घट छे" ए श्लोके नैश्चयिक अपाय होवाथी ज्ञानरूप छे परन्तु व्यवहारिक अर्थावग्रहनी मुख्यताए दर्शनरूप छे.

३ "आ अमुक छे" ए श्लोके नैश्चयिक अपायनी मुख्यताए ज्ञानरूप छे, अन्यथा दर्शनरूप तो गणेल ज छे.

४ निराकार एटले सामान्य ५ साकार एटले विशेष (आकार सहित)

एकेन्द्रिय जीवोमां विज्ञान शक्ति नहिं, जाणाती होवाथी तेओमां विज्ञान शक्ति बिलकुल नथी एम न कही शकाय, कारणके 'औषधी प्रयोगवडे बेशुद्ध—बेभान थएला मनुष्योमां जे १ [2]अव्यक्त चैतन्य (विज्ञान शक्ति) विद्यमान छे, तेम एकेन्द्रियमां पण अव्यक्त चैतन्य विद्यमान छे, ए प्रमाणे एकेन्द्रिय जीवोनी विज्ञानशक्ति अव्यक्त अने अल्प होवाथी बीजा जीवोनी माफक प्रत्यक्ष अनुभवमां आवी शकती नथी, पण श्री सर्वज्ञोए अपर्याप्त सूक्ष्म नीगोद सरखा जीवने पण अक्षरनो (ज्ञाननो) अनंतमो भाग उघाडो कह्यो छे, अने एटलो [3] निकृष्ट ज्ञानांश पण जो ते जीवने न होय तो ते जीव नहिं पण अजीव सरखोज गणाय. ए रीते असर्वज्ञ संसारी जीवोने दर्शनगुण अने ज्ञानगुण कोइने व्यक्त तो कोइ अव्यक्त कोइने अल्प तो कोइने अधिक पण होय छे, अने सर्वज्ञने तो ज्ञान गुण दर्शन गुण बन्ने सर्वांशे संपूर्ण होय छे. पुनः असर्वज्ञ जीवोने [4]प्रथम दर्शन (एटले सामान्य उपयोग) अने पछी ज्ञान (एटले विशेष उपयोग) होय छे, अने सर्वज्ञने तो प्रथम समये ज्ञान बीजे समये दर्शन त्रीजे समये ज्ञान अने चोथे समये दर्शन ए प्रमाणे प्रथम ज्ञान पछी दर्शन अनुक्रमे परावर्त्तमान पाम्या करे छे पुनः असर्वज्ञ जीवोनुं ज्ञान अथवा दर्शन अन्तर्मुहूर्त्त (बे घडीनी अंदरना काळ) प्रमाण होय छे, अने स-

१ दरदीने शस्त्रप्रयोग अजमावतां औषधीना प्रयोगथी बेशुद्ध करवो पडे छे. जे प्रयोग जगप्रसिद्ध छे.

२ बीजाने अनुभवमां न आवी शके तेवी रीते अप्रगट.

३ अति अल्प,

४ प्रथम एटले जे समये सर्वज्ञत्व (केवलज्ञान) प्राप्त थाय ते समये

वंशनुं ज्ञान दर्शन एकेक समयनुं होय छे. ए प्रमाणे जीवना मुख्य लक्षण ज्ञान अने दर्शननुं किंचित् स्वरूप कह्युं.

तथा ज्ञानादि गुणमां (ज्ञान-दर्शनमां) रमणता करवी ते चारित्र कहेवाय, अथवा मोहाधीन प्राणीओ मोह दूर करवाने माटे जे अभ्यास रूप यम नियमादि (व्रतादि) अंगिकार करे ते चारित्र कहेवाय. आ चारित्र गुण पण सूक्ष्म अपर्याप्त एकेन्द्रियादि सर्व जीवोने थोडे घणे अंशे होय छे, तेमां समोही छद्मस्थ जीवोने (मोहनी सत्तावाळा जीवोने) अनंतमा अंश जेटलुं चारित्र होय छे, अने क्षीणमोही मुनिराजने, भवस्थ (देहधारी) केवली भगवंतने अने मोक्षमां पहोचेला सिद्धपरमात्माओने सर्वांशे संपूर्ण चारित्र होय छे. ए प्रमाणे सर्व जीवो चारित्र गुण युक्त होवाथी अने चारित्र गुण ते जीव सिवाय अन्य पदार्थमां नहिं होवाथी चारित्र ए जीवनुं लक्षण छे.

---

१ ए अनंतमो अंश पण जुदा जुदा जीवोनी अपेक्षाये घणी तारतम्यता वाळो (हीनाधीक) होय छे, जेमके सू० निगोदने प्रथम समये जे अव्यक्त चारित्र गुण वर्ते छे ते करतां अन्य सू० निगोदजीवनो चारित्रगुण अनंतगुण अधिक पण होय, अने सर्वोत्कृष्ट चारित्र तो क्षीणमोही मुनिराजने होय.

२ शंका—" सर्वे जीवो चारित्र गुणयुक्त छे " एम कहेवुं युक्त नथी. कारणके मिथ्यादृष्टि वगेरे जीवो अथवा सू० निगोदादि जीवो के जेओए देशविरति गुणस्थान प्राप्त कर्युं नथी. तथा (अनंतानुबंधि-अप्रत्याख्यानीरूप सर्व घाती कषायना उदयवाळा] जीवोने लेश मात्र पण चारित्र गुण संभवतो नथी. कारणके ८ बे सर्वघाती कषायोदयवाळा जीवोने लेश पण

तथा इच्छानो अभाव ते तप कहेवाय छे, अथवा ते इच्छा निरोध करवाना [1] अभ्यासरूप [2] हेतुरूप अने [3] चिन्हरूप जे अनशनादि (उपवासादि) ते पण व्यवहारथी तप कहेवाय. ए तप गुण पण [4] सर्वज्ञने सर्वांशे संपूर्ण होय छे, अने [5] शेष जीवोने थोडे घणे अंशे होय छे.

चारित्र गुण होय नहिं, पुनः जे अनंतानुबंधि कषाय जीवना सम्यक्त्व गुणने पण रोकी राखे छे ते अनंतानुबंधिना उदयवाळा सू० निगोदादि मिथ्यादृष्टिओने चारित्र गुणनो लेश पण केम संभवे ? पुनः सू० निगोदादि मिथ्यादृष्टि जीवोने पण जो लेश मात्र चारित्रगुण होय छे, तो देशविरति गुणस्थानवाळा श्रावकनेज देशथी (लेश) चारित्रनो उदय मानवो ते शा माटे ? कारणके प्रथम गुणस्थानथी पांचमा गुणस्थान सुधीना सर्व जीवोने तमारा कहेवा प्रमाणे देश चारित्र गुण तो प्रगट थयेलोज छे.

उत्तरः—हे जिज्ञासु ! ए शंका योग्य छे, परन्तु सर्वघाति कषायोदयवाळा जीवने पण चारित्रगुणना केटलाएक पर्याय उघाडा छे, जेम अति गाढ मेघावृत दिवसमां सूर्यनो प्रकाश किरणना रूपमां तो बिलकुल नथीज तोपण सर्वथा अंधकार नथी, परन्तु ते दिवस अति अल्प प्रकाशयुक्त छे, अने जो तेम पण न होय तो दिवस अने रात्रिनो भेद न पडे, अर्थात् दिवस रात्रि एक सरखी थाय. तेवी रीते श्रद्धापूर्वक कंइक व्रतादि अंगीकार करी शके तेवो चारित्र गुण तो ए जीवोमां नथी, परन्तु अव्यक्त अने अति अल्प क्रोधादिनी मंदतारूप चारित्र गुण तो अवश्य वर्त्ते छे, कारणके अनंतानुबंध्यादि सर्वघाती कषायो सर्वोत्कृष्ट होय तोपण चारित्र गुणना केटलाक पर्यायो निरावरणीय रहेवाथी ए जीवोमां अव्यक्त चारित्र गुण होइ शके छे, श्री कर्मप्रकृति ग्रंथमां उदीरणा करणनी ४८ मी गाथामां " मोहनीयनी २८, अन्तरायनी ५, केवळज्ञानावरण अने केवळदर्शनावरण ए ३५ प्रकृतिओ जीवद्रव्यने संपूर्ण हणे पण जीवना सर्व पर्या-

योने न हणे " ए प्रमाणे कहेलुं होवाथी उपरना सर्व विरोध उपशान्त थाय छे. पुनः आ समाधान तप-वीर्य-अने उपयोगना संबंधमां पण विचारवुं.

१ उपवास अने उणोदरी इत्यादि व्यवहार तपना अभ्यासथी इच्छानिरोधरूप नैश्चयिक तप प्राप्त थाय छे, माटे व्यवहार तप ते निश्चय तपना अभ्यासरूप छे.

२ उपवासादि व्यवहार तप ते इच्छानिरोधरूप नैश्चयिक तपने उत्पन्न करे छे माटे व्यवहार तप नैश्चयिक तपना हेतुरूप छे.

३ सर्व मिष्ट पदार्थो प्राप्त थयेला होय अथवा प्राप्त थइ शके तेम होय छतां पण तेनो त्याग करी परम श्रद्धालु जीवो उपवासादि व्यवहार तप अंगीकार करे छे, तो तेथी अनुमान थाय छे के ए जीवनें अवश्य कंइक अंशे पण इच्छानिरोधपणुं प्रगट थयेल छे, ए प्रमाणे व्यवहार तप ते नैश्चयिकतपना चिन्हरूप छे.

४ शंका—सर्वज्ञने जो सर्वांशे संपूर्ण तप गुण प्रगट थयेल छे तो सर्वज्ञो आहार नहि लेता होय एम संभवे छे.

उत्तर—सर्वज्ञ महात्माओ इच्छा-ममत्वने आधीन थइ बिलकुल आहार लेता नथी. परन्तु पोतानी औदारिक काया आहार विना टकी शके नहि माटे औदारिक कायाना निभाव अर्थेज आहार ग्रहण करे छे, माटे ममत्वभावना अभावे संपूर्ण तप गुणने हानी पहोचती नथी. जेम व्याधि शान्त करवाने लीधेलुं कडवुं औषध इच्छापूर्वक लीधुं न कहेवाय, तेम सर्वज्ञोए कायाना निभाव माटे ग्रहण करेलो आहार इच्छापूर्वक न कहेवाय.

५ शेष जीवोने-सूक्ष्म एकेन्द्रियादिकोने पण इच्छानिरोध रूप तपगुणनो लेश केवी रीते होइ शके ? ए शंकानुं समाधान पण चारित्रगुणना लेशवत् जाणवुं. अर्थात्, इच्छा ते मोहनीय कर्मना उदयथी छे, अने मोहनीय कर्मनो उदय जीवना सर्व पर्यायोने उपघात करी शके नहिं तेथी अनुपहत पर्याय पूरतो तप गुण पण सू० एकेन्द्रियादिने संभवे.

तथा आत्मानी जे शक्ति ते वीर्य कहेवाय, ए वीर्य गुण पण सर्वज्ञमां सर्वांशे संपूर्ण अने सू० एकेन्द्रियादि जीवोमां तेथी अनंतमे अंशे हीनाधिकपणे होय छे.

तथा जेना वडे ज्ञान अने दर्शन गुणनी प्रवृत्ति थाय ते उपयोग. ए उपयोग ज्ञान अने दर्शनमां साधारण पणे वर्त्ते छे, केमके ए उपयोग ज्यारे वस्तुना विशेष धर्मोपर वर्ततो होय त्यारे एज उपयोगने " ज्ञान " संज्ञा होय छे, अने एज उपयोग ज्यारे वस्तुना सामान्य धर्म पर वर्ततो होय छे त्यारे "दर्शन" कहेवाय छे, ए प्रमाणे जोवा जतां जीवनुं मुख्य लक्षण उपयोग ज छे, ज्ञान तथा दर्शन तो उपयोगान्तर्गत छे, छतां ए बेनी मुख्यता अंगीकार करीने ज्ञान अने दर्शन लक्षण उपयोगथी भिन्न कहेल छे. जो के ज्ञान, दर्शन, अने उपयोग ए त्रणे जीवनां लक्षण होवाथी जीवना स्वतत्त्वरूप छे छतां कर्मवशवर्ति जीव होवाथी उपयोगनुं निरन्तरपणुं रहेतुं नथी, तेमज ज्ञानोपयोगनो वस्तुनिश्चायकत्व स्वभाव छतां पण संशयादि थवामां विरोध नथी. ए उपयोग गुण पण सर्वज्ञने सर्वांशे अने शेष जीवोने थोडे घणे अंशे प्रगट होय छे.

उपर कहेलां ए लक्षणो सर्व जीवोने सत्तापणे तो सरखांज छे, परन्तु सकर्म जीवोने कर्मना प्रभावे हीनाधिक पणे प्रगट होय छे, अने अकर्म जीवोने ते सर्व लक्षणो संपूर्ण पणे प्रगट होय छे.

अवतरण—पूर्व गाथामां जीवनां लक्षण कहीने हवे आ गाथामां (४ थी गाथामां जीवना जे अपर्याप्त अने पर्याप्त भेद कह्या तेना संबंधमां) पर्याप्ति ते कइ ? अने कया जीवने केटली होय ? ते दर्शावे छे.

आहारसरीरिंदिय, पज्जत्ती आणपाणभासमणे
चउ पंच पंच छप्पिय, इगविगलाऽसन्निसन्नीणं ॥६॥

संस्कृतानुवादः

आहारशरीरेन्द्रिय-पर्याप्तय आनप्राणभाषामनांसि ॥
चतस्रः पंच पंच षडपि चै-कविकलाऽसंज्ञिसंज्ञिनाम् ॥६॥

शब्दार्थः

आहार-आहारपर्याप्ति	पंच-पांच पर्याप्ति
सरीर-शरीरपर्याप्ति	छप्पि-छए पर्याप्ति
इंदिय-इन्द्रियपर्याप्ति	य-(पदपूरणार्थे] वळी
पज्जत्ति-पर्याप्ति	इग-एकेन्द्रियजीवोने
आणपाण-श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति	विगल-विकलेन्द्रियजीवोने,
भास-भाषा पर्याप्ति	असन्नि-असंज्ञि पंचेन्द्रियने
मणे-मन पर्याप्ति	सन्नीणं-संज्ञिपंचेन्द्रियजीवोने
चउ-चार पर्याप्ति	

गाथार्थः—आहारपर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति, इन्द्रियपर्याप्ति, श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति, भाषापर्याप्ति अने मनःपर्याप्ति, ए ६ पर्याप्तिमांथी एकेन्द्रिय जीवोने चार, विकलेन्द्रिय जीवोने पांच, असंज्ञि पंचेन्द्रियने पांच, अने संज्ञिपंचेन्द्रिय जीवोने छए पर्याप्तिओ होय छे.

विस्तरार्थः—जीव जे भवमां उत्पन्न थाय छे ते भवमां जीवनशक्तिना निर्वाह माटे (जीवित टकी रहेवा अने ते जीवनमां करवा योग्य अवश्य कार्यो माटे) जे आहारग्रहणादि अवश्य क्रियाओ करवी पडे छे, अने ते क्रियाओ माटे जे सामर्थ्य-शक्ति उत्पन्न

करवी पडे छे ते शक्तिनुं नाम पर्याप्ति कहेवाय. वळी जीवमां ए शक्तिओ जे उत्पन्न थाय छे, ते पण पुद्गलसमूहना [1]आलंबनथी-निमित्तथीज उत्पन्न थाय छे, माटे ते ते शक्ति उत्पन्न थवामां निमित्त-भूत-कारणभूत जे पुद्गलोपचय (पुद्गलोनो समूह) ते पण (कारणमां कार्य भावनो आरोप करवाथी) पर्याप्ति कहेवाय छे. ए हेतुथीज पर्याप्ति-जीवशक्तिओ पुद्गलोपचयजन्य (पुद्गलसमूहथी उत्पन्न थएली) अथवा पुद्गलरूप कहेवाय छे. ए भावार्थ घणा ग्रंथोनो छे, अने श्री तत्वार्थभाष्य तथा वृत्तिमांतो कह्युं छे के "ते ते शक्तिमां निमित्तभूत पुद्गलसमूहसंबंधी क्रियानी परिसमाप्ति ते पर्याप्ति कहेवाय छे." ए प्रमाणे पर्याप्ति एटले शक्ति, शक्तिजनक पुद्गल, अने समाप्ति ए त्रण अर्थ थाय छे.

श्री बृहत्संग्रहणी विगेरे अनेक शास्त्रोमां कह्युं छे के—"पर्याप्ति एटले शक्ति अर्थात् सामर्थ्य विशेष, ते (शक्ति) पुद्गलद्रव्यना उपचयथी (समूहथी) थाय छे, अर्थात् उत्पत्ति स्थानमां आवेला जीवे प्रथम समये जे पुद्गलो ग्रहण कर्यां तेनी अने प्रतिसमय ग्रहण करातां बीजां पुद्गलो के जे तेना (प्रथम समय गृहित पुद्गलोना) संबंधथी तत्स्वरूपे थएलां छे तेनी जे शक्ति आहारादि पुद्गलोने खल रसादिरूपे बनाववामां कारणभूत छे (ते पर्याप्ति.) जेम उदरमां रहेलां (तथा प्रकारनां तैजसादि) पुद्गलो (नी शक्ति) ग्रहण करायेल आहार पुद्-

१ संसारी जीवोना सर्व पौद्गलिक व्यापारो पुद्गलसमूहना आलंबनथी ज होय छे, जीवनी जो के स्वतंत्र शक्ति छे पण ते शक्ति सिद्ध जीवोमां अपौद्गलिक अने संसारी जीवोमां पौद्गलिक होय छे श्री कर्मप्रकृति विगेरेमां कह्युं छे के—" द्रव्यनिमित्तं हि संसारिणां वीर्यमुपजायते" एटले संसारी जीवोनुं वीर्य पुद्गलद्रव्यना निमित्तथीज होय छे. माटे आहारग्रहणादि पौद्गलिक शक्तिओ पण पुद्गलद्रव्यना निमित्तथीज छे.

लोने खल रसादिरूपे बनाववामां कारण रूप छे तेम तेवा प्रकारनी ते पुद्गलोनी (प्रथमादि समय गृहित पुद्गलोनी) जे शक्ति ते पर्याप्ति कहेवाय. " ए अनेक ग्रंथोमां कहेलो शब्दार्थ कह्यो, अने तत्वार्थसूत्रमां जे विशेषता छे ते चालु वर्णनमांज स्पष्टरीते आगळ दर्शावीश. वळी बृहत्संग्रहणिमां तो "आहार सरीरिंदिय" इत्यादि वचनथी शक्तिने आहारादिनी परिणमन क्रियामां 'करणरूप' कही छे ते नीचे स्फुटनोटमां दर्शावेल छे

६ पर्याप्तिओनां नाम अने अर्थ.

१—जीव (पुद्गलसमूहना आलंबनथी उत्पन्न थयेली) जे शक्तिवडे आहार ग्रहण करी खल रस पणे परिणमावे ते शक्ति आहार पर्याप्ति कहेवाय. [ए भावार्थ घणा ग्रंथोमां कह्यो छे. अहिं खल एटले मळ अने मूत्र विगेरे रूपे थयेला आहारना कुचा, अने रस ते सात धातु पणे परिणमवा योग्य जळ सरखो प्रवाही पदार्थ.)—अथवा शरीर—इन्द्रिय—उच्छवास—भाषा—अने मन ए पांच पर्याप्ति प्रायोग्य [पांच प्रकारनी योग्यतावाळां] पुद्गलोने आहरण एटले ग्रहण

---

१ आहार सरीरिंदिय, ऊसास वओ मणोऽभिनिव्वत्ती ॥
होइ जओ दलियाओ, करणं पइ सा उ पज्जत्ती ॥ १ ॥

व्याख्या—आहारशरीरेन्द्रियोच्छवासवचोमनसामभिनिर्वृत्तिरभिनिष्पत्तिर्यतो दलिकाद्दलभूतात् पुद्गलसमूहात्तस्य दलिकस्य स्वस्वविषये परिणमनं प्रति यत् करणं शक्तिरूपं सा पर्याप्तिः

अर्थ—जे दलिकरूप पुद्गलसमूहथी आहार—शरीर—इन्द्रिय—उच्छवास—वचन अने मननी रचना (उत्पत्ति) थाय छे ते दलिकनुं पोतपोताना विषयरूपे जे परिणमवुं, ते परिणमन प्रत्ये (एटले ते परिणमवामां कारण भूत पुद्गलोपचयना आलंबनथी उत्पन्न थयेली आत्मानी) शक्तिरूप जे करण ते पर्याप्ति कहेवाय. एमां जीव कर्ता, पुद्गलोपचयज शक्ति ते करण, अने आहारादि परिणमन ते क्रिया छे.

करवारूप क्रियानी परिसमाप्ति ते आहार पर्याप्ति कहेवाय [ए भावार्थ श्री तत्वार्थभाष्य अने वृत्तिमां छे). वळी ए भाष्य अने वृत्तिमांज एम पण कह्युं छे के आहारने ग्रहण करवामां समर्थ एवा करणनी (एटले पुद्गलसमूहनी] निष्पत्ति ते आहार पर्याप्ति ए रीते आहारपर्याप्तिमां ४ भावार्थ जुदा जुदा छे माटे पर्याप्ति एटले शक्ति अथवा पर्याप्ति एटले क्रियासमाप्ति एम बन्ने अर्थ थाय.

२–जीव (पुद्गलोपचयना आलंबनथी उत्पन्न थएली) जे शक्तिवडे रसरुप थएला आहारने सात धातु पणे परिणमावी शरीर रचे ते शक्ति शरीरपर्याप्ति कहेवाय.(रसरूप थयेल आहारमां लोमाहार अने कवलाहार पण लेवा एम श्री [1]विचारसारमां कह्युं छे. परन्तु त्वचा निष्पत्ति पहेलानो तो ओज आहारज होय छे. अने रस–रुधिर–मांस–मेद्–हाड–मिंजा–अने वीर्य ए सात धातु छे के जेनाथी औदारिकशरीरनी निष्पत्ति थायछे. ए भावार्थ घणा-ग्रंथोमां कह्यो छे. अने श्री तत्वार्थ भाष्यमां तो—(प्रथम समये) सामान्य पणे ग्रहण करेला पुद्गलोमांथी जे पुद्गलो शरीरप्रायोग्य (शरीर रची शकाय तेवां) होय ते पुद्गलोने शरीर स्वरूपे स्थापवा (रचवा) रूप क्रियानी परिसमाप्ति ते शरीरपर्याप्ति.

३—जीव (पुद्गलोपचयना आलंबनथी उत्पन्न थयेली) जे शक्तिवडे धातुरूपे परिणमेला आहारने (एटले बनेली सात धातुओमांथी दरेकनो केटलोएक भाग लइने) इन्द्रियरूपे परिणमावे ते शक्ति इन्द्रियपर्याप्ति कहेवाय—अथवा पांच इन्द्रिय प्रायोग्य पुद्गलो ग्रहण करी अनाभोगवीर्यवडे (जे क्रियामां आत्मानो स्पष्ट ज्ञानोपयोग नथी प्रवर्ततो तेवी क्रियावडे) ते:पुद्गलोने इन्द्रियस्वरूपे

---

१ यया लोमादि आहारमादाय खलरसरूपतया परिणामयति सा आहारपर्याप्तिः (विचारसारमां ३४ मी गाथानीटिकामां.)

बनाववानी (एटले परिणमाववानी) जे शक्ति ते इन्द्रियपर्याप्ति कहेवाय. ए वन्ने अर्थ श्री [*]प्रज्ञापना सूत्र विगेरेमां छे.—अने [१]बृहत्संग्रहणि विगेरेमां तो आत्मा जे शक्तिवडे धातुरूपे परिणमावेला आहारमांथी १-२-३-४-५ इन्द्रियप्रायोग्य पुद्गलो ग्रहण करी १-२-३-४-५ इन्द्रियरूपे परिणमावी स्वस्वविषय (ते ते इन्द्रियने योग्य विषय) जाणवामां समर्थ थाय ते इन्द्रियपर्याप्ति कहेवाय एवो भावार्थ कह्यो छे.—तथा श्री तत्वार्थभाष्य अने वृत्तिमां तो स्पर्शेन्द्रियादि पांच अने छट्ठुं मन ए ६ इन्द्रियोनुं स्वरूप रचवारूप क्रियानी परिसमाप्ति ते इन्द्रियपर्याप्ति एम कह्युं छे. (ए स्वरूप आगळ कहेवाता तत्वार्थोक्त पर्याप्तिना स्वरूपमांथी जोवुं.)

४—जीव (पुद्गलोपचयना आलंबनथी उत्पन्न थएली) जे शक्तिवडे श्वासोच्छ्वासयोग्य वर्गणा ग्रहण करी श्वासोच्छ्वास पणे [२]परिणमावी [३]अवलंबीने विसर्जन करे ते शक्ति श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति कहेवाय. घणा ग्रंथोमां ए भावार्थ छे.—अने श्री तत्वार्थभाष्य अने वृत्तिमां तो श्वासोच्छ्वास क्रियाप्रायोग्य द्रव्यनुं ग्रहण अने विसर्जन करवानी शक्तिने रचवा रूप क्रियानी परिसमाप्ति ते श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति एम कह्युं छे.

* यया धातुरूपपरिणमितमाहारमिन्द्रियरूपतया परिणमयति सा इन्द्रियपर्याप्तिः—तथा चायमर्थोऽन्यत्राऽपि भंग्यन्तरेणोक्त. पंचानामिन्द्रियाणां प्रायोग्यान् पुद्गलान् गृहित्वाऽनाभोगनिवर्त्तितेन वीर्येण तद्भावनयनशक्तिरिन्द्रियपर्याप्ति.

१ यया धातुरूपतया परिणमितादाहारादेकस्य द्वयो त्रयाणां चतुर्णां पंचानां वेन्द्रियाणां प्रायोग्याणि द्रव्याण्युपादायैकद्वित्र्यादीन्द्रियरूपतया परिणमय्य स्वस्वविषयेषु परिज्ञानसमर्थो भवति सेन्द्रियपर्याप्ति

२ परिणमावी एटले श्वासोच्छ्वासादिरूप बनावी.

३ जे वस्तुने एकदम छोडवी होय छे ते वस्तुने छोडवा

५—जीव (पुद्गलोपचयना आलंबनथी उत्पन्न थएली) जे शक्तिवडे भाषायोग्य वर्गणा ग्रहण करी भाषापणे परिणमावी अवलंबीने विसर्जन करे ते शक्ति भाषापर्याप्ति कहेवाय. घणा ग्रंथोमां ए भावार्थ छे, अने तत्वार्थ वृत्तिमां तो—" अहिं पण वर्गणाना अनुक्रम प्रमाणे भाषायोग्य द्रव्य ग्रहण विसर्जन करवा संबंधि शक्तिने रचवारूप क्रियानी समाप्ति ते भाषापर्याप्ति." एम कह्युं छे.

६—जीव (पुद्गलोपचयना आलंबनथी उत्पन्न थएली) जे शक्तिवडे मन योग्य वर्गणा ग्रहण करी मन पणे परिणमावी अवलंबीने विसर्जन करे ते शक्ति मनःपर्याप्ति कहेवाय, ए भावार्थ घणा ग्रंथोमां छे. अने श्री तत्वार्थभाष्य तथा वृत्तिमां तो मनःपर्याप्तिने इन्द्रियपर्याप्तिमां अन्तर्गत गणी छे, अने केटलाएक आचार्योना अभिप्रायथी जूदी गणी ते वखते एवो अर्थ कह्यो छे के—"मनपणाने योग्य एटले मनोवर्गणा प्रायोग्य अर्थात् मनपणे परिणमवामां समर्थ जे द्रव्यो तेने ग्रहण अने विसर्जन करवासंबंधि सामर्थ्यनी रचना रूप क्रियानी परिसमाप्ति ते मनःपर्याप्ति एम केटलाएक आचार्यो मनःपर्याप्ति जूदी कहे छे" इत्यादि.

ए ६ पर्याप्तिओमांथी प्रथमनी आहार शरीर अने इन्द्रिय ए

पहेलां कंइक प्रयत्न करवो पडे छे ते प्रयत्ननुं नाम अवलंबन छे, के जे प्रयत्न करवाथी ते वस्तु एकदम विसर्जन करी शकाय छे. जेम बाणने धनुष्यमांथी फेंकवुं होय छे तो पणछ पर चढावी पाछुं खेंचवुं पडे छे, कुदको (फलंग) मारवी होय तो शरीरने प्रथम संकोचवुं (नीचुं नमाववुं) पडे छे तोज फलंग मारी शकाय छे ए प्रमाणे जेम बाणनो पश्चादाकर्षण (पाछुं खेंचवा) रूप प्रयत्न, अथवा अंगनो संकोचरूप प्रयत्न ते आलंबन के अवलंबन अथवा अवष्टंभ कहेवाय छे, तेम श्वासोच्छवास भाषा अने मनने एकदम विसर्जन करवा माटे जे प्रथम प्रयत्न करवो पडे छे ते आलंबन कहेवाय छे.

३ पर्याप्तिओ सर्व जीवो अवश्य पूर्ण करीनेज मरण पामे माटे गाथामां पण "पज्जत्ति" ए शब्द प्रथमनी ३ पर्याप्तिओ पछी राखेलो छे.

पर्याप्ति संबंधि पुद्गलो

दरेक पर्याप्तिने जे पुद्गलोपचयरूप कही छे ते पुद्गलो कयां ? तेनो यथार्थ निर्णय तो श्री बहुश्रुतगम्य छे, परन्तु अनेक ग्रंथोमां पर्याप्तिओनां स्वरूप वांचवाथी मने जे भावार्थ समजायो छे ते हुं लखुं छुं. तेमां पण विशेष अभिप्राय तत्त्वार्थने अनुसरी कहेलो छे.

प्रथम समये सामान्य स्वरूपे ग्रहण करेलां शरीर, इन्द्रिय, उच्छ्वास, भाषा अने मन ए ५पर्याप्ति प्रायोग्य पांच स्वभाववाळां पुद्गलो ते आहारपर्याप्ति संबंधि जाणवां. वळी ए पांचे योग्यतावाळां पुद्गलो औदारिक देहधारी जीवने औदारिक वर्गणानां, वैक्रियदेहधारीने अने उत्तर वैक्रिय रचनारने वैक्रियवर्गणानां, अने आहारक शरीर रचनारने आहारक वर्गणानां जाणवां अहिं उत्तर शरीर रचती वेळाए ५ण वायुने ४ अने बीजा जीवोने ६ पर्याप्तिओं ते ते शरीर संबंधि जूदी रचवी पडे छे, माटे ए त्रण वर्गणानां पुद्गलो जे प्रथम समये ग्रहण कराय छे ते आहारपर्याप्ति संबंधि संभवे छे.

प्रथमादिसमये सामान्यस्वरूपे ग्रहण करेलां औदारिकादि ३ वर्गणानां पुद्गलोमांथी जेटलां पुद्गलोनुं भवधारणीय शरीर (तैजस कार्मणसिवायनां ३ शरीर) बने छे तेटलां देहपणे परिणमेलां पुद्गलो शरीरपर्याप्ति संबंधि जाणवां. ए पुद्गलो पण पूर्वोक्त रीते ३ वर्गणानां जाणवां.

अभ्यन्तर[1] निर्वृत्ति इन्द्रियरूप पुद्गलो ते इन्द्रियपर्याप्ति संबं-

१ अहिं श्री आचारांगजीमां कहेली शुद्धात्मप्रदेशरूप अभ्यन्तरनिर्वृत्ति इन्द्रिय नहिं, पण अनेक शास्त्रमां कहेली शुद्ध पुद्गलप्रदेशरूप अभ्यन्तरनिर्वृत्ति इन्द्रिय जाणवी.

धि जाणवां. कारण के शब्दादिविषय ग्रहण करवानी शक्ति ए पुद्गलोना आलंबनवडे ज उत्पन्न थाय छे. बाह्यनिर्वृत्ति इन्द्रियनां पुद्गलो तो शरीरना उपांग रूप होवाथी इन्द्रियपर्याप्ति संबंधि न गणाय, परन्तु शरीर संबंधिज गणाय. आ इन्द्रियपर्याप्ति संबंधि पुद्गलो पण त्रण भवधारणीय देहवर्गणानां जाणवां.

प्रथमादिसमये सामान्यस्वरूपे ग्रहण करेलां पुद्गलोमांथी तथाविध परिणाम पामेलो जे पुद्गलसमूह आत्माने उच्छ्वासक्रियामां (ग्रहण परिणमन अने आलंबनरूप त्रणे क्रियामां) व्यापृत (व्यापारित) करवानुं सामर्थ्य आपवावाळो छे ते पुद्गलसमूह उच्छ्वास पर्याप्तिसंबंधि संभवे छे. परन्तु श्वासोच्छ्वास वर्गणानां पुद्गलो ते उच्छ्वासपर्याप्ति संबंधि नहिं. कारणके उच्छ्वासपर्याप्ति संबंधि पुद्गलो तो त्रण भवधारणीय देहवर्गणानां छे.

प्रथमादि समये सामान्यस्वरूपे ग्रहण करेलां पुद्गलोमांथी तथाविध परिणाम पामेलो जे पुद्गल समूह आत्माने वचनक्रियामां (ग्रहणादि क्रियामां) व्यापृत थवा समर्थ करे ते पुद्गलसमूह वचनपर्याप्तिसंबंधि छे. परन्तु भाषावर्गणानां पुद्गलो ते भाषापर्याप्ति संबंधि नहिं, अर्थात् वचनपर्याप्ति संबंधि पुद्गलो पण पूर्वोक्त ३ वर्गणानां छे.

प्रथमादि समये सामान्य स्वरूपे ग्रहण करेलां पुद्गलोमांथी तथाविध परिणाम पामेलो जे पुद्गलसमूह आत्माने मनःक्रियामां व्यापृत थवा समर्थ करे छे ते पुद्गलसमूह मनःपर्याप्ति संबंधि छे, परन्तु मनोवर्गणानां पुद्गलो मनःपर्याप्ति संबंधि न गणाय, कारणके मनःपर्याप्ति संबंधि पुद्गलो तो पूर्वोक्त ३ वर्गणानां छे.

शंका—पर्याप्ति संबंधि पुद्गलो शरीरमां कये स्थाने रहे छे?

३ पर्याप्तिओ सर्वे जीवो अवश्य पूर्ण करीनेज मरण पामे माटे गाथामां पण "पज्जत्ति" ए शब्द प्रथमनी ३ पर्याप्तिओ पछी राखेलो छे.

पर्याप्ति संबंधि पुद्गलो

दरेक पर्याप्तिने जे पुद्गलोपचयरूप कही छे ते पुद्गलो कयां ? तेनो यथार्थ निर्णय तो श्री बहुश्रुतगम्य छे, परन्तु अनेक ग्रंथोमां पर्याप्तिओनां स्वरूप वांचवाथी मने जे भावार्थ समजायो छे ते हुं लखुं छुं. तेमां पण विशेष अभिप्राय तत्त्वार्थने अनुसरी कहेलो छे.

प्रथम समये सामान्य स्वरूपे ग्रहण करेलां शरीर, इन्द्रिय, उच्छ्वास, भाषा अने मन ए ५पर्याप्ति प्रायोग्य पांच स्वभाववाळां पुद्गलो ते आहारपर्याप्ति संबंधि जाणवां. वळी ए पांचे योग्यतावाळां पुद्गलो औदारिक देहधारी जीवने औदारिक वर्गणानां, वैक्रियदेहधारीने अने उत्तर वैक्रिय रचनारने वैक्रियवर्गणानां, अने आहारक शरीर रचनारने आहारक वर्गणानां जाणवां अहिं उत्तर शरीर रचती वेळाए पण वायुने ४ अने बीजा जीवोने ६ पर्याप्तिओ ते ते शरीर संबंधि जूदी रचवी पडे छे, माटे ए त्रण वर्गणानां पुद्गलो जे प्रथम समये ग्रहण कराय छे ते आहारपर्याप्ति संबंधि संभवे छे.

प्रथमादिसमये सामान्यस्वरूपे ग्रहण करेलां औदारिकादि ३ वर्गणानां पुद्गलोमांथी जेटलां पुद्गलोनुं भवधारणीय शरीर (तैजस कार्मणसिवायनां ३ शरीर) बने छे तेटलां देहपणे परिणमेलां पुद्गलो शरीरपर्याप्ति संबंधि जाणवां. ए पुद्गलो पण पूर्वोक्त रीते ३ वर्गणानां जाणवां.

अभ्यन्तर[1] निर्वृत्ति इन्द्रियरूप पुद्गलो ते इन्द्रियपर्याप्ति संबं-

१ अहिं श्री आचारांगजीमां कहेली शुद्धात्मप्रदेशरूप अभ्यन्तरनिर्वृत्ति इन्द्रिय नहिं, पण अनेक शास्त्रमां कहेली शुद्ध पुद्गलप्रदेशरूप अभ्यन्तरनिर्वृत्ति इन्द्रिय जाणवी.

धि जाणवां. कारण के शब्दादिविषय ग्रहण करवानी शक्ति ए पुद्गलोना आलंबनवडे ज उत्पन्न थाय छे. बाह्यनिर्वृत्ति इन्द्रियनां पुद्गलो तो शरीरना उपांग रूप होवाथी इन्द्रियपर्याप्ति संबंधि न गणाय, परन्तु शरीर संबंधिज गणाय. आ इन्द्रियपर्याप्ति संबंधि पुद्गलो पण त्रण भवधारणीय देहवर्गणानां जाणवां.

प्रथमादिसमये सामान्यस्वरूपे ग्रहण करेलां पुद्गलोमांथी तथाविध परिणाम पामेलो जे पुद्गलसमूह आत्माने उच्छ्वासक्रियामां (ग्रहण परिणमन अने आलंबनरूप त्रणे क्रियामां) व्यापृत (व्यापारित) करवानुं सामर्थ्य आपवावाळो छे ते पुद्गलसमूह उच्छ्वास पर्याप्तिसंबंधि संभवे छे. परन्तु श्वासोच्छ्वास वर्गणानां पुद्गलो ते उच्छ्वासपर्याप्ति संबंधि नहिं. कारणके उच्छ्वासपर्याप्ति संबंधि पुद्गलो तो त्रण भवधारणीय देहवर्गणानां छे.

प्रथमादि समये सामान्यस्वरूपे ग्रहण करेलां पुद्गलोमांथी तथाविध परिणाम पामेलो जे पुद्गल समूह आत्माने वचनक्रियामां (ग्रहणादि क्रियामां) व्यापृत थवा समर्थ करे ते पुद्गलसमूह वचनपर्याप्तिसंबंधि छे. परन्तु भाषावर्गणानां पुद्गलो ते भाषापर्याप्ति संबंधि नहिं, अर्थात् वचनपर्याप्ति संबंधि पुद्गलो पण पूर्वोक्त ३ वर्गणानां छे.

प्रथमादि समये सामान्य स्वरूपे ग्रहण करेलां पुद्गलोमांथी तथाविध परिणाम पामेलो जे पुद्गलसमूह आत्माने मनःक्रियामां व्यापृत थवा समर्थ करे छे ते पुद्गलसमूह मनःपर्याप्ति संबंधि छे, परन्तु मनोवर्गणानां पुद्गलो मनःपर्याप्ति संबंधि न गणाय, कारणके मनःपर्याप्ति संबंधि पुद्गलो तो पूर्वोक्त ३ वर्गणानां छे.

शंका—पर्याप्ति संबंधि पुद्गलो शरीरमां कये स्थाने रहे छे?

उत्तर—आहार शरीर अने मनःपर्याप्ति संबंधि पुद्गलो शरीरमां सर्वत्र व्याप्त संभवे छे. श्री तत्त्वार्थसूत्रना बीजा अध्यायना ११मा सूत्रनी [1]वृत्तिमां द्रव्यमनना अर्थमां मनःपर्याप्तिनां पुद्गलो सर्व आत्मप्रदेशवर्ती कह्यां छे, उच्छवास अने भाषापर्याप्तिनां पुद्गलोनुं स्थान स्पष्ट कहेवुं अशक्य छे. अने इन्द्रिय पर्याप्तिनुं स्थान इन्द्रिय स्थावनत् अमुक निय[2]तस्थानवर्ती छे.

पर्याप्तिओनी समाप्तिनो अनुक्रम

पूर्वोक्त ६ पर्याप्तिओमां जे जीवने जेटली पर्याप्तिओ होय छे ते जीव तेटली पर्याप्तिओने समकाळे प्रथमसमयेज प्रारंभे छे, पण संपूर्ण अनुक्रमे करे छे. कारणके आहारादि पर्याप्तिओनां पुद्गलो अनुक्रमे सूक्ष्म सूक्ष्मतर परिणामवाळां रचवां पडे छे. जेम एक शेर रूइमांथी जाडुं सूत्र व्हेलुं कंताय, अने झीणुं सूत्र घणे काळे कंताय तेम प-

१ ते वृत्तिनो पाठ आ प्रमाणे—तत्रमनोऽभिनिर्वृत्त्यै यद्दलिकद्रव्यमुपात्तमात्मना सा मनःपर्याप्तिर्नामकरणविशेषण सर्वात्मप्रदेशवर्तिना याननन्तप्रदेशान्मनोवर्गणायोग्यान्स्कंधान् चित्तार्थमादत्ते ते करणविशेषपरिगृहिताः स्कन्धा द्रव्यमनोऽभिधीयन्ते.

अर्थः—त्यां मन रचवा माटे आत्माए जे दलिकद्रव्य ग्रहण कर्युं छे ते मनःपर्याप्ति एटले करण विशेष छे, ते सर्व आत्मप्रदेशमां व्याप्त थयेला करणविशेष वडे जे मनोवर्गणा योग्य अनंतप्रदेशी स्कंधोने चित्तने माटे ग्रहण करे छे, ते करणविशेष वडे ग्रहण करेला पुद्गलस्कंधो द्रव्यमन कहेवाय छे. (एमां मनःपर्याप्ति संबंधी पुद्गलोने सर्वात्मप्रदेशवर्ती कह्यां छे.)

२ कारणके इन्द्रियपर्याप्तिमां स्पर्शेन्द्रियनां पुद्गलो चांदीना पुतळाने चढावेला सोनाना गिलिटनी माफक शरीरनी उपर अने (मध्यभाग विना) अंदरना भागमां प्रतररूपे अविच्छिन्न व्याप्त थयेलां छे, अने जीव्हेन्द्रियादिकनां पुद्गलो ते ते बाह्याकारने स्थानेज गोठवायलां छे माटे शरीरमां सर्वव्याप्त नहि.

र्याप्तिओमां पण जाणवुं (ए भावार्थ श्री तत्वार्थभाष्यनो छे). हवे ते समाप्तिनो अनुक्रम आ प्रमाणे—औदारिकशरीर संबंधि पर्याप्तिओमां प्रथम आहार पर्याप्ति पहेले समयेज पूर्ण थाय छे, त्यार बाद अन्तर्मुहूर्त्ते शरीरपर्याप्ति, त्यारबाद अन्तर्मुहूर्त्ते इन्द्रियपर्याप्ति पूर्ण थायछे, एप्रमाणे पांचे पर्याप्तिओ अन्तर्मुहूर्त्त अन्तर्मुहूर्त्तने अन्तरे संपूर्ण थाय छे. पुनः आहारक अने वैक्रियशरीर संबंधि पर्याप्तिओमां तो प्रथम आहारपर्याप्ति पहेले समयेज पूर्ण थाय छे, बीजी शरीरपर्याप्ति अन्तर्मुहूर्त्त बाद पूर्ण थाय छे, अने इन्द्रियादि चारपर्याप्तिओ एकेक समयने अन्तरे पूर्ण थायछे. (पुनः श्री भगवतीजी विगेरे मूळ सूत्रमां तो देवोने भाषा अने मनपर्याप्ति समकाळे कही छे जेथी त्यां देवोने [1]पांच पर्याप्तिवाळा कह्या छे. श्री जीवाभिगमादि वृत्तिमां ए बे पर्याप्तिमां एकत्वनी विवक्षा अल्प [2]अन्तरे पूर्ण थवानी अपेक्षाए कही छे.

शंका—वैक्रिय शरीरी अने आहारक शरीरीने तथा एकेन्द्रियोने

१ तएणं से ईसाणे देविंदे देवराया पंचविहाए पज्जत्तीए पज्जत्तिभावं गच्छइ, तंजहा—आहारपज्जत्तीए—शरीरपज्जत्तीए—इंदिय पज्जत्तीए—आणपाण पज्जत्तीए—भासामण पज्जत्तीए—ते काळने विषे ते इशान देवेन्द्र देवराजा पांच प्रकारनी पर्याप्तिवडे पर्याप्तिभावने पामे ते आ प्रमाणे—आहार पर्याप्तिवडे, शरीर पर्याप्तिवडे, इन्द्रियपर्याप्तिवडे, श्वासोच्छ्वास पर्याप्तिवडे, अने भाषामन पर्याप्तिवडे (प्राचीन कर्मग्रंथ टीकामांथी).

२ नवरमिह भाषामन पर्याप्त्योः समाप्तिकालान्तरस्य शेषपर्याप्तिकालान्तरापेक्षया स्तोकत्वादेकत्वेन विवक्षणमिति.

तत्त्वार्थ सूत्रमां इन्द्रिय पर्याप्तिमां मन पर्याप्तिनो अंतर्भाव करीने पांच पर्याप्तिओ कहेली छे ते वात चालु वर्णनमांज कही छे अने कहेवाशे. ए प्रमाणे बन्ने शास्त्रोमां बे रीते पांच पर्याप्तिओ कहेली छे.

आहारपर्याप्ति तथा शरीरपर्याप्ति कही तो तेओ ग्रहण करेला आहार ने शुं खल रस पणे परिणमावे छे? अने ते रसीभूत आहारमांथी सात धातुओ पण बनावे छे ? कारणके तेओने खल रस के सात धातुमय शरीर होतु नथी एम जैन शास्त्रमां कहेलुं छे तो ते त्रणे जीवोने आहार अने शरीरपर्याप्ति केवी रीते होय ?

उत्तर—ए त्रणेने खलरस परिणमन अथवा सात धातुमय शरीर जोके छे नहिं तो पण आहारनुं ग्रहण अने ते आहारने शरीर पणे परिणमाववुं होय छे, ते कारणथी ए त्रणनी आहारपर्याप्ति आहारने ग्रहण करवानी क्रिया समाप्तिथीज होय छे, जे वर्णन आगळ शंका समाधान पूर्वक कहेवाशे. वळी ते आहारद्वारा प्राप्त करेल पुद्गलोने वैक्रिय—आहारक—अने (एकेन्द्रिय संबंधि) औदारिक शरीर पणे परिणमावे ते शरीर पर्याप्ति जाणवी. पुनः आहारने ग्रहण करवाथी पण आहारपर्याप्ति नवतत्त्वभाष्यमां कही छे ते आ प्रमाणे "-आहाराइग्गहणे जा सत्ती तं भणंति पज्जत्ती" अर्थः-आहारादि ग्रहण करवामां (जीवनी) जे शक्ति ते शक्तिने पर्याप्ति कहे छे " पुनः शरीरपर्याप्तिमां सात धातुपणे परिणमाववानी शक्तिरूप अर्थ तो औदारिक शरीरनी मुख्यताएज सर्व शास्त्रकारोए कहेलो छे, ने ते अनुसारे में पण अत्रे कहेल छे, तो पण वस्तुतः तो जे जीवनुं जेवुं शरीर होय तेवुं शरीर रचवानी शक्तिने अथवा रचवानी क्रिया-समाप्तिनेज शरीरपर्याप्ति गणी शकाय छे.

शंका—६ पर्याप्तिओनो आरंभ समकाळे थाय अने समाप्ति अनुक्रमे थाय तेनुं शुं कारण ?

उत्तर—जेम एक शेर रूमांथी जाडुं सूत्र कांतवुं होयतो शेर रु व्हेलुं पूर्ण थाय, अने झीणुं सूत्र कांतवुं होय तो घणे काळे कंताइ छे तेम आहारादि पर्याप्तिओ अनुक्रमे सूक्ष्म सूक्ष्मतर परिणामवाळी

होवाथी समाप्तिमां अनुक्रमे अधिक अधिक काळ लागे छे. ए भावार्थ श्रीतत्वार्थसूत्रमांथी आगळ कहेवाशे.

शंका—प्रथमनी त्रण पर्याप्तिओ सर्व जीवो अवश्य पूर्ण करे अने शेषपर्याप्तिओ करे अथवा न करे तेनुं शुं कारण ?

उत्तर—जीव आ भवमां परभवनुं आयुष्य बांध्या पछी अन्तर्मुहूर्त आ भवमां रही त्यारबाद मरण पामीने परभवमां उत्पन्न थइ शके, अने आयुष्यनो बंध इन्द्रियपर्याप्ति पूर्ण कर्या विना न थाय एवो नियम छे, माटे प्रथमनी त्रण पर्याप्तिओ पूर्णकरीने चोथी पर्याप्तिना चालु काळमां (असमाप्त काळमां) अंतर्मुहूर्तसुधी आयुष्यनो बंध करी (बांधी) तदनंतर पुनः अन्तर्मुहूर्त्त जीवित भोगवी मरण पामे त्यांसुधी पण ए जीवनी चोथी पर्याप्ति पूर्ण थइ शकती नथी. माटे सर्व अपर्याप्ता जीवो पण प्रथमनी त्रण पर्याप्ति पूर्ण करे ज एवो नियम छे, अने शेषपर्याप्तिओ माटे एवो नियम नथी.

कया जीवने केटली पर्याप्तिओ होय ?

पूर्वे कहेली ६ पर्याप्तिओमांथी सर्व एकेन्द्रिय जीवोने प्रथमनी ४ पर्याप्ति छे द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, अने चतुरिन्द्रियजीवोने प्रथमनी ५ पर्याप्ति, तेमज असंज्ञि (सम्मूर्च्छिम) पंचेन्द्रियने प्रथमनी ५ पर्याप्ति, अने संज्ञिपंचेन्द्रियने ६ पर्याप्ति होय छे. ए प्रमाणे सामान्यथी गाथाने अनुसारे जीवोमां पर्याप्तिओ कही, अने विशेषथी आ प्रमाणे—

सर्व[1] लब्धिअपर्याप्त जीवोने ३ पर्याप्तिओ प्रथमनी होय छे. जेथी सर्व अपर्याप्त सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंच, समूर्च्छिम मनु-

१ लब्धि पर्याप्त तथा अपर्याप्त वगेरेनुं स्वरूप आगळ कहेवाय छे.

प्त' अने अपर्याप्त एकेन्द्रिय तथा विकलेन्द्रिय ए सर्वने आहार-शरीर अने इन्द्रिय ए ३ पर्याप्तिओ होय छे. तेमज लब्धिअपर्याप्त गर्भज (संज्ञि) तिर्यंच पंचेन्द्रिय अने गर्भज (संज्ञि) मनुष्यने पण एज ३ पर्याप्तिओ होय छे. तथा लब्धिपर्याप्तएकेन्द्रियोने ४ पर्याप्ति. लब्धिपर्याप्त विकलेन्द्रिय (द्वीन्द्रिय—त्रीन्द्रिय—अने चतुरिन्द्रिय) ने तथा लब्धिपर्याप्ता असंज्ञि (सम्मूर्छिम तिर्यंच) पंचेन्द्रियने ५ पर्याप्तिओ प्रथमनी होय छे. (अहिं सम्मूर्छिम मनुष्यो लब्धिपर्याप्त होय छे नहि तेथी तेओनुं ग्रहण कर्युं नथी,) अने लब्धिपर्याप्त मनुष्य- ल० प० ग० तिर्यंच सर्व देव अने सर्व नारक जीवोने ६ ए पर्याप्तिओ होय छे. कारणके लब्धिपर्याप्त तिर्यंच अने मनुष्य अपूर्ण पर्याप्तिए मरण पामे नहिं, तेमज देव अने नारक लब्धिअपर्याप्त होता नथी पण लब्धि पर्याप्ता ज होय छे माटे तेओ पण अपूर्ण पर्याप्तिए मरण पामता नथी.

पर्याप्तिना संबंधमां लब्धि अने करण भेदनी विवक्षा

चालु प्रकरणमां तेमज बीजा पण अनेक ग्रंथोमां लब्धि अपर्याप्त

* लब्धि अपर्याप्त सम्मूर्छिम मनुष्योने उच्छ्वासपर्याप्ति संभवे नहि. कारणके सर्वे लब्धि अपर्याप्ताने ३ पर्याप्तिओज समाप्त थाय पछी मरणपामे एवो नियम छे तो पण जीवविचारनी अवचूरीमां अने श्री द्रव्यलोकप्रकाशमां सम्मू० मनुष्योने ७-८ प्राण अने बृहत्संग्रहणि वृत्तिमां ९ प्राण कह्या होवाथी उच्छ्वास अने भाषा प्राण कहेलो गणाय. अहीं उच्छ्वास प्राण कह्यो परन्तु अपर्याप्तनामकर्म अने उच्छ्वासनामकर्म ए बेनो समकाळे उदय कोइपण शास्त्रमां अंगीकृत कर्यो नथी तो लब्धि अपर्याप्त सम्मू० मनुष्यने उच्छ्वास प्राण अने वचनप्राण उच्छ्वास अने वचन-पर्याप्ति पूर्ण कर्या विना केवी रीते होय ? ते बहु विचारवा योग्य छे. वळी ९ प्राणो कहेवाथी तो ते पर्याप्तो थाय छे.

अने लब्धि पर्याप्त, तथा करण अपर्याप्त अने करणपर्याप्त जीवोनो संबंध घणी वार आवनो होवाथी अत्रे पर्याप्तिना प्रसंगमां ते चारे जीवोनुं किंचित् स्वरुप अर्थ मात्रथी कहेवाय छे—

जे जीव स्वयोग्य पर्याप्तिओ पूर्ण कर्या विनाज मरण पामे ते लब्धिअपर्याप्त कहेवाय. जेमके एकेन्द्रिय जीवने स्वयोग्य पर्याप्तिओ ४ होय छे, तो ते चार पर्याप्तिओ पूर्ण न करे अने त्रण पूर्ण करीने ज (चालती चोथी पर्याप्तिमां) मरण पामी जाय तेवा एकेन्द्रियजीवो लब्धि अपर्याप्त एकेन्द्रिय कहेवाय छे, अहिं लब्धि ते अपर्याप्तनामकर्मना उदय संबंधि जाणवी. पुनः ए प्रमाणे विकलेन्द्रिय विगेरे स्वयोग्य पर्याप्तिओ पूर्ण कर्याविना मरण पामे तो तेओ लब्धि अपर्याप्त विकलेन्द्रियादि कहेवाय. सर्व लब्धिअपर्याप्त जीवो त्रणज पर्याप्तिओ पूर्ण करे छे ते आगळ कहेवाशे.

तथा जे जीव स्वयोग्य पर्याप्तिओ पूर्ण करीनेज मरण पामे एवी योग्यतावाळो जीव लब्धिपर्याप्त कहेवाय. (अहिं लब्धि ते पर्याप्तनामकर्मना उदय संबंधि जाणवी.) जेमके जे एकेन्द्रिय जीव स्वयोग्य ४ पर्याप्तिओ, अने जे विकलेन्द्रिय अने असंज्ञिपंचेन्द्रिय जीव स्वयोग्य ५ पर्याप्तिओ पूर्ण करीनेज मरण पामे तो तेवा एकेन्द्रिय—विकलेन्द्रिय—अने असंज्ञिपंचेन्द्रिय जीवो लब्धिपर्याप्त कहेवाय.

तथा जे जीवे स्वयोग्य पर्याप्तिओ पूर्ण करी नथी परन्तु पूर्ण करशे ते जीव करणअपर्याप्त कहेवाय. जेमके स्वयोग्य चारे पर्याप्तिओ हवे पछी पूर्ण करशे एवा जीवे जो एक वा बे पर्याप्तिओ वा त्रण पर्याप्तिओ ज पूर्ण करी होय अने शेष अधूरी होय तो ते करण अपर्याप्त एकेन्द्रिय कहेवाय छे, तेमज स्वयोग्य छए पर्याप्ति पूर्ण करशे एवा मनुष्ये एक बे त्रण, चार के पांच पर्याप्तिओज पूर्ण करी होय तो पण ते करणअपर्याप्त मनुष्य कहेवाय. करणअपर्याप्त प-

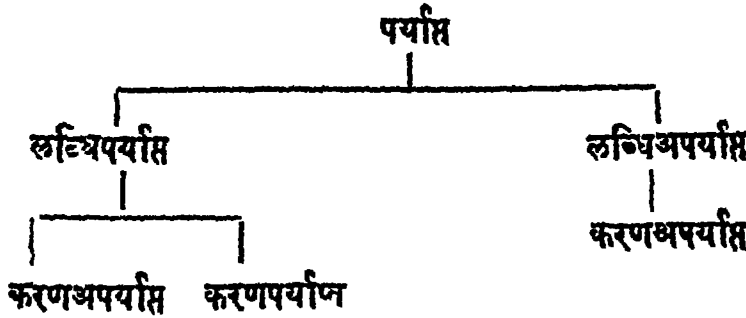
णानो आ अर्थ मात्र लब्धिपर्याप्त जीवने ज लागु पडतो होवाथी लब्धि अपर्याप्तजीवने पण करणअपर्याप्तपणुं संभवे तेवो अर्थ आ प्रमाणे छे.—स्वयोग्य पर्याप्तिओमांथी जे जीवे स्वयोग्य पर्याप्तिओ ज्यांसुधी पूर्ण नथी करी त्यांसुधी ते जीव करणअपर्याप्त कहेवाय. जेम लब्धिअपर्याप्त एकेन्द्रिय जीव श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति वडे करणअपर्याप्त (अने लब्धिअपर्याप्त पण) छे, पुनः एज जावे वाटे व्हेतां एकपण पर्याप्ति प्रारंभी नथी तो ते चारे पर्याप्तिवडे करणअपर्याप्त कहेवाय. ए प्रमाणे ज्यांसुधी स्वयोग्य पर्याप्तिओमांनी एक पण पर्याप्ति करवी अधूरी होय तो तें अधूरी रहेली पर्याप्तिनी अपेक्षाए करणअपर्याप्त ज कहेवाय. ए प्रमाणे ज लब्धिपर्याप्त मनुष्य भवांतरथी आवतां रस्तामां सर्व (छए) पर्याप्तिओवडे करण अपर्याप्तो छे, त्यारवाद आहार पर्याप्ति पूर्ण थतां शेष पांच पर्याप्तिवडे करणअपर्याप्त, शरीर पर्याप्ति पूर्ण थतां शेष चार पर्याप्तिवडे करणअपर्याप्त, इत्यादि रीते यावत् पांच पर्याप्तिओ पूर्ण थया वाद मनःपर्याप्तिनी समाप्तिना उपान्त्य समय सुधी पण मनःपर्याप्तिवडे करण[1]अपर्याप्त कहेवाय.

तथा स्वयोग्य पर्याप्तिओ जे जीवे पूर्ण करी लीधी ते जीव (पर्याप्तिओ पूर्ण कर्या वाद) करणपर्याप्त कहेवाय.

१-२ आ संबंधमां एवी पण प्रसिद्धी छे के करण एटले "इन्द्रिय सुधीनी प्रथमनी ३ पर्याप्तिओ" समाप्त थतां करणपर्याप्त अने समाप्त न थाय त्यां सुधी करणअपर्याप्त कहेवाय. परन्तु ए अर्थ सम्यक् प्रकारे संभवतो नथी, कारणके करण एटले "शरीर इन्द्रिय विगेरे (स्वयोग्य पर्याप्तिओ)" एवो अर्थ सम्यक् संभवे छे श्री द्रव्यलोकप्रकाशमां कह्युं छे के–

करणानि शरीराक्षा-दीनि निर्व्वर्तितानि यै ।
ते स्युः करणपर्याप्ताः, करणानां समर्थनात् ॥

पर्याप्त भेदाः



निर्वर्तितानि नाद्याऽपि, प्राणिभिः करणानि यैः ।
देहाक्षादीनि करणाऽपर्याप्तास्ते प्रकीर्तिताः ॥

ए बन्ने गाथाओमां " करण एटले शरीर अने इन्द्रियो विगेरे " एम कह्युं छे. एमां " विगेरे " शब्दथी उच्छ्वासादि स्वयोग्य पर्याप्तिओज ग्रहण करवी. श्री विचारपंचाशिकामां कह्युं छे के—

जइवि पूरेइ परं. पूरिस्सइ स इह करणअपज्जत्तो ।
सो पुण करणपज्जत्तो, जेणं ता पूरिया हुंति ॥ ३९ ॥

ए गाथानो टीकार्थः—" अहिं करण एटले शरीर अने इन्द्रियादिकवडे अपर्याप्त ते करण अपर्याप्त तेज जीव कहेवाय के जे जीवे पर्याप्तिओ हजी सुधी समाप्त करी नथी अर्थात् बनावी नथी परन्तु केवळ आगळ समाप्त करशे एटले अवश्य स्वयोग्य पर्याप्तिओ बनावशेज. वळी करणपर्याप्त ते कहेवाय के जेणे ते पोतानी (स्वयोग्य) पर्याप्तिओ पूर्ण करेली छे एटले बनावेली छे. "

शंका—द्रव्य लोकप्रकाश विगेरेमां " लब्धिअपर्याप्त जीवो पण अवश्य करणपर्याप्ता थइनेज मरण पामे " एवो भावार्थ कह्यो छे तो ते केम बनी शके ?

उत्तर.—ते स्थाने करणपर्याप्त एटले इन्द्रियपर्याप्त अर्थ थाय छे, पण लब्धि विगेरे चार भेदमांनो करणपर्याप्त भेद न गणवो.

वळी करण अपर्याप्तेन सास्वादनसम्यक्त्व विगेरे होवानुं

एक जीवमां समकाळे लब्ध्यादि पर्याप्तभेद.

जे जीव लब्धिअपर्याप्त छे ते जीव करण[1]अपर्याप्त पण छे.

पुनः जे जीव लब्धिपर्याप्त छे ते जीव करणअपर्याप्त अने करणपर्याप्त पण छे. कारणके लब्धिपर्याप्त जीव ज्यां सुधी स्वयोग्यपर्याप्तिओ पूर्ण नथी करी त्यां सुधी करणअपर्याप्त कहेवाय, अने स्वयोग्य पर्याप्तिओ पूर्ण कर्या बाद करणपर्याप्त कहेवाय. अने जे लब्धिपर्याप्त होय ते जीव लब्धिअपर्याप्त न होय, अने लब्धिअपर्याप्त जीव लब्धिपर्याप्त न होय.

तथा जे जीव करणपर्याप्त छे ते जीव लब्धिपर्याप्त ज छे, परन्तु लब्धिअपर्याप्त के करणअपर्याप्त नथी. कारणके लब्धिपर्याप्तपणा विना करणपर्याप्तपणुं संभवेज नहिं, अने करणअपर्याप्तपणुं अने लब्धिअपर्याप्तपणुं तो ए जीवने प्रत्यक्ष विरुद्धज छे.

तथा जे जीव करणअपर्याप्त छे ते जीव लब्धिअपर्याप्त अने लब्धिपर्याप्त पण होय. कारणके लब्धिअपर्याप्त जीव तो प्रथम कह्या प्रमाणे करणअपर्याप्तज होय छे, अने लब्धिपर्याप्तजीवने पण ज्यां सुधी स्वयोग्य पर्याप्तिओ पूर्ण नथी करी त्यां सुधी ते जीव करणअपर्याप्तज

त्यां कह्युं होय त्यां लब्धिपर्याप्तान्तर्गत करणअपर्याप्तपणुं अंगीकार करवुं, पण लब्धिअपर्याप्त जीव संबंधि करणअपर्याप्तपणुं नहिं.

[1] चालु ग्रन्थाधिकारमां स्वयोग्य पर्याप्तिवडे अपर्याप्तने करण अपर्याप्त कहेलो होवाथी लब्धिअपर्याप्तने करणअपर्याप्त कह्यो छे, परन्तु ए जीव स्वयोग्य पर्याप्तिओ पूर्ण करशे ए अपेक्षाए करणअपर्याप्तपणुं न जाणवुं. अथवा लब्धिअपर्याप्ता जीवो अंते निश्चयथी अपर्याप्तरूप एकज प्रकारना होवाथी तद्गत इतर भेदना अभावनी अपेक्षाए करणअपर्याप्तपणानी विवक्षा शास्त्रमां करी नथी ते पण योग्य छे.

छे, अने करणपर्याप्तपणुं तो ए जीवने प्रत्यक्ष विरोधीज छे. ए प्रमाणे चारेमां परस्पर भेदसंक्रान्ति नीचे प्रमाणे—

लब्धिअपर्याप्तमां	१ लब्धिअप०	२ करणअप०(अपेक्षाए क०प०)	
लब्धिपर्याप्तमां	१ लब्धिपर्या०	२ करण अप०,	३ करणपर्या०
करणअपर्याप्तमां	१ करणअप०	२ लब्धिअप०	३ लब्धिपर्याप्त
करणपर्याप्तमां	१ करणपर्या०	२ लब्धिपर्या०	

लब्धिकरण पर्याप्तापर्याप्तपणानो काळ.

जीवने लब्धिअपर्याप्तपणुं अन्तर्मुहूर्त सुधी (एक भव आश्रयी) होय छे, कारणके लब्धिअपर्याप्त जीवनुं आयुष्य अन्तर्मुहूर्त्तथी अधिक होय नहि.—तथा लब्धिपर्याप्तपणुं भवना प्रथम समयथी भवना अन्त्य समय सुधी रहे, कारणके लब्धिपर्याप्त जीवनुं लब्धिपर्याप्तपणुं भवना प्रथम समयथी गणाय ते पण ज्यां सुधी जीवे त्यां सुधी ते जीव लब्धिपर्याप्तज कहेवाय. शास्त्रोमां ज्यां ज्यां पर्याप्त जीव कह्या होय त्यां त्यां सर्वत्र लब्धिपर्याप्त जीवोज जाणवा. ज्यां ज्यां अपर्याप्त जीवो कह्या होय त्यां त्यां प्रायः लब्धि जीवो जाणवा (कदाच करणअपर्याप्त जीवो पण देव–नारकना १९८ भेद तथा १४जीव भेद विगेरेनी पेठे गणाय छे). तथा करणअपर्याप्त पणुं जीवने एक अन्तर्मुहूर्त्त सुधीज होय छे, कारणके अन्तर्मुहूर्त्त व्यतीत थतां स्वयोग्य सर्व पर्याप्तिओ पूर्ण थाय छे.—तथा करण पर्याप्तपणानो काळ अन्तर्मुहूर्त्त न्यून स्वआयुष्यप्रमाण जाणवो. कारणके जीव विवक्षित भवमां गया पछी अन्तर्मुहूर्त्तबाद पर्याप्तिओ पूर्ण करवाथी करणपर्याप्त थाय छे ने ते पछी आखा भव सुधी करणपर्याप्त कहेवाय छे.

पर्याप्तापर्याप्तनुं काळ प्रमाण.

लब्धि अपर्याप्त	भव प्रथम समयथी	अन्तर्मुहूर्त्त पर्यन्त
लब्धि पर्याप्त	,,	आयुष्यपर्यन्त
करण-अपर्याप्त	,,	अन्तर्मुहूर्त्त पर्यन्त
करण पर्याप्त	अन्तर्मुहूर्त्तन्यून	स्वआयुष्यपर्यन्त

पुनः कायस्थितिकाळनी विवक्षा करीए तो लब्धिअपर्याप्तपणानो जघन्य अने उत्कृष्ट कायस्थिति काळ अन्तर्मुहूर्त्त छे, (एटला काळ सुधी जीव लब्धिअपर्याप्तपणे केटलाक भव करे), अने लब्धिपर्याप्तपणानो काळ जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त, अने उत्कृष्ट सागरोपमशतपृथक्त्व (घणा सेंकडो सागरोपम) छे. ए प्रमाणे श्री प्रज्ञापना सूत्रमां कायस्थितिपदमां कह्युं छे. अने शेष बेनो कायस्थिति काळ तो पूर्वोक्त सामान्य काळवत् जाणवो.

शंकाः—कोइ जीव पर्याप्तिओ पूर्ण कर्या विना मरण पामे अने कोइ जीव पर्याप्तिओ पूर्ण करीनेज मरण पामे तेनुं कारण शुं ?

उत्तरः—जे जीवे प्रथमना (पूर्व) भवमां पर्याप्तनाम कर्म उपार्जन करेलुं होय (बांधेलुं होय,) ते जीव आ भवमां आवी पर्याप्तिओ पूर्ण करीनेज मरण पामे, अने जे जीवे अपर्याप्त नाम कर्म बांध्युं होय तो ते अपर्याप्तनामकर्मना उदयवडे पर्याप्तिओ पूर्ण कर्या विनाज मरण पामे. ए प्रमाणे पर्याप्तिओ पूर्ण थवामां अने न थवामां [1]नामकर्म मूळ कारण छे.

---

१ नामकर्मजन्य अपर्याप्तलब्धि अथवा पर्याप्तलब्धि मानवानो शी जरूर छे ? कारणके पर्याप्ति पूर्ण थवी न थवी तेमां तो अल्प-दीर्घायुष्यज कारणरूप होई शके. अर्थात् आयुष्य अल्प होय तो पर्याप्तिओ पूर्ण न थाय अने आयुष्य अधिक होयतो पर्याप्तिओ

समाप्त थएली पर्याप्तिओनुं कार्य.

प्रति समय आहार ग्रहण करवारूप क्रिया, अथवा गृहित आहारने खल रसरूपे परिणमाववानी क्रिया आहारपर्याप्तिरूप जीवशक्ति वडे थाय छे.

काययोगरूप शरीर चेष्टा (शरीरद्वारा आहारग्रहणादि कार्य करवुं) तथा धावन वल्गनादिमां समर्थता थवी, अने देह-प्रायोग्य ग्रहण कराता लोमाहार या कवलाहारद्वारा प्राप्त थयेल पुद्गलोने शरीरपणे परिणमाववारूप क्रिया करवी ए शरीरपर्याप्ति समाप्त थवाथी थाय छे. (आ पर्याप्ति पूर्ण थवाथी श्री शीलांकाचार्य मते आगळनी ७ मी गाथामां कहेवातो भवधारणीय देह संबंधि काय योग प्राप्त थाय छे). इन्द्रियपर्याप्ति पूर्ण थवाथी जीव इन्द्रियोद्वारा विषयबोध करी शके छे.

तथा श्वासोच्छवासने ग्रहण करी परिणमावी अवलंबीने मूकवानी क्रियारूप जे उच्छवास प्राण ते श्वासोच्छवास पर्याप्तिवडे उत्पन्न थाय छे.

अवश्य पूरी थायज. माटे पर्याप्तिओ पूर्ण थवा नहिं थवामां जूदुं नामकर्मजन्य लब्धिरूप कारण मानवुं ते आवश्यक नथी.

उत्तर —पक्षीने उडवामां हवा, चक्षुने देखवामां प्रकाश, अने मत्स्यने तरवामां जळ जो के अवश्य साधनरूप छे, परन्तु पक्षी विगेरेनी पोतानी शक्ति विना उडवा विगेरेनुं कार्य बने नहिं, तेम पर्याप्तिओ अपूर्ण रहेवामां के पूर्ण थवामां आयुष्य सहकारी कारण अवश्य छे, परन्तु पूर्ण थवा न थवानी योग्यता तो नाम कर्मजन्य गणी शकाय. जेम मुद्गर न मारे तो घडो न फुटे अने मुद्गर मारे तो घडो फुटे ए वात खरी पण घडामां फुटवा नहिं फुटवानी योग्यता तो प्रथम अन्य कारणथीज रहेली गणी शकाय.

तथा भाषा बोलवानी क्रियारूप जे वचनबळ प्राण ते भाषापर्याप्तिथी अने मनपर्याप्ति पूर्ण थवाथी जीवने चिंतवन व्यापाररूप मनोबळ प्राण प्राप्त थाय छे. ए प्रमाणे जीवने जीवित पर्यन्त करवायोग्य ९ प्राणरूप ९ कार्यो ए ६ पर्याप्तिओ पूर्ण थवाथी प्रवर्त्ती शके छे. अने आयुष्य प्राण माटे कोइ शक्तिनी जरूर नहि होवाथी आयुष्य प्राणना कारणरूप कोइ पर्याप्ति नथी. अथवा तो तेमां पण आहार पर्याप्ति आयुष्य प्राणने टकाववामां मुख्यत्वे सहकारी कारण गणाय, कारणके आहार ग्रहण विना जीवित टकी शकतुं नथी ए स्पष्ट छे.

पर्याप्ति संबंधि पूर्वोक्त स्वरूप घणा ग्रंथोमांथी मळी आवे छे, अने श्रीतत्त्वार्थ सूत्रमां पर्याप्ति संबंधि जे विशेषता छे ते नीचे लखेला अक्षरशः भाषान्तरथी समजाशे.

श्री तत्त्वार्थ सूत्रनेअनुसारे ६ पर्याप्तिनु स्वरूप.

भाष्यार्थः—पर्याप्ति ५ प्रकारनी छे ते आ प्रमाणे—१ आहार पर्याप्ति, २ शरीर पर्याप्ति, ३ इन्द्रिय पर्याप्ति, ४ उच्छवास पर्याप्ति, अने ५ भाषापर्याप्ति. आत्मानी क्रियानी समाप्ति ते पर्याप्ति कहेवाय.

टीकार्थः—पर्याप्ति पांच प्रकारनी छे इत्यादि कह्युं त्यां पर्याप्ति ते पुद्गलस्वरूप छे, के जे कर्ता एवा आत्मानुं करण विशेष छे, अर्थात् जे करणविशेष वडे आत्माने आहारादि ग्रहणशक्ति उत्पन्न थाय छे, अने ते करण जे पुद्गलोवडे बने छे ते आत्माए प्राप्त करेला तथा प्रकारना परिणामवाळा पुद्गलोज पर्याप्ति शब्दवडे कहेवाय छे. ए प्रमाणे सामान्यथी उद्देश करायली पर्याप्तिओने नामग्रहण पूर्वक विशेषपणे दर्शावतां (भाष्यकार) आ प्रमाणे कहे छे.

भाष्यार्थः—आहारने ग्रहण करवामां समर्थ एवा करणनी

उत्पत्ति ते आहार पर्याप्ति. शरीर करणनी उत्पत्ति ते शरीर पर्याप्ति, इन्द्रियकरणनी उत्पत्ति ते इन्द्रिय पर्याप्ति प्राणापान एटले उच्छवास निःश्वासने योग्य करणनी उत्पत्ति ते प्राणापान पर्याप्ति, भाषा योग्य पुद्गलोने ग्रहण विसर्जन करवामां समर्थ एवा करणनी उत्पत्ति ते भाषा पर्याप्ति. कह्युं छे के—

आहारसरीरिंदिय—उस्सासवओमणोऽहिनिव्वित्ती ॥
होइ जओ दलियाओ, करणं पइ सा उ पज्जत्ती ॥

(अर्थः—जे दलिकवडे आहार शरीर इन्द्रिय उच्छवास वचन अने मननी निष्पत्ति थाय छे, ते प्रत्ये (शक्तिरुप) जे करण ते पर्याप्ति कहेवाय)

इति शब्द " एटलीज पर्याप्तिओ छे " एम दर्शाववा माटे छे. अहिं शंका थाय के—परममुनिओना वचनथी प्रसिद्ध थयेली पर्याप्तिओ ६ छे, तो अहिं ५ केम कही ? तेना जवाबमां जाणवुं के अहिं इन्द्रियपर्याप्ति ग्रहण करवाथी मनःपर्याप्तिनुं पण ग्रहण थयुं जाणवुं, माटे पर्याप्तिओ पांच छे एज निर्णय छे. वळी शंका थाय के शास्त्रकारोए तो मनने अनिन्द्रिय कहेल छे तो इन्द्रियना ग्रहणथी (अनिन्द्रियरुप) मन केम ग्रहण कराय ? तेनो जवाब ए छे के—जेम चक्षु आदि इन्द्रियो शब्दादि विषयने साक्षात् ग्रहण करे छे तेम मन (साक्षात् विषयग्राही) नथी, परन्तु सुख विगेरेने साक्षात् ग्रहण करनार होवाथी मन अपूर्ण इन्द्रियस्वरूप छे माटे मनने अनिन्द्रिय कह्युं छे. अने मन ते इन्द्रनुं—आत्मानुं लिंग होवाथी इन्द्रिय पण कहेवाय छे. तथा केटलाएक आचार्यो मनः पर्याप्ति जूदी कहे छे एम आगळ कहेवामां आवशे. वळी पर्याप्तिओ पांचज छे एम जे निर्णय कह्यो ते बाह्यकरणोनी अपेक्षाए

जाणवुं, अने मन तो अभ्यन्तर करण छे माटे मनःपर्याप्ति जूदी कहेवामां कोइ दोष नथी. वन्ने रीते मनःपर्याप्तिनो संभव छे. हवे पर्याप्ति एटले समाप्ति अर्थात् विवक्षित क्रियानी समाप्ति. तैजस अने कार्मण शरीर वाळा आत्मानेज औदारिक विगेरे शरीर प्राप्त करवानुं होवा छतां प्रथम समये उत्पत्ति वखतेज ए पर्याप्तिओनो विचार कराय छे, अर्थात् ए परभव ग्रहण वखतनी छे. वळी ए ६ पर्याप्तिओ समकाळे प्रारंभाय छे अने अनुक्रमे समाप्त थाय छे पण समकाळे समाप्त थती नथी. कारण के उत्तरोत्तर पर्याप्तिओनो अनुक्रमे अधिक अधिक काळ छे. ते समाप्त थवाना अनुक्रममां प्रथम आहार पर्याप्ति, अने त्यारवाद अनुक्रमे शरीर, इन्द्रिय, उच्छवास, भाषा, अने मनःपर्याप्ति छे. त्यां प्रथम आहारपर्याप्तिनुं स्वरूप निरूपण करवाने माटे (भाष्यकार) आ प्रमाणे कहे छे.

भाष्यार्थ—शरीर, इन्द्रिय, वचन, मन, अने उच्छवास योग्य दलिकद्रव्यने ग्रहण करवा रूप क्रियानी समाप्ति ते आहार पर्याप्ति, ग्रहण करेल (दलिक) ने शरीरपणे स्थापवा रूप क्रियानी समाप्ति ते शरीर पर्याप्ति, अहिं स्थापवुं एटले रचवुं अथवा घडवुं एवो अर्थ छे.

टीकार्थ—शरीर इन्द्रिय वचन मन अने उच्छवासनां आगम प्रसिद्ध वर्गणाओना अनुक्रम प्रमाणे जे तत्प्रायोग्य दलिकद्रव्यो तेनी आहरणक्रिया एटले ग्रहणक्रिया तेनी समाप्ति ते आहारपर्याप्ति ते करण विशेष छे. अहिं मन ग्रहण करवाथी प्रथम इन्द्रिय ग्रहण वडे मननुं जे ग्रहण कर्युं हतुं ते स्पष्ट कर्युं. तथा सामान्य पणे (शरीरादि अमुक रूपेज एम नहिं एवा) ग्रहण करेल योग्य पुद्गल समूहनुं शरीर अने (ते शरीरना) अंगोपांगपणे स्थापवानी क्रिया एटले रचवानी क्रिया तेनी समाप्ति ते शरीरपर्या-

सि. अहिं स्थापन शब्दनो अर्थ (भाष्यकर्ता पोतेज) बीजा, एकार्थवाचक शब्दोवडे जणावे छे के स्थापवुं एटले रचवुं अथवा घडवुं, अर्थात् शरीर वर्गणा प्रायोग्य पुद्गलोनी अमुक प्रकारे रचना (ते शरीरपर्याप्ति).

भाष्यार्थ—त्वचा विगेरे इन्द्रियोने रचवारूप क्रियानी समाप्ति ते इन्द्रियपर्याप्ति.

टीकार्थ—त्वचा एटले स्पर्शेन्द्रिय ते विगेरे इन्द्रियो एटले स्पर्श०, रसने०, घ्राणे०, चक्षु०, अने श्रोत्रेन्द्रिय, अने मन ए ६ इन्द्रियोनुं स्वरूप रचवारूप क्रियानी समाप्ति ते इन्द्रियपर्याप्ति.

भाष्यार्थ—प्राणापान क्रिया योग्य द्रव्यनुं ग्रहण अने विसर्जन करवानी शक्तिने रचवारूप क्रियानी समाप्ति ते प्राणापानपर्याप्ति.

टीकार्थ—प्राणापान एटले उच्छवास अने निःश्वासक्रिया स्वरूप ते बन्नेनां वर्गणाना क्रम प्रमाणे योग्य द्रव्य ग्रहण (अने विसर्जन) करवानुं सामर्थ्य ते (सामर्थ्य) ने रचवारूप क्रियानी समाप्ति ते उच्छवासपर्याप्ति.

भाष्यार्थ—भाषा योग्य (दलिक) ने ग्रहण विसर्जन करवानी शक्तिने रचवारूप क्रियानी समाप्ति ते भाषापर्याप्ति.

टीकार्थ—अहिं पण वर्गणाना अनुक्रम प्रमाणे भाषा प्रायोग्य द्रव्यने ग्रहण विसर्जन करवा संबंधि जे शक्ति—सामर्थ्य ते (शक्तिने) रचवारूप क्रियानी समाप्ति ते भाषापर्याप्ति.

भाष्यार्थ—मनपणाने योग्य द्रव्यो ग्रहण विसर्जन करवानी शक्तिने रचवारूप क्रियानी समाप्ति ते मनःपर्याप्ति एम केटला एक आचार्य कहे छे.

टीकार्थ—मनपणाने योग्य एटले मनोवर्गणा प्रायोग्य अर्थात् मनपणे परिणमवामां समर्थ जे द्रव्यो तेने ग्रहण अने विसर्जन करवा संबंधि सामर्थ्यनी रचनारूप क्रियानी परिसमाप्ति ते मनःपर्याप्ति, एम केटलाएक आचार्यो मनःपर्याप्ति जुदी कहे छे, अर्थात् इन्द्रियपर्याप्ति अने नोइन्द्रियपर्याप्तिना ग्रहणमां (मनःपर्याप्तिने) भेगी गणता नथी, इन्द्रिय पर्याप्तिथी भिन्न गणे छे, परन्तु मनःपर्याप्तिने केटलाएक आचार्य माने छे, अने केटलाएक नथी मानता एम नहिं.

भाष्यार्थ—ए पर्याप्तिओ समकाळे प्रारंभाय छे छतां पण समाप्त अनुक्रमे थाय छे तेनुं कारण ए छे के ए पर्याप्तिओ उत्तरोत्तर (अनुक्रमे) सूक्ष्म सूक्ष्मतर छे, तेनां दृष्टांतो सूत्र कांतवा अने काष्ट घडवाना अनुक्रमे (आ प्रमाणे) छे.

टीकार्थ—ए छए पर्याप्तिओ समकाळे आरंभाइ छती अनुक्रमे समाप्त थाय छे ते दर्शावे छे के पर्याप्तिओ विषमकाळे समाप्त थाय छे तेनुं शुं कारण ? (तेनो उत्तर) कहे छे के पर्याप्तिओ अनुक्रमे सूक्ष्म सूक्ष्मतर छे. अर्थात् आहारपर्याप्तिथी शरीरपर्याप्ति अति सूक्ष्म छे, एटले अति सूक्ष्म द्रव्यना समूहवडे रचायली छे, तेथी पण इन्द्रियपर्याप्ति अतिशय सूक्ष्म, तेथी पण उच्छवास पर्याप्ति, तेथी पण वचनपर्याप्ति, अने तेथी पण मनःपर्याप्ति अति सूक्ष्म छे. माटे तेनुं अनुक्रमे सूक्ष्मपणुं दृष्टान्तथी जणावे छे के सूत्र कांतवा अने काष्ट घडवाना दृष्टांते (ए पर्याप्तिओ सूक्ष्म सूक्ष्मतर छे) अर्थात् जाडुं सूत्र कांतनारी अने बारीक सूत्र कांतनारी सूत्र कांतवानो समकाळे प्रारंभ करे तोपण जाडुं सूत्र कांतनारी कोकडुं व्हेलुं पूरुं करे, अने बीजी घणे काळे पूरुं करे. तथा काष्ट घडवामां पण एज क्रम जाणवो के स्तंभ

विगेरेनो स्थूल आकार बनाववो अने तेने समचोरसरुपे करवो ते अल्पकाळमां कराय, अने तेज स्तंभने नीचेना भोंयतळीआना (कुंभी विगेरेना) भागमां पांदडीओ पाडी पूतळीओना समूह सहित बनाववो होय तो समकाळे प्रारंभ्या छतां पण घणे काळे बने. (भाष्यमां कहेला) विगेरे शब्दथी चित्र पुस्त (पुतळी) अने लेप (रंगनुं चित्र) विगेरेनुं ग्रहण करवुं. तथा (भाष्यमां कहेला) " अनुक्रमे दृष्टांतो (आ प्रमाणे) " ए वचनथी छए पर्याप्तिओनुं स्वरूप अनुक्रमे छ दृष्टांतोवडे कहेवानो प्रारंभ करे छे. माटे दृष्टान्तनुं प्रतिपादन करवा माटे (नीचे प्रमाणे भाष्यकार) कहे छे.

भाष्यार्थ—घरना दलिकनुं (काष्टादि सामग्रीनुं) ग्रहण, स्तंभ अने स्थूणा (आडी पाटडी) नुं रचवुं, द्वारवडे प्रवेश करवा अने निकळवाना स्थाननुं रचवुं, सूवा बेसवा विगेरे क्रिया (योग्य स्थान) नुं रचवुं, ते सरवुं पर्याप्तिनुं रचवुं छे. पर्याप्ति एटले ते ते परिणामने योग्य दलिक के जे आत्माए ग्रहण करेल होय ते.

टीकार्थ—अहिं (भाष्यकार) घरना दलिक (काष्ट–ईंट–माटी–चूनो इत्यादि) वडे आहार पर्याप्ति समजावे छे. जेम घर करवुं होय त्यारे सामान्यपणे साग विगेरेना काष्ट रूप घरनुं दलिक (काष्टादि सामग्री) एकठुं कराय छे. (तेम सामान्यपणे ते ते योग्यतावाळा पुद्गलनुं केवळ ग्रहण ते आहार पर्याप्ति). त्यार बाद सामान्यपणे ग्रहण करेला दलिकमां अहिं स्तंभ वा स्थूणा (मोभ–आडुं काष्ट) थशे एम निरूपण कराय छे (विचाराय छे) ते प्रमाणे अनेक पुद्गलो ग्रहण कर्ये छते एमां आ पुद्गलो

शरीर वर्गणा योग्य छे अर्थात् शरीर निष्पादन करवामां (निष्पत्तिमां) समर्थ छे, (ते पुद्गलोवडे अथवा ते पुद्गलोनुं शरीर बनाववुं) ते शरीर पर्याप्ति. तथा घरनी भींत विगेरेनी उंचाइ रूप विचार करवानो छे तो पण (भींत विगेरेथी घर रच्ये छते पण) तेने केटलां द्वार बनाववां, अने तेमां पण आ (अमुक) द्वार पूर्वमुखे अने आ द्वार उत्तरमुखे पेसवा निकळवा माटे (ठीक पडशे एम) विचाराय छे (बनावाय छे) तेम इन्द्रियपर्याप्ति पण आत्मोपयोगनी वृत्तिए पेसवा निकळवाना द्वार सरखी छे. ए प्रमाणे उच्छवास पर्याप्ति अने भाषापर्याप्ति पण एज दृष्टांतवडे समजवी, (कारण के) दार्ष्टान्तिकना भेदथी दृष्टांत भिन्न होय छे (पण अहिं दार्ष्टान्तिकनो भेद नथी तेथी दृष्टांत भिन्न आप्युं नथी, कारण के उच्छवास अने भाषामां पण प्रवेश निर्गमन वृत्ति इन्द्रियपर्याप्ति तुल्यज छे). त्यारबाद द्वार सहित घर बन्ये छते पण अहिं आसन (दिवानखानुं), अहिं सूवानु (शय्यागृह), अने अहिं भोजन भूमि (भोजनगृह) बेसवा सूवा अने जमवानी क्रियाओ करवा माटे गृहस्थो विचारे छे (बनावे छे) तेनी पेठे हितनी प्राप्त अने अहितना त्यागनी अपेक्षारूप लक्षणवाळी मनःपर्याप्ति जाणवी. ए प्रमाणे ए ६ पर्याप्तिओने जे कर्म बनावे ते कर्म पर्याप्ति नामकर्म ते भट्ठीमां मूकेला तैयार थयेला घट सरखुं जाणवुं अने अपर्याप्ति नामकर्म तो नहिं बनेल अने बनेल पण विनाश पामवा योग्य घटतुल्य छे, घट सरखुं छे. (इति तत्त्वार्थ भाषान्तर समाप्त. आ भाषान्तरमां कौंसमां आवेला शब्दो लेखकना छे).

पर्याप्तिओनो प्रारंभ अने पूर्णता एटले शुं ?

६ पर्याप्तिओमां प्रथमनी ३ पर्याप्तिओनुं कार्य (शक्ति अने शक्तिथी थतुं कार्य) प्रथम समयथीज प्रारंभायुं छे, अने उच्छवा-

सादि ३ पर्याप्तिओनुं कार्य जे उच्छ्वासादि वर्गणाओनुं ग्रहण ते उच्छ्वासादि पर्याप्तिरूप पुद्गलो रचाया बाद थाय छे. परन्तु ते उच्छ्वास पर्याप्ति स्वरूप पुद्गलोनो रचना प्रारंभ तो प्रथम समयथीज शरु थयेलो छे, माटे सर्वे पर्याप्तिओनो एटले पर्याप्ति संबंधि पुद्गलोनो रचना प्रारंभ तो प्रथम समयथीज शरु थयेलो गणाय, परन्तु ते पर्याप्तिरूप पुद्गलोनी समाप्ति तो पूर्वे कह्या प्रमाणे अनुक्रमेज थाय छे. ते आ प्रमाणे—

प्रथम समये जे पुद्गलो सामान्य स्वरूपवाळां ग्रहण कर्यां ते पुद्गलोमांथी तेज समये केटलांएक पुद्गलोने शरीरपणे स्थाप्यां, केटलांएक पुद्गलोनी अभ्यन्तर निर्वृत्तिइन्द्रिय बनावी, केटलांएक पुद्गलो उच्छ्वास करणरूपे रच्यां, केटलांएक पुद्गलो भाषाकरणरूपे रच्यां, अने केटलांएक पुद्गलो मनःकरणरूपे रच्यां, अने शरीरादिपणे नहि परिणमी शके एवां पुद्गलोनो बीजे समये त्याग करशे. ए प्रमाणे प्रथम समये पुद्गलो ग्रहण करवानी जे आत्मशक्ति ते पुद्गलोना ग्रहण निमित्ते प्रवर्ती ते " प्रथम समये आहारपर्याप्ति समाप्त थइ " एम कहेवाय.

शंका—पुद्गलोनो आहार तो प्रथम समय बाद पण चालु रहेवानो छे तो प्रथम समये आहारपर्याप्ति रूप शक्ति समाप्त थइ केम गणाय ?

उत्तर—ग्रहणकार्य गमे तेटला काळ सुधी चालु रहे पण ग्रहणशक्ति तो ग्रहणकार्य चालु थयानी अपेक्षाए प्रथम समये संपूर्ण थइ गणाय. अने ते प्राप्त थयेली शक्ति जेटला काळ सुधी टके तेटला काळ सुधी ग्रहणकार्य थवामां कोइ विरोध नथी.

शंका—प्रथम समये प्राप्त थयेली शक्तिवडे पुद्गल ग्रहण कर्यां? के पुद्गलग्रहण वडे शक्ति आवी कहेवाय ?

उत्तर—प्रथम समये (आत्मामां प्रथमथी रहेली) शक्तिवडे पुद्गल ग्रहण कर्या एम कहेवाय.

शंका—जो एम होय तो पर्याप्ति के जे पुद्गलना आलंबनवडे कहेवाय छे ते न बनी शके !

उत्तर—ए वात सत्य छे, परन्तु (प्रथम समयनी) ग्रहणशक्ति तो तैजसकार्मणदेहना आलंबनथी जीवमां प्रथमथीज हती, परन्तु ते शक्ति उत्पत्ति स्थाने जीव आव्यो नहोतो त्यां सुधी कार्य करनारी न हती, अने हवे उत्पत्तिस्थाने (ग्रहण करवा योग्य पुद्गलोना स्थानमां) आववाथी ते शक्ति स्वकार्य करनारी थइ ए हेतुथीज प्रथम समये आहारग्रहण शक्ति प्राप्त थइ गणाय. ए प्रमाणे शरीरादि रचनानी शक्ति अने शरीर रचनानी शरुआत पण जीवमां प्रथम समयथीज छे, परन्तु ते शरीर विगेरे ज्यां सुधी स्वकार्य सामर्थ्य पूरतुं न रचाय त्यां सुधी शरीरादिक वडे जीव अपर्याप्त—अशक्त गणाय, अने शरीरादि स्वकार्य सामर्थ्य जेटलुं रचाइ रहे त्यारे शरीरपर्याप्त (शरीरोपष्टंभ द्वारा उत्पन्न थयेली जीवशक्तिवाळो) गणाय. शरीर जो के उत्पत्तिना प्रथम समयथी आखा भव सुधी प्रतिसमय रचाया करशे, परन्तु स्वकार्य सामर्थ्य पूरतुं रचावाना कारणथी " शरीरपर्याप्ति समाप्त थइ" अथवा " शरीर निष्पत्ति थइ " इत्यादि व्यपदेश थइ शके. ए प्रमाणे अभ्यन्तरनिर्वृत्तिइन्द्रिय स्वकार्य सामर्थ्य पूरी रचाय अने तेथी जीव अभ्यन्तरनिर्वृत्तिइन्द्रिय द्वारा शब्दादि विषय जाणवा समर्थ थाय के तुर्तज "इन्द्रियपर्याप्ति अथवा इन्द्रियरचना समाप्त थइ" एम गणाय. वळी ए प्रमाणेज उच्छ्वास विगेरे वर्गणा ग्रहणादिनुं कार्य थइ शके तेटलां उच्छ्वासादि करणनां (औदारिकादिनुं ३ वर्गणामांथी रचायलां) पुद्गलो रचाइ रहे त्यारे " उच्छ्वासादि

पर्याप्ति समाप्त थइ एवो व्यपदेश थाय.

शंका—आहार पर्याप्तिना अर्थमां " जे शक्ति वडे आहृत पुद्गलो खलरस पणे परिणमे ते आहार पर्याप्ति" एमां खलरस परिणमन ते शुं ? कारणके मलादि रूप विशिष्ट खल तो शरीर पर्याप्तने लोमाहारथी पण न संभवे तो ते वखतना ओजस् आहारथी केम होय ? वळी जेमांथी हाड विगेरे बने छे ते रस तो मात्र औदारिक शरीरी त्रस जीवो ने ज होइ शके छे तो दरेक जीवमां ए आहार पर्याप्तिनो अर्थ केवी रीते जाणवो ?

उत्तर— ग्रहण करेलां पुद्गलोमांथी जे योग्य पुद्गलो छे तेने शरीरादि रूपे रचवा, अने अयोग्य पुद्गलोने अलग करवा ते खल रस परिणमन कहेवाय. मात्र मळ प्रमुखने ज खल अने हाड विगेरे जेमांथी बनी शके ते रस एवो एकान्त अर्थ नथी. ए अर्थ तो मुख्यत्वे त्रस जीवनी औदारिक शरीर संबन्धी पर्याप्तिओ आश्रयी कवलाहारने अंगे जाणवो.

शंका—शरीरपर्याप्ति रचाया बाद जे शरीरनिष्पत्ति कहेवाय ते कया सामर्थ्यथी ?

उत्तर—भवधारणीय काययोगनी प्रवृत्तिथी अने ते काययोग वडे शरीरद्वारा लोमाहार ग्रहण करवाथी नवा शरीरनी निष्पत्ति थवा मांडे. अहिं शरीरपर्याप्ति समाप्त थया बाद भवधारणीय काययोग 'श्री शीलांकाचार्यें' मानेलो छे. अने 'पंचसंग्रहमां' अन्य आचार्यना अभिप्रायथी शरीरपर्याप्ति बाद भवधारणीय काययोग मान्यो छे अने 'कर्मग्रंथादिकमां' तो पर्याप्तने ज भवधारणीय काययोग मान्यो छे. ॥ इति षष्ठ गाथा विस्तरार्थः ॥

अवतरण—पूर्व गाथामां कया जीवने केटली पर्याप्तिओ होय ते कहीने हवे आ गाथामां पूर्वोक्त पर्याप्तिओथी थनारा भा-

ओ (धर्मों जीवना पर्यायो) के जेना संयोगे नरदेहनिवास रूप जीवनुं जीवन तथा जेना वियोगे मरण कहेवाय छे तेमज जीव जेना वडे ओळखाय अथवा कहेवाय एवां बाह्य लक्षणो अने ते बाह्य लक्षणो कया जीवने केटलां होइ शके ते पण कहेवाय छे.

पणिंदियत्तिबलूसा–साऊ दस पाण चउ छसग अट्ठ ॥
इगदुतिचउरिंदीणं, असन्निसन्नीण नव दस य ॥७॥

संस्कृतानुवादः

पंचेन्द्रियत्रिबलोच्छ्वासायूंषि दश प्राणाश्चत्वारःषट् सप्ताष्टौ॥
एकद्वित्रिचतुरिन्द्रियाणा–मसंज्ञिसंज्ञिनां नव दश च ॥७॥

शब्दार्थः

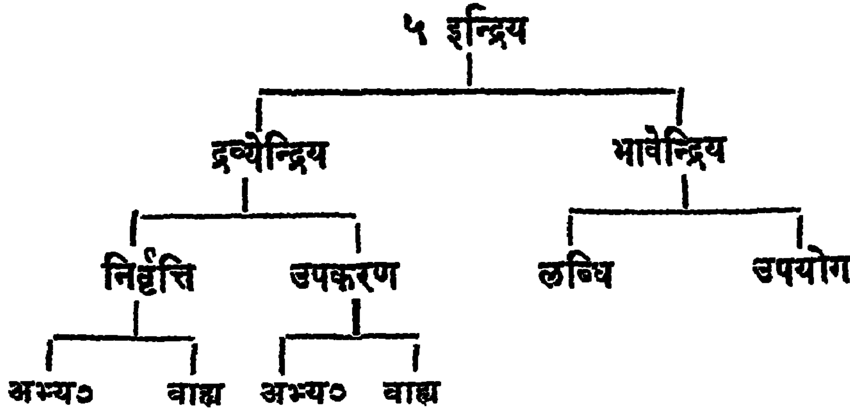
पणिंदिय–पांच इन्द्रियो	अट्ठ–आठ
त्ति–त्रण	इग–एकेन्द्रिय जीवोने
बल–बळ, योग,	दु–द्वीन्द्रियने
ऊसास–श्वासोच्छ्वास	ति–त्रीन्द्रियने
आउ–आयुष्य	चउरिंदीणं–चतुरिन्द्रियने
दस–दश	असन्नि–असंज्ञि पंचेन्द्रियने
पाण–प्राणो छे.	सन्नीण–संज्ञिपंचेन्द्रियने
चउ–चार	नव–नव
छ–छ	दस–दश
सग–सात	य–अने (वा पादपूरणार्थे)

गाथार्थः—५ इन्द्रियो, ३ बळ (योग), १ श्वासोच्छ्वास, अने १ आयुष्य ए १० प्राणो छे, तेमांथी एकेन्द्रियने ४, द्वीन्द्रियने ६, त्रीन्द्रियने ७, चउरिन्द्रियने ८, असंज्ञि पंचेन्द्रियने ९, अने संज्ञिपंचेन्द्रियने १० प्राण होय छे.

विस्तरार्थः—पूर्वगाथामां पर्याप्तिनुं वर्णन कर्याबाद हवे आ गाथामां ते पर्याप्तिनां कार्यरूप प्राणोनुं विवेचन कराय छे.

॥ ५ इन्द्रिय ५ प्राणो. ॥

आत्मा जे इन्द्रियोद्वारा विषय (पदार्थ) जाणी शके छे, ते इन्द्रियो, स्पर्शन–रसना–घ्राण–चक्षु अनेश्रोत्र ए प्रमाणे पांच छे. इन्द्रिय शब्द इन्द्र उपरथी बनेलो छे, इन्द्र एटले आत्मा तेनुं जे चिह्न ते इन्द्रिय कहेवाय, ते इन्द्रिय द्रव्येन्द्रिय अने भावेन्द्रिय एम बे प्रकारे छे, पुनः निर्वृत्ति अने उपकरण एम द्रव्येन्द्रिय बे प्रकारनी छे, पुनः निर्वृत्ति अने उपकरण द्रव्येन्द्रिय पण अभ्यन्तर अने बाह्य एम बेबे प्रकारनी छे, तथा लब्धिभावेन्द्रिय अने उपयोगभावेन्द्रिय एम भावेन्द्रिय पण बे प्रकारनी छे, तेनी भेद स्थापना आ प्रमाणे छे.



॥ इन्द्रियभेदना अर्थ. ॥

इन्द्रियोने स्थाने इन्द्रियोने आकारे गोठवायला विषय ग्रहण करवानी शक्तिवाळा अतिस्वच्छ पुद्गलो (इन्द्रियना पुद्गलो) अथवा आत्मप्रदेशो ते 'अभ्यन्तरनिर्वृत्ति द्रव्येन्द्रिय' कहेवाय. जेम चक्षुमां कीकी इत्यादि, एमां अभ्यन्तर स्पर्शननिर्वृत्ति द्रव्येन्द्रियनो आकार दरेकजीवनो देहना आकारसरखो होय छे, इत्यादि सर्व

जीवोने अभ्यन्तर निर्वृत्ति द्रव्येन्द्रियना आकारो नियतज होय छे, जे आगळ कहेवाय छे.

इन्द्रियोने स्थाने देखातो कर्णपर्पटिकादि बाह्य अंगनो आकार ते 'बाह्यनिर्वृत्ति द्रव्येन्द्रिय,' जेम चक्षुना डोळा इत्यादि, ए बाह्य अंगरचनारूप इन्द्रियोनो आकार दरेक जीवने जुदी जुदी जातनो होय छे. आगळ कहेवाता इन्द्रियोना आकार आ बाह्यनिर्वृत्तिना नहि पण अभ्यंतरनिर्वृत्तिना जाणवा. अहिं बन्ने स्थाने ' निर्वृत्ति एटले रचना ' अर्थात् इन्द्रियोनी जे अंदरना भागनी रचना ते अभ्यन्तरनिर्वृत्ति अने इन्द्रियोनी बहारनी जे रचना ते बाह्यनिर्वृत्ति कहेवाय, अथवा निर्वृत्ति एटले आकृति एवो अर्थ करतां इन्द्रियोनी अंदरना भागनी जे चक्षुगोचर न थइ शके तेवा सूक्ष्म अने स्वच्छ पुद्गलोनी अथवा आत्मप्रदेशोनी जे आकृति ते अभ्यंतरनिर्वृत्ति अने बहारना भागमां सर्वने साक्षात् देखाता कर्णपर्पटिका (कानपापडी) विगेरे आकृति ते बाह्यनिर्वृत्ति 'कहेवाय.

इन्द्रियनी अभ्यन्तर आकृतिमां (अभ्यन्तरनिर्वृत्ति द्रव्येन्द्रियमां) रहेली जे विषय ग्रहण करवानी शक्ति ते 'अभ्यन्तर उपकरणेन्द्रिय' कहेवाय. अहिं (उपकरण एटले) इन्द्रियने विषय ग्रहण करवामां उपकार करनार जे शक्तिविशेष ते उपकरण कहेवाय, जेम श्रोत्रेन्द्रियनी श्रवणशक्ति अने रसनेन्द्रियनी आस्वादनशक्ति.

तथा जीवने इन्द्रिय द्वारा विषयबोध करवानी जे शक्ति,(अथवा इन्द्रियावरणकर्मनो क्षयोपशम) ते 'लब्धि भावेन्द्रिय' कहेवाय.

' कर्णेन्द्रियादिनो जेम पर्पटिकादि बाह्य आकृति छे तेवी नेत्रे स्पर्शेन्द्रियनी बाह्य आकृति जुदी नहि होवाथी स्पर्शेन्द्रियनो अभ्यन्तराकृति अने बाह्याकृति एकज छे.

तथा जीव जे इन्द्रियना उपयोगमां (विषय ग्रहणमां) व-र्ततो होय ते इन्द्रिय 'उपयोग भावेन्द्रिय' कहेवाय. पूर्वे कहेल ल-ब्धि तो एक जीवने पांचे इन्द्रियोनी एकीसमये (समकाळे) हो-य छे, परन्तु ते विषयाववोध करवानो व्यापार तो एक समये ए-कज इन्द्रियद्वारा होवाथी एक जीवने समकाळे लब्धिथी पांचे इन्द्रियो संभवे छे अने उपयोगथी एक जीवने एकज इन्द्रिय कहेवाय अथवा एकेन्द्रियादि सर्वे जीवोने लब्धि तो (इन्द्रियावरणक्षयोप-शमतो) पांचे इन्द्रियोनी होय छे, परन्तु द्रव्येन्द्रिय कोइने एक तो कोइने बे ए प्रमाणे हीनाधिक छे, अने तेमां पण उपयोगतो ए-कज इन्द्रियनो होइ शके छे ए हेतुथी सर्वे जीवो लब्धि इन्द्रियवडे पंचेन्द्रिय छे, द्रव्येन्द्रिय वडे एकेन्द्रिय द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय ने पंचेन्द्रिय छे, अने उपयोगेन्द्रियवडे सर्वे जीवो एकेन्द्रिय छे एम प-ण कहीशकाय. ॥ इति इन्द्रियभेदार्थः ॥

॥ इन्द्रियोनुं स्थान. ॥

स्पर्शेन्द्रियनुं स्थान सर्व शरीर छे. अर्थात् सर्वदेहमां उपरना भागमां अने अंदरना भागमां स्पर्शेन्द्रियना (अभ्यन्तर निर्वृत्ति स्पर्शेन्द्रियना)अणुओ (पुद्गल प्रदेशयुक्त आत्म प्रदेशो) व्याप्त थ-येला छे, अथवा शरीरनी त्वचाना (चामडीना) वहारना भागमां अने अंदर पण अभ्यन्तर स्पर्शेन्द्रियना परमाणुओ व्याप्त थयेला हो-य छे. तेथीज पीधेला शीतल पाणीनो अंदरना भागमां पण अनु-भव थाय छे, वळी ए इन्द्रिय अबरखना पड सरखी छे, त्यां त्व-चानी वहारनुं अने अंदरनुं पड जूदुं नथी पण एकज छे.१ तथा मु-खनी अंदर जे जिह्वा (वाह्य निर्वृत्ति रूप) देखाय छे ते जीह्वामां उ-पर अने नीचेना भागमां रसनेन्द्रियना परमाणुओनुं (अभ्यन्तर

निर्वृत्तितुं) एकज पड (अंगुलना असंख्यतमा भागनुं जाडुं) पथराइ रहेलुं छे, ते इन्द्रिय परमाणुओना पडवडे जीह्वापर आवेला खारा खाटा पदार्थनो अनुभव करी शकाय छे, परन्तु देखाती जीभवडे खारा खाटा पदार्थना रसनो अनुभव जीवने होइ शके नहिं. २ तथा देखाती नासिकाना पोलाणमां उपरना भागमां अंगुलना असंख्यातमा भाग जेटली घ्राणेन्द्रियनी अभ्यन्तर आकृति छे तेज गंध विषयने ग्रहण करी शके छे. ३ तथा चक्षुमां कीकीनी अंदर अंगुलना असंख्यातमा भागजेवडी सूक्ष्म अभ्यन्तर इन्द्रियाकृति छे तेज रूप वा आकार देखी शके छे, परन्तु आंखनी कीकी मात्र विषय ग्रहण करी शकती नथी. ४ तथा कर्णपर्पटिकाना पोलाणमां अंगुलना असंख्यातमा भाग जेवडी सूक्ष्म कर्णेन्द्रिय पुद्गलोनी अभ्यन्तर आकृति गोठवायली छे, जे शब्दने ग्रहण करी शके छे. ५

उपर प्रमाणे होवाथी त्वचा ए स्पर्शेन्द्रियनो आधार (स्थान) छे, पण त्वचा ए पोते स्पर्शेन्द्रिय नथी, पुनः जीह्वा ए रसनेन्द्रियनुं स्थान छे पण जीह्वा पोतेज रसनेन्द्रिय नथी. पुनः नासिका ए घ्राणेन्द्रियनुं स्थान छे पण नासिका पोते घ्राणेन्द्रिय नथी, तथा आंख-नेत्र ए चक्षु इन्द्रियनुं स्थान छे, पण आंख (डोळा के कीकी) पोते चक्षुइन्द्रिय नथी, तेमज कान ए कर्णेन्द्रियनुं स्थान छे पण कान पोते कर्णेन्द्रिय नथी ए प्रमाणे स्थान रूप बाह्य निर्वृत्ति अने विषय ग्रहण करनार अभ्यन्तर निर्वृत्ति बन्ने भिन्न छे एम समजवुं. ॥ इति इन्द्रियस्थानविचारः ॥

॥ अभ्यन्तरेन्द्रियना आकार. ॥

अभ्यन्तर स्पर्शेन्द्रिय जे जीवनुं जेवुं शरीर होय तेवा आकारनी छे, अर्थात् भिन्न भिन्न आकारनी छे—अभ्यन्तर रसनेन्द्रिय

खुरपाकारे (अस्त्राने आकारे) छे.—अभ्यन्तर घ्राणेन्द्रिय [1]काहल नामना वाजींत्र विशेषने आकारे छे. अथवा [2]अतिमुक्तकपुष्पना आकारे छे.—अभ्यन्तर चक्षुरिन्द्रिय मसुर वा चंद्र सरखा आकारवाळी छे.—अने अभ्यन्तर श्रोत्रेन्द्रिय कदंबवृक्षना पुष्प सरखा आकारनी मांसनी एक गोळी रूप छे. पुनः बाह्यनिर्वृत्ति इन्द्रियो (एटले इन्द्रियोनी बाह्य आकृतिओ) तो दरेक जातना जीवनी जुदी जुदी होवाथी नियमित आकार कही शकाय नहिं, जेमके कर्णेन्द्रियनी बाह्याकृति मनुष्यने बे चक्षुओने पडखे लंबवर्तुल उंचा नीचा भागयुक्त छीप सदृश छे, अने अश्वनी बाह्य कर्णेन्द्रिय नीचेथी पहोळी अने उपरथी हीन थती छेडे अणीदार अने वळी गयेला पडवाळी चक्षुओनी पडखे उपर होय छे, अने हाथीनी तो तद्दन सूपडा सरखी बाह्यकर्णाकृति होय छे. ए प्रमाणे बाह्याकृतिओ (बाह्यनिर्वृत्तीन्द्रियो) दरेक जातिना जीवने भिन्न भिन्न होवाथी अमुक नियमित आकारनी कही शकाय नहिं, अने अभ्यन्तर आकृतिओ सर्व जीवने एक सरखा आकारवाळी होवाथी उपर कहेली छे.

॥ इन्द्रियोनी [3]लंबाइ पहोळाइ अने जाडाइ. ॥

अभ्यन्तर स्पर्शेन्द्रिय अंगुलना असंख्यातमा भाग जेटली जाडी, अने स्वस्वदेह प्रमाण लांबी पहोळी छे. जेथी ए इन्द्रियनुं अति पातळुं पड त्वचाना उपर अने अंदरना भागमां जूदुं नहिं पण एकज पथरायलुं छे, परन्तु त्वचाना मध्य भागमां (एटले त्वचानी

१ पडघम नामनुं वाजींत्र.

२ अतिमुक्तक ए वृक्ष विशेष छे.

३ स्पर्शेन्द्रियनी लंबाइ पहोळाइ उत्सेधांगुलने अनुसारे छे, अने रसनेन्द्रियादिनी लंबाइ पहोळाइ आत्मांगुलने अनुसारे जाणवी. पुन जाडाइ तो सर्वनी उत्सेधांगुलथी संभवे छे ए संबंधि विस्तार ग्रंथान्तरथी जाणवो.

मध्य जाडाइमां) ए इन्द्रियना अणुओ नथी. ए हेतुथी ए अभ्यन्तर स्पर्शेन्द्रिय अंदरना भागमां (एटले त्वचाना मध्य भागमां) पोकळ (सुषिरयुक्त-पोलाण वाळी) छे.—तथा रसनेन्द्रिय अंगुलना असंख्यातमा भागप्रमाण जाडी, अने अंगुल पृथक्त्व (वधुमां वधु ९ आंगळ) जेटली लांबी प्होळी छे. आ रसनेन्द्रियनुं पण अति पातळुं पड जिह्वाना उपर-नीचेना भागमां पथरायेलुं छे, पण मध्य भागमां नहिं-तथा घ्राणेन्द्रिय अंगुलनाअसंख्यातमा भाग जेटली जाडी अने लांबी पहोळी छे, ए हेतुथी आ इन्द्रियनुं पातळुं पड नथी. पण तथाप्रकारनो वृत्ताकार संभवेछे,—तथा चक्षु अने श्रोत्रेन्द्रियनी लंबाइ प्होळाइ अने जाडाइ पण अंगुलना असंख्यातमा भागनी वृत्ताकारे छे,

॥ इन्द्रियोनो विषय अने विषय ग्रहण क्षेत्र. ॥

१ स्पर्शेन्द्रियनो विषय पदार्थमां रहेला स्निग्ध—रूक्ष—शीत उष्ण—मृदु—कर्कश—गुरु-अने लघु ए आठ प्रकारना स्पर्श जाणवानो छे. अने [1] ९ योजन दूर रहेला पदार्थोना तेमांथी नीकळेला केटलाक पुद्गलो आवी स्पर्शेन्द्रियने अडे छे तेथी ते दूरना पदार्थोना पण स्पर्शोने जाणी शके छे. एथी अधिक दूर रहेला पदार्थोथी नीकळी आवेला स्पर्शयुक्त पुद्गलो स्वभावेज अयोग्य थवाथी स्पर्शेन्द्रिय ग्रहण करी शके नहिं. पुनः [2] स्निग्धादि स्पर्शो तो प्राप्त पदार्थना अनुभवी शके एम संभवे छे.

२ रसनेन्द्रियनो विषय पदार्थोमां रहेला तीखा—कडवा—मधुर-खाटा—तूरा (तिक्त—कटु—मधुर—आम्ल—अने कषायलो) ए पांच प्रकारना रस जाणवानोछे, अने नव योजन दूर रहेला पदार्थोना तेमां-

---

[1] अहिं कहेवातुं विषयोनुं क्षेत्र आत्मांगुलने अनुसारे जाणवु

[2] ए वातनो स्पष्ट उल्लेख ग्रंथान्तरोमां देखातो नथी परन्तु अनुभव सिद्ध सर्वने होवाथी लखेल छे.

थी नीकळेला केटलाक पुद्गलो आवी रसनेन्द्रियने अडेछे तेथी ते दूरना पदार्थोना पण रसने रसनेन्द्रिय ग्रहण करेछे, अने अधिक दूर रहेला पदार्थोमांथी नीकळेला रसयुक्त पुद्गलो स्वभावेज रसनेन्द्रियने अयोग्य थाय छे. (अहिं खारो रस. मधुररसमां अंतर्गत जाणवो.)

३ घ्राणेन्द्रिय पदार्थोमां रहेल सुगंध वा दुर्गंधने जाणी शके छे. अने ९ योजन दूरथी आवेलो गंध ग्रहण करी शके छे. पूर्वनी माफक योग्यायोग्यत्वनी भावना विचारी लेवी.

४ चक्षु इन्द्रिय पदार्थोना रूप-वर्ण अने आकारने देखी शके छे, अने ते वधुमां वधु लाख योजन दूर रहेला निस्तेज पदार्थोने देखी शके छे, अने चंद्र सूर्यादि तेजस्वी पदार्थोने तो घणा लाख (२१ लाख-उपरांत योजन दूरथी पण पुष्करार्धना मनुष्यो) देखी शके छे. आ रूप पण कृष्ण-नील-पीत-रक्त अने श्वेत (काळो-- लीलो-- पीळो--लाल-- अने धोळो) एम ५ प्रकारे छे.

५ श्रोत्रेन्द्रिय [1]सचित्त [2]अचित्त अने [3]मिश्र शब्द-अवाजने सांभळी शके छे, अने ते १२ योजन दूरथी आवेल शब्दने सांभळी शके छे. ए प्रमाणे उत्कृष्ट क्षेत्रमर्यादा कही, अने जघन्य (लघुमां लघु) क्षेत्रमर्यादा आ प्रमाणे---चक्षु इन्द्रिय अंगुलना संख्यातमा भाग जेटले दूर रहेलो पदार्थ देखी शके, अने शेष इन्द्रियो अं-

१ सजीव वस्तुमांथी प्रगट थयेलो शब्द सचित्त गणाय जेम जीवनो.

२ निर्जीव वस्तुमांथी प्रगट थयेलो शब्द अचित्त गणाय जेम पथरानी साथे अफळायला पथ्थरनो.

३ जीव प्रयत्नथी थयेलो निर्जीव पदार्थनो शब्द मिश्र गणाय. जेम मोंढाथी वागती भूंगळ वगेरेनो, अहिं प्रसंगे ८ स्पर्श-५ रस-२ गंध-५ रूप (वर्ण)-अने ३ शब्द मळी पांच इन्द्रियोना २३ विषयो पण कह्या.

गुलना असंख्यातमा भाग जेटले दूरथी आवेला विषयने ग्रहण क-री (अनुभवी) शके.

॥ इन्द्रियोनुं प्राप्यकारी अने अप्राप्यकारी पणुं. ॥

स्पर्शेन्द्रिय-रसनेन्द्रिय-घ्राणेन्द्रिय-अने श्रोत्रेन्द्रिय ए चार इन्द्रियो पोताने प्राप्त थयेला विषयनेज ग्रहण करी [जाणी] शके छे माटे प्राप्यकारी छे, कारणके स्पर्शेन्द्रियने उष्ण वा शीत जलनो स्पर्श थया सिवाय (बन्नेनो परस्पर संबंध थया सिवाय) जळनी उष्णता अथवा शीतलता मालूम पडती नथी. ए प्रमाणे रसनेन्द्रियादिमां इन्द्रिय अने विषयनो परस्पर संबंध थाय तोज ते विषयनो अनुभव थइ शके छे माटे प्राप्यकारी छे.

तथा चक्षु अने मन ए बे इन्द्रियो अप्राप्त विषयने (एटले पोताने संबंध करीने रहेला विषयने नहिं पण दूर रहेला विषयने) अनुभवी शके छे (देखी या चींतवी शके छे) माटे अप्राप्यकारी छे. कारणके चक्षुमां पडेलुं तृणखलुं चक्षु देखी शके नहिं, अने मन जे पदार्थने चिंतवे छे ते पदार्थ[1] मनः पुद्गलोनी साथे आवीने संबंधवाळो थतो नथी, तेमज मनना पुद्गलो पण त्यां जइने लागता नथी, माटे ए बन्ने अप्राप्यकारी छे. (अहिं प्रकरण इन्द्रियोनुं चाले छे, तोपण अप्राप्यकारीपणाने प्रसंगे मन नोइन्द्रिय होवा छतां पण मननुं अप्राप्यकारीपणुं कह्युं.)

॥ इन्द्रियोना अणु तथा क्षेत्रनुं अल्पबहुत्व. ॥

सर्व इन्द्रियो (अभ्यन्तर इन्द्रियो) अनंत परमाणुनी बनेली

१ मन ए पुद्गलस्वरूप छे ते संबंध चालु विवेचनमां ज मनोबल वखते कहेवाशे.

छे, तथा असंख्य आकाश प्रदेश जेटला क्षेत्रमां रहेली छे तोपण परस्पर हीनाधिकता कहेवाय छे—चक्षु इन्द्रिय सर्वथी ओछा (पण असंख्य) आकाश प्रदेशमां रहेली छे. अर्थात् चक्षु इन्द्रियनुं [1]कद सर्वथी नानुं छे, तेथी कर्णेन्द्रिय संख्यातगुणी मोटी छे, तेथी घ्राणेन्द्रिय संख्यातगुण मोटी छे. तेथी रसनेन्द्रिय [2]असंख्य गुण मोटी छे, अने तेथी स्पर्शेन्द्रिय [3]संख्यात गुण मोटी छे, तथा चक्षुइन्द्रिय अल्प परमाणुनी बनेली छे, तेथी श्रोत्रेन्द्रिय संख्यात गुण परमाणुनी बनेली छे, तेथी घ्राणेन्द्रिय असंख्य गुण परमाणुनी बनेली छे, तेथी जीह्वा असंख्य गुण परमाणुनी बनेली छे, अने तेथी स्पर्शेन्द्रिय असंख्यगुण परमाणुओनी बनेली छे.

पुनः संज्ञी जीवमां आ इन्द्रियो विषय ग्रहण करी मनने जागृत करे, अने ते मनद्वारा जीवने विषयबोध थाय, परन्तु मन विना इन्द्रिय मात्रथी ज संज्ञी जीवने विषयबोध न होय, अने असंज्ञि जीवो तो मननी सहाय विना परभार्यो इन्द्रियद्वारा विषयबोध करी शके छे.

॥ कइ इन्द्रिय कया जीवने होय ?॥

स्पर्शेन्द्रिय सर्व संसारी जीव मात्रने होय, रसनेन्द्रिय पृथ्वी

१ अहिं कद ते लंबाइ प्होळाइरूप गणवुं पण जाडाइरूप नहिं. कारणके जाडाइ तो सर्वनी अंगुलनो असंख्यातमो भाग ज छे.

२ अंगुलना असंख्यतमा भाग करतां अंगुल पृथक्त्व असंख्यगुण मोटुं होवाथी.

३ ९ आत्मांगुलथी ३ गाउ (स्पर्शेन्द्रिय वधुमां वधु ३ गाउ मोटी होवाथी) एटले ५७६००० उत्सेध अंगुल संख्यात गुण होवाथी.

जळ अग्नि वायु ने वनस्पति ए पांच स्थावर विना सर्व जीवने होय, घ्राणेन्द्रिय स्थावर अने द्वीन्द्रिय सिवायना सर्व जीवने होय, चक्षु इन्द्रिय स्थावर—बे इन्द्रिय—अने त्रीन्द्रिय सिवाय सर्व जीवने होय, अने श्रोत्रेन्द्रिय फक्त पंचेन्द्रिय जीवोने ज होय.

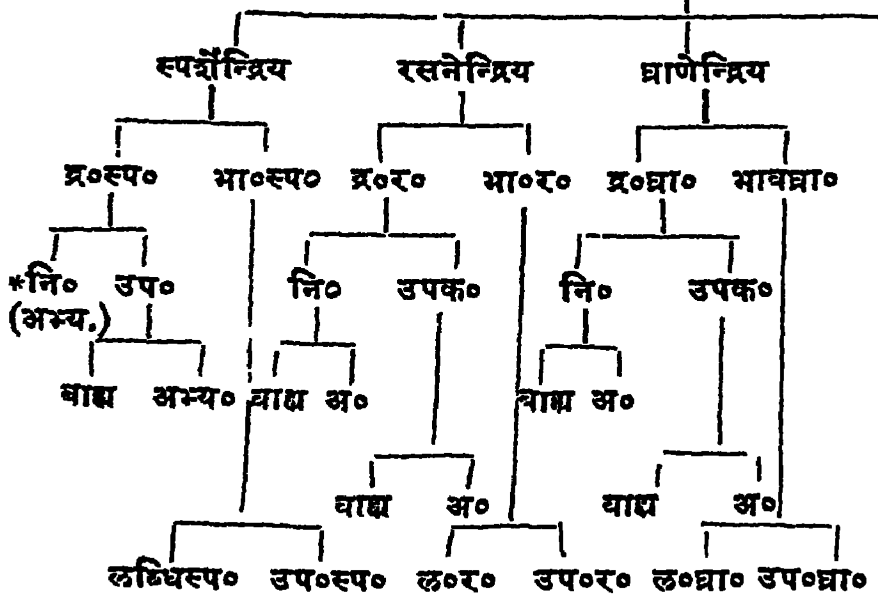
॥ कइ इन्द्रियो अल्प अने कइ अधिक छे ? ॥

सर्व जगतमां कर्णेन्द्रियनी संख्या अल्प छे (कारणके पंचेन्द्रिय जीवो थोडाज छे), तेथी चक्षु इन्द्रिय विशेषाधिक छे (एटले द्विगुणथी न्यून छे.), तेथी घ्राणेन्द्रिय विशेषाधिक छे, तेथी रसनेन्द्रिय विशेषाधिक छे, तेथी स्पर्शेन्द्रिय अनंत गुण छे. (कारणके साधारण वनस्पति अनंत छे)'

ए प्रमाणे ५ इन्द्रिय प्राणनुं किंचित् स्वरूप कहीने हवे छट्ठा मनोबल प्राणनुं स्वरूप कहेवाय छे.

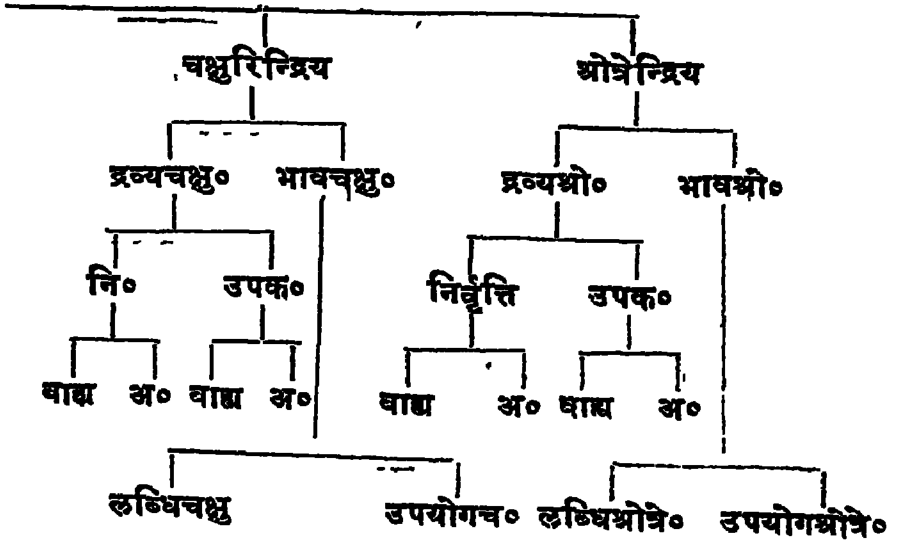


॥ इन्द्रियोना २९ भेदनी



* स्पर्शेन्द्रियमां द्रव्यनिर्वृत्तिना बाह्य अने अभ्यन्तर एवा बे भेद नथी. अथवा केवळ अभ्यन्तर निर्वृत्तिस्पर्शेन्द्रिय छे. पण बाह्यनिर्वृत्तिस्पर्शेन्द्रिय नथी.

स्थापना. ॥


चक्षुरिन्द्रिय
श्रोत्रेन्द्रिय
द्रव्यचक्षु०
भावचक्षु०
द्रव्यश्रो०
भावश्रो०
नि०
उपक०
निर्वृत्ति
उपक०
बाह्य
अ०
बाह्य
अ०
बाह्य
अ०
बाह्य
अ०
लब्धिचक्षु
उपयोगच०
लब्धिश्रोत्रे०
उपयोगश्रोत्रे०

॥ इन्द्रियोमां ९ द्वारनो यन्त्र. ॥

(४ द्वारो.)

इन्द्रियोनां नाम.	॥ जाडाइ प्रमाण १॥	विस्तार प्रमाण? २	जघन्ये केटले दूर रहे-लो विषय ग्रहे? ३	प्राप्यकारी के अप्राप्य-कारी ? ४
स्पर्शेन्द्रिय. १	अंगुलासंख्ये० भा०	स्वदेहप्रमाण.	अंगुलासंख्येयभाग.	प्राप्यकारी.
रसनेन्द्रिय. २	,,	आत्मांगुलपृथक्त्व	,,	,,
घ्राणेन्द्रिय. ३	,,	आत्मांगुलनो अ-संख्यातमोभाग.	,,	,,
चक्षुरिन्द्रिय. ४	,,	,,	अंगुलसंख्येयभाग.	अप्राप्यकारी.
श्रोत्रेन्द्रिय. ५	,,	,,	अंगुलासंख्येयभाग.	प्राप्यकारी.

(९ द्वारो.)

उत्कृष्टथी केटलेदूर रहेलो विषय ग्रहे ? ५	बद्धस्पृष्ट-स्पृष्ट के अस्पृष्ट विषय ग्रहे ? ६	अवगाहनानुं अल्पबहुत्व ? ७	केटला प्रदेशानी बनेली ? ८	द्रव्येन्द्रियो केटली ? ९
९ योजन(आत्मांगुलथी)	बद्धस्पृष्ट	रसने०थी संख्यगुण.	रसने०थी असंख्य गुण	१
,,	,,	घ्राणे०थी असंख्यगुण	घ्राणे०थी असंख्य गुण	१
,,	,,	श्रोत्रथी संख्येयगुण	श्रोत्रथी असंख्यगुण.	२
साधिक१ लाखयोजन (अभास्वर वस्तु आश्री) (आत्मांगुलथी)	अस्पृष्ट	सर्वथी अल्प अवगाहनावाळी	अनंतप्रदेशी.	२
१२योजन(आत्मांगुले)	स्पृष्ट	चक्षुथी संख्येयगुण	चक्षुथी संख्येय गुण.	२

॥ छठ्ठो मनबल प्राण. ॥

जे द्वारा संज्ञि जीव मनन चिंतवन करी शके ते मन कहेवाय. ए मन मनोवर्गणा रूप पुद्गलपरमाणुओना समुदायनुं बने छे. वळी ए मन मात्र गर्भज तथा औपपातिक (देव-नारक) जीवोनेज होय छे, मन पण द्रव्यमन अने भावमन एम वे प्रकारनु छे. त्यां मनःपर्याप्ति नामकर्मना उदय वडे काययोगे मनोयोग्य वर्गणा (पुद्गल समूह) ग्रहण करीने चिन्तवनव्यापारमां जोडायेल मनो योग वडे मनपणे (चिंतवन व्यापारना साधन पणे) परिणमावी, अवलंबीने विसर्जन करे ते (अथवा अपेक्षाए तेनी पर्याप्तिनो) पुद्गल समूह [1] द्रव्यमन कहेवाय, अने ए बन्ने प्रकारना द्रव्यमन रूप पुद्गलपरमाणुना आलंबन वडे (सहाय वडे) जीवनो जे चिंतवन व्यापार ते [2] भावमन कहेवाय. ए हेतुथी

---

१ मणपज्जत्तिनामकम्मोदयतो जोग्गे मणोदव्वे घेत्तुं मणत्तेण परिणामिया दव्वा दव्वमणो भन्नइ . इति लोकप्रकाशे नंद्यध्ययनचूर्णि पाठ.)तथा श्री तत्त्वार्थसूत्रमां मनःपर्याप्तिरूप करण पुद्गलो के जेने सर्वात्मप्रदेशवर्ती कह्यां छे ते पण अपेक्षाए द्रव्यमन कही शकाय, कारणके अयोगीने जे द्रव्यमन कह्यु छे ते मनोवर्गणारूप नहिं पण मन पर्याप्तिरूप संभवे छे. (दिगंबरो द्रव्य मनने अष्टदलपद्माकार हृदयस्थाने रहेलुं माने छे परन्तु एक देश भागमां रहेला मन-करणथी उपयोग प्रवृत्ति न संभवे, कारणके उपयोग प्रवृत्ति तो सर्व आत्मप्रदेशवर्ती होय छे माटे मनने हृदयस्थमात्र गणवुं युक्त न गणाय तेम ज सुखदुःखादिना अनुभवरूप मानसज्ञान सर्वात्मप्रदेशे संभवे छे. वळी सर्व बाह्य-अभ्यन्तर शरीरव्यापी त्वगिन्द्रियथी सर्व प्रदेशे स्पर्शज्ञ न थाय छे ते पण मनना सर्वात्मप्रदेशव्यापित्व विना होइ शके नही माटे मनने नैयायिकादिनी माफक अणु मानवुं के नियतदेशस्थ मानवुं ते केवळ अनुचित छे.) अंहि मननुं विसर्जन मनोयोगवडे गणाय छे.

२ मणदव्वालंबणो जीवस्स मणवावारो भावमणो भन्नइ

द्रव्यमन विना भावमन न होय पण भावमन विना द्रव्यमन भवस्थ सर्वज्ञने होय छे, ए मननो जे व्यापार ते मनोबल कहेवाय. अथवा जीवने प्राप्त थयेली जे मनोविज्ञान शक्ति ते मनोबल प्राण कहेवाय.

॥ सातमो वचनबल प्राण. ॥

भाषापर्याप्ति नामकर्मना उदयथी भाषा योग्य पुद्गलवर्गणा काययोगे ग्रहण करीने भाषापणे परिणमावी अवलंबी ने [1]वचन योग वडे निसर्जन करवानी जे शक्ति ते वचनबल कहेवाय. अथवा संक्षेपमां " जीवने वचनोच्चार करवानी जे शक्ति ते वचनबल प्राण कहेवाय. ए भाषा जीवभाषा कहेवाय. अने अजीव पदार्थमांथी उठतो अवाज ते अजीवभाषा कहेवाय, ए बन्ने भाषा पुद्गलपरमाणुनोज समूह छे, छतां नैयायिक विगेरे जे आकाशनो गुण माने छे ते अयुक्त छे, कारणके भाषा वायु वडे वहन कराती (खेंचाती) होवाथी, धूमनी माफक संहरण कराती होवाथी, पाणीनी माफक द्वारनी तरफ अनुसरण करती होवाथी, वायुनी माफक गुफा विगेरेमां अफलाती होवाथी क्रियावाळी छे, अने विचित्र क्रियाओ पुद्गल विना होइ शके नहि, माटे [2]रूपी छे. अने अरूपि तथा

(तत्रैव). तत्त्वार्थ अने नन्दीटीका विगेरेमां द्रव्यमन विना पण विकलेन्द्रियो तथा एकेन्द्रियोने सूक्ष्म भावमनोलब्धि मानी छे. क्वचित् सूक्ष्म द्रव्य मनोलब्धि पण विकलेन्द्रियोने मानवामांआवी छे.

१ गिन्हइ य काइएणं, निसरइ तह वाइएण जोगेण. इतिवचनात्

२ शब्द फोनोग्राफमां ग्रहण थतो होवाथी अने वायु जे तरफ विशेष होय ते तरफ वधु संभळातो होवाथी, अने भित्यादिवडे उपघात पामवाथी शब्द पुद्गलरूप छे. कारणके ग्रहण थवुं, वायुथी खेंचावुं, अने प्रतिघात थवो ते पुद्गलोनोज धर्म छे.

अक्रिय छे, माटे बन्ने भाषाओ रूपी एवा पुद्गलनो ज विकार छे, पण आकाशनो गुण नथी. पुनः जीवभाषानी उत्पत्ति औदारिक वैक्रिय अने आहारक ए त्रण भव प्रत्ययिक देहथी होय छे, अने ए देहमांथी जीवप्रयत्न वडे प्रगट थयेली भाषा जघन्यथी अंगुलना असंख्यातमा भाग सुधी, अने वधुमां वधु केवलि समुद्घातनी पेठे प्रथम समये 'दंड', द्वितीय समये 'कपाट' तृतीय समये 'मंथान' अने चतुर्थ समये 'अंतर पूर्त्ति' थवाथी [1]सुप्रतिष्ठ आकार सरखा चौदराज लोकमां व्याप्त थाय छे, जेथी जीवभाषानी आकृति सुप्रतिष्ठक सरखी गणाय छे. पुनः जीव भाषापुद्गलोने प्रथम समये ग्रहण करे छे, अने बीजे समये वचनरूपे परिणमावी विसर्जन करे छे, ए हेतुथी भाषानी [2]स्थिति एक समय मात्रनी छे, अने चालु प्रवाहरूपे तो उत्कृष्टथी अन्तर्मुहूर्त्त सुधीनी छे. पुनः जीव जे दिशा सन्मुख मुख करीने उभो होय ते दिशामां रहेल बीजो जीव ते मूळ तथा वासित थयेली भाषा सांभळे छे, अने शेष दिशामां रहेलो जीव ते मूळ भाषा वडे वासित थएली भाषा (मूळ भाषाना संसर्गथी भाषा रूप थयेल बीजां पुद्गलो) सांभळी शके छे, ए मूळ भाषानी लंबा-

---

१ उंधावाळेला शरावला (कोडीआ) उपर मूकेला शराव संपुट वडे जे आकार थाय ते सुप्रतिष्ठाकार

२ श्री प्रज्ञापनामां भाषापदनी मलयगिरिवृत्तिमां केटलाएक आचार्योना मन्तव्यने उद्देशीने कह्युं छे के " बीजा आचार्यो आ प्रमाणे कहे छे के प्रथम भाषा परिणामनी अपेक्षाए एक समय स्थिति वाळां पण भाषा पुद्गलो कह्यां छे, पुद्गलनो परिणाम विचित्र छे तेथी एकज प्रयत्न वडे ग्रहण करायेलां अने मूकायेलां ते पुद्गलोमांनां केटलांएक एक समय भाषापणे रहे छे, केटलांएक बे समय सुधी यावत् केटलांएक असंख्य समय सुधी पण (भाषापणे रहे छे—इति शेष.) ", इति अर्थतः

इ वधुमां वधु वकता उभो होय त्यांथी लोकना अन्त सुधी छे, अने पहोळाइ वक्ताना मुख जेटली लगभग चार आत्मांगुल प्रमाण अने जाडाइ वक्तानुं मुख बोलती वखते जेटलुं पहोळुं थाय तेटली जाणवी. इत्यादि जीवभाषानुं विशेष स्वरुप विशेषावश्यक विगेरे ग्रन्थोमां प्रगट छे. पुनः अजीवभाषाना तत वितत विगेरे भेदो छे जे आगळ पुद्गल परिणामना स्वरूपमां कहेवाशे.

॥आठमो कायबल प्राण.॥

काय एटले शरीरनो जे व्यापार अथवा शक्ति ते जीवोने कायबल प्राण कहेवायछे, त्यां शरीर औदारिक–वैक्रिय–आहारक–तैजस–अने कार्मण ए प्रमाणे पांच प्रकारनां छे तेनो संक्षिप्त अर्थ आ प्रमाणे--

रस–रुधिर–मांस–मेद–मिंजा–हाड–अने वीर्य ए सात धातुओनुं बनेलुं जे शरीर ते औदारिक शरीर, अथवा औदारिक वर्गणारूप पुद्गलनुं बनेलुं जे शरीर ते औदारिकशरीर, अथवा तीर्थंकर गणधर चक्रवर्ती वासुदेव विगेरे उदारगुणवाळा महात्माओने पण जे शरीर होयछे ते औदारिकशरीर कहेवाय. १ ॥

विविधप्रकारनी क्रिया करवानी शक्तिवाळुं जे शरीर ते वैक्रियशरीर, कारणके ए शरीरवाळो जीव खेचर (गगन मार्गे चालनार) थाय, अने भूचर (जमीनपर चालनार मनुष्यादि रूपे) थाय, एक थाय अने अनेक पण थाय, मोटो थाय अने नानो पण थाय, हलको थाय अने भारी पण थाय, दृश्य थाय अने अदृश्य पण थाय, एप्रमाणे विविध प्रकारनी क्रियाओ करी शके छे माटे वैक्रिय शरीर कहेवाय, अथवा वैक्रिय नामनी पुद्गलवर्गणानुं बनेल शरीर ते वैक्रिय शरीर कहेवाय. २ ॥

तथाविध लब्धिवाळा चौदपूर्वधर मुनिराज श्रीजिनेश्वरनी ऋद्धि देखवाने माटे, अथवा सूक्ष्म अर्थनो संदेह दूर करवाने माटे एक हस्तप्रमाण (आहारक पुद्गलवर्गणानुं) नवुं शरीर बनावी विचरता तीर्थंकर भगवान पासे मोकले ते आहारक शरीर कहेवाय. ३ ॥

खाधेला आहारने पाचन करवांनी शक्तिवाळु अने तेजोलेश्या तथा शीतलेश्याना कारणरूप जे शरीर ते तैजस शरीर कहेवाय. आ शरीरना प्रभावे देहमां उष्णता रहे छे. ४ ॥

मतिज्ञानावरणादि १५८ कर्मप्रकृतिना पिंड रूप जे शरीर ते कार्मणशरीर कहेवाय. पुनः आ शरीर पोताने अने शेष चार शरीरने पण उत्पन्न करवामां, भवान्तर जवामां अने प्रथम समये आहारपुद्गलो ग्रहण करवामां कारणरूप छे. ५ ॥

॥ पांच शरीरमां कारणभेद. ॥

औदारिक शरीर बादर (स्थूल) पुद्गलनुं बनेलुं छे. वैक्रियशरीर तेथी सूक्ष्म पुद्गलनुं बनेलुं छे, आहारक शरीर तेथी पण सूक्ष्म पुद्गलनुं बनेलुं छे, तेथी तैजस सूक्ष्मपुद्गलनुं, अने तेथी पण कार्मणशरीर अति सूक्ष्मपुद्गलनुं बनेलुं छे. ॥

॥ पांच शरीरमां प्रदेशसंख्या. ॥

औदा० शरीर अतिअल्प परमाणुओनुं बनेलुं छे, वैक्रियशरीर तेथी असंख्यगुण परमाणुओनुं, आहारकशरीर तेथी असंख्यगुण परमाणुओनुं, तैजस शरीर तेथी अनंतगुण परमाणुओनुं, अने कार्मण शरीर तेथी पण अनंतगुण परमाणुओनुं बनेलुं छे.

॥ पांच शरीरना स्वामी. ॥

औदा० शरीर सर्वतिर्यंच अने सर्वमनुष्यने होय, वै० शरीर

सर्वेदेव सर्वनारक वै० लब्धिवंत गर्भज मनुष्य अने गर्भजतिर्यंच तथा केटलाएक बादरपर्याप्त वायुकाय जीवोने होय, आहा० शरीर आहा० लब्धिवाळा चौदपूर्वधर मुनिराजने होय, अने तैजसकार्मणशरीर सर्वजीवने सदाकाळ होय. ॥

॥ एक जीवने समकाळे केटलां शरीर ? ॥

एकभवमांथी बीजाभवमां वक्रगतिए जता जीवने समकाळे तैजस अने कार्मण ए बेज शरीर होय. पुनः ते जीव उत्पत्ति स्थाने उत्पन्न थइ शरीरपर्याप्ति पूर्ण थयाबाद औदारिक अथवा वैक्रियदेह युक्त थवाथी औदारि०--तैज०--कार्म०--अथवा वै० तै० का० एत्रण शरीरवाळो थाय. तदनंतर सर्वपर्याप्तिए पर्याप्त थयाबाद जो लब्धिवाळो होय अने लब्धि फोरवे तो ग० मनुष्यने अने गर्भज तिर्यंचने समकाळे औदारि०--वैक्रि०--तैज०--अने का० ए चार शरीर होय, अथवा आहारक लब्धि फोरववाना काळमां चौदपूर्वधर मुनिमहाराजने औदा०--आहार०--तैज०--अने का० ए चार शरीर समकाळे होय, परंन्तु आहारक अने वैक्रिय ए बे शरीर साथे नहिं होवाथी पांच शरीर एक जीवने समकाळे कदी पण न होय. तेमज तै० अने का० ए बे शरीर अभव्यजीवने प्रवाहथी अनादि अनंत अने भव्य जीवने अनादि सान्त संबंधवाळां होवाथी एक जीवने एक शरीर पण कदी होय नहिं.

---

१ श्री तत्त्वार्थभाष्यमां अन्य आचार्योना अभिप्रायथी तैजस शरीर तैजसलब्धिवंतने होय एम गणीने स्वमते ५ विकल्प अने मतान्तरे ७ विकल्प कह्या छे ते आ प्रमाणे—तै०का १,तै०का०औ०२. तै०का०वै०३,तै०का०औ०वै०४,तै०का०औ०आ०५,(ए स्वमते).—का० १,का०औ० २,का०वै०३,का०आ०वै० ४,का०औ०आहा०५, का०तै० औ० वै० ६,का० तै० औ० ७, (ए ७ विकल्प मतान्तरे.)

॥ पांच शरीरनुं व्याप्ति क्षेत्र (गति क्षेत्र.) ॥

औदा० शरीरनी तिर्यग्गति १३मा रुचक द्वीपमां रहेला रुचक पर्वतसुधी छे, ऊर्ध्वगति मेरुना शिखर (पांडुकवन) सुधी, अने [1]अधोगति कंइक योजन सुधी. (अधोगतिनो विषय शास्त्रमां मालूम पडतो नथी). वैक्रिय शरीरनी तिर्यग्गति असंख्य द्वीप समुद्र सुधी अने ऊर्ध्व तथा अधोगति दरेक जातना स्वामिओ भिन्न होवाथी कहेवी अशक्य छे, ते शास्त्रान्तरथी जाणवी, तथा आहारक शरीरनी तिर्यग्गति (तीर्च्छी गति) महाविदेह सुधी (लगभग ५० हजार योजन अधिक) छे; अने ऊर्ध्व [2]अधोगति संभवे नहिं. तथा तैजस कार्मण देहनी गति केवलिसमुद्घात तथा मरणसमुद्घात वडे करीने सर्व दिशाओमां लोकान्त सुधी छे. अहिं शरीरनी गति एटले ते शरीरवाळा जीवनी गति जाणवी.

॥ पांच शरीरनो उपयोग. ॥

धर्म-अधर्म--सुख--दुःख--केवलज्ञान--अने मोक्ष उपार्जन करवामां औदा० शरीर उपयोगी छे. विविध प्रकारनां रूप बनाववामां वैक्रिय शरीर उपयोगी छे, जिनेश्वरनी ऋद्धि देखवामां अने सूक्ष्मार्थनो संदेह दूर करवामां आहा० शरीर उपयोगीछे, शत्रुने शाप आपवा अने प्रसादपात्र जीव उपर उपकार–अनुग्रह करवा माटे तेजोलेश्या अने शीतलेश्या मूकवामां तथा आहारनुं पाचन करवामां तैजस शरीर उपयोगी छे, अने एक भवथी बीजा भवमां जवामां

---

१ चेडा महाराजने नागकुमारनिकायनी दक्षिण श्रेणिना अधिपति धरणेन्द्र स्वभवनमां लइ गया हता.

२ अधोलोकमां विचरता तीर्थंकरो पासे जाय तो त्यां सुधी पण संभवी शके.

प्रथम समये आहार ग्रहण करवामां तथा केवलिसमुद्घातमां त्रीजे चोथे पांचमे समये आत्मप्रदेशनो विकास संकोच करवामां कार्मण शरीर [1]उपयोगी छे (कारणके का० शरीर जीवने परभवमां लइ जाय छे.)

॥ पांच शरीरोनी उंचाइ. ॥

औदा० शरीरनी उंचाइ कंइक अधिक १००० योजनप्रमाण (प्रत्येक वनस्पतिना शरीरनी अपेक्षाए) छे. वैक्रियशरीरनी उंचाइ चार अंगुल अधिक एक लाखयोजनप्रमाण (गर्भज मनुष्य कृत वै० शरीरापेक्षाए) छे. आहारकनी उंचाइ १ हाथप्रमाण, अने तैजसकार्मणनी उंचाइ १४ राज प्रमाण.

॥ पांच शरीरनो जघन्य अने उत्कृष्ट काळ. ॥

औदा० शरीरनो ज० काळ अन्तर्मुहूर्त अने उत्कृष्ट काळ युगलिकनी अपेक्षाए ३ पल्योपम प्रमाण छे, लब्धिप्रत्ययिक उत्तर वैक्रियशरीरनो काळ जघ० अन्तर्मुहूर्त (बा० प० वायु आदिकना उत्तरवै०नी अपेक्षाए) अने उत्कृष्ट ४ मुहूर्त (तिर्य० मनु० ना उत्तर० वै०नी अपेक्षाए), तथा भवप्रत्ययिक उत्तरवै० देहनो ज० काळ (नारककृतोत्तरवै०नी अपेक्षाए) अन्तर्मु० अने उत्कृष्ट(देवकृत उत्तरवै०नी अपेक्षाए) पंदर दिवस छे, भवप्रत्ययिक मूळवै० शरीरनो जघ० काळ १०००० वर्ष, अने उत्कृष्ट काळ ३३

१ कार्मण शरीर वडे सुख दुःख भोगवाय नहि, कर्म बंधाय नहि, कर्म भोगवाय नहि, कर्म निर्जरे नहि, अने तैजसादि चारे शरीर वडे सुख दुःख भोगवाय छे, कर्म निर्जरे छे (–इति श्री तत्वार्थभाष्यमां). एमां मूळ कारण रूपे तो कार्मण शरीर छे, परन्तु सुख दुःख भोगववा विगेरेमां कारण साधन रूपे कार्मण शरीर नहि एम जाणवुं.

सागरोपम छे, तथा आहारकनो ज० अने उत्कृ काळ पण अन्तर्मुहूर्त्तज छे, अने तैजस कार्मणनो जघ० वा उत्कृष्टकाळ भव्यने अनादिसान्त, अने अभव्यने अनादिअनंत छे,

॥ पांच शरीरनी प्रत्येकनी समकाळे संख्या. ॥

औदा० शरीर एकीवखते जघ० थी अने उत्कृष्टथी पण असंख्यज होय, वैक्रियशरीर पण जघ० थी उ० थी एककाळे असंख्य होय, आहारकशरीर एककाळे जघ० थी एक बे अने उत्कृष्टथी ९००० होय, अने ते० का० शरीर सर्वदा अनंत होय छे,

॥ पांच शरीरनो विरहकाळ.

एक जीव आश्रयि औदा० शरीरनो जघ० विरह (अभाव काळ) १ समय (वक्रगतिए परभव जतां) होय, अने उ० विरहकाळ अन्तर्मुहूर्त्ताधिक ३३ सागर प्रमाण (कोइक चारित्री भवप्रान्ते वै० शरीर करी अन्तर्मु० जीवीने अनुत्तरदेव थाय ते अपेक्षाए) होय,–वैक्रिय शरिरनुं जघ० अन्तर अन्तर्मु० अने उत्कृष्ट अन्तर वनस्पतिमां भमतां (वनस्पतिनी कायस्थिति तुल्य) आवलिकाना असंख्यातमा भाग जेटला पुद्गलपरावर्त्त प्रमाण छे, आहारकनुं जघ० अन्तर अन्तर्मु० अने उत्कृ० अन्तर अर्धपुद्गलपरावर्त्त प्रमाण पुनः चारित्रप्राप्तिनो विरहकाळ एटलो होवाथी छे, अने ते० का० शरीरने अन्तर नथी. अनेक जीवोनी अपेक्षाये चार शरीरनो विरहकाल न होय, अने आहारक शरीरनो जघन्य १ समय उत्कृष्ट छ मास अने जीवसमास मते वर्षपृथक्त्व विरहकाल होय छे,

॥ कया जीवने केटला शरीर ? ॥

एकेन्द्रियमां बा० प० वायुकाय सिवाय सर्व जीवने औदा० तै० अने का० ए ३ शरीर, अन बा० पर्या० वायुने एज ३ अथवा वै० सहित ४ शरीर पण होय. विकलेन्द्रियने सम्मू० तिर्यंच पचेन्द्रियने अने सम्मू० मनुष्यने औदा०–तै०–ने कार्मण ए ३ शरीर होय. देवोने अने नारकने वै०–तै– ने का० ए ३ शरीर होय. अने गर्भजतिर्यंचपंचेन्द्रियने औदा०–तै०– अने का० ए ३ शरीर तथा लब्धिवाळा ग० ति० पंचे०ने पूर्वोक्त ३ अने वै० सहित ४ शरीर पण होय. अने गर्भज मनुष्यने औ० तै० का० ए ३, अथवा वैक्रिय लब्धिवंतने औ० वै०तै०का० ए चार आहारकलब्धिवाळाने ओ० आ० तै का० ए चार. अने बेउ लब्धिवाळा मनुष्यने औ०–वै०–आहा०–तै० अने कार्मण ए ५ शरीर पण (३–४–५ शरीर) होय.

ए पांच शरीरद्वारा जीवनो जे व्यापार ते ' कायबल प्राण ' कहेवाय. उपर लखेलां ११ द्वारोनु संक्षिप्त वर्णन आगळ आलेखेला पांचशरीरना यंत्रथो जाणवु.



॥ पांच शरीरमां कारणकृतविशेषादि ११ द्वारयन्त्रकम् ॥

(३ द्वारो).

शरीरनां नाम.	कारणकृत विशेष (पुद्गल परिणाम) १	प्रदेश संख्या० (एक स्कंधमां) २	स्वामि० ३
औदा०	स्थूल पुद्गलोथी बनेलुं.	अभव्यथी अनंत-गुण, सिद्धथी अनंतमे भागे.	सर्वतिर्यंच अने सर्व मनुष्य.
वैक्रिय.	औदा०थी सूक्ष्म पुद्गलोवडे बनेलुं.	औ०थी असंख्य-गुण.	सर्व देव, सर्व नारक, केटलाएक बा० पर्या० वायु, गर्भजतिर्यंच, ग० नर.
आहा०	वै०थी सू०पुद्गलो वडे बनेलुं.	वै०थी असंख्यगुण.	चौदपूर्वलब्धि-वंत.
तैजस.	आहा०थी सू०पु-द्गलोवडे बनेलुं.	आहा०थी अनंत-गुण.	सर्व संसारी जीवो.
कार्मण	तैज०थी सू० पुद्ग-लोवडे बनेलुं.	तै०थी अनंतगुण.	”

(४ द्वारो.)

गति विषय. ४	प्रयोजन. ५	अवगाहना. ६	केटला आकाश-प्रदेशमां. ७
ऊर्ध्व—पंडुकवन सुधी. तिर्यक्—१३मा रुचकद्वीपमां रुचक पर्वत सुधी.	धर्माधर्मोत्पत्ति मोक्षप्राप्ति इत्यादि.	साधिक १००० योजन.	आहा०थी संख्यातगुण प्रदेशोमां.
असंख्यद्वीप समुद्र.	एकानेकत्वादि नभोगत्यादि संघसहाद्यादि.	साधिक १००००० योजन.	औदा०थी संख्यगुण प्रदेशोमां.
महाविदेह सुधी.	सूक्ष्मार्थसंशयछेद जिनेन्द्र ऋद्धिदर्शन इत्यादि.	१ हाथ.	असंख्य आकाशप्रदेशमां.
लोकना एक छेडाथी बीजा छेडा सुधी (परभवमां जतां.)	श्राप-वरदान-भोजननो पचाव इत्यादि.	संपूर्ण लोकाकाश.	वै०थी असंख्यगुण आकाशप्रदेशोमां.
"	अन्यभवमां गति.	"	तै० तुल्य.

(४ द्वारो.)

स्थिति. ८	अल्पबहुत्व (देह संख्या). ९	अन्तर (अनेक जीव आश्रयि). १०	उ० अन्तर (एक जीवाश्रयि). ११
जघ०—अन्तर्मुहूर्त. उत्कृष्ट—३ पल्योपम.	वै०थी असंख्यगुण.	अन्तर न होय.	अन्तर्मु०अधिक ३३ सागर.
जघ०—१०००० वर्ष, उ०—३३ सागर } मूळ वैक्रिय जघ०—अन्तर्मु०, उ०—०॥ मास } उत्तरवैक्रिय	असंख्य.	अन्तर न होय.	आवलिकाना असंख्यातमा भाग जेटलां पुद्गलपरावर्त्त.
जघ०—अन्तर्मु० उ०—अन्तर्मु०	९००० (कदाचित्)	जघ०—१ समय. उ०—६ मास.	०॥ पुद्गलपरावर्त्त.
भव्यने—अनादिसान्त. अभव्यने—अनादि अनन्त.	अनंत.	अन्तर न होय.	अन्तर नथी.
"	"	"	"

॥ नवमो आनप्राण (श्वासोच्छ्वास) प्राण ॥

उच्छ्वासनामकर्म अने उच्छ्वासपर्याप्तिवडे श्वासोच्छ्वास योग्य पुद्गलवर्गणा ग्रहण करीने श्वासोच्छ्वास पणे परिणमावी अवलंबीने विसर्जे ते श्वासोच्छ्वास प्राण कहेवाय. जीवने श्वासोच्छ्वास नामकर्मवडे श्वासोच्छ्वास लब्धि प्राप्त थाय छे, जेथी तद्योग्य पुद्गलोने श्वासोच्छ्वास पणे परिणमावी शके छे, अने श्वासोच्छ्वासपर्याप्तिवडे ते पुद्गलोने श्वासोच्छ्वासपणे परिणमाववा विगेरे क्रिया करवाने शक्तिवाळो थाय छे, ए प्रमाणे श्वासोच्छ्वासलब्धि श्वासोच्छ्वासनामकर्मवडे, अने ते संबंधि व्यापार श्वासोच्छ्वास पर्याप्तिवडे साध्य छे, कारणके उच्छ्वासलब्धि होते छते पण ते लब्धिने व्यापृत करवाने फक्त पर्याप्तिवडेज समर्थ थाय छे, जेम बाण फेंकवानी शक्ति होते छते पण धनुर्ग्रहणादि व्यापार विना सुभट ते शक्तिने सफल करी शकतो नथी तेम पर्याप्ति विना जीव उच्छ्वास लेवा मुकवा रूप शक्तिने सफळ करी शकतो नथी, ए प्रमाणे श्वासोच्छ्वास लेवा मूकवामां वर्तवुं प्रयोजनछे.

गाथामां [1]'आणपाण' शब्द अभ्यंतर श्वासोच्छ्वास अने बाह्य श्वासोच्छ्वास ए बन्ने अर्थवाळो छे, अर्थात् जे एकेन्द्रियादिजीवो नासिकाद्वारविना श्वासोच्छ्वास ले छे ते 'अभ्यन्तर छे; अने त्रीन्द्रियादिप्राणिओ नासिकाद्वारा पण श्वासोच्छ्वास ले छे ते[2]बाह्य

१ श्री प्रज्ञापना सूत्रमां "आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा" ए पाठनो श्री मलयगिरिजी महाराजे आणमंति एटले उससंति अने पाणमंति एटले नीससंति अर्थात् आण एटले उच्छ्वास अने पाण एटले निःश्वास अर्थ करेल छे, अने एज टीकाकार महाराजे बीजा आचार्योनो करेलो अर्थ आगळनी फुटनोट प्रमाणे करेलो छे.

१-२ श्री प्रज्ञापना सूत्रमां उच्छ्वासपदमां कह्युं छे के "अप-

श्वासोच्छवास गणाय छे. आ श्वासोच्छवास पण पुद्गलनोज विकार छे; श्वासोच्छवासनां पुद्गलो सूक्ष्म होवाथी इन्द्रियग्राह्य नथी. सुखी जीवोने श्वासोच्छवास लेवा मूकवानो व्यापार बहु अल्प होय छे, अने दुःखी जीवने श्वासोच्छवास व्यापार अधिक होय छे. जेथी देवताओ वधुमां वधु १६॥ मासने अन्तरे श्वासोच्छवास लेवा मूकवानी क्रिया करे छे, अने अति दुःखी एवा नारक जीवो प्रति समय श्वासोच्छवास क्रिया करे छे शेष जीवो अनियमित अन्तरे श्वासोच्छवास क्रिया करे छे. पुनः श्वासोच्छवासनुं ग्रहण काययोगवडे अने विसर्जन पण काययोगवडे थाय छे, परन्तु मन अने वचननी पेठे काययोगे ग्रहण अने मन वचनयोगे विसर्जन थाय छे, तेम नथी, ' जेथी श्वासोच्छवास योग ' एवो व्यपदेश थतो नथी (जेनुं विस्तृत कारण श्री विशेषावश्यकमां छे.

॥ दशमो आयुष्य प्राण ॥

जेना वडे जीव ते भवनी अंदर अमुक काळ सुधी टकी शके छे ते आयुष्य कहेवाय, अथवा जेनावडे जीव परभवमां अवश्य जाय छे, ते आयुष्य कहेवाय अथवा विवक्षित भवमां जेटला काळसुधी जीव रहे तेटलो काळ आयुष्य कहेवाय, ए आयुष्य पण पुद्गलनो समुदाय छे, के जे पुद्गल समूहनी सहायवडे जीव जीवे छे, ए आयुष्य द्रव्यायुष्य अने कालआयुष्य एम २ प्रकारनु छे,

॥ द्रव्यायुष्य अने कालआयुष्य ॥

आयुष्यकर्मनां जे पुद्गलो ते द्रव्यायुष्य, जेम तेल विना दीपक

२ आचक्षते आनन्ति प्राणन्ति इत्यनेनान्त स्फुरन्ती उच्छ्वास निःश्वासक्रिया परिग्रह्यते, उच्छ्वसन्ति निःश्वसन्ति इत्यनेन तु बाह्या,

वळी शकतो नथी तेम आयुष्यपुद्गल विना जीव जीवी शकतो नथी ए हेतुथी आयुष्य अवश्य पोद्गलिक ज छे,

आयुष्य कर्मनां पुद्गलोनी सहायवडे जीव जे अमुक काळसुधी जीवी शके छे, ते जीवनकाळनु नाम 'काळआयुष्य' कहेवाय. आगळ कहेवाशे ते रीते द्रव्यआयुष्य संपूर्ण थया विना जीव कदी पण मरण पामतो नथी (एमां कोइ जातनो अपवाद छे ज नहिं) अने फाळआयुष्य तो जो अपवर्त्तनीय होयतो (काळआयुष्य) पूर्ण कर्याविना मरणपामे अने अनपवर्त्तनीय होयतो संपूर्ण करीने पण मरणपामे. ते अपवर्त्तनीय विगेरे भेद निचे प्रमाणे छे,

॥ अपवर्त्तनीय अने अनपवर्त्तनीय आयुष्य ॥

(तथा सोपक्रमी अने निरुपक्रमी.)

जीवे आयुष्यनी स्थिति पुर्वभवमां एवी शिथिल (नरम) बांधी होय के जेथी शस्त्रादिकना आघात वगेरेथी ते बांधेली स्थिति (काळआयुष्य) पूर्ण कर्याविना (अधुरे आयुष्ये) मरणपामे ते शिथिल आयुष्यनु नाम अपवर्त्तनीय आयुष्य कहेवाय.

जीवे पूर्वभवमां आयुष्यनी स्थिति एवी तीव्र [घन) बांधी होय के जेथी शस्त्रादिकना आघात लाग्या छतां पण ते बांधेली आयुष्य स्थिति (काळआयुष्य) पूर्ण करीने मरणपामे, अर्थात् ते शस्त्रादिकना आघातथी पण अपूर्ण आयुष्ये मरण न पामे ते अनपवर्त्तनीय आयुष्य कहेवाय.

१ प्रज्ञापनाजीमां एनुं नाम स्थितआयुष पण कहेल छे पुनः ते स्थाने बे भेद करतां पण वधु (७ लगभग) भेद पाडेला छे, परन्तु अत्रे विशेष उपयोगी बे भेद ज अंगीकार कर्या छे

ए प्रमाणे अपवर्त्तनीय अने अनपवर्त्तनीय भेद काळआयुष्य-नाज छे, परन्तु द्रव्यआयुष्य (आयुष्य पुद्गलो) अपवर्त्तनीय अन-पवर्तनीय नथी. कारणके आयुष्यनां जेटलां पुद्गलो (आयुष्यना-जेटला परमाणु) जीवे ग्रहण करेला छे ते सर्व (परमाणुओ) क्षय थया बादज जीव मरण पामी शके, परन्तु आयुष्यनो एक पण परमा-णु जीवने क्षय करवो बाकी रह्यो होय अने जीव मरण पामे एम कदी पण बनी शकेज नहिं, अने काळआयुष्यमां तो सेंकडो वर्षनी स्थिति उपार्जन करी होय छतां अन्तर्मुहूर्त्तमां पण मरण पामी जाय एम बनी शकेछे. ए हेतुथी द्रव्यआयुष्य संपूर्णथये अने काळआयुष्य अपूर्ण रह्ये छते पण जीवनुं मरण थइ शकेछे.

शंका—आयुष्य ए पुद्गल छे अने स्थिति ते पण आयुष्यनां पुद्गलनीज छे, तो सर्व पुद्गलनो क्षय थाय अने सर्व स्थितिनो क्षय न थाय ते केम बनी शके?

उत्तर—हे जिज्ञासु! ए शंका सत्य छे, परन्तु जेम कोडीआमां पूरेलुं तेल दीपकनी मोटी ज्योति करवाथी शीघ्र बळी जायछे त्यारे सर्व तेलनो क्षय थतां पण "आ दीपक अल्पकाळ बळ्यो" अथवा "दीपक अल्पकाळमां बुझाइ गयो" एवो व्यपदेश थाय छे, तेम आ-युष्यनां सर्वपुद्गल क्षय थया छतां पण आयुष्यनो काळ अपूर्ण रहे-वाथी वास्तविक रीते ते अपूर्ण काळे मरण पाम्यो एवो व्यपदेश थाय छे, कारणके जीवनुं जीववुं आयुष्य पुद्गलोना आलंबनथीज छे. तथा १०० हाथनी लांबी करेली दोरीने एक छेडेथी सळगा-वी होयतो ते घणे काळे बळी रहे, परन्तु ते दोरीनुं गुंछळुं (गुंडाळु) करवामां आवेतो शीघ्र बळी जाय छे, तेम आयुष्यना पुद्गलो प्रथम समये बीजे समये त्रीजे समये जे रीते क्षय पामतां जाय छे तेज अनुक्रमे जो आयु पुद्गलोनो क्षय चालु रहे तो १०० वर्षे सर्व

पुद्गलोनो क्षय थाय, परन्तु तेवी रीत अल्पकाळ चालु रह्या बाद ते रीति पुनः पलटाइने प्रतिसमय प्रथम करतां वधु ने वधु पुद्गलोनो क्षय थवा मांडे तो अन्तर्मुहूर्त्तमां पण तेज पुद्गलोनो सर्व क्षय थइ-जाय, जेथी १०० वर्ष संपूर्ण न थया छतां पण (१०० वर्षे पूर्ण थनार) सर्व पुद्गलनो क्षय थइ गयो. तथा १ मण पाणीनी भरेली अपक्व (भट्ठीमां बराबर नहिं पाकेली) माटीनी गोळी थोडीवार सुधी तो बिंदु बिंदु जेटली टपके, परन्तु थोडीवार पछी ते गोळीमां फाट पडवाथी तेमां भरेलुं १ मण पाणी घणा प्रमाणमां जवा मांडे जेथी अल्पकाळमांज सर्व जळनो क्षय थाय तेम अपक्व (शिथिल) आयुष्य माटे पण जाणवुं. इत्यादि अनेक दृष्टांतो स्वबुद्धिए विचारवां.

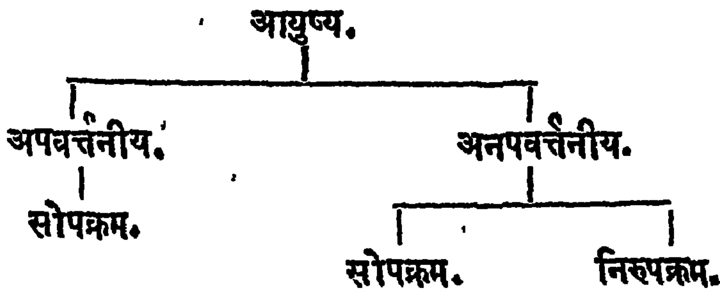
॥ सोपक्रमी अने निरुपक्रमी आयुष्य. ॥

शस्त्रादि बाह्य निमित्तथी जे आयुष्यनो क्षय थाय ते [1]"सोपक्रम आयुष्य" कहेवाय. अहिं उपक्रमनो अर्थ "बाह्य निमित्त" छे. अथवा आयुष्यना अन्तसमये जेने बाह्य निमित्त विद्यमान होय तेवुं आयुष्य पण [2]सोपक्रम आयुष्य कहेवाय.—तथा बाह्य निमित्तवि-

१ आ अर्थ अपवर्त्तनीय आयुष्यवाळा जीवने माटे छे.

२ आ अर्थ अनपवर्त्तनीय आयुष्यवाळा जीवना संबंधमां छे. कारणके ए जीवना आयुष्यना अन्त समये उपक्रम विद्यमान होय छे परन्तु ते उपक्रम आयुष्यनो क्षय करवामां हेतुभूत नथी कारणके अनपवर्त्तनीय आयुष्य उपक्रमवडे क्षय न थाय इति तत्त्वार्थवृत्यभिप्राय. पुनः घणा ग्रंथकार अने सिद्धान्तकर्त्ता महात्माओ तो सोपक्रम अने निरुपक्रम ए बे भेदमात्रथी ज आयुष्यनुं वर्णन करे छे. परन्तु अपवर्त्तनीय अने अनपवर्त्तनीय भेदनी मुख्यता जणावता नथी. परन्तु श्रीतत्त्वार्थवृत्तिना अभिप्राये बन्ने भेदोनो परस्पर संबंध राखवाथी वधु स्पष्ट बोध थइ शके छे.

नाज जे आयुष्यनो क्षय थाय ते 'निरुपक्रम आयुष्य' कहेवाय छे, प्रथम कहेल अनपवर्त्तनीय आयुष्य सोपक्रम अने निरुपक्रम एम बन्ने प्रकारनुं होयछे, अने अपवर्त्तनीय आयुष्य तो सोपक्रमीज छे, जेना भेदनी स्थापना नीचे प्रमाणे छे.—



अर्थात् अनपवर्त्तनीय आयुष्यना क्षय समये शस्त्रादि बाह्य निमित्तनो संबन्ध होय अथवा न पण होय, अने अपवर्त्तनीय आयुष्यनो क्षय तो बाह्य निमित्त विना होइ शकेज नहिं. ए प्रमाणे संपूर्ण आयुष्ये मरण पामनारा जे जीवने आयुष्यना अन्त वखते शस्त्रघातादि निमित्तनो (आयुष्यना अन्त समये) संबंध होय ते जीवनुं आयुष्य सोपक्रम अनपवर्त्तनीय कहेवाय. अने जे जीवने संपूर्ण आयुष्यना अन्त समये शस्त्रघातादिनो संबंध न होय ते जीवनुं आयुष्य निरुपक्रम अनपवर्त्तनीय कहेवाय. अने अपूर्ण आयुष्ये मरण पामनारा सर्वे जीवोनुं आयुष्य तो सोपक्रम अपवर्त्तनीय ज कहेवाय.

॥ आयुष्यनां ७ उपक्रम. ॥

१—राग—स्नेह-अने भय ए ३ थी जे मरण थाय ते अध्यवसाय उपक्रम कहेवाय, अहिं एक पाणी पानारी स्त्री अति रूपवन्त युवक (पुरुष) ने देखी मोहित थतां ते युवक ज्यारे चाल्यो गयो त्यारे तेना रागथी झुरी झुरीने मरणपामी हती ए 'रागनिमित्त' कहे-

वाय. कामनी अन्त्य (१०मी) दशा एज छे. तथा कोइक स्त्रीए पोताना परदेश गएला पतिनुं मरण पतिना मित्रोए मश्करीमां कहेलुं सांभळी पोते तुर्त मरणपामी, अने ते स्त्रीनुं मरण तेना पतिए सांभळवाथी ते पण मरण पाम्यो, ए 'स्नेहनिमित्त' कहेवाय. तथा कृष्णवासुदेवना पुत्र गजसुकुमाले दीक्षा लीधी त्यारे तेना ससरा सोमिल ब्राह्मणे पोतानी पुत्री रखडती थइ एम जाणी गजसुकुमालना मस्तक उपर अंगारा भरी प्राण लीधो, अने ज्यारे नगरमां प्रवेश करतां सामे कृष्णवासुदेवने आवता देख्या त्यारे भयथी त्यांज मरण पाम्यो ए 'भयथी मरण' कहेवाय. ए प्रमाणे अध्यवसाय मरण ३ प्रकारे थाय छे,

२–लाकडी–चाबक–कोरडा–शस्त्रादिथी जे मरण थाय तेनिमित्त उपक्रम.

३–घणो आहार करवाथी (अथवा बिलकुल आहार नहिं करवाथी) मरण थाय ते आहार उपक्रम.

४–अति पीडा-वेदना थवाथी मरण थाय ते वेदना उपक्रम.

५–कूवामां के जळमां पडतां अथवा पर्वतादि उपरथी पडतां जे मरण थाय ते पराघात उपक्रम.

६–वीच्छु-सर्प वगेरे झेरी जानवर करडवाथी मरण थाय ते स्पर्श उपक्रम कहेवाय.

७–घणा [1] श्वासोच्छ्वास लेवाथी अथवा श्वासोच्छ्वास वि-

१ केटलाएक माने छे के" आयुष्यनो आधार श्वासोच्छ्वास उपर छे, एटले अमुक जीवनुं आटला श्वासोच्छ्वासनुं आयुष्य होय, अने ते जीव तेटला श्वासोच्छ्वास पूर्ण करे तोज मरण पामे, ए कारणथी मरण वखते जीवने श्वासोच्छ्वास बाकी रह्या होय छे तो ,जलदीथी श्वास चलावी सर्व श्वासोच्छ्वास पूरा करी मरण पामे छे" परन्तु ए वात असंभवित लागे छे. कारणके

छकुल वंध करवाथी मरण थाय ते आनप्राण उपक्रम, ए ७ प्रकारनां उपक्रम लागवाथी आयुष्यपुद्गलो प्रतिसमय वधुने वधु प्रमाणमां क्षय थवाथी जीव अकाळे मरणपामे छे, उपक्रम लाग्या पहेलां भवोत्पत्तिना प्रथम समये विशेष बीजे समये हीन त्रीजे समये हीनतर एप्रमाणे प्रतिसमय हीन हीनतर आयुष्यपुद्गलोनो क्षय चालु रहे छे, तेमां आ सातमांनुं कोइ उपक्रम अल्पांशे लागे तो ते वखते हीन हीनतरनो अनुक्रम तुटीने विशेष विशेषतर नो अनुक्रम (ते उपक्रमनी असर ज्यांसुधी रहे त्यांसुधी) केटलीक वखते थइ जाय, अने ज्यारे प्रबल उपक्रम लागे त्यारे तो विशेष विशेषतर अथवा असंख्यगुण असंख्यगुणना अनुक्रमे सर्व पुद्गलो अन्तर्मुहूर्त्तमां ज क्षय पामी जाय छे. आ क्रम गुणश्रेणि जेवो समजवो.

जीव पूर्वभवमांथी आटला श्वासोच्छवास पूर्ण करवा एवी संख्यानो निर्णय करी लावतो नथी, परन्तु आयुष्यनां पुद्गलो पूर्ण करवानो तो निर्णयज करी लावे छे. माटे ए प्रमाणे श्वासोच्छवास अने आयुष्यने कोइपण जातनो संबंध नथी. परन्तु एटलोज सबंध छे के ज्यां सुधी जीवे त्यां सुधी श्वासोच्छवास लेवा मूकवानो व्यापार करे, पण अमुक जीवने अमुक भवमां आटला श्वासोच्छवास लेवा ज जोइए एवो नियम नहिं. पुनः जाणी जोइने अथवा तो दुःखथी के परिश्रमथी जो घणा श्वासोच्छवास चाले तो आयुष्यपुद्गलो घणा प्रमाणमां खपी जवाथी (अपवर्त्तनीय आयुष्यवाळा जीवनुं) आयुष्य अल्प थाय. कारणके कर्मप्रकृति विगेरे ग्रंथोमां अति दुःखीने श्वासोच्छवास घणा होय अने अति दुःखीने आयुष्यकर्मनी निर्जरा पण घणी होय एवा संबंधने लइने पूर्वोक्त प्रसिद्धी थइ होय तो बनवा योग्य छे पण वस्तु स्वरूप तेम जणातुं नथी. वळी लब्धिअपर्याप्ता जीवोना आयुष्यनो उच्छ्वास व्यापार सिवाय ज क्षय थतो होवाथी आयुष्यनी साथे उच्छ्वास व्यापारनी व्याप्ति नथी, मात्र उच्छ्वास व्यापार आयुष्यनी उदीरणामां हेतु संभवे छे.

शंका—जेम आयुष्य घटवाना उपाय छे, तेम आयुष्य वधवाना उपाय छे के नहिं.

उत्तर—हे जिज्ञासु! आयुष्य वधवानो उपाय छे ज नहिं. महासमर्थ इन्द्रो अने तीर्थंकर पण एक समयमात्र आयुष्य वधारवाने समर्थ नथी. कारण के आयुष्यनुं निर्माण पूर्वभवमां थतुं होवाथी त्यां आयुष्यबंध वखते जे स्थिति बंधाइ ते स्थितिज अहिं भोगववानी होय छे तो पूर्वभवमां बांधेला आयुष्यनी स्थिति आ भवमां केम वधारी [1] शकाय? अथवा पूर्वोक्त ७ उपक्रमोमांथी कोइपण एकादि उपक्रमथी १०० वर्षनुं आयुष्य घटी १ वर्ष मात्र जीवी शके तेम होय तेवा प्रसंगमां ते जीव उपक्रमथी बची जवाना उपायोथी ५० वर्ष जीवे तो ए अपेक्षाए ते जीवे पोतानुं आयुष्य औषधादिकथी वधार्युं एम व्यवहारथी कही शकाय परन्तु वास्तविक रीते तो वधार्युं नज कहेवाय.

शंका—अपवर्त्तनीय अने अनपवर्त्तनीय एम तरतमताये आयुष्य बंधावामां हेतु शो ?

उत्तर—आयुष्यबंध वखते आयुष्यबंध योग्य अध्यवसाय जो तीव्र होय छे तो आयुष्यनां ग्रहण करेलां पुद्गलो आत्माना अमुक अमुक विभागमां घणां एकत्र (पिंडित) थइ जवाथी ते आयुः पुद्गल पिंड [2] अभेद्य थाय छे, अने मंदपरिणामे ग्रहण करेल

१ आयुष्यनी उद्वर्त्तना (स्थिति-रसनी वृद्धि) कर्मप्रकृतिमां कही छे. परन्तु ते पण ("आबंधा उव्वट्टइ" ए वचनथी) बंधकाळ सुधी ज उद्वर्त्तना होय, अने बंधकाळ पूर्ण थया बाद १ समयमात्र पण वधी शके नहिं.

२ ए भावार्थ तत्त्वार्थवृत्तिमां कह्यो छे ते आ प्रमाणे—अथवैकनाडिकापरिगृहीतमायुः संहतिमत्त्वात् संहतपुरुषराशि

आयुःपुद्गलो सर्व आत्मप्रदेशे विरल विरल पणे (छूटां छूटां) वहेंचाइ जाय छे, जेथी उपक्रमने साध्य थइ शके छे. पुनः उपक्रमवडे आयुष्यने अपवर्त्ततो [टुंकुं करतो करतो] यावत् अंतर्मुहूर्त्त सुधी अपवर्त्तेछे (अर्थात् अन्तर्मुहूर्त्त जेटलुं करी नाखे छे), त्यारवाद तथाविध अध्यवसायना अभावे अन्तर्मुहूर्त्तथी न्यून करी शके नहिं.

॥ कया जीवने कयुं आयुष्य होय? ॥

सर्वदेव--सर्वनारक--सर्व [1]युगलिकतिर्यंच--अने युगलिकम-

बद्धमेद्यं वा एकनाडिकाविवरप्रक्षिप्तबीजनिष्पादितसस्यसंहतिवद्धा विवराद्बहिःपतितबीजप्रसूतं हि सस्यमसंहतत्वात् प्रविरलतायां सत्यां सर्वस्यैव गवादेर्गम्यं, एवं किलायमात्मायुर्वंधनमनेकात्मलब्धिपरिणामस्वाभाव्याच्छरीरव्याप्यपि सन्नाडिका मार्गपरिणामो भवति ततस्तामवस्थामासाद्य यानायुष्कपुद्गलान् बध्नाति ते नाडिकाप्रविष्टत्वात् संहतिमत्त्वे सत्यभेद्या विषशस्त्राग्न्यादीनाम् इति " अर्थः--अथवा एक नाडिकावडे ग्रहण करेलुं आयुष्य पिंडीभूत होवाथी घणा एकठा थयेला पुरुषोना राशिवत् अभेद्य अथवा (खेडुत जे त्रिफणीमांथी खेतरमां धान्य वावे छे ते त्रिफणीनी) एक नाडिका (नळी) ना छीद्रमार्गे नाखेल बीजवडे उत्पन्न थयेला धान्य समूहनी माफक आयुष्य अभेद्य (अनपवर्त्तनीय) होय छे, अने नळीना छिद्रथी बहार पडेला बीजथी उत्पन्न थयेल धान्य या घास अपिंडित होवाथी छूटुं छूटुं उग्ये छते सर्व धान्य ढोर वगेरे उखेडी खाइ शके छे, ए प्रमाणे निश्चय आयुष्य बांधतो आ आत्मा अनेक आत्मलब्धि परिणामना स्वभावथी सर्व शरीरमां व्याप्त छे तो पण नाडिकामार्गपरिणाम वाळो (अमुक विभागमां विशेष पुद्गल ग्रहण करनारो) होय छे, तेथी ते (नाडिकामार्गपरिणामरूप) अवस्था पामीने जे आयुष्यपुद्गलो बांधे छे ते नाडिकामां प्रवेश थयेलां होवाथी पिंडीभूत थये छते विष शस्त्र अग्नि विगेरेथी अभेद्य होय छे.

१ श्री सूयगडांगजीमां अने कर्मप्रकृतिमां युगलिकनुं पण ३ पल्योपम आयुष्य अपवर्त्ताइने अन्तर्मुहूर्त्त जेटलुं थाय एम कह्युंछे.

नुष्य निरुपक्रम अनपवर्त्तनीय आयुष्यवाळा छे--चरमशरीरी (त-द्भव मोक्षगामी)--तीर्थंकर--गणधर--चक्रवर्त्ति--वासुदेव--वळदेव--सोपक्रम अने निरुपक्रम अनपवर्त्तनीय आयुष्यवाळा छे, शेष सर्व जीवो त्रणे प्रकारना (सोप० अप०१ सोप० अनप०२ अने निरुप० अनप० ३) आयुष्यवाळा छे.

॥ कया जीवो क्यारे आयुष्य बांधे ? ॥

नारक--देव--अने [1]असंख्य वर्षायुवाळा युगलिकतिर्यंचअने युग०-मनुष्यो ६ मास आयु बाकी होते परभवनुं आयुष्य बांधे छे, अने [2]निरुप० आयुष्यवाळा पृथ्वी--अप्--तेजस्--वायु--वनस्पति--द्वीन्द्रिय--त्रीन्द्रिय--चतुरिन्द्रिय--अने निरुपक्रमायुष्यवाळा पंचेन्द्रियजीवो आयुष्यनो त्रीजो भाग बाकी रहये बांधे अने सोपक्रमी आयुष्यवाळा सर्वजीवो त्रीजो नवमो के २७मोभाग बाकी रहये (अनियमितपणे) बांधे. घणा ग्रंथोमां तो एथी पण आगळ ८१मो--२४३मो इत्यादि भाग, शेष रहये यावत् अन्त्य अन्तर्मु० शेष रहये पण परभवायु बांधे एम कह्युं छे.

ए प्रमाणे जीवोना आयुष्य प्राणनुं किंचित् स्वरूप कह्युं ते साथे जीवोना १० (दशे) प्राणनुं स्वरूप कहेवायुं. ए १० प्राणो जीवोना द्रव्यप्राण कहेवाय छे, अने "नाणंच दंसणं चेव" गाथामां कहेलां ६ लक्षणो ते जीवना भावप्राण कहेवाय छे. द्रव्यप्राण संसारी जीवने ज होय छे, अने भावप्राण तो संसारी अने सिद्धने पण होय छे. जीवितनां बाह्यचिन्हो ते द्रव्यप्राण अने अंतरंग लक्षणो

१ ज्यां आयुष्यना संबधमां असंख्य वर्ष आवे त्यां असंख्यनी गणत्री चोराशीलाख पूर्वनी उपरनी संख्याथी गणवी. एम काललोकप्रकाशमां कह्युं छे.

२ अनपवर्त्तनीय इत्यर्थः

ते भावप्राण कहेवाय. हवे ए ६ भावप्राण तो सर्व जीवने सरखाज होय छे. परन्तु प्रस्तुत प्रकरणना १० द्रव्यप्राण (बाह्यप्राण) सर्व जीवोने एकसरखा नहिं होवाथी कया जीवने केटला प्राण होय ते कहेवाय छे.

॥ कया जीवने केटला प्राण होय? ॥

एनो उत्तर गाथा द्वाराज दर्शाव्यो छे के सर्व एकेन्द्रिय जीवोने स्पर्शेन्द्रिय–कायबल–आयुष्य–ने श्वासोच्छ्वास ए ४ प्राण होय छे. द्वीन्द्रिय जीवोने पूर्वोक्त चार अने एक रसनेन्द्रिय अने वचनबल अधिक होवाथी ६ प्राण होय छे त्रीन्द्रियने घ्राणेन्द्रिय अधिक होवाथी ७ प्राण, चतुरिन्द्रियने चक्षुरिन्द्रिय अधिक होवाथी ८ प्राण, असंज्ञिपंचेन्द्रियने श्रोत्रेन्द्रिय अधिक होवाथी ९ प्राण, अने संज्ञिपंचेन्द्रियने मनबल अधिक होवाथी १० प्राण छे.

॥ श्रीनवतत्त्वप्रकरणे प्रथमजीवतत्त्वविस्तरार्थः समाप्तः ॥

---

१ अहिं एकेन्द्रिय अने द्वीन्द्रिय जीवोने जोके नासिका नथी तोपण सर्वांगे श्वासोच्छ्वास लइ शके छे. पुनः द्वीन्द्रिय तो मुखथी पण श्वासोच्छ्वास लइ शके. तथा एकेन्द्रियो शरीर पर्याप्ति थया बाद औदारिक शरीरवडे ज आहारग्रहणादि क्रिया करता होवाथी कायबल प्राण पण तेओने युक्त ज छे. पुनः 'जीवविचारावचूरिमां' ने 'द्रव्यलोकप्रकाशमां' संमूर्छिम मनुष्यने सात आठ अने 'बृहत्संग्रहणिवृत्ति' तथा 'प्राचीनबालावबोधमां' नव प्राण कह्या छे, तेनो हेतु मालुम पडतो नथी, कारणके संमू० मनुष्य अवश्य अपर्याप्ता ज मरण पामे छे. तेम 'पन्नवणा' 'जीवाभिगम' विगेरेमां कह्युं छे माटे नव प्राणो मानतां तेओने पर्याप्ता मानवा जोइये. वळी अपर्याप्त जीवो मात्र त्रण पर्याप्ति ज पूर्ण करे छे. तो तेओने श्वासोच्छ्वास, भाषा, अने मन ए त्रण प्राण होइ शकता नथी. जेथी संमू० मनुष्यने ७ ज प्राण

॥ जीवतत्त्व परिशिष्ट. ॥

॥ संसारी जीवना (जुदी जुदी अपेक्षाए) भेद. ॥

१ प्रकारना—चैतन्य लक्षण (उपयोग)वडे.

२ प्रकारना—त्रस, स्थावर. वा व्यवहार, अव्यवहार.

३ प्रकारना—स्त्री, पुरुष, नपुंसकवेदी वा भव्य, अभव्य, जातिभव्य.

४ प्रकारना—देव, मनुष्य, तिर्यंच, नारक. वा ३ वेद, ४ अवेद.

५ प्रकारना—एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय.

६ प्रकारना—पृथ्वी, जळ, अग्नि, वायु, वनस्पति, त्रसकाय.

७ प्रकारना—सूक्ष्मएके०, बादरएके०, द्वी०, त्री०, चतु०, असंज्ञिपंचे०, संज्ञिपंचे०. वा ६ लेश्य, १ अलेश्य.

८ प्रकारना—१ पर्याप्त सूक्ष्मएकेन्द्रिय, २ पर्याप्त सूक्ष्मएकेन्द्रिय, ३ अपर्याप्त बादरएकेन्द्रिय, ४ पर्याप्त बादरएकेन्द्रिय, ५ द्वीन्द्रिय, ६ त्रीन्द्रिय, ७ चतुरिन्द्रिय, ८ पंचेन्द्रिय.

९ प्रकारना—१ अंडज, २ रसज, ३ जरायुज, ४ स्वेदज, ५ संमूर्च्छिम, ६ पोतज, ७ उद्भिज, ८ औपपातिक (ए आठ त्रस अने), ९ स्थावर. अथवा ५ स्थावर, ३ विकले०, अने १ पंचेन्द्रिय.

संभवे छे. छतां 'श्री द्रव्यलोकप्रकाश' विगेरेमां उच्छ्वास सहित आठ तथा 'बृहत्संग्रहणिवृत्ति' विगेरेमां वचनबल सहित नव प्राण कह्या तेनो निर्णय श्रीबहुश्रुतगम्य जाणवो. अहिं अपर्याप्त-जीवोने यथायोग्य श्वासोच्छ्वास, भाषा, अने मन सिवायना प्राण गणवा. उपर कह्या प्रमाणे ए स्वयोग्य द्रव्यप्राणोनो जे वियोग ते जीवनुं 'मरण' कहेवाय छे. कारणके जीव ज्यारे ए द्रव्यप्राण छोडी परभवमां जाय छे त्यारे (जीवत्वपणे जीव जीवे छे छतां) मरण पाम्यो एम कहेवाय छे.

१० प्रकारना—५ स्थावर ३ विकले०, १ सं०पंचे०, १ असं०पंचे०.

११ प्रकारना—५ स्थावर, ३ विकले, ३ पंचे० (वेद भेदे).

१२ प्रकारना—६ अपर्याप्तषट्काय, ६ पर्याप्तषट्काय.

१३ प्रकारना—१० पर्याप्तापर्याप्तपांचस्थावर, ३ पंचे० (वेद भेदे).

१४ प्रकारना—ग्रन्थमां बनावेला, अथवा १४ गुणस्थानभेदे.

१५ प्रकारना—९ पचेन्द्रिय (वेद भेदे ३ तिर्यंच, ३ मनुष्य, २ देव (नपुं०विना), (१ नारक नपुं०), २ बादर एके० (पर्याप्तापर्याप्त भेदे), १ सूक्ष्मएके०, ३ विकलेन्द्रियो.

१६ प्रकारना—२ एके० (पर्या० अपर्या), ६ विकले० (पर्या० अपर्या०), २ पं० ति० (पर्या० अपर्या०), ६ देव, मनुष्य, नारक (पर्या० अपर्याप्त).

१७ प्रकारना—५ स्थावर, ३ विकले०, ९ पंचेन्द्रिय (१५ भेदोक्त).

१८ प्रकारना—पूर्वोक्त ९भेदना पर्याप्तापर्याप्त भेदे.

१९ प्रकारना—१० सू० ए० १, बा० ए० २, विकले० ३, (ए ५ पर्या० अप०), ९ पंचेन्द्रिय.

२० प्रकारना—पूर्वोक्त १० भेदोने पर्याप्तापर्याप्त भेदे गुणवाथी.

२१ प्रकारना—२० स्थावर (पृथ्व्यादि पांचने सूक्ष्म-बादर तथा पर्याप्तापर्याप्त भेदे गुणवाथी.), १ त्रस.

२२ प्रकारना—पूर्वोक्त ११ भेदोने पर्याप्तापर्याप्त भेदे गुणवाथी.

३२ प्रकारना—२२ एकेन्द्रिय (पांचरोत्र२२भेदमां कहेवाशे ते), ६ विकलेन्द्रि०, ४ पंचेन्द्रिय (संज्ञि प० अ०, असंज्ञि प० अ०).

११६ प्रकारना—७ नारक, १० भवनपति, ८ व्यंतर, ५ ज्योतिषी, १२ कल्प, ९ ग्रैवेयक ५ अनुत्तर, १ मनुष्य, १ तिर्यंच, ए ५८ ने पर्याप्त अपर्याप्त भेदे गुणवाथी ११६ भेद थायछे.

५६३ प्रकारना—(नीचे कह्या प्रमाणे)

. ५८४ प्रकारना—पूर्वोक्त ३२ भेदमांथी भेळिना २ भेद बाद करी बाकीना ३० भेद पूर्वोक्त ११६ मां मेळवतां १४६ थाय, ते पुनः भव्य, अभव्य, दुर्भव्य, अने आसन्नभव्य ए ४ भेदे गुणतां १४६+४=५८४ भेद थाय छे. (आ सर्व प्रकारो 'जीवाभिगम.' 'भवोघप्रकरण' 'लोकप्रकाश' विगेरेमां बतावेला छे.)

॥ ५६३ जीवभेद. ॥

२२ एकेन्द्रिय—पृथ्वी, जळ, अग्नि, वायु, अने साधारणवनस्पति ए पांचे सूक्ष्म अने बादर मळी १० थाय, तेमां (बादर) प्रत्येकवनस्पति उमेरतां ११ थाय, ते पर्याप्ता अने अपर्याप्ता एम बे भेदे गुणतां एकेन्द्रियना सर्व भेद २२ थाय.

६ विकलेन्द्रिय—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, अने चतुरिन्द्रिय, ए त्रणने अपर्याप्त अने पर्याप्त भेदे गुणतां विकलेन्द्रियना ६ भेद थाय.

१४ नारक—सातपृथ्वीना नारकने अपर्याप्त अने पर्याप्त भेदे गुणतां नारकना १४ भेद थाय.

२० तिर्यचपंचेन्द्रिय—जळचर, स्थळचर, खेचर, उरःपरिसर्प अने भुजपरिसर्प ए पांचे संमूर्छिम तथा गर्भज गणतां १० भेद थाय, अने ते दशने अपर्याप्त-पर्याप्त भेदे गुणतां २० भेद होय.

३०३ मनुष्य—१५ [1]कर्मभूमि, ३० [2]अकर्मभूमि, अने [3]५६

---

१. पांच भरत, पांच ऐरवत. पांच महाविदेह (१ जंबूद्वीपना भ० ऐ० म २ धातकीखंडना भ० ऐ० म०. २ पुष्करार्धना भ० ऐ० महाविदेह). २ ५ उत्तरकुरु. ५ देवकुरु. ५ हिमवंत. ५ हिरण्यवंत ५ हरिवर्ष. ५ रम्यक. (उपर कहेला पांच भरत प्रमाणे). ३ जंबूद्वीपना हिमवंत अने शिखरी पर्वतनी पूर्व पश्चिममां चार चार दाढाओ मळी आठ दाढाओ पैकी दरेके दाढा उपर सात सात. सर्व मळी ५६ अंतर्द्वीपो जाणवा.

अन्तर्द्वीप ए १०१ क्षेत्रवर्ती संमूर्च्छिम मनुष्यो अपर्याप्तज होय, अने गर्भज मनुष्यो अपर्याप्त अने पर्याप्तपण होय, माटे १०१ संमूर्छिम मनुष्य, तथा २०२ गर्भज मनुष्य मळी ३०३ मनुष्य भेद थायछे.

१९८ देव–१० भुवनपति, १५ परमाधामी, ८ व्यन्तर, ८ वाणव्यन्तर, १० तिर्यग्जृंभक, ५ चरज्योतिषी, ५ स्थिरज्योतिषी, ३ किल्बिषिक, १२ सौधर्मादि बार कल्प, ९ लोकान्तिक, ९ ग्रैवेयक, अने ५ अनुत्तर, ए ९९ अपर्याप्त, अने ९९ पर्याप्त देव मळी देवना सर्वभेद १९८ छे. (ए रीते २२ पृ०), ६ वि०, १४ ना०, २० पं०-ति०, ३०३ म०, १९८ देवना भेदो मळी जीवना सर्वभेद ५६३ थाय छे.

॥ १४ जीवभेदना स्थानो. ॥

(१) सूक्ष्म अपर्याप्त एकेन्द्रियोनुं स्थान—संपूर्ण लोकाकाश.

(२) सूक्ष्म पर्याप्त एकेन्द्रियोनुं स्थान— "

(३) बादर अपर्याप्त एके०नुं स्थान—लोकमो असंख्यातमो भाग.

(४) बादर पर्याप्त एके०नुं स्थान— "

१ पृथ्वीनुं स्थान—७ नरक, १ सिद्धशिला, पातालकळशाओनी ठीकरीओ, भवनपतिनां भवनो, नरकावासा (नीभित्तिओ अने भूमितळ), विमानो, पर्वतो, भूमिकूट, जगपतीओ, वेदिकाओ, विजयादिद्वारो, अने ८ कृष्णराजी, द्वीपो, समुद्रो विगेरेमां.

२ जळनुं स्थान—घनोदधिओ, समुद्रो, पाताळकळशाओना उदरभाग, भवनोनी :अने ; विमानोनी. वावडीओ, द्रहो, अने नदी, सरोवर, कूवा विगेरे जळाशयोमां.

३ अग्निनुं स्थान—मानुषोत्तर पर्वत सुधीना अढी द्वीपरूप मनुष्यक्षेत्रमां (तेमां पण युगलक्षेत्रोमां नहिं).

४ वायुनुं स्थान—घनवात अने तनवातनां वलयो, पाताळकलशना उदरभाग, भवनो, विमानो, निष्कुटो, इत्यादि सर्वलोकमां ज्यां ज्यां पोलाणभाग होय त्यां सर्वत्र.

५ वनस्पतिनुं स्थान—तिर्यग्लोकमां, भवनोना अने विमानोना वन-बगीचाओ, विगेरे स्थळोमां.

(६ थी १०) ६ विकलेन्द्रियोनुं स्थान—लोकनो असंख्यातमो भाग. कारण के ऊर्ध्वलोकमां मेरुपर्वतना शिखर सुधी, अधोलोकमां अधोग्राम सुधी, अने तिर्यग्लोकमां सर्वत्र जळाशय स्थाने अने स्थळमां पण उत्पन्न थाय छे.

(११--१२) असंज्ञिपंचेन्द्रियस्थान—लोकनो असंख्यातमो भाग.

असंज्ञितिर्यंच—तिर्यग्लोकमां सर्वत्र, ऊर्ध्वलोकमां मेरुना शिखर सुधी, अने अधोलोकमां अधोग्राम सुधी.

असंज्ञिमनुष्य—अढीद्वीप रूप मनुष्य क्षेत्रमां ज्यां ज्यां मनुष्यनी वसति होय त्यां.

१३–१४ संज्ञिपंचेन्द्रियस्थान—लोकनो असंख्यातमो भाग.

देव—रत्नप्रभा पृथ्वीमां, ज्योतिष्नां विमानोमां, अने सौधर्मादि विमानोमां, तेमज क्वचित् तिर्यग्लोकमां पण.

नारक—सात पृथ्वीओमां.

तिर्यंच—असंज्ञि तिर्यंचवत्.

मनुष्य—मनुष्य क्षेत्रमां.

आ जीवतत्त्व उपर ज्ञान, दर्शन, संज्ञा, लेश्या, गुणस्थानक, दृष्टि, योग, उपयोग विगेरे अनेक विचारो छे जे अन्य ग्रन्थोमां बतावेला छे.

॥ इति जीवतत्त्वपरिशिष्टम्. ॥



॥ अथ अजीवतत्त्वम्. ॥

अवतरण--पूर्वे ७ गाथा सुधीमां जीवनुं स्वरूप दर्शावीने हवे 'यथोद्देशं निर्देशः' 'ए न्यायथी क्रमे आवेला बीजा अजीवतत्त्वनुं स्वरूप कहेतां प्रथम आ गाथामां अजीवना १४ भेद दर्शावे छे.

॥ मूळ गाथा ८ मी.॥

धम्माऽधम्माऽऽगासा, तियतियभेया तहेव अध्धा य ॥
खंधा देस पएसा, परमाणु अजीव चउदसहा ॥८॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

धर्माऽधर्माऽऽकाशा--स्त्रिकत्रिकभेदास्तथैवाद्धा च ॥
स्कंधा देशाः प्रदेशाः, परमाणवोऽजीवश्चतुर्दशधा ॥८॥

॥ शब्दार्थः ॥

धम्म--धर्मास्तिकाय.
अधम्म--अधर्मास्तिकाय.
आगास--आकाशास्तिकाय.
तियतिय--त्रणत्रण.
भेया--भेदवाळा.
तहेव--तेमज.
अद्धा--काळ.
खंधा- स्कंध (आखोभाग.)
देस--देश (न्यूनभाग.)
पएसा--प्रदेश (स्कंधसंबद्ध निर्विभाज्य भाग).
परमाणु--छूटो अणु.
अजीव--अजीव द्रव्य (तत्त्व).
चउदसहा--चौदप्रकारे.

गाथार्थः--धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, अने आकाशास्तिकाय, (ए त्रण) त्रण त्रण भेदवाळा छे, तेमज काळ, तथा (पुद्-

लास्तिकायना) स्कंध--देश--प्रदेश--अने परमाणु, ए सर्व मळी अ-जीवद्रव्य (अजीवतत्त्व) १४ प्रकारे छे.

विस्तरार्थः----ए प्रमाणे (जीवनुं स्वरूप) जीवतत्त्व कहीने हवे अजीवतत्त्व कहेवानां प्रारंभमां प्रथम अजीवतत्त्वना १४ भेद द-र्शावे छे ते आ प्रमाणे:(अजीवतत्त्व जीवनुं साहाय्यक द्रव्य छे.)

१ धर्मास्तिकाय (स्कंध).	८ आकाशास्तिकाय देश.
२ धर्मास्तिकाय देश.	९ आकाशास्तिकाय प्रदेश.
३ धर्मास्तिकाय प्रदेश.	१० काळ.
४ अधर्मास्तिकाय (स्कंध).	११ पुद्गलस्कंध.
५ अधर्मास्तिकाय देश.	१२ पुद्गल देश.
६ अधर्मास्तिकाय प्रदेश.	१३ पुद्गल प्रदेश.
७ आकाशास्तिकाय (स्कंध)	१४ पुद्गल परमाणु.

ए १४ भेदनुं स्वरूप दर्शावती प्रथम धर्मास्तिकायादि ५ अ-जीव पदार्थ अने स्कंधादिनो अर्थ कहेवाय छे.

॥ धर्माऽस्तिकाय. ॥

जीव अने पुद्गलने गति करवामां सहाय करनार जे द्रव्य (प-दार्थ) ते 'धर्मास्तिकाय' कहेवाय. अहिं 'धर्म' एटले 'गतिसाहाय्यक गुण, 'अस्ति' एटले प्रदेशना, 'काय'--समूह, ते धर्मास्तिकाय.

आ जगतमां मूळ द्रव्य (पदार्थ) ६ छे. तेमां एक स्थानथी बीजे स्थाने जइ शके तेवां गतिक्रियावाळां जीव अने पुद्गल ए बे द्र-व्य छे, तेमां जीव पोताना स्वभावे अने पुद्गलना [1]आलंबनथी अने

[1] आ भवमां भवधारणीय औदारिकादि देहना आलंबनथी अने परभवमां जतां कार्मणदेहनी प्रेरणाथी जीवनी गतिक्रिया प्रवर्त्ते छे, कारणके जीवने भवान्तरमां लइ जनार कार्मण शरीरज होय छे माटे.

कर्मनी प्रेरणाथी जेम गति करी शके छे, तेम पुद्गलो पण पोताना स्वभावथी तथा जीवनी प्रेरणाथी पण [1] गति करी शके छे, ए प्रमाणे ते बन्ने द्रव्यो गति क्रिया (कार्यमां) परस्पर संबंध वाला तथा संबंध विनाना पण छे जो के जीव-पुद्गलोनी गति क्रिया (कार्य) उपर बताव्या प्रमाणे प्रवर्ते छे, तापण ते क्रियामां अवश्य अन्यद्रव्यनी अपेक्षा छे, पक्षिने ऊडवामां वायु, मत्स्यने चालवामां जल, चक्षुने बाह्य वस्तु देखवामां सूर्यादिप्रकाश विगेरे जेम उपकारी छे, तेम जीव-पुद्गलनी गतिमां धर्मास्तिकाय उपकारी द्रव्य छे. कारण असाधारण गुणवाळो पदार्थ होय तेज वस्तुतः उपकारी कहेवाय, माटे जो के लाकडी विगेरे बाह्यपुद्गलो अथवा जीव प्रयोग गतिक्रियामां कारण छे तोपण ते लाकडीमां अने जीवप्रयोगमां गतिसाहाय्यकनामनो असाधारण गुण नथी कारण ने बीजी क्रिया (कार्यो) मां पण उपकारी थाय छे. अने धर्मास्तिकायमां ते गति साहाय्यकत्व गुण असाधारण छे माटे ते उपकारी छे, वायुथी पक्षि उडी शके छे, मत्स्य जल होय तोज चाली शके छे, अने सूर्यनो प्रकाश होय तोज चक्षु वस्तुने देखी शके तेम धर्मास्तिकाय द्रव्य होय तोज जीव पुद्गलनी गतिक्रिया थइ शके अन्यथा नहि! ए धर्मास्तिकाय द्रव्यना निर्विभाज्य विभागो (प्रदेशो) असंख्य छे ने ते दरेक प्रदेश परस्पर स्पर्श संबंधथी साथे साथे जोडाइने रह्या छे जेथी ए पदार्थ १४ राज जेटलो जग्या रोकीने रह्यो छे, अने तेथी सुप्रतिष्ठक आकारे रहे-

---

[1] " श्री प्रज्ञापनाजी ' विगेरेमां पुद्गलना दशविध परिणामांमा गति परिणाम बताव्यो छे, तेमज " श्री भगवतीजी" मा पण परमाणु उत्कृष्टगतिए एक समये उर्ध्वलोकान्तथी अधोलोकान्त(१४राज क्षेत्र)सुधी गति करी शके छे तेम वर्णव्यु छे

ल छे. अने ए पदार्थ जगतमां एकज छे. वळी भाषा–उच्छ्वास मन–वगेरे पुद्गलनु ग्रहण धर्मा० विना गतिना अभावे न थइ शके, माटे जीवनी गतिक्रियामां अने [1]भाषा–उच्छ्वास–मन–काय योग इत्यादि चल क्रियाओमां सर्वत्र धर्मास्तिकाय उपकारी छे.॥१॥

॥ अधर्माऽस्तिकाय ॥

जीव-पुद्गलने स्थिर थवामां जे सहाय करनार द्रव्य ते " अधर्माऽस्तिकाय " कहेवाय. अहिं गतिसाहाय्यकगुणथी विपरीत जे स्थिरसाहाय्यक गुण ते " अधर्म," तेनो अस्तिकाय एटले प्रदेशसमूह ते अधर्माऽस्तिकाय. जेम गतिक्रिया करता जीवपुद्गलने उपकारी द्रव्य धर्मास्तिकाय कहेवाय छे. तेम गतिक्रियाथी स्थिर थवा माटे उपकारी द्रव्यने "अधर्मास्तिकाय" कहेवामां आवे छे. वटेमार्गु (मुसाफर) ने जेम छायास्थल मत्स्यने जेम द्वीप (बेट) अने उडता पक्षीने स्थिर थवामां जेम भूमि अथवा वृक्ष अथवा गिरिनुं शिखर उपकारी छे, तेम गति करता जीवपुद्गलने स्थिर थवा माटे अधर्मास्तिकाय द्रव्य उपकारी छे. जो अधर्मास्तिकाय द्रव्य न होय तो जीवपुद्गलनी गति ज चालु रहे पण स्थिरता न थाय. पुनः [2]बेसवामां–उभारहेवामां–आलंबनमां(–कोइवस्तुने धरीराखवामां)अने चित्तनी स्थिरतादि स्थिरकार्योमां आ अधर्मा०कारणरूपछे.

शंका—धर्माऽस्तिकायादि ४ द्रव्य पण स्थिर छे तो तेओने उपकारी अधर्मास्तिकाय छे के नहिं ? अने जो ते द्रव्योने स्थिर रहेवामां पण अधर्मा० उपकारी होय तो मात्र जीवपुद्गलने ज उ·

१. जीवानामेव चेष्टासु. गमनागमनादिषु । भाषामनोवचः-काय-योगादिष्वेति हेतुताम् ॥१॥ [इति द्रव्यलोके द्वितीयसर्गः)

२. अयं निषदनस्थान-शयनालंबनादिषु । प्रयाति हेतुतां चित्तस्थैर्यादिस्थिरतासु चा:? (इति द्रव्यलोके द्वितीयसर्ग·)

पकारी छे एम केम कहेवाय ?

उत्तर—धर्माऽस्तिकायादि द्रव्यो अनादि स्वभावेज स्थिर छे, कारणके ते द्रव्योमां कोइपण काळे गतिक्रिया संभवतीज नथी तो पछी तेओने गतिक्रियाथी निवृत्त थवारूप स्थिरता पण क्यांथी होय ? के जेथी अधर्मास्तिकाय तेओने उपकार करे ? अर्थात् जेओ स्वभावेज स्थिर छे तेओने स्थिरतामां अन्यद्रव्यनी जरूर नथी, परन्तु जेओने गतिक्रियाथी निवर्त्तीने स्थिर थवुं छे तेओनेज अन्य साहाय्यक द्रव्यनी अपेक्षा रहे छे. माटे गति परिणामी जीवपुद्गल ए बे द्रव्यनेज स्थिर थवामां अधर्मा० उपकारी छे. ए द्रव्यना पण धर्माऽस्तिकायना जेटला (सरखी संख्याए) असंख्य देशो तथा (प्रदेशो) छे, अने ते धर्मास्तिकायवत् चौदराज जेटला क्षेत्रमां सुप्रतिष्ठाकारे अथवा वैशाखसंस्थाने अवगाही रह्यो छे.

ए धर्मा० अने अधर्मा० बे द्रव्यो जेटला क्षेत्रमां (आकाशमां) रह्यां छे तेटलाज क्षेत्रनुं नाम लोक एवी संज्ञा छे. जेथी ए बे द्रव्यो लोक प्रमाण अवगाहवाळां कहेवाय छे. वळी ए बन्ने द्रव्यो दूधमां साकरनी पेठे परस्पर प्रवेश करीने रहेलां छे. ॥२॥

॥ आकाशाऽस्तिकाय ॥

धर्मास्तिकायादि द्रव्योने रहेवाने अवकाश (जग्या) आपनार जे द्रव्य ते आकाशाऽस्तिकाय. आ द्रव्यमां सर्व द्रव्यो व्याप्त थइने जग्या लइने रह्यां छे, जो आ द्रव्य न होय तो धर्मा० आदि द्रव्यो क्यां रहे ? माटे सर्व द्रव्योने अवकाश आपनार आ द्रव्य छे. वळी आ द्रव्यना प्रदेशो अनन्त छे अने ते साथे साथे जोडाइने अनंत जोजन जेटला अपार क्षेत्रमां रह्या छे. वळी आकाशद्रव्य लोकाकाश अलोकाकाश एम बे प्रकारे छे, त्यां जेटला आकाशमां

धर्मा० अने अधर्मा० रहेल छे तेटला आकाशनुं नाम लोकाकाश, अने ते शिवायनुं सर्व अलोकाकाश छे, लोकाका० असंख्य योजन जेटलो सुप्रतिष्ठआकारे छे, अने अलोकाकाश [1] पोला गोळा सरखो छे, वळी पूर्व पश्चिमादि दिशाओ पण आकाश द्रव्यना विभाग रूप ज छे परन्तु नैयायिकादिनी माफक नवीन कल्पित दिशाद्रव्यनथी आकाश विभागथीज "दैशिक परत्वापरत्व" व्यवहार थइ शके छे. कारणके गोस्तनाकार आठ रुचक प्रदेशथी विजय दरवाजा तरफ (ज्यां भरत क्षेत्रनो सूर्य उगे छे ते तरफ) बे बे प्रदेशे वधती पूर्व दिशानीकळी छे, ए रीते शेष दिशाओ पण बे बे प्रदेशो वधती निकळेली छे. अने विदिशा एकेकप्रदेशनी पंक्ति रूप(त्रुटेलामोतीना एकावली हार सरखी) नीकळी छे. अने ऊर्ध्व तथा अधोदिशा चार चार प्रदेशनी निकळी छे. ए दिशाओनी मर्यादा करनार आठरुचक प्रदेश (रुचक नामवाळा आठ आकाश प्रदेश) जंबुद्वीपना मेरुपर्वतनी तलहटीए मेरुना अंदरना मध्य भागमां छे. ने त्यांथी दिशा विदिशाओ निकळी छे. वळी ऊर्ध्वलोक विगेरे लोकाकाशना अनेक विभागो छे. लोकाकाश १४ राज लोक प्रमाणे छे, ॥३॥

॥ काळ. ॥

द्रव्यना वर्त्तनादि पर्याय ते नैश्चयिक काळ, अने ज्योतिष्चक्रना भ्रमणथी उत्पन्नथतो जे समय--आवलि--मुहूर्त्तादि ते व्यवहारकाळ (१३मी गाथामां कह्यो छे.) काळ बे प्रकारे छे. वास्तविकरीते तो काळ ए परमाणुओना पिंडरूप पदार्थ नथी, परन्तु सर्व द्रव्योमां वर्त्तनादि पर्याय साधारण रीते होवाथी उपचारे ते वर्त्तनादिपर्यायमां उपकारी होवाथी काळने द्रव्य तरीके

१ कारण के लोकाकाश जेटलो आकाश अलोक न गणाय माटे लोकाकाश जेटलुं अंदरना भागमां पोलाण कहेवाय.

गणेल छे. ए संबंधी सिध्धांत अने ग्रन्थोमां घणी चर्चा छे. हवे ते काळ द्रव्यमां प्रथम नैश्चयिककालनुं स्वरूप दर्शाववा माटे तेना(काळना) कार्यरूप वर्त्तनादि पर्यायनुं किंचित् स्वरूप कहेवाय छे.

॥ [1] नैश्चयिक काळनुं स्वरूप ॥

१ वर्त्तनापर्याय--सादि सान्तादि भेद वडे (सादि सान्त-सादिअनन्त--अनादि सान्त--अने अनादि अनन्त ए) चार प्रकार स्थितिमांथी कोइपण स्थितिमां कोइपण प्रकारे वर्तवुं ते 'वर्तना.'ए वर्त्तना प्रतिसमय बदलाया करे छे. परन्तु कोइपण प्रकारनी विवक्षित एक वर्त्तना बे समयसुधी टकती नथी, ए हेतुथी ए वर्त्तनाने पर्याय (परावृत्ति) कहेवामां आवे छे. "द्रव्याणां सादिसान्तादिभेदैः स्थित्यां चतुर्भिदि ॥ यत्केनचित् प्रकारेण, वर्त्तनं वर्त्तना हि सा ॥ १ ॥" इति काललोकप्रकाशवचनात्

२ परिणाम पर्याय—प्रयोग अने विश्रसादिथी उत्पन्न थयेली नवापणा अने जुनापणांनी जे परिणति ते परिणाम, अर्थात् प्रयत्नथी, स्वभावथी, अथवा उभयथी (ए बन्नेथी) द्रव्योमां जे नवापणुं अने जीर्णता--जूनापणुं उत्पन्न थाय छे ते परिणमनने परिणाम कहेवामां आवे छे, ने ए द्रव्योमां जूनापणुं मटीने नवापणुं,

---

१ आ नैश्चयिककाळ द्रव्योनी वर्त्तनादि पर्यायरूप होवाथी जीवद्रव्यनी वर्त्तनादिपर्यायोरूप काळ जीव, अने अजीवद्रव्योनी वर्त्तनादिपर्यायोरूप काळ अजीव गणाय छे. ए रीते काळद्रव्य जीवाजीवछे, तोपण जीवद्रव्य करतां अजीवद्रव्य अनंत गुण होवाथी बहुलतानी अपेक्षाए काळने सामान्यतः अजीव गणेल छे. (इति लोकप्रकाशे भगवत्यर्थः) पुनः, आ नैश्चयिककाल लोकालोकव्याप्त छे, अने आगळ १३मी गाथामां कहेवातो व्यावहारिक काळ २॥ द्वीप मात्रमांज छे.

अने नवापणुं मटीने जूनापणुं थवारूप परावृत्ति ते 'पर्याय' कहेवाय. कारणके कोइपण द्रव्य सदाकाळ जूनुं के नवुं रहेतुं नथी. अहिं नवुं एटले मेळविनानुं चोख्खुं एवो अर्थ नहिं, पण नवुं एटले अभिनव (नवा) पर्यायोनी उत्पत्तिवाळुं एवो अर्थ करवो. काललोकमां कह्युं छे के "द्रव्याणां या परिणतिः, प्रयोगविस्रसादिजा । नवत्व-जीर्णताद्या च, परिणामः स कीर्त्तितः"॥१॥इति, अथवा परिणाम एटले द्रव्यनो अथवा द्रव्यना गुणनो जे स्वभाव ते परिणाम, कह्युं छे के– "धर्मादीनां द्रव्याणां यथोक्तानां च गुणानां स्वभावः स्वतत्त्वं परिणामः" इति तत्त्वार्थभाष्यवचनात्, ते परिणाम सादिपरिणाम अने अनादि परिणाम एम बे प्रकारे छे, त्यां धर्मा० अधर्मा० आ-आकाशा० अने जीव ए चार अरूपी पदार्थ अनादि परिणामवाळा छे, अर्थात् ए द्रव्योना गतिसाहाय्यकत्वादि स्वभाव अनादि अनन्त काळ परिणतिवाळा छे, अने पुद्गल द्रव्य सादि परिणामी छे, कारणके पुद्गलनो स्पर्शपरिणाम--रसपरिणाम वगेरे सर्व परावृत्तिधर्मवाळा छे. अहीं अपवाद ए छे के सर्व जीवमां जो के जीवत्वादि अनादि परिणामी छे. परन्तु योग अने उपयोग ए बे (परावृत्ति-धर्मवाळा होवाथी) आदि परिणामि छे. इति तत्त्वार्थभाष्यानुसारेण

३ क्रियापर्याय---द्रव्योनी भूतकाळमां थयेली, भविष्यकाळमां थवानी अने वर्त्तमान काळमां थती जे चेष्टा ते क्रियापर्याय. ए अर्थ श्री काल लोकप्रकाशनो छे, अने तत्त्वार्थ भाष्यमां तो "क्रिया गतिः । सा त्रिविधा । प्रयोगगतिर्विस्रसागतिर्मिश्रिकेति." क्रिया एटले गति ते त्रण प्रकारे छे, प्रयोगगति (परना प्रयत्नथी उत्पन्न थयेली गति)--विस्रसागति (स्वभावे उत्पन्न थयेली गति)--अने मिश्रगति (उभयथी उत्पन्न थएली गति) एवो अर्थ छे, त्यां गति एटले द्रव्योनुं स्वस्वप्रवृत्तिमां गमन ए अर्थ लेवाथी प्रथमना

अर्थ साथे अविरोधि रहे.

४–५ परात्वाऽपरत्त्व पर्याय–जेना आश्रयथी द्रव्यमां पूर्वभावित्व अने पश्चाद्भावीनो व्यपदेश थाय ते परापरत्व पर्याय ३ प्रकारनी छे. ते आ प्रमाणे—धर्म अथवा ज्ञान "पर" (श्रेष्ठ) छे, ने अधर्म तथा अज्ञान"अपर"(हीन) छे ए व्यपदेश प्रशंसाकृत परापरत्व कहेवाय, १ तथा एकज दिशामां एकी वखते रहेल बे पदार्थमां जे पदार्थ दूर होय ते पर अने नजीक होय ते अपर, एवो जे व्यपदेश तेक्षेत्रकृत पराऽपरत्व कहेवाय.२तथा १६ वर्षनी स्थितिवाळा द्रव्यथी १००वर्षनी स्थितिवाळुं द्रव्य पर(उत्कृष्ट), अने १००वर्षनी अपेक्षाए १६ वर्षनी स्थितिवाळुं द्रव्य अपर, (जघन्य),एवो जे व्यपदेश, ते कालकृत परापरत्व कहेवाय३(अहिं बे पर्यायनो संबंध एकत्र कहेल छे.) ए प्रमाणे वर्त्तनादि ५ पर्यायो ते काळनोज उपकार छे. "वर्त्तना परिणामः क्रिया परत्वाऽपरत्वे च कालस्य"(इति तत्त्वा० अ०५ सू०). परन्तु परत्वापरत्वमां प्रशंसाकृत अने क्षेत्रकृत ए बे भेद काळ द्रव्यना उपकारथी नथी, एम जाणवुं "तदेवं प्रशसाक्षेत्रकृते परत्वाऽपरत्वे वर्जयित्वा वर्त्तनादीनि कालकृतानि कालस्योपकार"[इतितत्त्वा०भा०]

अथवा वर्त्तमान एक समय ते (ऋजुसूत्रनयनी अपेक्षाए) नैश्चयिक काळ कहेवाय, कारणके वर्त्तमान समय विद्यमान छे, अने भूतकाळ व्यतीत थएल होवाथी, भविष्य काळ आवेलो नहिं होवाथी बन्ने अविद्यमान छे. माटे जे विद्यमान वर्त्तमान काळ ते नैश्चयिक काळ एम पण कही शकाय. काल लोकप्रकाशमां कह्युं छे के "वर्तमानः पुनर्वर्त्त–मानैकसमयात्मकः। असौ नैश्चयिकः सर्वोऽप्यन्यस्तु व्यावहारिकः ॥१॥" ए प्रमाणे निश्चयकाळनु स्वरूप कह्युं, व्यावहारिक काळनुं स्वरूप चालु प्रकरणनी १३ मी गाथानां विवेचनमां कहेवाशे.

॥ व्यवहारिक काळनुं स्वरूप. ॥

आगळ "समयावलि मुहुत्ता" ए गाथामां कहेवाशे. ॥३४॥

॥ स्कंध, ॥

कोइपण पदार्थनो आखो भाग के जे अनेक अणु [1]मळीने थयो होय ते ते पदार्थनो स्कंध कहेवाय. जेम अखंडमोती, अखंड मोदक, अखंड पत्थर ए सर्वनुं अखंड पणु स्कंध कहेवाय. तेम चौदराज प्रमाण वज्राकार धर्मास्तिकाय ते [2]धर्मास्तिकाय स्कंध, ए प्रमाणे चौदराज प्रमाण वज्राकार अधर्मा० ते अधर्मा० स्कंध, अनंत योजन प्रमाण आकाश नो गोळो ते आकाशा० स्कंध, (लघुमां लघु अंगुलना असंख्यातमा भाग जेवडो अने वधुमां वधु १४ राज प्रमाण मोटो असंख्य प्रदेशात्मक एक जीव ते जीवस्कंध,(अजीवना प्रकरणमां जीवस्कंधनु प्रयोजन नथी तो पण प्रसंगतः जीवद्रव्यमां पण स्कंधत्वप्राप्ति दर्शाववाने अहिं कहेल छे.)एक आकाश प्रदेश वे आकाश प्रदेश त्रण आकाश प्रदेश यावत् असंख्य आकाश प्रदेश (१४ राज प्रमाण) जेवडा द्विप्रदेशी वे परमाणुनो बनेलो, त्रिप्रदेशी, चतुः प्रदेशी यावत् अनंत प्रदेशी पुद्गल विभागो पुद्गल स्कंध कहेवाय.

---

१ जो " आखो भाग " ते स्कंध एम कहेवामां आवे तो परमाणुने पण स्कंध कहेवो पडे ते अनिष्ट छे माटे " अनेक अणुमळीने " एम कह्युं छे

२ ' स्कन्दन्ते-शुष्यन्ति पुद्गलविघटनेन. धीयन्ते-पुष्यन्ति च पुद्गलघटनेनेति स्कन्धाः आ . व्युत्पत्तिथी पुद्गलनु मगावु अने विखरावु जेमां थाय ते स्कन्ध कहेवाय छे माटेज प्राचीन महापुरुषोये धर्मास्तिकायादि शाश्वत द्रव्योमा सकन्ध व्यवहार मान्यो नथी केटलाक माने छे ते अपेक्षाये व्याख्यानछे

पुनः जे पुद्गलनो प्रथम आखो भाग कल्पेलो होय तेमांथी कंइक विभाग तूट्या छतां पण ते विभागने जो स्कंध तरीके गणवो होय तो गणी शकाय. जेम आखुं वृक्ष ए स्कंध छे, परन्तु तेमां मूळ पत्र या थड इत्यादि अवयवोने दरेकने स्कंध तरीके गणवा होय तो गणी शकाय, पुनः थड स्कंधमांथी कापीने एक स्तंभ बनाव्यो होय तो ते स्तंभ पण स्कंध कही शकाय. अथवा पर्वतमांथी तूटी पडेली मोटी शिला स्कंध कहवाय. पुनः ते शिलामांथी तूटी पडेलो पत्थर पण स्कंध कही शकाय, ए प्रमाणे पुद्गल द्रव्यना अमुक कल्पेला स्कंधमां छूटा पडेला या संबंध करी रहेला द्विप्रदेशो सुधीना विभागने पण स्कंध कही शकाय, कारणके पुद्गलद्रव्यमां स्कंध अने देशनो व्यपदेश परस्पर अपेक्षा वाळो होवाथी अनियमित छे. संबद्ध होय त्यां सुधी कल्पित अमुक भागने देश मानवो तज उचित छे.

॥ देश. ॥

स्कंधनी अपेक्षाए (तेज स्कंधमांनो जे न्यून विभाग ते देश कहेवाय. देश--खंड--विभाग इत्यादि देशना एकार्थदर्शक शब्दो छे. जेम आखा मोतीमांथी कोइ विभाग तुटी गयो होय तो ते मोती प्रथमना आखा मोतीनी अपेक्षाए मोतीनो देश, भाग काढी लीधो होय तो बाकी रहेलो मोदक प्रथमना आखा मोदकनी अपेक्षाए देश (भाग) कहेवाय, अथवा छुटेलो पत्थर ते प्रथमना अखंड पत्थरनी अपेक्षाए देश विभाग कहेवाय. ए प्रमाणे जे छुटवाथी बनेलो देश ते अप्रतिबद्ध देश कहेवाय. अने स्कंधमांथी कोइपण विभाग खंडित थयाविना ते स्कंधमां पोणो भाग अर्धो भाग इत्यादि कल्पना करीए तो तेवो स्कंध प्रतिबद्ध कल्पित विभाग तेने

[1] प्रतिबद्ध देश कहेवामां आवे छे. आ देश विभागनो व्यपदेश एक प्रदेशन्यून अनंत प्रदेशथी मांडीने यावत् द्विप्रदेशी विभाग सुधी थइ शके, [2] अने ते व्यपदेश अनंत प्रदेशात्मक संपूर्ण स्कंधथी मांडीने यावत् त्रिप्रदेशी स्कंध सुधीना सर्व स्कंधोमां थइ शके, [3] परन्तु द्विप्रदेशी स्कंधमां देश विभाग होइ शके नहि, कारण के ए स्कंधनो विभाग करवां जतां बन्ने विभागो छूटा थायतो बे परमाणु कहेवाय अने संलग्न होय तो द्विप्रदेशी स्कंध अथवा बे प्रदेशो कहेवाय, पण देशविभाग कोइ रीते न कहेवाय. धर्मादि द्रव्योमां देश विभाग रूप भेद आ प्रमाणे छे.

१, श्री नवतत्त्वभाष्यमां ३१मी गाथानी वृत्तीमां कह्युं छे के "वळी देश एटले सविभाग भाग ते तेनोज एटले धर्मास्तिकायनो विवक्षावडे एटले वक्तानी इच्छावडे अर्धादि एटले अर्ध त्रिभाग अने चतुर्भाग इत्यादि थाय छे " छ द्रव्योना जुदा जुदा देश विभाग गणवामां उपयोगी होवाथी अप्रतिबद्ध देश अने प्रतिबद्ध देश ए बे भेद ग्रंथ लेखकना अभिप्रायथी थयेला छे. कारणके धर्मास्तिकायादि अखंड द्रव्योमा खंडरूप देश विभागने प्रतिबद्ध देश तरीके, खंडित थता पुद्गलद्रव्यमां थता विभागोने अप्रतिबद्ध देश तरीके जणाववानी जरुर छे. पुनः पुद्गलद्रव्योमां बन्ने प्रकारनां देश पण होय छे.

२ जेम एक प्रदेशन्यून धर्मा० थी मांडीने द्विप्रदेशावगाही धर्मा० विभाग सुधीना सर्व विभागो धर्मा० देश तरीके गणाय, जेम १० प्रदेशीस्कंधमां नवप्रदेशी, अष्टप्रदेशी, सप्तप्रदेशी षट्प्रदेशी, पंचप्रदेशी. चतुःप्रदेशी, त्रिप्रदेशी, अने द्विप्रदेशी ए ८ देशविभाग कहेवाय तथा १० प्रदेशविभाग. अने १ स्कंध कहेवाय

३ एक प्रदेशन्यूनरूप धर्मा० विभाग संपूर्ण धर्मा० नी अपेक्षाए देश छे अने त्रिप्रदेशी पुद्गल स्कंधमां द्विप्रदेशी विभाग देश छे इत्यादि,

धर्मास्तिकाय जो के अखंड द्रव्य छे, एनो विभाग जुदो पडी शकतो नथी तो पण संपूर्ण धर्मास्ति०नी अपेक्षाए एक प्रदेश न्यून-धर्मा०, द्विप्रदेशन्यून धर्मा० यावत् द्विपदेशी धर्मा० सुधीना असंख्य विभागो कल्पी शकाय छे, ए हेतुथी प्रतिबद्ध देशनी अपेक्षाए धर्मास्तिकाय [1] देश कही शकाय छे. ए प्रमाणे अधर्मा० देश--आकाशा० देश.--अने (आ अजीव प्रकरणमां अनुपयोगी छे तो पण) जीव देश पण धर्मा० देशवत् जाणवा. तथा अनादि अनंत पुद्गल स्कंधो [मेरु -शाश्वतमंदिर--शाश्वत प्रतिमा वगेरे] पण प्रतिबद्धदेश वाळा छे, अने शेष अशाश्वत (क्षणभंगुरविनाशी) पुद्गलस्कंधो प्रतिबद्धदेश तथा अप्रतिबद्धदेश वाळा जाणवा. कारणके विभाग धर्मयुक्त पुद्गल स्कंधमांथी पण ज्यां सुधी विभाग जुदो नथी थयो ते दरम्यानमां पण धर्मास्ति० देशवत् देश पणानी कल्पना थइ शके छे. वास्तविकदेश व्यपदेश स्कंधमा बुद्धिथी कल्पित विभागने मानवो तेज उचित छे.

प्रदेश,

स्कंधमां लागेलो जे परमाणु ते प्रदेश कहेवाय. प्र० उत्कृष्ट देश--विभाग ते प्रदेश. अर्थात् अति उत्कृष्ट विभाग ते प्रदेश, कारणके प्रदेशथी परमन्यून विभाग कोइ पण नथी. छेल्लामां छेल्लो विभाग तेज प्रदेश छे. पुनः प्रदेश करतां नानो विभाग आ जगतमां कोइ नथी. ए हेतुथी अतिनानामां नानो विभाग ते प्रदेश कहेवाय, के जे विभाग एक परमाणु मात्र कदनोज छे. त्यां धर्मा-

१ जेम आकाश द्रव्य अखंड होते पण घटाकाश पटाकाश इत्यादि खंड आकाशनो व्यपदेश थाय छे, तेम अत्रे पण धर्मास्तिकाय अखंड द्रव्यना घटधर्मास्तिकाय व्यपदेश थइ शके ने ते घटधर्मास्तिकाय संपूर्ण धर्मास्ति०नो देश कहेवाय.

स्तिकायना असंख्य अणुओ पिंडित थइने स्कंधरूपे अनादिकाळ-थी परिणमेला होवाथी धर्मा०ना सर्व अणुओ (प्रत्येक अणु) धर्मा०नो प्रदेश कहेवाय छे. ए प्रमाणे अधर्मा० प्रदेश, 'आकाशा० प्रदेश अने जीवप्रदेश पण कहेवाय छे. तथा छिन्नदेशो स्कंधथी अनंत प्रदेशी पुद्गल स्कंधोमां लागेला सर्व अणु (परमाणु) पुद्गल प्रदेश कहेवाय छे.

॥ परमाणु. ॥

स्कंधने नहिं वळगेलो एवो जे छूटो अणु ते परमाणु कहेवाय. 'परम'-उत्कृष्ट, 'अणु'-अणु ते परमाणु त्यां धर्मास्तिकायना सर्व अ-णुओ स्कंधमां वळगेला होवाथी धर्मास्तिकायनो परमाणु नथी, अने तेवीज रीते अधर्मा० वगेरे ३ द्रव्यना (अधर्मा०-आकाश-अने जीव द्रव्यना) अणुओ पण अनादि अनन्त काळसुधी स्कंधमां वळगेला होवाथी ए ३ द्रव्यना परमाणु नथी. अने पुद्गल द्रव्य तो वास्तविक रीते परमाणुज छे. अने स्कंध, देश, अने प्रदेश ए तो पुद्गल परमाणुना विकाररूप छे. कारणके ६ द्रव्यमां जीव अने पु-द्गल द्रव्य विभावस्वभावी छे, त्यां जीवना देवत्व नरत्वादि अने पुद्गलना स्कंधादि विभावस्वभाव छे, माटे तत्त्वथी तो परमाणु एज पुद्गल छे, अने स्कंधादि तो उपचारथी (व्यवहारथी) पुद्ग-लव्यपदेशवाळा छे.

प्रश्नः—६ द्रव्यमां धर्मास्तिकायादि ५ द्रव्यना स्कंध देश अने प्रदेशादि गण्या अने काळद्रव्यना स्कंधादिनी गणत्री केम न करी?

---

१ धर्मा० अधर्मा० अने एक जीवना प्रदेशो सरखी सं-ख्याए असंख्यात छे. माटे प्रत्येकना असंख्य असंख्य प्रदेश जाणवा अने आकाश द्रव्य अनंत प्रदेशी होवाथी आकाशना प्रदेश अनंत जाणवा.

उत्तर—प्रथम कही गया मुजब काळ ए प्रदेश समुदायात्मक द्रव्य नथी पण पांच द्रव्योनी वर्त्तनादि पर्यायरूप गुणने उपचारथी काळद्रव्य मानेल छे तो पछी अणुरहित काळना स्कंधादि केम होइ शके, अने काळना प्रदेशो (अणुओ) नहिं होवाथीज गाथामां पण काळ एकज द्रव्य भेदरूपे गणेल छे. अने शास्त्रकारो काळने अस्तिकाय–प्रदेशनो समूह नहिं होवाथी कालाऽस्तिकाय कहेता नथी पण मात्र " काल " ए शब्दथीज ओळखे छे.

शंका—प्रदेश अने परमाणुमां तफावत शुं ?

उत्तर—प्रदेश अने परमाणुमां तफावत मात्र एटलोज छे के स्कंधने वळगेलो होय तो प्रदेश, अने स्कंधथी छूटो अणु होय तो परमाणु कहेवाय.

शंका—प्रदेश मोटो के परमाणु मोटो ?

उत्तर—प्रदेश अने परमाणु बे सरखा कदनाज छे. किंचित् मात्र पण नाना मोटा नथी, तोपण स्कंध प्रतिबद्ध होवाथी प्रदेश अने छूटापणाने लइने परमाणु एवो व्यपदेश अवस्था भेदने अंगे छे. जेम कोइक कन्या पियरमां होयतो दीकरी अने तेज कन्या सासरे जायतो वहु कहेवाय छतां ते कन्यामां कोइ जातनो तफावत मनातो नथी तेम छूटो अणु ते परमाणु अने स्कंध प्रतिबद्ध अणु ते प्रदेश कहेवाय पण कद अथवा आकारमां कइ तफावत पडे नहि.

ए परमाणु अने प्रदेश बन्ने पुद्गल द्रव्यना निर्विभाज्य भाग छे, एटले ए परमाणु अथवा प्रदेशना बे विभाग न कल्पी शकाय, कारणके पुद्गल द्रव्यनो अन्त्य विभाग तेज परमाणु छे. वळी ए परमाणु अति तीक्ष्ण शस्त्रथी छेदाय नहिं, अग्निमां बळे नहिं, पवनथी उडे नहिं. जळथी भीजाय नहिं, एवो अति सूक्ष्म छे, पुनः ए परमाणुनी गति (वच्चे पहाड पर्वतथी पण) कोइथी रोकाय नहिं एवो 'अप्रतिहत

छे, अने एक आकाश प्रदेशमां अवगाही (समाइ) रहे छे. एवा दस बार पंदर पचीस सो हजार लाख के अबज सूक्ष्म परमाणुओ भेगा मळे तो पण दृष्टिगोचर थाय नहिं, एथी पण वधु संख्यात के असंख्यात--अनन्त परमाणुओ भेगां मळतां पण दृष्टिगोचर थाय नहिं परन्तु ज्यारे अमुक प्रमाणमां घणा अनंत बादर* परिणामी परमाणु भेगा मळे तोज दृष्टिगोचर थइ शके एवा अतिसूक्ष्म परमाणु होय छे. जाळीआना तेजमां उडता रजकणमां, अने एक वालाग्रमां पण अनंत परमाणुओ रहेला छे. इत्यादि परमाणुनुं विस्तृत स्वरूप ग्रन्थान्तरथी जाणवा योग्य छे.

---

१ पर्वत-जळ-अग्नि इत्यादिवडे परमाणु अप्रतिघाती छे परन्तु ३ प्रकारे प्रतिघाती पण छे. त्यां विमात्रस्निग्धरूक्षत्ववडे परमाणुनो अन्य परमाणु साथे संबंध थवाथी बन्धनपरिणामप्रतिघाती, अलोकमां धर्मास्तिकाय नहिं होवाना कारणे लोकान्तथी आगळ धर्मास्तिकायनो उपकार परमाणु उपर नहि होवाथी परमाणु लोकने अन्ते जइ हणाय छे-अथडाय छे तेथी उपकाराभावप्रतिघाती, अने वेगथी (विस्रसा परिणामे) गति करता परमाणुने वेगवाळी गति वडे सामो आवतो बीजो परमाणु अटकावे छे, ए हेतुथी परमाणु वेगप्रतिघाती छे. (ए ३ प्रकारनो प्रतिघात तत्त्वार्थना ५ मा अध्यायना २६ मा सूत्रनी वृत्तिमां कह्यो छे) माटे एकज परमाणुमां प्रतिघातित्व, अने अप्रतिघातित्व बन्ने वर्ते छे तो पण स्थूळ नयथी परमाणु अप्रतिघाती कहेवाय. जेम शब्दादि पुद्गलो सामान्यपणे अप्रतिघाती होते छते वायु इत्यादिवडे प्रतिघात प्रत्यक्ष उपलब्ध थाय छे. तेम अप्रतिघाती परमाणुमां ए ३ प्रकारे प्रतिघात संभवे छे. पुनः जे द्रव्यो अप्रतिघाती कह्यां छे ते एकान्तें अप्रतिघातीज एम नहि परन्तु अमुक अमुक अपेक्षाए तेओमां प्रतिघात पण संभवे.

* बादर परिणामी स्कंधोज घणा अनंतप्रमाणमां एकठा

॥ कया द्रव्यना स्कंधादि भेद केटला ? ॥

धर्मास्ति० ([1]स्कंध)—एक छे.

धर्मास्ति० देश—असंख्य छे. (दरेक विभाग एकेक प्रदेश न्यून कल्पवाथी बे न्यून स्वप्रदेश संख्या [2]प्रमाण.)

धर्मास्ति० प्रदेश—असंख्य छे, ने धर्मा० देशनी संख्याथी बे अधिक

अधर्मास्ति० (स्कंध)—एक छे.

अधर्मास्ति० देश—असंख्य छे. (२ न्यून स्वप्रदेश संख्या प्रमाण.)

अधर्मास्ति० प्रदेश—असंख्य छे, ने अधर्मा० देशनी संख्याथी बे अधिक छे.

आकाशास्ति० (स्कंध)—एक छे.

आकाशास्ति० देश—अनंत छे. (२ न्यून स्वप्रदेश संख्या प्रमाण.)

आकाशास्ति० प्रदेश—अनंत छे, ने आकाशा० देशनी संख्याथी बे अधिक छे.

जीवास्तिकाय (स्कंध)—अनंत छे (जीव द्रव्य अनंत होवाथी.)

जीवास्तिकाय देश—एक जीवना देश (बे न्यून स्वप्रदेश संख्या प्रमाण) असंख्य, अने सर्व जीवना देश

थाय तो दृष्टिगोचर थाय, अने सूक्ष्मपरिणामी स्कंधो तो गमे तेटली उत्कृष्ट संख्याए एकठा थाय अने चौदराजलोक जेवडु कद थाय. तोपण दृष्टिगोचर न थाय. माटे परमाणुओ परमाणु अवस्थामां तो न सूक्ष्मपरिणामी के न बादर परिणामी छे, पण ज्यारे स्कंधरूपे परिणमे छे त्यारेज पर्वोक्त बे रीते परिणमे छे, एम जाणवुं.

1. धर्मा०द्रिष्टमां स्कन्ध उपदेशकल्पितछे. वास्तविक नही.

2. जेम पूर्वे १० प्रदेशी स्कंधना ८ देश विभाग दर्शाव्या ते प्रमाणे.

मळीने अनंत छे.

जीवास्तिकाय प्रदेश—एक जीवना असंख्य छे (धर्मा० या अधर्मा० प्रदेश संख्या जेटला.) सर्व जीवना प्रदेश मेळवतां अनंत छे.

पुद्गल स्कंध—अनंत छे.

पुद्गल देश—एक स्कंधमां एकथी मांडीने अनंत, (जेमके त्रिप्रदेशी स्कंधमां १ देश होइ शके, चतुःप्रदेशी स्कंधमां २ देश होइ शके यावत् अनंत प्रदेशी स्कंधमां २ न्यून प्रदेश संख्या प्रमाण अनंत देश होइ शके). ए प्रमाणे (प्रत्येक स्कंधमां गणतां) सर्व स्कंधोना मळीने पण अनंत देश छे.

पुद्गल प्रदेश—अनंत छे.

पुद्गल परमाणु—अनंत छे.

काळ—(स्कंध--देशादि नथी पण) समय अनंत छे. ए प्रमाणे संक्षेपथी अजीवना १४ भेदनुं स्वरूप कह्युं.

अवतरण—पूर्व गाथामां अजीवना १४ भेद कहीने हवे आ गाथामां कया द्रव्य अजीव छे ? अने कया द्रव्यनो शुं स्वभाव छे ? ते दर्शावे छे.

॥ मूळ गाथा ९ मी. ॥

धम्माऽधम्मा पुग्गल, नह कालो पंच हुंति अजीवा ।
चलणसहावो धम्मो, थिरसंठाणो अहम्मो य ॥ ९ ॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

धर्मोऽधर्मौ पुद्गलानभः कालः पंच भवन्त्यजीवाः ।
चलनस्वभावो धर्मः, स्थिरसंस्थानोऽधर्मश्च ॥ ९ ॥

॥ शब्दार्थः ॥

धम्म–धर्माऽस्तिकाय.
अधम्मा–अधर्माऽस्तिकाय.
पुग्गल–पुद्गलास्तिकाय.
नह–आकाशास्तिकाय.
कालो–काळ.
पंच–पांच (ए पांच)
हुंति–छे.
अज्जीवा–अजीव.
चलणसहावो–चालवामां सहाय आपवामां स्वभाववाळो.
धम्मो–धर्माऽस्तिकाय.
थिर–स्थिर रहेवामां (सहायआपवाना–इतिअध्याहार.)
संठाणो–स्वभाववाळो.
अहम्मो–अधर्मास्तिकाय.
य–अने.

गाथार्थ—धर्माऽस्तिकाय, अधर्माऽस्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, अने काळ ए पांच (पदार्थ) अजीव छे. त्यां जीव[1] अने पुद्गलने चालवामां सहाय आपवाना स्वभाववाळो धर्माऽस्तिकाय छे, अने स्थिर रहेवामां सहाय आपवाना स्वभाववाळो अधर्माऽस्तिकाय छे.

विस्तरार्थः—जीव अने पुद्गलने गति करवामां, सहाय करनार अथवा अपेक्षा कारणरूप जे द्रव्य ते धर्मास्तिकाय. जीव अने पुद्गलने स्थिर थवामां अपेक्षा कारणरूप (अथवा सहाय करनार) जे द्रव्य ते अधर्माऽस्तिकाय.

शंका—जीव अने पुद्गलमां गतिक्रिया करवानी अने स्थिर थवानी शक्ति शुं नथी के जेथी धर्माऽस्तिकाय अने अधर्मा० द्रव्यथीज गतिक्रिया करी शके अने स्थिर थइ शके ?

१ आगळ १० मी गाथाना बीजा चरणमां कहेल " पुग्गलजीवाण " ए पाठनी अनुवृत्ति अहिं आवे छे जेथी आ गाथामां नहि कह्या छतां पण " जीव अने पुद्गलने " ए अर्थ करवो जोइए.

उत्तर—हे जिज्ञासु ! धर्मास्तिकाय द्रव्य जीव अने पुद्गलने पाछळथी धक्को दइने अथवा आगळथी खेंचीने गतिक्रिया करावतुं नथी. पण जीव अने पुद्गल पोतेज गतिक्रिया करवा समर्थ छे, छतां पक्षीने उडवामां जेम वायु, मत्स्यने तरवामां जेम जळ, अने चक्षुने देखवामां जे सूर्यादिनो प्रकाश अपेक्षा कारणरूप छे. तेम धर्मास्ति० पण जीव-पुद्गलनी गतिमां अपेक्षा कारणरूप छे. कारण ४ प्रकारनां छे, उपादान कारण–अपेक्षाकारण-निमित्तकारण अने- असाधारण कारण. तेमां घट बनाववामां कुंभार कर्त्ता छे त्यां मृत्तिका (माटी) ए घट रचनामां उपादान कारण, दंड चक्रादि निमित्त कारण. चक्र भ्रमण(चाकडानुं भमवुं.)असाधारणकारण, अने आकाशादि जेम अपेक्षा कारण छे, तेम जीवपुद्गलने गतिक्रिया करवामां अने स्थिर थवामां अनुक्रमे धर्मा० अने अधर्मा० द्रव्य अपेक्षा कारणरूप छे-बीजुं अधिक विवेचन पूर्वे गाथामां दर्शाव्युं छे.

तथा पूरण (पूरावुं–मळवुं) अने गलन (गळवुं–झरवुं–विखरवुं–छूटा पडवुं) धर्मयुक्त जे पदार्थ ते पुद्गल द्रव्य कहेवाय. अहिं परमाणु एज पुद्गल द्रव्य छे. ए परमाणुनो स्कंधरूपे मलवा योग्य, अने स्कंधथी विखरवा–छूटा पडवारूप धर्म होवाथी परमाणु ते पुद्गल कहेवाय छे. दरेक परमाणु मलवा अने विखरवाना धर्मवाळो छे, परमाणुओ ज्यारे परस्पर मळे छे त्यारे स्कंध बने छे, अने छूटा पडे छे त्यारे पुनः परमाणुज रहे छे. ए प्रमाणे परमाणुओ वारंवार द्विप्रदेशी, त्रिप्रदेशी, यावत् अनंत प्रदेशी स्कंधरूपे परिणमे छे (मळे छे), अने ते स्कंधोथी छूटा पण पडे छे, त्यां कोइ पण एक परमाणु जघन्यथी १ समय अने उत्कृष्टथी असंख्य समय सुधी परमाणुरूपे छूटो रहे छे, तदनंतर अवश्य स्कंधपणे परिणमे छे. ए परमाणुनो जघन्यउत्कृष्ट काळ कह्यो. पुनः ए परमाणु ज्यारे स्कंधमां

लागे छे त्यारे " प्रदेश " एवी संज्ञाथी ओळखाय छे. पुनः परमाणुओथी बनेला स्कंध–देश–अने प्रदेशरूप विकारो पण पुद्गलज कहेवाय छे. पुद्गलमां १० प्रकारना परिणाम (धर्म) रह्या छे ते 'सद्दंधयार उज्जोअ' गाथानां विवेचनमां कहेवाशे.

धर्माऽस्तिकायादि ४ द्रव्योने अवकाश (जग्या) आपनार जे पदार्थ ते आकाशाऽस्तिकाय. अहिं काळ प्रथम कह्या मुजब औपचारिक द्रव्य होवाथी, अने आकाश स्वयं बीजाने अवकाश आपनार होवाथी आकाशद्रव्य शेष ४ द्रव्योनेज अवकाश आपवामां उपकारी छे बीजुं अधिक वर्णन पूर्व गाथाना विवेचनमां दर्शाव्युं छे.

पांचे द्रव्योनुं जे वर्त्तनादि लक्षण ते (नैश्चयिक) काळ जेनुं स्वरूप पूर्व गाथाना अने १३ मी गाथाना विवेचनमां दर्शाव्युं छे. अने व्यवहारकाळनुं स्वरूप 'समयावलिमुहुत्ता' ए गाथामां दर्शावाशे.

ए पूर्वोक्त धर्मा०–अधर्मा०–पुद्गल–आकाशा०–अने काळ ए पांच द्रव्य अजीव छे. हवे ए पांचे अजीव द्रव्यनां लक्षण ग्रंथकार गाथाद्वारा दर्शावे छे के 'चलणसहावो' चलन स्वभावयुक्त एटले चालनाने सहाय करवाना स्वभावयुक्त 'धम्मो'-धर्माऽस्तिकाय छे, अने 'थिरसंठाणो'–स्थिर संस्थानवाळो अर्थात् स्थिर रहेनारने सहाय आपवाना संस्थान-स्वभाववाळो 'अहम्मो'-अधर्माऽस्तिकाय छे.

अवतरण—पूर्व गाथामां धर्मास्ति० अने अधर्मा०नो स्वभाव कहीने हवे आ गाथामां आकाशास्तिकायनो स्वभाव अने पुद्गळना चार प्रकार कहे छे.

॥ मूळ गाथा १० मी. ॥

अवगाहो आगासं, पुग्गलजीवाण पुग्गला चउहा ।
खंधा देसपएसा, परमाणू चेव नायव्वा ॥ १० ॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

अवकाश आकाशं, पुद्गलजीवानां पुद्गलाश्चतुर्धा ।
स्कंधा देशप्रदेशाः, परमाणवश्चैव ज्ञातव्याः ॥ १० ॥

॥ शब्दार्थः ॥

अवगाहो--अवकाश (जग्या) अवकाश आपवाना स्वभाववाळो.
आगासं--आकाशास्तिकाय.
पुग्गल--पुद्गलोने (अने)
जीवाणं--जीवोने.
पुग्गला--पुद्गलो.
चउहा--चार प्रकारना.
खंधा--स्कन्ध (आखो भाग)
देस--देश (न्यूनविभाग.)
पएसा--प्रदेश (स्कंधप्रतिबद्ध अणु.)
परमाणु--सूक्ष्म अणु (स्कंधथी छूटो अणु)
चेव--निश्चय.
नायव्वा--जाणवा.

गाथार्थः---पुद्गल अने जीवोने (अध्याहारथी धर्मा० अधर्मा० कायने पण) अवकाश (जग्या) आपवाना स्वभाववाळो आकाशास्तिकाय छे पुद्गलो चार प्रकारना छे, ते चार प्रकार निश्चयथी स्कंध--देश--प्रदेश--अने परमाणु जाणवा.

---

१ आ गाथामा कहेल पुग्गलजीवाण ए पाठनी अनुवृत्ति पूर्व गाथामां गयेली होवाथी त्यां कहेल धर्मा० अने अधर्मा० ने आश्रयी 'पुग्गलजीवाण' (एटले पुद्गल अने जीव) ए अर्थ घटी शके छे. परन्तु आकाशना संबंधमां तो धर्मास्तिकायादि चारे द्रव्यरूप अर्थ लेवो योग्य छे

शंका--जो एम होयतो गाथामा 'पुग्गलजीवाण' मात्रज पाठ केम कह्यो ?

उत्तर--धर्मा० अधर्मा० अने आकाश ए त्रणे द्रव्यना स्वभावनुं समानाधिकरण (त्रणेना स्वभावनी ग्राहकता) जीव अने पुद्गलमांज छे. माटे त्रणे द्रव्यना समानाधिकरणनी अपेक्षाए गाथामा पुग्गल जीवाण ए पाठ पण योग्यज छे

विस्तरार्थः—पुद्गलने अने जीवोने तथा अध्याहारथी धर्मा० अधर्मा०ने अवकाश (जग्या) आपवानो स्वभाव आकाश द्रव्यनो छे. ए आकाशद्रव्यना अभावे धर्मास्तिकायादिनुं अवस्थान अशक्य छे. इत्यादि विशेष वर्णन गतगाथाना विवेचनमां आवी गयु छे. तथा पुद्गलद्रव्यना स्कंध–देश–प्रदेश–अने परमाणु ए चार भेद छे. जे प्रथम विस्तरार्थमां कहेवाइ गया छे, अने शेष धर्मास्तिकायादिना त्रण त्रण भेद तथा काळनो एक भेद गाथाद्वारा कहेलो छे, जेथी सर्व मली अजीवना १४ भेद संपूर्ण थया.

शंका—कया द्रव्यनो कयो स्वभाव ? ते कहेवाने प्रारंभ करतां त्रण द्रव्यना स्वभाव कह्या अने अत्रे पुद्गल द्रव्यनो स्वभाव कहेवानो प्रसंग छे छतां पुद्गलना भेद केम कह्या?

उत्तर—पुद्गलनो स्वभाव'सद्दंधयारउज्जोअ' ए गाथामां आगळज कहेवानो छे, अने ते शब्दादि पुद्गलस्वभावो स्कंध रूप छे अने पुद्गलतो वास्तविकरीते परमाणु रूप छे, तेथी परमाणुरूप पुद्गलना स्कंधरूप शब्दादि स्वभाव केम होइ शके ? ए शंकानो अवकाश टालवाने अर्थे आ गाथामां पुद्गलना चार भेद कहेवावडे स्कंध देश प्रदेश अने परमाणु ए चारे पुद्गल प्रकारज छे एम जणाव्युं. ते योग्य छे.

ए पुद्गल द्रव्य मात्र लोकाकाशमांज सर्वत्र रहेल छे, पुनः पुद्गलना स्कंधो द्विप्रदेशीथी मांडीने अनंतप्रदेशी सुधीना स्कंधो १४ राजलोकमां सर्वत्र छे. त्यां पुद्गलनो जघन्य स्कंध बे परमाणुनो मलीने बने छे. स्कंध बनवानुं मुख्य कारण परमाणुमां रहेली स्निग्धता अने रूक्षता छे,('स्निग्धरूक्षत्वाद्बन्धः' इति तत्त्वा० वचनात्). ते स्निग्धता अने रूक्षता पण परस्पर बे विगेरे अंश जेटली अधिक होय तोज बे परमाणुनो परस्पर संबन्ध थाय छे. जेमके

५ अंश स्निग्ध परमाणु साथे ७ अंश स्निग्ध अथवा रुक्ष परमाणुनो संबन्ध थाय, ('द्व्यधिकादिगुणानां तु' इति तत्त्वा० वचनात्). ए प्रमाणे शेष सर्वपुद्गलस्कंधोनी उत्पत्ति जाणवी, अने स्कंधनी उत्पत्ति थतां तेना देशादि (देश—अने प्रदेश) नी उत्पत्ति तो सापेक्ष होवाथी सहज छे, पुनः ए संबन्धी केटलुंक विवेचन अजीवना १४ भेदवाळी 'धम्माऽधम्माऽऽगासा' ए गाथाना विस्तरार्थमां कहेवाइ गयुं छे ने वधु जिज्ञासुए ग्रन्थान्तरथी जाणवुं.

अवतरण—पूर्वगाथामां पुद्गलना ४ प्रकार कहीने हवे आ गाथामां पुद्गलनां लक्षण (स्वभाव-धर्म-गुण) कया कया? ते दर्शावे छे

॥ मूळ गाथा ११ मी ॥

सद्दंधयारउज्जोअ, पभाछायातवेहिं आ ।
वण्णा गंध रसा फासा पुग्गलाणं तु लक्खणं ॥११॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

शब्दान्धकारावुद्योतः, प्रभाछायातपैश्च ।
वर्णो गंधो रसः स्पर्शः, पुद्गलानां तु लक्षणं ॥ ११ ॥

॥ शब्दार्थः ॥

सद्द—शब्द	वण्ण—वर्ण (रंग)
अंधयार—अंधकार	गंध—गंध
उज्जोअ—उद्योत	रसा—रस
पभा—प्रभा	फासा—स्पर्श
छाया—छाया	पुग्गलाणं—पुद्गलोनां
आतवेहिं—आतप (तडका) वडे	तु—वळी
आ—अने	लक्खणं—लक्षण(स्वभाव) धर्म-गुण

गाथार्थः—शब्द, अन्धकार, चंद्रादिकनो ठंडो प्रकाश, प्रभा

छाया (प्रतिबिंब)—आतप (गरम प्रकाश) तडको आ वस्तुओए करीने पुद्गलो ओळखाय छे. अने वर्ण गंध, रस अने स्पर्श ए पुद्गलोनां लक्षण (–धर्म–गुण) छे.

विस्तरार्थः–गाथामां कहेला शब्दादि ए पुद्गलना परिणामो छे, कारणके पुद्गलमांथी उत्पन्न थाय छे, अने शब्दादि जाते पण पुद्गल छे, जेमके शब्द ए पोते पुद्गलात्मक छे. हवे ते शब्दादिकनुं किंचित् स्वरूप आ प्रमाणे छे.

॥ शब्दभेदो. ॥

शब्द एटले अवाज, ध्वनि, नाद इत्यादि. शब्द सचित्त अचित्त अने मिश्र एम ३ प्रकारनो छे. त्यां जीवनो मुखद्वारा उच्चारातो जे शब्द ते सच्चित्तशब्द, बे पत्थर अफलावाथी उत्पन्न थयेलो ते अचित्त शब्द अने जीव प्रयत्नवडे वागता मृदंगादिकनो मिश्रशब्द. अहिं मिश्र भेद व्यवहारमात्रथी छे, कारणके वास्तविकरीते तो मृदंगादिनो अचित्त शब्दज गणाय अथवा जीव प्रयत्नवडे वागती सरणाइ–शुङ्ल वगेरेनो मिश्रशब्द गणाय, अथवा शब्द शुभ अने अशुभ एम बे प्रकारे छे, त्यां कर्णने आनंदकारी शुभ शब्द, अने कर्णकटु अशुभशब्द कहेवाय; अथवा शब्द व्यक्त अने अव्यक्त एम २ प्रकारनो छे त्यां द्वीन्द्रियादिकनो अने पशु इत्यादिकनो शब्द स्पष्टअक्षरात्मक नहिं होवाथी अव्यक्तशब्द अने पोपट-मनुष्यादिकनो स्पष्ट अक्षरात्मक होवाथी व्यक्तशब्द कहेवाय. इत्यादि अनेक भेद स्वबुद्धिए यथार्थ विचारवा.

॥ शब्दनी उत्पत्ति. ॥

शब्दनी उत्पत्ति अष्टस्पर्शी (बादर परिणामी) पुद्गलस्कंधोथी छे. अने शब्द पोते चतुःस्पर्शी पुद्गलस्कंध छे अर्थात् अष्टस्पर्शी

बादर परिणामी पुद्गलस्कंधमांथी तथाप्रकारना जीव प्रयत्नवडे अथवा स्वभावतः (ते अष्टस्पर्शी स्कंधमां कोइ विकार थवाथी) तदन्तवर्त्ती (ते स्कंधावगाही) भाषावर्गणायोग्य पुद्गलो शब्दपणे परिणमीने उछले छे, अने ते भाषावर्गणा चतुःस्पर्शी छे. पुनः ए शब्दनी उत्पत्ति जीव औदा०—वैक्रिय—ने आहा० ए त्रणदेहद्वारा करे छे, परन्तु तैजस अने कार्मणादि कोइपण स्कंधमांथी शब्दोत्पत्ति थती नथी, पुनः जे पत्थरादि अजीव पदार्थमांथी शब्दोत्पत्ति थाय छे ते पण निर्जीव औदारिक देहथीज जाणवी

अहिं नैयायिको शब्दनी उत्पत्ति आकाशद्रव्यथी माने छे ते युक्तिपूर्वक नथी, कारणके अरूपी आकाशमांथी [२] रूपी शब्दनी उत्पत्तिनो असंभव छे. माटे शब्द ए आकाशनो गुण नहिं पण पुद्गलनो परिणाम छे. पुनः शब्द जो पुद्गल पदार्थ न होय तो मूळ शब्द कूवामां भोंयरामां के गुफा वगेरेमां अथडाइने तेनो प्रतिशब्द—पडघो केम वागे ? माटे शब्दनो पडघो पडवाथी पण शब्द पुद्गल परमाणुनो समुदाय छे, एम अनुमान थाय छे.

॥ अंधकार. ॥

अंधकार ए पण पुद्गलनो विकार छे, अर्थात् पुद्गलरूप छे. अन्यदर्शन [नैयायिकादि] अंधकारने पदार्थ रूप मानता नथी, पण "तेजनो अभाव ते अंधकार" एम माने छे, परन्तु जे चक्षुदृश्य कृष्णवर्णरूप जे अंधकार ते पुद्गलज.

॥ उद्योत. ॥

१ श्री विशेषावश्यककारिकामां पण देहथी भाषानी उत्पत्ति प्रगट रीते कही छे,

२ ७ मी गाथामां वचन प्राणना वर्णन प्रसंगे शब्दनुं रूपी पणु स्फुटतांदमां दर्शावेलुं छे.

चंद्र-ग्रह-नक्षत्र-तारा-रत्न-आगीआ इत्यादिपदार्थोंना तथा जीवोना शीतप्रकाश ते सर्व उद्योत कहेवाय छे, अने अग्नीनो उष्ण प्रकाश छे. तेथी "उद्योतमां" न गणी शकाय. ए उद्योत प्रकाश चंद्रादिकना विमानमांथी विमाननो प्रतिसमय निकलतो पुद्गलप्रवाह छे, जेम वर्त्तमानसमयमां ग्यासलाइट अने विजळी वगेरेना तेजनो परमाणुप्रवाह प्रत्यक्ष देखाय छे, तेम चंद्रादिकनो प्रकाशरूप परमाणुप्रवाह पण कंइक अव्यक्त छेतोपण किरणरूपे प्रत्यक्ष देखाय छे, अने प्रत्यक्ष देखातो होवाथी ते प्रकाश पुद्गलरूपज छे, अहिं सूर्यनोप्रकाश उद्योतना अर्थमां लीधो नथी तेनुं कारणके ते आगळ " आतप " शब्दथी कहेवाशे.

॥ प्रभा. ॥

चंद्रादिकना अने सूर्यना प्रकाश किरणोमांथी निकलतो जे बीजो उपप्रकाश ते प्रभा कहेवाय, के जेनाथी अप्रकाशितस्थानमां रहेल घटादिपदार्थों पण देखी शकाय छे, अने ए प्रभा ते पण प्रकाश पुद्गलोमांथी विरल विरलपणे (आछो-आछो) वहेतो प्रकाशप्रवाह छे, परन्तु साक्षात् प्रकाशरूप नहिं होवाथी ए अव्यक्त प्रकाशने प्रभा शब्दथी ओळखी शकाय छे, प्रकाशमांथी विरल विरल पणे जो प्रभारूप पुद्गल प्रवाह न वहेतो होय तो प्रकाश पासे रहेला घटादिपदार्थों पण न देखी शकाय, जेथी सूर्यादिकनो किरणप्रकाश ज्यां नथी पडतो तेवा घर विगेरे स्थानोमां रात्रिज होय, माटे प्रकाशमांथी पण बीजो उपप्रकाश वहे छे के जेथी घरमां पण अजवाळुं पडे छे. ते उपप्रकाशनुं नाम प्रभा छे, पुनः अग्निना मूळ तेजने पण उपलक्षणथी प्रभामां अन्तर्गत गणवुं एम संभवे छे.

॥ छाया. ॥

प्रकाशमां, दर्पणमां, जळ वगेरे निर्मळ चीजोमां पडतुं पदार्थ-

नु प्रतिबिंब ते छाया कहेवाय छे, सूर्यमांथी जेम किरणरूपे पुद्गल-प्रवाह वहे छे, तेम दरेक बादरपरिणामी पुद्गलस्कंधमांथी पण प्रति-समय तदाकार सूक्ष्मस्कंध समुदाय (जलना फुवारानी माफक) व-ह्या करे छे, ते प्रतिसमय वहेतो सूक्ष्मस्कंध समुदाय सूर्यादिनो प्र-काशरूप निमित्त पामीने कृष्णवर्णे एकत्र पिंडित थाय छे. जेने लो-कमां "छाया पडी अथवा शीळुं पडयुं" कहे छे, अने ते वहेतो सूक्ष्मस्कंधसमुदाय दर्पण, जळविगेरेमां निर्मलतानुं निमित्त पामी साक्षात् तदाकाररूपे पिंडित थइ जाय छे, के जेने प्रतिबिंब कहेवामां आवे छे, माटे ए छायारूप प्रतिबिंब बादर परिणामी पुद्गलद्रव्य-मांथी व्हेतो सूक्ष्मपुद्गलस्कंध समुदाय होवाथी पुद्गलरूप छे. अ-थवा प्रतिबिंबरूपे थवुं ए पुद्गलनो धर्म-गुण छे आ संबन्धि विशेष-जाणवाना जिज्ञासुओए 'द्रव्यलोकप्रकाश' वगेरे ग्रंथो जोवा.

॥ आतप. ॥

सूर्यना विमानमांथी आवतो जे उष्णप्रकाश ते आतप कहेवाय छे. सूर्यनुंविमान स्वतः शीत छे तोपण आगळ कहेवाता आतपना-मकर्मना उदयवडे विमानमां रहेला पृथ्वीकाय जीवोनो प्रकाश उ-ष्ण आवे छे, जेने "तडको" अथवा "तावडो" कहेवामां आ-वे छे. ए तडको सूर्यनामे इन्द्रदेवनो नथी पण आतपनामकर्मोदयी बादर पृथ्वीकायना पिंडरूप (सूर्यना) विमाननो छे. ए उष्णप्र-काश ते पृथ्वीकायिकजीवोना औदारिक शरीरमांथी पुद्गलना प्र-वाहरूपे निकळतो होवाथी प्रकाश जेमांथी नीकळे छे ते पण पुद्गल, अने प्रकाश पोते पण पुद्गलज छे. प्रथम कही गयेल उद्योतनी प-द्धति पण ए प्रमाणेज विचारवी.

॥ वर्ण. ॥

वर्ण एटले रंग ते कृष्ण-काळो. नील-लीलो, रक्त-रातो,

पीत–पीळो. अने श्वेत–धोळो एम पांच प्रकारे छे. बीजा वादळी–उदो–गुलाबी–इत्यादि रंग ए पांच मूळ रंगमांथी अमुक अमुक रंगना मीश्रणथी उत्पन्न थाय छे. माटे ए पांच सिवायना बीजा वर्ण सर्व सान्निपातिक वर्ण जाणवा. वर्त्तमान विज्ञानीओ लाल–पीळो–अने वादळी ए त्रण प्रकारना मूळ वर्ण, अने बीजा सर्व मिश्रवर्ण छे एम कहे छे, परन्तु सर्वज्ञोक्त मूळ वर्ण पांच छे, ए कृष्णादिवर्ण प्रत्येक एक गुण कृष्ण (एक अंश काळो), द्विगुण कृष्ण (बे अंशकाळो), संख्यगुण कृष्ण असंख्यगुणकृष्ण अने अनन्त गुणकृष्ण इत्यादि तारतम्यभेदे अनन्त प्रकारना छे. तथा ए कृष्णादिवर्ण परमाणु पुद्गलमां होय छे, त्यां एक परमाणुमां प्रगटपणे एकजवर्ण होय, अने सत्तापणे पांचेवर्ण होय. पुनः जे परमाणु कृष्णवर्णे छे ते परमाणुनो कृष्णवर्ण पलटाइने रक्तादि कोइपण वर्ण (जघन्यथी १ समयमां अने उत्कृष्टथी असंख्य समयमां) उत्पन्न थाय, ए प्रमाणे एक परमाणुमां पांचेवर्ण अनुक्रमे पलटाइ पलटाइने आविर्भाव तिरोभावने (प्रगटता अने प्रच्छन्नता) पामे छे. पुनः ए कृष्णादि कोइपण वर्ण धर्मास्तिकायादि कोइपण द्रव्यमां होतो नथी परन्तु मात्र पुद्गलद्रव्यमांज होय छे माटे (चक्षुइन्द्रियना वि-

१ स्वाभाविक परमाणुओ प्रत्येकवर्णवाला छे अने ते परमाणुओ अतिशयज्ञानिओये दरेकमां भिन्न काले तथा अनेकमां समकाले पांचवर्णो देख्या छे. अने तेनाथी बनेला स्कन्धो जो एकेक वर्णनी प्रधानता होयतो व्यवहारे कृष्णादि एक वर्णवाला अने अनेक वर्णोनी प्रधानता होयतो व्यवहारे चित्रादिवर्णवाला देखाय छे. पण निश्चयदृष्टिये अनन्तप्रदेशी स्कन्धो पांचे वर्णवाला होय छे. तेमज स्वभाविकपुद्गलोमां पांचज वर्ण छे, बाकी कृत्रिम बनता वर्णोना अनेक भांगाओ पडे छे. नैयायिक-वैशेषिक बौद्ध तमाम दर्शनकारो कृष्ण-शुक्ल-नील वर्णोने निर्विवादपणे स्वीकारे छे वादळी ए कोइ भिन्नवर्ण नथी कृष्ण-नीज अमुक गुण तरतमताए वादळीपणे प्रतीति थाय छे लाल-पीळाना संयोगथी थता वर्णो मूळवर्ण जेवा कदापि बनी शकेज नहो ए सर्व विचारथी वर्ण पांचज छे ते सिद्ध छे.

षयरूप) ए कृष्णादि वर्ण परमाणु पुद्गलनो गुण छे, परन्तु कृष्णादि वर्ण पोते पुद्गल नथी, माटे वर्ण ए पुद्गलनुं गुणरूप लक्षण छे,

॥ गंध. ॥

घ्राणेन्द्रियनो (नाकनो) जे विषय ते गंध सुगंध अने दुर्गंधना भेदथी बे प्रकारे छे, ए सुगंध अथवा दुर्गंध धर्मास्तिकायादि कोइपण द्रव्यमां नहि परन्तु मात्र पुद्गलद्रव्यमांज होय छे, माटे गंध ए पुद्गलनु लक्षण अथवा पुद्गलनो गुण छे, पुनः एक परमाणुमां प्रगटपणे एकज गन्ध होय इत्यादि वर्णन वर्णना वर्णनने अनुसारे जाणवुं

॥ रस. ॥

जिव्हेन्द्रियनो—रसनेन्द्रियनो जे विषय ते रस ते तिक्त—[1]तीखो, कटु—[2] कडवो, आम्ल—खाटो, कषाय—तूरो, अने [3] मधुर—मिष्ट ए प्रमाणे ५ प्रकारनो छे. ए रस धर्मास्तिकायादि कोइपण द्रव्यमां नहिं परन्तु मात्र पुद्गलद्रव्यमांज होय छे माटे रस ए पुद्गलनुं लक्षण छे. अने एक परमाणुमां प्रगट पणे एक रस होय इत्यादि वर्णन वर्णना वर्णनने अनुसारे जाणवुं.

॥ स्पर्श. ॥

स्पर्शेन्द्रियनो जे विषय ते स्पर्श कहेवाय अने ते शीत—ठंडो, उष्ण—गरम, स्निग्ध—चिकणो, रूक्ष—लुखो, गुरु—भारी, लघु—हलको, मृदु—कोमळ, अने कर्कश—खडबचडो ए प्रमाणे आठ प्रकारनो छे. ए शीतादिस्पर्श धर्मास्तिकायादि कोइपण द्रव्यमां नहिं परन्तु मात्र पुद्गलद्रव्यमांज होवाथी स्पर्श ए पुद्गलनुं लक्षण—गुण कहे-

१—२ केटलाएक, ग्रंथोमां तिक्त एटले कडवो अने कटु एटले तीखो एवो पण अर्थ आवे छे, परन्तु विशेष वपराता अर्थ तिक्त तीखो इत्यादि ठीक छे पुनः मारवाडमां घणे ठेकाणे कडवा पदार्थने तीखो अने तीखा पदार्थने कडवोज कहे छे.

३ खारो रस मधुरमां अन्तर्गत थाय छे. अथवा पांच रसमांथी मिश्रभावनो खारो रस छे. (लवणो मधुरान्तर्गत इत्येके संसर्गज इत्यपरे इति तत्त्वा० वृत्ति)

थाय. एक परमाणुमां जुदा जुदा समयने आश्रयी शीत–उष्ण–स्निग्ध–अने रुक्ष ए चार स्पर्श होय, अने एक परमाणुमां एक समये तो शीत अने स्निग्ध, अथवा शीत अने रुक्ष, अथवा उष्ण अने स्निग्ध अथवा उष्ण अने रुक्ष ए चार प्रकारमांथी कोइपण प्रकारे बे[1] स्पर्श होइ शके. अने आठ स्पर्शवाळो मात्र बादर परिणामी स्कंधमांज होय.

इत्यादि पुद्गलोनां लक्षणोनुं किंचित् स्वरूप कह्युं.

अवतरण—पूर्वगाथामां पुद्गलोनां धर्म कहेवाथी धर्मा०–अधर्मा०–आकाशा०–अने पुद्गल ए चार अजीवद्रव्यनां लक्षण कहेवाइ गया. अने हवे पांचमा(अजीवद्रव्य)काळना लक्षण कहेवाय छे.

॥ मूळगाथा १२ मी. ॥

---

१. (अत्र च स्निग्धरूक्षशीतोष्णाख्यश्चत्वारः परमाणुषु संभवन्ति. स्कंधेष्वष्टावपि यथासंभवमभिधातीयाः इति तत्त्वा० ५ मा अध्यायना २३ मा सूत्रनी वृत्ति पुनः ५ मा अध्यायना २८ मा सूत्रनी वृत्तिमां अष्टविधः स्पर्शो भगवद्भिरुक्तः स्कन्धेषु यथासंभवं. परमाणुषु पुनश्चतुर्विधः स्पर्शो नान्यः स च शीतोष्णस्निग्धरूक्षाख्य. तत्राप्येकपरमाणौ परस्पराविरोधिद्वयं समस्ति इति.) पुनः बृहत् शतकमां तो लघु अने मृदु स्पर्श परमाणुमां अवस्थित(परावृत्ति पाम्या वीना रहेनारा)मान्या छे. जेथी एक परमाणुमां एक समयेज चार स्पर्श व्यक्तभावे होय अने ६ स्पर्श योग्यता भावे होय एम मानी शकाय छे परन्तु बहुमते परमाणुमां ४ स्पर्श गणाय छे. तथा द्व्यणुकादि स्कंधोमां (औदारिकस्कंधादिवर्ग) शीतादि ४ स्पर्श एकसमये अथवा जुदे जुदे समये होइ शके. त्यांथी आगळनी औदारिक वै०–अने आहार वर्गणा अष्टस्पर्शी होय छे. ने त्यांथी आगळनी तैजसादि वर्गणाओ सर्व शीतादि चतुःस्पर्शी अने सूक्ष्म परिणामी गणाय छे. ए हेतुथी भाषा–तैजस–मन अने कार्मण चतुःस्पर्शी स्कन्धो छे.

एगाकोडि सत्तसट्ठि, लक्खा सत्तहुत्तरी सहस्सा य ।
दोयसया सोलहिया, आवलिया इग मुहुत्तम्मि ॥१२॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

एका कोटिः सप्तषष्टिर्लक्षाः सप्तसप्ततिः सहस्राश्च ।
द्वे च शते षोडशाधिके, आवलिका एकस्मिन्मुहूर्ते ॥ १२ ॥

॥ शब्दार्थः— ॥

एगा—एक	दोय सया—बसें
कोडि—क्रोड	सोल—सोल
सत्तसट्ठि—सडसठ	अहिया—अधिक
लक्खा—लाख	आवलिया—आवलिका
सत्तहुत्तरी—सित्योतेर	इग—एक
सहस्सा—हजार	मुहुत्तम्मि—मुहूर्त्तमां
य—वळी	

गाथार्थः—एक मुहूर्त्तमां एक क्रोड सडसठलाख सित्योतर हजार बसें ने सोल अधिक(१६७७७२१६)एटली आवलिका थाय छे

विस्तरार्थः—आ गाथामां विशेष वक्तव्य नथी, पुनः १६-७७७२१६ आवलीओनुं १ मुहूर्त्त केवीरीते थाय ते आगळनी 'समयावलिमुहूत्ता' ए गाथामांज दर्शावशे.

अवतरण—पूर्वगाथामां एकमुहूर्त्तमां व्यतीत थती आवलिकाओनी संख्या कहीने हवे आ गाथामां अनुक्रमे वृद्धि पामता काळनां जुदां जुदां नाम दर्शावे छे.

॥ मूळगाथा १३ मी. ॥

समयाऽवली मुहुत्ता, दीहा पक्खा य मास वरिसा य ।
भणिओ पलिया सागर, उस्सप्पिणि सप्पिणी कालो ॥१३॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

समय आवलिका मुहूर्त्ताः, दिवसाः पक्षाश्च मासा वर्षाणि च
भणितः पल्याः सागराः, उत्सर्पिण्यवसर्पिणी कालः ॥१३॥

॥ शब्दार्थः ॥

समय–समय	भणिओ–कहेलो छे
आवलि–आवलिका	पलिया–पल्योपम
मुहूत्ता–मुहूर्त्त	सागर—सागरोपम
दीहा–दिवस	उस्सप्पिणी–उत्सर्पिणी
पक्खा—पक्ष–पखवाडीउं	सप्पिणी—अवसर्पिणी
मास—मास–महिनो	कालो–काळ अथवा काळचक्र
वरिसा—वर्ष	

गाथार्थः—समय–आवली–मुहूर्त–दिवस–पखवाडीउं—मास–वर्ष–पल्योपम—सागरोपम—उत्सर्पिणी—अवसर्पिणी—अने काळचक्र ए सर्वने काल कहेलो छे.

विस्तरार्थः—आ गाथा व्यावहारिककाळना लक्षणवाळी होवाथी ते व्यवहारिककाळना स्वरूपपूर्वक समयादिभेदनुं किंचित् स्वरूप कहेवाय छे,

॥ व्यावहारिक काळनुं स्वरूप. ॥

१ समय–आवलि–मुहूर्त्त इत्यादि अनेक भेदवाळो व्यवहारिककाळ सूर्य चंद्रनी गति उपरथीज गणाय छे. कारणके दिवस अने तिथि तथा मासवर्षादिकनी उत्पत्ति सर्व सूर्य चंद्रनी गतिना आधारे छे, त्यां अति निकृष्ट–अल्प काळ के जे निमेषमात्र काळनो पण असंख्यातमो भाग छे ते समय कहेवाय छे. कोइक तरुण अने समर्थ पुरुष भालानी तीव्र अणीथी पोताना संपूर्ण बळवडे कमळनां १०० पत्रने भेदे त्यां एक पत्र भेदतां पण असंख्य समयो व्यतीत थाय. अने एक पत्रथी बीजे पत्रे भालो पहोंचे तेटलामां पण असंख्य समय थाय. छतां ए सूक्ष्मता स्थूलदृष्टिवाळाने मालूम नहि पडवाथी एकी वखते १०० पत्र भेद्यानु अभिमान थाय छे, पुनः

एक जीर्ण वस्त्रने शीघ्र फाडतां छतां पण एकेक तंतुने तुटतां असंख्य असंख्य समय वीतीजाय छे. पुनः आंखनो एकपलकारो थाय तेटलामां पण असंख्य समय वीतिजाय छे. एवो आ परम सूक्ष्म समय छे.

२ कहेला स्वरूपवाळा जघन्ययुक्त असंख्य समयो मलीने जे काळ विभाग थाय ते एक आवलिका कहेवाय छे. सू० निगोदादि जीवोनुं जघन्य (टुंकामां टुंकु) आयुष्य एवी २५६ आवलियो जेटलुं होय छे. तेथी २५६ आवलियोनो १ क्षुल्लक भव कहेवाय.

४४४६ $\frac{२४५८}{३७७३}$ आवलिका जेटलो काळ प्राण अथवा श्वासोच्छ्वास कहेवाय. अहिं नीरोगी अने युवान सुखी पुरुषनो श्वासोच्छ्वास गणवो, परन्तु रोगी अने दुःखीनो श्वासोच्छ्वाम अनियमित काळ प्रमाणवाळो होवाथी न गणाय, कह्युं छे के

" हट्ठस्स अणवगल्लस्स, निरुवकिट्ठस्स जंतुणो ।
एगे ऊसास नीसासे, एस पाणुत्ति वुच्चइ ॥ १ ॥ "

अर्थः—हृष्ट-विषादरहित, जरारहित, क्षुधादिवडे अकृष्ट-दुर्बळ नहिं थयेल एवा प्राणीनो जे एक उच्छ्वास अने एक निश्वास ते बे मलीने १ प्राण एम कहेवाय छे. एवा ७ प्राण जेटलो काळ १ स्तोक कहेवाय छे, एवा ७ स्तोक जेटलो काळ १ लव कहेवाय छे, एवा ७७ लव जेटलो काळ १ मुहूर्त्त कहेवाय छे. मुहूर्त्त एटले बे [1] घडी जेटलो संपूर्ण काळ जाणवो १ प्राणमां पूर्वोक्त क्षुल्लकभव १७॥ (१७ $\frac{१३९५}{३७७३}$) थाय, अने १ मुहूर्त्तमां ६५५३६ क्षुल्लकभव थाय छे. तथा १ मुहूर्त्तमांपण ३७७३ थाय छे. पुनः मुहूर्त्तमां १

१ वर्तमान समयना कलाक अने मिनिटना हिसावे २४ मिनिटनी घडी. अने ४८ मिनिटनो एक मुहूर्त्त गणाय.

१ समय न्यूनकाळथी मांडीने यावत् ९ समय सुधीनो सर्व काळ विभाग अन्तर्मुहूर्त्त कहेवाय छे, शास्त्रमां घणो व्यवहार अन्तर्मुहूर्त्तनी गणत्री पर आवे छे अने ए प्रमाणे अन्तर्मुहूर्त्त असंख्य प्रकारनां नानां मोटां गणी शकाय. पुनः मुहूर्त्त त्यां चंद्रमुहूर्त्त अने सूर्यमुहूर्त्त ए [1] बे प्रकारे छे. लोकमां तथा लोकोत्तरमां (जैन दर्शनमां) ३० मुहूर्त्तनो दिवस इत्यादि गणवामां चंद्रमुहूर्त्तनो व्यवहार चाले छे, १३ $\frac{२}{५}$ चंद्रमुहूर्त्तनुं १ सूर्यमुहूर्त्त थाय छे जेनो व्यवहार जगत् प्रचलित नथी. एवा ३० मुहूर्त्तनो १ दिवस थाय छे ते ३० मुहूर्त्तनां नाम आ प्रमाणे—

रुद्र—श्रेयस्-मित्र-वायु-सुपीत-अभिचंद्र-माहेन्द्र—बलवान् पक्ष्म-बहुसत्यक-ऐशान-तस्थ-भावितात्मन्—वैश्रवण—वारुण-आनंद-विजय-विश्वसेनक-प्राजापत्य-उपशम—गंधर्व-अग्निवैश्यक-शतवृषभ-आतपवान्-अमम-अरुणवान्-भौम-ऋषभ-सर्वार्थ-राक्षस आ अनुक्रम सूर्योदयथी प्रारंभीने गणवो.

३० मुहूर्त्तनो (चंद्रमुहूर्त्तनो) १ दिवस थाय. ते दिवस सूर्यदिवस, अने चंद्रदिवस एम बे प्रकारे छे त्यां ३० मुहूर्त्त प्रमाण (६० घडी जेटलो) अहोरात्र ते सूर्यदिवस, अने २९ $\frac{३२}{६२}$ मुहूर्त्त प्रमाण चद्रनी क्षयवृद्धिथी उत्पन्न थती जे तिथि ते चंद्रदिवस गणाय. लोकमां सूर्यदिवसनुं नाम अहोरात्र, अने चंद्रदिवसना नामे तिथि कहेवानो व्यवहार चाले छे. एक पखवाडीयामां १५ दिवस अने १५ रात्रि आवे छे ते दिवस रात्रीनां नाम आ प्रमाणे—

१ अत्रे अनुपयोगी होवाथी ए संबंधि अधिक अर्थादि वर्णन करेलुं नथी जीज्ञासुए काललोकप्रकाशादि ग्रंथोथी जाणवुं.

पूर्वांग--सिद्धमनोरम--मनोहर-यशोभद्र-यशोधर-सर्वकामसमृद्धक-इन्द्रमूर्धाभिषिक्त-सौमनस--धनंजय-अर्थसिद्ध-अभिजात-अत्यशन-शतंजय-अग्निवेश्मन-अने-उपशम. ए प्रमाणे चतुष्प्रहरात्मक दिवसनां(अहोरात्रिनां)नाम कह्यां

तथा उत्तमा-सुनक्षत्रा-एलापत्या-यशोधरा-सौमनसा-श्रीसंभूता-विजया-वैजयंती-जयंती-अपराजिता-इच्छा-समाहारा-तेजा--अतितेजा-देवानंदा ए रात्रिना नाम कह्यां १५ मी देवानंदा रात्रिनुं बीजुं नाम निरति पण छे. ए प्रमाणे सूर्यदिवस संबंधि दिवस रात्रीनां नाम कहीने हवे चंद्रदिवससंबंधि (तिथिसंबन्धि) दिवस अने रात्रिनां नाम कहेवाय छे.

दिनतिथिनां नाम-नंदा-भद्रा-जया-तुच्छा(लोके रिक्ता)पूर्णा रात्रितिथिनां नाम-उग्रवती-भोगवती-यशोमती-सर्वसिद्धा-अने शुभनामा. ए पांचे पखवाडीयामां त्रण त्रणवार आववाथी १५ तिथियो थाय. त्यां एकम--छठ--ने अगियारसने दिवसे दिनतिथि नंदा अने रात्रितिथी उग्रवती ए प्रमाणे पांच पांच तिथीने अंतरे गणत्री करवी.

पूर्वोक्त १५ सूर्यदिवसनुं १ सूर्यपक्ष, अने १५ तिथीयोनुं १ चंद्रपक्ष थाय. पण लोकव्यवहार चंद्रपक्षने पखवाडीउं गणे छे.

पूर्वोक्त २ पक्षनो १ मास--महिनो थाय ते पांच प्रकारनो छे.

३० अहोरात्रिनो १ ऋतुमास (अथवा बीजुंनाम कर्ममास)	२७ $\frac{२१}{६७}$ अहोरात्रिनो १नक्षत्रमास
३०॥ अहोरात्रिनो १ सूर्यमास	
२९ $\frac{३२}{६२}$ अहोरात्रिनो १चंद्रमास	३१ $\frac{१२१}{१२४}$ अहोरात्रिनो १ अभिवर्द्धितमास

अहिं लोकव्यवहारमां २९ $\frac{३२}{६२}$ अहोरात्रिनो एटले संपूर्ण ३०

तिथिनो १ चंद्रमास चाले छे.

तथा ६ मासनुं १ सूर्यायन थाय छे. ते पण १८३अहोरात्रि प्रमाण१दक्षिणायन अने उत्तरायण एम बे प्रकारनुं छे, पुनः चंद्रायन १३ $\frac{४४}{६७}$ अहोरात्रिनुं थाय छे, परन्तु विशेष लोकव्यवहारमां सूर्यायन गणाय छे.

तथा १२ मासनुं १ वर्ष गणाय. ते पण मासना भेदवडे पांचप्रकारनुं छे, त्यां दरेक मासना दिवसने १२ वडे गुणतां

३६० अहोरात्रिनुं १ ऋतुवर्ष (वा कर्मवर्ष)

३६६ अहोरात्रिनुं १ सौरवर्ष (सूर्यसंबन्धि वर्ष)

३५४ $\frac{१२}{६२}$ अहोरात्रिनुं १ चान्द्रवर्ष

३२७ $\frac{५१}{६७}$ अहोरात्रिनुं १ नक्षत्रवर्ष

३८३ $\frac{४४}{६२}$ अहोरात्रिनुं १ अभिवर्द्धितमास

तथा ५ सूर्यसंवत्सरनुं (५ सूर्यवर्षनुं) १ युग थाय. ८४ लाख सूर्यवर्षे १ पूर्वांग थाय. ८४ लाख पूर्वांगे (७०५६०००-००००००० सूर्यवर्षे) १ पूर्व थाय ८४ लाख पूर्वे १ त्रुटितांग थाय, एटलुं आयुष्य श्री ऋषभदेवप्रभुनुं हतुं. पुनः ८४ लाख त्रुटितांगे १ त्रुटित थाय, ए प्रमाणे आगल अडडांग-अडड-अववांग-अवव-हुहुकांग-हुहुक-उत्पलांग-उत्पल-पद्मांग-पद्म-नलिनांग-नलिन-अर्थनिपुरांग-अर्थनिपुर-अयुतांग-अयुत-नयुतांग-नयुत-प्रयुतांग-प्रयुत-चूलिकांग-चूलिका-शीर्षप्रहेलिकांग अने [1] शीर्षप्रहेलिका ए सर्वे ८४ लाख गुणा अनुक्रमे जा-

---

१ मतांतरे ८४ लाख पूर्वे १ लतांग, ८४ लाख लतांगे १

णवा. काळ संख्यानी मर्यादा शास्त्रकारे अहिं सुधीज ([1] शीर्षप्रहेलिका सुधीज) दर्शावी छे, एथी आगलनी घणी मोटी संख्या प्यालानी उपमाए दर्शावी छे जे सर्व शास्त्रान्तरथी जाणवा योग्य छे.

पूर्वे कहेलां असंख्यातवर्ष प्रमाण १ पल्योपम थाय. पल्योपमनां असंख्यवर्षोनी गणत्री स्थूलबुद्धिजीवथी न थइ शके माटे तेनी गणत्री शास्त्रकारे प्यालानी उपमाथी संक्षेपमां आ प्रमाणे दर्शावी छे—१ योजन लांबो-१ योजन पहोळो-अने १ योजन उंडो एवा कूवानी अंदर उत्तरकुरुक्षेत्रना मनुष्योनुं मस्तक मुंडावीने एकथी सात दिवस सुधीमां उगेला केशनां असंख्यभाग करी (ते कूवो) भरीये ने सो सो वर्षे एकेक खंड काढतां जेटलां वर्ष थाय तेटलां वर्ष प्रमाण १ पल्योपम कहेवाय ([2] पल्योपमना ६ भेद वगेरे अधिकवर्णन शास्त्रान्तरथी जाणवुं.)

पूर्वे कहेला १० [3] कोडा कोडी (१००००००००००००-

लता तदन्तर आगल महालतांग. महालता. नलिनांग. नलिन. महानलिनांग, महानलिन. पद्मांग. पद्म. महापद्मांग. महापद्म. कमलांग, कमल. महाकमलांग. महाकमल. कुमुदांग. कुमुद. महाकुमुदांग. महाकुमुद. त्रुटितांग, त्रुटित. महात्रुटितांग. महात्रुटित. अडडांग. अडड. महाअडडांग. महाअडड. ऊहांग, ऊह. महाऊहांग. महाऊह. शीर्षप्रहेलिकांग. अने शीर्षप्रहेलिका.

१ · १८७९५५१७९५५०११२५९५४१९००९६९९८१३४३०७७०७-९७४६५४९४२६१९७७७४७६५७२५७३४५७१८६८१६ ए सित्तेर आंकडा उपर १८० बिंदु—शून्य मूकवाथी २५० अंक प्रमाण मतान्तरे शीर्षप्रहेलिकानी संख्या थाय छे. अने उपर दर्शाव्या मुजब गणतां १९४ आंकडानी संख्या थाय

२ बादर उद्धार-सूक्ष्म उद्धार-बादर अद्धा-सूक्ष्म अद्धा-बादर क्षेत्र सूक्ष्मक्षेत्र ए रीते पल्योपमना ६ प्रकार अने उपयोगी नहिं होवाथी अहिं मात्र सू० अद्धा पल्योपमनुं प्रमाण कहुं छे.

३ क्रोडने क्रोडथी गुणतां कोडाकोडी थाय.

००.) पल्योपमे १ [1] सागरोपम थाय.

१० कोडाकोडी सागरोपमे १ उत्सर्पिणी अने १० कोडाकोडी सागरोपमनी १ अवसर्पिणी काळ थाय छे. पुनः एकेकना ६–६ [2] आरा (विभाग) छे तेनां नाम–सुषम सुषम नामे पहेलो आरो ४ को० को० सागरोपमनो, सुषम नामे बीजो आरो ३ को० को० साग० नो, सुषम दुषम नामे त्रीजो आरो २ को० को० साग० नो, दुषम सुषम नामे ४ थो आरो ४२००० वर्षन्यून १ को० को० साग० नो, दुषम नामे पांचमां आरो २१००० वर्षनो, अने दुषम दुषम नामे ६ ठ्ठो आरो २१००० वर्षनो छे, ए प्रमाणे सर्व आराना १० को० को० सागरोपम संपूर्ण थाय छे. ए ६ आरा उत्सर्प्पिणी काळमां चढता, अने अवसर्प्पिणी काळमां उतरता आवे छे माटे उत्सर्प्पिणी-चढतोकाळ, अने अवसर्प्पिणी-पडतो काळ कहेवाय छे. अर्थात् उत्सर्प्पिणीमां प्रथम दुषम दुषम बीजो दुषम इत्यादि रीते, अने अवसर्प्पिणीमां पहेलो सुषम सुषम, बीजो सुषम इत्यादि अनुक्रमे होय छे. उत्सर्प्पिणीमां [3] सुख विगेरे अनुक्रमे अधिक अधिक, अने अवसर्प्पिणीमां सुख वगेरे अनुक्रमे हीन हीनतर थतुं जाय छे.

२० को० को० सागरोपम प्रमाण (अवस० उत्स० मळी) १ काळचक्र थाय छे. गाथामां कहेल कालो–काळ शब्दनो सामान्य रीते समयआवलि इत्यादि काळ अथवा २० को० को० सा० प्रमाण काळचक्र एम बन्ने अर्थ थइ शके छे.

---

१ पल्योपम या सागरोपमना पण ६ प्रकार जाणवा.

२ काळरूपी चक्रना आरा समान होवाथी.

३ सुख—सघयण—आयुष्य—उंचाइ—वर्ण गन्ध रस स्पर्श—सद्गुण जमीनना रसकस इत्यादि.

अथवा भूतकाळ, वर्त्तमानकाळ, अने भविष्यकाळ ए रीते ३ प्रकारनो काळ छे. त्यां भूतकाळ अने भविष्यकाळ अनंत समयात्मक, अने वर्त्तमान काळ एक समयात्मक छे. भूतकाळ करतां भविष्यकाळ अनंत गुण छे अथवा जेटलो भूतकाळ व्यतीत थयो तेटलो भविष्यकाळ छे एम वन्ने मान्यता भिन्न भिन्न महर्षिओनी छे. ने ते सापेक्षिक होवाथी अविरोधी छे. पुनः आ व्यावहारिक काळ पण अरूपी अने अढीद्वीपवर्त्ती छे, कारण के अढीद्वीप बाहेर सूर्य चंद्रनी गति नथी माटे त्यां दिवस–वर्ष–मास इत्यादि व्यवहार नथी, ज्यां दिवस त्यां दिवसज छे, अने ज्यां रात्रि त्यां सदाकाळ रात्रिज छे, माटे अढी द्वीप बहार सर्व द्वीप समुद्रोमां, देवलोकमां, अने साते नरक पृथ्वीओमां जे १०००० वर्षनुं आयुष्य इत्यादि भवे व्यवहार चाले छे ते अढीद्वीपमां चालता सूर्य चंद्रनो गतिने अनुसारे जाणवो. कह्युं छे के—

" लोगाणुभागजणिअं, जोइसचक्कं भणंति अरिहंता ।
सव्वे कालविसेसा, जस्स गइविसेसनिप्फन्ना ॥ १ ॥ "

(अर्थ—जेनी गति विशेषवडे सर्व काळभेदो उत्पन्न थयेला छे तेवा ज्योतिश्चक्रने अरिहंत भगवंत लोकस्वभावजनित (लोकस्वभावे उत्पन्न थयेल गतिवाळुं कहे छे.)

॥ काळ द्रव्य संवन्धि संक्षिप्त कोष्टक ॥

निर्विभाज्यकाळ प्रमाण	१ समय
९ समयनुं	१ जघ० अन्तर्मुहूर्त्त
जघ० युक्त असंख्य समयनी	१ आवली
२५६ आवलीनो	१ क्षुल्लकभव

२२२३ १२२९/३७७३ आवलिनो	१ उच्छ्वास वा निश्वास.
४४४६ २४५८/३७७३ आवलिनो वा साधिक १७ः क्षुल्लकभवनो .	१ प्राण (श्वासोच्छ्वास)
७ प्राणनो	१ स्तोक
७ स्तोकनो	१ लव
३८॥ लवनी	१ घडी
२ घडी वा ७७ लव अथवा ६५५-३६ क्षुल्लक भवनो अथवा बे घडीनो	१ मुहूर्त्त
समयोन २ घडीनो	उत्कृ० अन्तर्मुहूर्त्त
३० मुहूर्त्तनो	१ दिवस
१५ दिवसनो	१ पक्ष (पखवाडीउं)
२ पक्षनो-(३० दिवसनो)	१ मास
६ मासनुं (१८३ दिवसनुं)	१ अयन
१२ मासनु (२ अयननुं)	१ वर्ष
५ वर्षनु	१ युग
८४ लाख वर्षनु	१ पूर्वांग.
७० क्रोड ५६ लाख क्रोड (७०५६०००००००००००)वर्षनु	१ पूर्व
असंख्यवर्षनो	१ पल्योपम
१० कोडाकोडि पल्योपमनो	१ सागरोपम
१० को० को० सागरोपमनी	१ उत्सर्प्पिणी अथवा १ अवसर्प्पिणी
१ उत्स० अवस० नु (२० को० को० सागरोपमनु)	१ कालचक्र
अनन्तकालचक्रनुं	१ पुद्गल परावर्त्त.

अवतरण—प्रथमनी १३ गाथा सुधीमां १ जीव द्रव्य अ-
ने ५ अजीव द्रव्यनु जूदुं जूदुं स्वरूप कहीने हवे सामान्यतः छ
ए द्रव्य अमुक अमुक द्वार (परस्पर तफावत वाळी बावत) जाण-
वा योग्य छे ते द्वारनां (बाबतोनां) नाम कहे छे.

॥ मूळ गाथा १४ ॥

परिणामि जीव मुत्तं, सपएसा एगखित्त किरिया य।
निच्चं कारण कत्ता, सव्वगय इयर अप्पवेसे ॥ १४ ॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

परिणामी जीवो मूर्त्तः, सप्रदेशः एकः क्षेत्रं क्रिया च ।
नित्यः कारणं कर्त्ता, सर्वगतमितराप्रवेशः ॥ १४ ॥

॥ शब्दार्थः ॥

परिणामि-परिवर्तनपामनार वा लोह अने अग्निवत् परस्पर मळी (जनार)	निच्चं—नित्य—शाश्वत
जीव—जीव	कारण—कारण
मुत्तं—मूर्त्तिमंत—रूपी	कत्ता—कर्त्ता
सपएसा—सप्रदेशी	सव्वगय—सर्वगत—सर्वव्यापी
एग—एक	इयर—इतर (उलट)
खित्त—क्षेत्र	अप्पवेसे—अप्रवेशी (तद्रूप-नहि थनार.)
किरिया—क्रियावाळां—सक्रिय	

गाथार्थः—६ द्रव्यमां परिणामि-जीव-रूपी-सप्रदेशी-एक-क्षेत्र-स-
क्रिय-नित्य-कारण-कर्त्ता-सर्वव्यापी इतर प्रवेश द्रव्यो क्यां क्यां छे.

विस्तरार्थः—छ ए द्रव्योमां परस्पर विशेपना अने अविशे-
पना जाणवामाटे प्रकरणकर्त्ताए परिणामी इत्यादि सप्रतिपक्ष १२

द्वार सूचना रूपे मात्र कह्यां छे ते १२ द्वार कहेवानुं तात्पर्य ए छे के—पूर्वोक्त छ द्रव्यमां परिणामी अने अपरिणामी द्रव्य कयां? पूर्वोक्त छ द्रव्यमां सजीव अने निर्जीव द्रव्य कयां? इत्यादि विचारवुं ते आ प्रमाणे—

॥ ६ द्रव्यमां [1]परिणामी अने अपरिणामि ॥

परिणाम एटले एक अवस्था छोडीने बीजी अवस्थामां जवुं ते, श्री प्रज्ञापनाना परिणाम पदमां कह्युं छे के—

" परिणामो ह्यर्थान्तर-गमनं न च सर्वथा व्यवस्थानम्
न च सर्वथा विनाशः, परिणामस्तद्विदामिष्टः ॥ १ ॥"

अर्थः—परिणाम एटले अर्थान्तर-धर्मान्तरनी प्राप्ति, परन्तु सर्वथा (एकान्ते) एकज धर्ममां अवस्थान अथवा ते धर्मनो सर्वथा विनाश नहिं तेज बुद्धिमंतोए परिणाम कहेलो छे. जेम जीवनो परिणाम देव मटीने मनुष्य थवुं, अने अजीवनो परिणाम स्थिरत्वादिधर्ममांथी गत्यादि धर्ममां जवु ते. त्यां परिणाम सामान्यतः जीवपरिणाम अने अजीवपरिणाम एम बे प्रकारे छे, तेमां पण जीवपरिणाम १० प्रकारनो छे. ते नीचे मुजब—

१ गतिपरिणाम—देवत्वादि चार गति ते.

२ इन्द्रियपरिणाम—स्पर्शादि ५ इन्द्रियो ते.

३ कषायपरिणाम—क्रोधादि ४ कषाय, अथवा अनंतानुबंध्यादि ४ कषाय छे.

४ लेश्यापरिणाम—कृष्ण लेश्यादि ६ लेश्याओ

५ योगपरिणाम—मनयोग-वचनयोग अने काययोग.

---

१ परिणाम एटले स्वस्वभावमां परिणमवुं ए अर्थथी तो छ-ए द्रव्य परिणामी कहेवाय, परन्तु अहिं आगळ कहेवातो गत्यादि परिणाम ग्रहण करवानो छे.

६ उपयोगपरिणाम—मतिज्ञानादि १२ उपयोग.
७ ज्ञानपरिणाम—मत्यादि ५ ज्ञान ने ३ अज्ञान.
८ दर्शनपरिणाम—मिथ्यात्व, क्षयोप० सम्यक्त्व. अने मिश्रसम्यक्त्व.
९ चारित्रपरिणाम—सामायिकचारित्रादि ५ प्रकारनां चारित्र.
१० वेदपरिणाम—स्त्रीवेद—पुंवेद—नपुंसकवेद.

जीव ए १० प्रकारना परिणामने (धर्मने) पामतो होवाथी जीवद्रव्य परिणामी गणाय छे. पूर्वोक्त गत्यादि जीवपरिणाम प्रायोगिक (कर्मोपाधिजन्य) छे, परन्तु जीवना स्वाभाविक नथी.

तथा अजीवपरिणाम १० प्रकारे छे—

अने ते अजीव परिणाम पुद्गल द्रव्यनेज होय छे माटे पुद्गलद्रव्य पण परिणामी छे ते पुद्गलना १० प्रकारना परिणामं नीचे मुजब.

पुद्गलोना १०[१] प्रकारना परिणाम (धर्म)

१ पुद्गलोनुं परस्पर जे मळवुं (.जोडावुं) ते बंधनपरिणाम
२ पुद्गलोमां गतिक्रिया उपजवी ते गतिपरिणाम.
३ पुद्गलोनुं आकृतिपणे गोठवावुं ते संस्थानपरिणाम,
४ पुद्गलोनुं छूटा पडवु (विखरवु)ते भेदपरिणाम-
५-पुद्गलोमां ५ प्रकारना वर्ण उपजवा ते वर्णपरिणाम.
६ पुद्गलोमां २ प्रकारना गंध उपजवा ते गंधपरिणाम.
७ पुद्गलोमां ५ प्रकारना रस उपजवा ते रसपरिणाम.
८ पुद्गलोमां ८ प्रकारना स्पर्श उपजवा ते स्पर्शपरिणाम

१ ए सिवाय बीजा प्रकाशपणुं-अंधकारपणुं-प्रतिबिंबपणुं विगेरे अनेक परिणाम यथायोग्य बन्धनादि परिणामान्तर्गतपणे ग्रहण करवा. पुनः अहिं पुद्गल शब्दथी स्कंधादि चारे भेद यथासंभव ग्रहण करवा.

९ पुद्गलोमां [1] गुरुत्व, [2] लघुत्व, [3] गुरुलघुत्व, अने [4] अगुरुल-घुत्व, उपजवुं ते [5] अगुरुलघुपरिणाम.

१० पुद्गलोमां ध्वनि–अवाज उपजवो ते शब्दपरिणाम.

पुद्गलद्रव्य ए १० प्रकारना परिणाम (धर्म) वाळुं होवाथी पुद्गलद्रव्य परिणामी छे. धर्मास्तिकायादि द्रव्यमां पूर्वोक्त गत्यादि कोइपण परिणाम(धर्म) नहिं होवाथी धर्मास्तिकायादि ४ द्रव्य अपरिणामी अने जीव तथा पुद्गल परिणामी छे. (आ परिणामनुं स्वरूप श्री प्रज्ञापनासूत्रना परिणाम पदमांथी संक्षेपे उद्धरेल छे.)

॥ ६ द्रव्यमां जीव कोण अने अजीव कोण ?

छ द्रव्यमां जीवत्व स्वभाववाळु एक जीव द्रव्य जीव छे, अने शेष पांच द्रव्य अजीव छे.

॥ ६ द्रव्यमां रूपी कोण अने अरूपी कोण? ॥

वर्ण–गंध–रस–स्पर्श ए रूप कहेवाय, अने ए वर्णादि रूप जेने होय ते रूपी कहेवाय. त्यां वर्णादि पुद्गलद्रव्यनेज होय छे माटे पुद्गलद्रव्य रूपी, अने शेष ५ द्रव्य अरूपी छे.

---

१ पत्थर विगेरेमां जेम भारीपणुं, (अधोगतिना कारणरूप)

२ धराळ अने धूम विगेरेमां जेम हलवापणुं (उर्ध्व गतिना (कारणरूप)

३ वायु विगेरेमां जेम गुरु हलवापणुं(तिर्च्छागतिना कारणरूप)

४ परमाणु विगेरेमां जेम न लघुपणुं न गुरुपणुं (प्रायः स्थिरताना कारण रूप).

५ ए अगुरुलघुपरिणाम पुद्गल सिवाय धर्मास्तिकायादि अरूपि द्रव्योमां पण छे. औदा०-आहा०-वै०-ने तैजस ए चार गुरुलघु छे. तथा कार्मण-मन-उच्छ्वास अने भाषा अगुरुलघु द्रव्य छे.

॥ ६ द्रव्यमां सप्रदेशी कोण अने अप्रदेशी कोण? ॥

६ द्रव्यमां धर्मास्तिकायादि ४ द्रव्यना स्कंध देश अने प्रदेश " धम्माऽधम्माऽऽगासा " ए गाथामां कहेल छे, अने जीव पण असंख्य प्रदेशनो पिंड कह्यो छे माटे ए ५ द्रव्य सप्रदेशी—प्रदेश युक्त, अने काळ अप्रदेशी छे,

॥ ६ द्रव्यमां एक कोण अने अनेक कोण ? ॥

सर्व जगतमां धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, अने आकाश ए त्रण द्रव्य एकेक छे, अने [1] जीव अने [2] पुद्गल अनंत होवाथी तथा काळ (समय) पण अनंत होवाथी जीव अने काळ अनेक छे.

॥ ६ द्रव्यमां क्षेत्र कोण अने क्षेत्री कोण ? ॥

जेमां पदार्थ रहे ते क्षेत्र (—आधारभूत ते क्षेत्र) कहेवाय, अने तेमां रहेला पदार्थो क्षेत्री कहेवाय. आकाशमां सर्व पदार्थ (द्रव्य) रहेलां छे. माटे आकाश द्रव्य क्षेत्र अने शेष ५ द्रव्य क्षेत्री छे.

॥ ६ द्रव्यमां सक्रिय अने अक्रिय कोण ? ॥

गति वगेरे क्रिया करनार जे द्रव्य ते सक्रिय (—क्रिया सहित) अने गत्यादि क्रिया रहित ते अक्रिय कहेवाय. त्यां जीव अने पुद्गल बे द्रव्य गति वगेरे क्रियावाळां होवाथी सक्रिय. अने शेष चार द्रव्य अक्रिय छे,

॥ ६ द्रव्यमां [3] नित्य अने अनित्य कोण ? ॥

सदाकाळ एकज अवस्थामां रहेनार जे शाश्वत पदार्थ ते नि-

---

१ सूक्ष्म साधारण वनस्पतिकाय जीवो अने सिद्ध अनंत होवाथी.

२ परमाणु अनंत छे, द्विप्रदेशी स्कंधो अनंत छे यावत् अनंत प्रदेशी स्कंधो सुधीना सर्व स्कंधो अनंत अनंत छे माटे

३ निश्चयनये ६ ए द्रव्य नित्य छे. अने अनित्य पण छे

त्य अने विनाशी पदार्थ अनित्य कहेवाय. त्यां जीव देवत्वादि कोइपण एक अवस्थाए कायम नहिं रहेतां देव मटीने मनुष्य थाय, मनुष्य मटीने तिर्यंच थाय. तिर्यंच मटीने पुनः नारक थाय इत्यादि अनेक कारणे जीवद्रव्य अनित्य छे, तथा पुद्गलद्रव्य पण परमाणु मटीने स्कंध थाय, काळो मटीने पीळो थाय इत्यादि

ते आ प्रमाणे—धर्मास्तिकाय अरूपी—अचेतन—अक्रिय—अने गति सहायक ए चार गुण तथा स्कंध पर्याय ए पांचवडे, नित्य छे तथा देश—प्रदेश—अने अगुरुलघु ए त्रण पर्याय वडे अनित्य छे.—तथा अधर्मास्तिकाय अरूपी—अचेतन-अक्रिय—अने स्थिति सहायक ए चार गुण तथा स्कंध पर्यायवडे नित्यछे. अने देश—प्रदेश—तथा अगुरुलघु ए त्रण पर्याय वडे अनित्य छे.— तथा आकाशास्तिकाय अरूपी-अचेतन-अक्रिय अने अवकाशदान ए चार गुण तथा स्कंध पर्याय ए पांच वडे नित्य, अने देश—प्रदेश——तथा अगुरुलघु पर्यायवडे अनित्य छे.— तथा काळ अरूपी—अचेतन...अक्रिय-अने वर्त्तनादि लक्षण ए चार गुणवडे नित्य छे, अने अतीत अनागत-वर्त्तमान तथा अगुरुलघु ए चार पर्यायवडे अनित्य छे.— तथा जीवास्तिकाय ज्ञान-दर्शन-चारित्र-अने वीर्य ए ए चार गुण तथा अरूपी-अनवगाह-अने अव्याबाध ए त्रण पर्याय मळी ७ वडे नित्य छे, अने एक अगुरुलघु पर्याय वडे अनित्य छे. (इति अध्यात्मसार प्रश्नोत्तर:)

१ शंका—सिद्धना जीवो नित्य के अनित्य ?

उत्तर—जे पदार्थ नित्य होय ते अनादि अनंत भागे होय, अने सिद्धपणुं सादि अनन्त भागे होवाथी अनित्य छे. कारणके सिद्धपणुं अनादि काळनुं नथी.

अनेक परावृत्तधर्मोना कारणे [1] पुद्गलद्रव्य पण अनित्य छे. अने धर्माऽस्तिकायादि ४ द्रव्यनो तेवो विनश्वर स्वभाव नहिं होवाथी धर्मास्तिकायादि ४ [2] द्रव्यो नित्य छे.

॥ ६ द्रव्यमां कारण अने अकारण कोण ? ॥

जे द्रव्य (कोइना) उपयोगमां (कार्यमां) आवे ते द्रव्य कारण, अने जेना उपयोगमां आवे ते अकारण, धर्माऽस्तिकायादि पांचे द्रव्यो जीवना उपयोगमां आवे छे, माटे धर्मास्ति० वगेरे ५ द्रव्यो कारण, अने जीवद्रव्य अकारण छे.

शंका—५ द्रव्यो जीवने शुं उपयोगमां आवे छे ?

उत्तर—हे जिज्ञासु ! पांचे द्रव्यो जीवने उपकार करनारां छे पण जीवद्रव्य कोइ द्रव्यने उपकार करतुं नथी ते आ प्रमाणे—जीवने (अने पुद्गलने पण) गतिक्रियामां उपकारी [3] धर्मास्ति० छे. जीवने (अने पुद्गलने पण) स्थितिक्रियामां उपकारी [4] अधर्मा० छे. जीवने (अने धर्मा० दिकने पण) अवकाश आपवामां उपकारी

---

१ शाश्वत मंदिरो-शाश्वती प्रतिमाओ-अने शाश्वता मेरु वगेरे पदार्थो नित्य के अनित्य ? ए शंकाना समाधानमां समजवानुं के ए पदार्थो स्कंधना देखावथी तो नित्य छे, परन्तु ए स्कंध जे पुद्गलद्रव्यनो बनेलो छे ते पुद्गल द्रव्य नित्य नथी कारणके ए शाश्वत स्कंधोमांथी पण प्रतिसमय अनंत पुद्गल परमाणुओ खरे छे, अने पुनः नवा आवी मले छे जेथी स्कंध वा आकार शाश्वत छे पण पुद्गलद्रव्य अशाश्वत छे.

२ काळ द्रव्य प्रतिसमय बदलाय छे छतां नित्य केम ? ए शंकानुं ! समाधान जोके नैश्चयिककाल १ समय रूप होवाथी बदलाया करे छे तोपण अतीत. वर्तमान, अनागत. सर्वकालद्रव्य कोइ काले विनाश पामतुं नहि होवाथी कालद्रव्य नित्य छे.

३-४ गतिस्थित्युपग्रहो धर्माऽधर्मयोरुपकारः (तत्वा० ५—१७)

[1] आकाश द्रव्य छे,
जीवने [2] शरीर–[3] वचन–[4] मन–[5] उच्छ्वास–[6] सुख–[7] दुःख–[8] जीवित–अने [9] मरणमां पुद्गलद्रव्य उपकारी छे.
जीवने वर्त्तनादि पर्यायमां [10] काळद्रव्य उपकारी छे.

अथवा बीजी रीते कारण अकारणपणानो विचार आ प्रमाणे– जीवनी गतिक्रियामां धर्मा० काय, स्थितिक्रियामां अधर्मास्तिकाय. अवगाह लेवामां आकाश, वर्त्तनादिमां काळ, अने शरीर रचनादिकमां पुद्गल कारणरूप छे, पण जीव ए पांच द्रव्यना कोइपण कार्यमां कारणरूप नथी माटे जीवद्रव्य अकारण, अने शेष ५ द्रव्य कारण छे.

शंका—धर्मास्तिकायादि द्रव्यनो उपकार जेम जीव प्रत्ये छे, तेम पुद्गल प्रत्ये पण छे तो पुद्गलद्रव्यने अकारण द्रव्य केम न कहेवाय ?

उत्तर—अहिं कारण विगेरे जे द्वार विचारवानां छे ते एवी रीते के ते द्रव्यमां बीजुं द्वार न ज घटवुं जोइए मात्र एकज द्वारनुं अधिकारीपणुं एक द्रव्यने होवु जोइए, ते प्रमाणे अहिं पुद्गलने

---

१ आकाशस्यावगाहः (तत्वा० ५—१८)
२-३-४ शरीरवाङ्मनःप्राणापानाः पुद्गलानाम् (तत्वा० ५-१७) सुखदुःखजीवितमरणोपग्रहाश्च (तत्वा० ५-२०) औदारिकादि शरीर पुद्गलपरिणतिरूपे होवाथी जीवने शरीररूपे पुद्गलद्रव्य उपकारी छे,
५-६ भाषा-मन-उच्छ्वास ए सर्व रूपे पुद्गलो उपकार करे छे.
७—८ चंदनादि पुद्गलद्रव्यथी सुख अने कंटकादि अनिष्ट पुद्गलथी दुःख थाय छे. माटे.
९ आयुष्य पुद्गलना सद्भावे जीवित, अने अभावे मरण प्राप्त थाय छे माटे जीवन-मरणमां पुद्गलनोज उपकार छे.
१० वर्त्तनापरिणामः क्रिया परत्वाऽपरत्वे च कालस्य (तत्वा० ५, -२२)

जो अकारण तरीके मानीशुं तो पुनः ते पुद्गल जीवने उपकारी होवाथी जीवना संबन्धमां कारण थाय छे ए प्रमाणे एक द्रव्यना संबन्धे अकारण अने बीजा द्रव्यना संबन्धे कारणपणुं मानतां व्यवस्था तुटी जती होवाथी एक द्रव्यमां एकज द्वार घटे तेवी रीते विचारवु. माटे जीवद्रव्य कोइनुं उपकारी नथी अने जीवद्रव्यने बीजां द्रव्यो उपकारी छे ए हेतुथी जीवद्रव्य ज अकारण छे, ने शेष कारण छे.

शंका—जीवद्रव्य शुं कोइने पण उपकारी नथी ?

उत्तर—जीवद्रव्य जीवद्रव्यने [1] परस्पर उपकारी छे, परन्तु कारणादि द्वार पर द्रव्य [2] प्रत्ययिक होवाथी [3] स्वद्रव्य प्रत्यय विरोधकारक नथी.

॥ ६ द्रव्यमां कर्त्ता अने अकर्त्ता कोण? ॥

जे द्रव्य अन्य द्रव्यनी क्रिया प्रत्ये अधिकारी होय (स्वामी होय) ते कर्त्ता, अने जे अन्य द्रव्यनी क्रिया प्रत्ये अधिकारी (स्वामी) न होय ते अकर्त्ता कहेवाय. अहिं " कर्त्ता एटले क्रियानो करनार " ए सामान्य अर्थने अनुसारे तो छ ए द्रव्य कर्त्ता होइ शके, परन्तु कर्त्ता एटले सर्व द्रव्यनो अधिकारी (पोतेज उपभोग करनार होवाथी स्वामी) " एवो अर्थ ग्रहण करवो योग्य छे. त्यां धर्मास्तिकायादि सर्व द्रव्योनी गतिसहायकादि क्रियाओनो उपभोग करवामां अधिकारी जीव द्रव्य छे माटे जीव द्रव्य कर्त्ता अने शेष ५ द्रव्य अकर्त्ता छे. अहिं पुद्गल धर्मा॰ दिकनी क्रियानो उपभोगी छे तो पण पुनः पुद्गलनो उपभोगी

१ परस्परोपग्रहो जीवानाम् (त.वा॰ ५-२१)

२ कारणादि द्वार परद्रव्यनी अपेक्षाए वीचारवानां होवाथी

३ जो द्रव्य पोते पोतानु उपकारी होय तो तेथा पोतानुं उपकारादि निमित्त विरोध कारक नथी.

जीवथी छे, माटे पुद्गलने कर्त्ता कहेवामां सांकर्य दोष आवतो हो-वाथी पुद्गल ६ द्रव्यना 'सामुदायिक संबन्धमां अकर्त्ता गणाय.

॥ ६ द्रव्यमां सर्वव्यापी अने देशव्यापी कोण ? ॥

जे द्रव्य सर्व जग्याए रहेलुं होय ते सर्वगत अथवा सर्व-व्यापी, अने जे द्रव्य अमुक (थोडी) जग्यामां रहेलुं होय ते असर्वगत अथवा देशव्यापी कहेवाय, त्यां आकाश द्रव्य अ-नंतानंत योजनप्रमाण लोकालोकव्याप्त होवाथी सर्वव्यापी, अने धर्मास्तिकायादि ४ द्रव्य लोकाकाश जेटली (१४ राजलोक प्रमाण—असंख्य योजन जेटली) जग्यामां रहेल होवाथी, अने काळद्रव्य अढीद्वीप मात्र व्याप्त होवाथी देशव्यापी छे,

॥ ६ द्रव्यमां सप्रवेशीअने अप्रवेशी कोण ? ॥

एक द्रव्यनुं बीजा द्रव्यरूपे थइ जवुं ते प्रवेश कहेवाय, अने ए-वां बीजा द्रव्यरूपं थइ जनार जे द्रव्य ते सप्रवेशी कहेवाय, अने जे द्रव्य अन्यद्रव्य रूपे न थतां स्वरूपे ज कायम रहे ते अप्र-वेशी कहेवाय. त्यां कोइपण द्रव्य बीजा द्रव्य रूपे थतुं नथी, जो-सर्व द्रव्यो एकज जग्यामां परस्पर संक्रमीने रह्यां छे. पण धर्मा-स्तिकाय ते अधर्मास्तिकायादि थतुं नथी. जीवद्रव्य पुद्गल पणे प-रिणमतुं नथी ए प्रमाणे काइ द्रव्य कोइ पण अन्य द्रव्यपणे परि-णमतुं नहिं होवाथी सर्वे द्रव्य अप्रवेशी छे पण सप्रवेशी कोइ

१ अहिं कारण अने कर्त्ता विगेरे केटलां द्वारो ६ द्रव्यना समुदाय संबंधथीज विचारेलां छे, अने जो प्रत्येक द्रव्यमां अ-लग अलग कारणादि द्रव्य विचारीए तो कोइ द्रव्यमां घणां द्वार लागु पडी जाय छे. जेम पुद्गल द्रव्य धर्मा० विगेरेनी अपे-क्षाए कर्त्ता, अने जीवनी अपेक्षाए अकर्त्ता. इत्यादि अव्यवस्था थती होवाथी समुदाय संबंध विचारवो योग्य छे,

नथी अहिं पुद्गल द्रव्य स्वद्रव्यमां रहीने पररूप (पृथ्वी जळ रूपे, जळ वराळ रूपे, अग्नि धूम रूपे. आहार माटी रूपे, इत्यादि रीते पररूपे) थइ जाय छे. परन्तु पुद्गल फीटीने जीवादि द्रव्य बने नहिं माटे अप्रवेशी छे. इति गाथोक्त द्वाराणि विवृतानि ॥

॥ अथ षट्सु द्रव्येषु परिणाम्यादिविभागयन्त्रकम्. ॥

६ द्रव्यनामानि.	परिणा०	जीवं.	मुत्त	सपए०	एगं.	खित्त	सकिरिय	निच्चं.	कारणं.	कत्तां.	सव्वगं.	अप्र०
धर्मास्तिकाय.	०	०	०	१	१	०	०	१	१	०	०	१
अधर्मास्तिकाय.	०	०	०	१	१	०	०	१	१	०	०	१
आकाशास्तिकाय	०	०	०	१	१	१	०	१	१	०	१	१
जीवास्तिकाय.	१	१	०	१	०	०	१	०	०	१	०	१
पुद्गलास्तिकाय.	१	०	१	१	०	०	१	०	१	०	०	१
काल.	०	०	०	०	०	०	०	१	१	०	०	१

हवे विशेषथी ६ द्रव्यमां द्रव्यादिद्वार कहेवाय छे.

॥ ६ द्रव्यमां द्रव्य-क्षेत्र-काळ-भाव-गुण-ने आकृति. ॥

धर्मास्तिकाय—द्रव्यथी १-क्षेत्रथी लोकाकाश प्रमाण-काळथी अनादि अनत-भावथी वर्ण गंधादि रहित-गुणथी गतिसहायक, अने आकृतिथी वज्राकार छे.

अधर्माऽस्तिकाय—गुणथी स्थिति सहायक. शेष द्रव्यादि धर्मा० वत्)

आकाशाऽस्तिकाय—द्रव्यथी १–क्षेत्रथी लोकालोकप्रमाण –काळथी अनादि अनन्त–भावथी वर्णादि रहित–गुणथी अवकाश दाता–अने आकृतिथी [1] गोळा समान

जीवाऽस्तिकाय—द्रव्यथी अनन्त, क्षेत्रथी एक जीव आश्रयि जघन्य अंगुलनो असंख्यातमो भाग, उत्कृष्टथी एक तथा अनेक जीव आश्रयि सर्व लोक प्रमाण—काळथी अनादि अनन्त—भावथी वर्णादि रहित–गुणथी ज्ञान दर्शनादि गुण युक्त–अने आकारथी देहाकार अथवा (समुद्घातापेक्षाए लोकाकार.)

पुद्गलाऽस्तिकाय—द्रव्यथी अनन्त–क्षेत्रथी लोक प्रमाण–काळथी अनादि अनन्त–भावथी वर्ण–गंध–रस–स्पर्श युक्त–गुणथी पूरण गलन स्वभावी–आकृतिथी दीर्घ–चतुरस्र–त्रिकोण–वर्त्तुल—परिमंडल.

काळ—द्रव्यथी १–क्षेत्रथी २॥ द्वीप प्रमाण–काळथी अनादि अनंत–भावथी वर्णादि रहित—गुणथी वर्त्तनादि लक्षण युक्त [2]आकृतिथी अवक्तव्य इत्यादि ६ द्रव्यनुं यत्किंचित् स्वरूप कह्युं.

॥ द्वितीयाजीवतत्त्वविस्तरार्थः समाप्तः ॥

---

१ एमां पण लोकाकाशनो आकार सुप्रतिष्ठ सरखो, अने अलोकाकाशनो आकार पोला गोळा सरखो छे.

२ काळ वास्तविक रीते द्रव्य नहि होवाथी काळनो अमुक आकार छे. एम कहेवुं अशक्य छे.

॥ अजीवतत्त्वपरिशिष्टम्. ॥

॥ अजीवना ५६० भेद. ॥

अरूपी अजीवना ३० भेद—१ धर्मास्तिकाय, २ धर्मा० देश, ३ धर्मा० प्रदेश, ४ अधर्मास्तिकाय, ५ अधर्मा० देश, ६ अधर्मा० प्रदेश, ७ आकाशास्तिकाय, ८ आकाशा० देश, ९ आकाशा० प्रदेश, अने १० मो काळ. तथा धर्मा०, अधर्मा०, आकाशा०, अने काळ ए चारना प्रत्येकना द्रव्य–क्षेत्र–काळ–भाव–अने गुण ए पांच पांच भेद गणतां २० भेद थाय. ए प्रमाणे प्रथमना १० अने बीजीवारना २० भेद मळी अरूपी अजीवना ३० भेद थाय.

॥ रूपी अजीवना ५३० भेद. ॥

५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ८ स्पर्श, अने ५ संस्थान ए २५ गुणमां जे गुणना भेद गणवा होय ते गुण अने तेना विरोधी गुण गुण शिवायना शेष सर्व गुण भेद ते गुणमां प्राप्त थाय माटे पांच वर्णमां कृष्णवर्णने अंगे गणीए तो २५ मांथी प्रथम कृष्णवर्ण अने त्यारबाद कृष्णवर्णमां समकाळे नहिं गणवा योग्य शेष चार वर्ण पण बाद करतां शेष २० गुणभेद १ कृष्णवर्णमां संभवे, ए प्रमाणे नीलवर्णमां पण पांचे वर्ण विना २० गुणभेद होय, तेथी दरेक वर्णमां २०–२० गणतां ५ वर्णना ५×२०=१०० वर्ण भेद थाय. ए रीते ५ रसमां दरेक रसने अंगे (५ रस शिवायना) २०–२० भेद गणतां १०० रसभेद थाय. पुनः पांच संस्थानमां दरेक संस्थानने अंगे (५ सस्थान शिवायना) वीस वीस भेद गणतां १०० संस्थानभेद थाय. पुनः २ गंधमां दरेक गंधने अंगे (२ गंध शिवायना) २३–२३ भेद गणतां २३×२=४६ गंध भेद थाय.

अने दरेक स्पर्शने अंगे (एक विवक्षित अने बीजो विरोधी एम २ स्पर्शविना शेष) २३–२३ भेद गणतां आठे स्पर्शना २३×८ =१८४ स्पर्शभेद थाय. जेथी सर्व मळी रूपी अजीवना ५३० भेद थाय. तेनुं संक्षिप्त कोष्टक नीचे प्रमाणे—

धर्मा०	स्कंध–देश–प्रदेश	३	वर्णना	५×२०=१००
			रसना	५×२०=१००
अधर्मा०	,, ,, ,,	३	संस्था०	५×२०=१००
			गंधना	२×२३=४६
आकाशा०	,, ,, ,,	३	स्पर्शना	८×२३=१८४
				५३०
काळ		१		रूपी अजीव.
		१०—अरूपी अजीव.		

धर्मा०	द्रव्य–क्षेत्र–काळ–भाव–गुण	५
अधर्मा०	,, ,, ,, ,, ,,	५
आकाशा०	,, ,, ,, ,, ,,	५
काळ	,, ,, ,, ,, ,,	५
	अरूपी अजीव—२०	

॥ कालविचार. ॥

लोकरुढिये कालना कृत–त्रेता–द्वापर–कलियुग ए प्रमाणे भेदो कल्पेला छे तेमां कृतयुग १७२८००० सत्तर लाख अठ्ठावीश हजार वर्षनो, त्रेतायुग १२९६००० बार लाख छन्नुं हजार वर्षनो, द्वापरयुग ८६४००० आठ लाख चोसठ हजार वर्षनो अने कलियुग ४३२००० चार लाख बत्रीश हजार वर्षनो छे, सर्वना मळी

४३२०००० तेंतालीश लाख वीश हजार वर्ष थया, एक पूर्वमां एक क्रोड त्रेसठ लाख अने तेत्रीश हजार त्रणसें अने तेत्रीस वार चारे युगोनी परावृत्तिओ अने चारे युगना समहितकालनो एक तृतीयांश १/३ भाग व्यतीत थाय छे.

दशवैकालिक चूर्णिमां — पुद्गल अने नोपुद्गल ए प्रमाणे अजीव बे भेदे छे पुद्गलना ६ भेद १ सूक्ष्म, २ सूक्ष्म सूक्ष्म, ३ सूक्ष्म बादर, ४ बादरसूक्ष्म, ५ बादर, ६ बादर बादर ए भेदोना अनुक्रमे १ परमाणु, २ सूक्ष्मपरिणत अनन्तप्रदेशीस्कन्ध, ३ गन्ध, ४ वायु, ५ जल, ६ पृथ्व्यादि.

नो पुलद्गना—धर्मास्तिकायादिक ३ भेदो छे.

॥ इत्यजीवतत्त्वपरिशिष्टम्. ॥



॥ [1] पुण्यतत्त्वम् ॥

अवतरण—नवतत्त्वमां जीव अने अजीव तत्त्वनुं स्वरूप कहीने हवे त्रीजा पुण्यतत्त्वनुं स्वरूप कहे छे. त्यां आ गाथामां पुण्यना ४२ भेदमां प्रथम १७ भेद गणावे छे,

॥ मूळ गाथा १५ मी ॥

सा उच्चगोअ मणुदुग, सुरदुग पर्चिदिजाइ पणदेहा ।
आइतितणुणुवंगा, आइमसंघयण संठाणा ॥१५॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

सातोच्चैर्गोत्रमनुष्यद्विक-सुरद्विकपंचेन्द्रियजातिपंचदेहाः ।
आदित्रितनूनामुपांगा-न्यादिमसंहननसंस्थानानि ॥ १५॥

॥ शब्दार्थ ॥

सा—शातावेदनीय.
उच्चगोअ—उच्चगोत्र
मणुदुग—मनुष्यद्विक
सुरदुग—देवद्विक
पंचिंदिजाइ—पंचेन्द्रियजाति
पणदेहा—पांच शरीर.
आइ—प्रथमनां
ति—त्रण
तणूण—शरीरनां
उवंगा—उपांग.
आइम—प्रथम.
संघयण—संघयण
संठाण—संस्थान

---

१ कर्म बेडीमां पराधीन पडेलो जीव चतुर्गति संसारमां

गाथार्थः—शातावेदनीय–उच्चगोत्र–मनुष्याद्विक (मनुष्य-गति अने मनुष्यानुपूर्वी)–देवद्विक (देवगति–देवानुपूर्वी)–पंचेन्द्रियजाति, पांचे शरीर–प्रथम त्रण शरीरनां उपांग (औदारिक उपांग–वैक्रिय उपांग–आहारक उपांग)–प्रथम संघयण (वज्र-ऋषभनाराच)–अने प्रथम संस्थान (समचतुरस्र) ए सर्व (१७ वस्तु) पुण्यना उदयथी मले.

विस्तरार्थः—पुनाति एटले पवित्र करे ते पुन्य कहेवाय. अर्थात् जे कार्यो करवाथी अशुभ कर्मवडे मलिन थयेलो अत्मा धीरे धीरे पवित्र एटले शुभ कर्मवाळो थइ अनुक्रमे मोक्ष पहोंचे ते कार्य पुन्य कहेवाय छे, तथा ए पुन्यना कार्य करवाथी जे शुभ क-

भटके छे. ते कर्म घाति-अघाति भेदथी बे प्रकारे छे, घातिकर्म ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीय-मोहनीय अन्तराय ए चारे पण आत्मगुणना घातक होवाथी पापतत्त्वमांज गणाय छे. अने अघातिकर्म-वेदनीय-आयु नाम अने गोत्र ए चार शुभ अशुभ उभय स्वरूप छे, तेमां अशुभ प्रकृतिओ जे सक्लिष्ट अध्यवसाय वाळा जीवने बंधाय छे. ते पापमां गणी छे अने शुभ-प्रशस्त प्रकृतिओ जे विशुद्ध अध्यवसायवाला जीवो बांधे छे. वळी कर्मना बन्ध उदय उदीरणा अने सत्ता विगेरे अनेक अवस्थाओ छे के जेने आश्रयी भेदोमां अनेक विकल्पो पडे छे तेमां अहीं पुण्य–पापतत्त्वमां गणाती प्रकृतिओ बन्धावस्थानी लेवानी छे. ते बन्धमां ५ ज्ञानावरण. ९ दर्शनावरण २६ मोहनीय. ५ अन्तराय, मळी ४५ घाति प्रकृतिओ पापतत्त्वमां गणवानी छे, १ अशा० वेदनीय. १ नीचैर्गोत्र १ नरकायु ए त्रण पण त्रण कर्मनी पापमां छे, शेष ए त्रणनी पांच तथा नाम कर्मनी ६७ प्रकृतिओमां वर्णचतुष्क प्रशस्ताप्रशस्त भेदे बे वखत गणवानु होवाथी ७१ पैकी ३४ अशुभ नाम प्रकृति पापमां छे अने बाकी रहेला ३७ प्रशस्त नाम प्रकृति पुण्यमां गणवी एटले १ वेदनीय, ३ आयुष्य, ३७ नाम प्रकृति, १ गोत्र मळी ४२ पुण्य प्रकृति जाणवी (सू- वि- उ-उ ग.)

र्म बंधाय ते शुभ कर्म पण पुण्य कहेवाय. ए प्रमाणे पुण्यनां पुण्यक्रिया अने पुण्यफल रूप बे अंग छे, ने ते परस्पर कारण कार्य भावे छे. केमके पुण्यनी क्रियाथी पुण्य (शुभकर्म) उपार्जन थाय छे (बंधाय छे) माटे पुण्यनी क्रिया ए कारण छे अने बंधायलुं शुभकर्म ते कार्यरूप छे. हवे जे क्रिया वडे पुण्य बंधाय छे. ते ९ क्रियाओ आ प्रमाणे छे—

(पुण्य बांधवानां कारण.)

१ पात्रने अन्न देवाथी   २ पात्रने पाणी देवाथी.
३ पात्रने स्थान आपवाथी   ४ पात्रने शयन आपवाथी,
५ पात्रने वस्त्र आपवाथी   ६ मनना शुभ संकल्पथी.
७ वचननां शुभ व्यापारथी   ८ कायाना शुभ व्यापारथी
९ नमस्कारादिकथी

अहिं मोक्ष मार्गने अभिमुख थयेला मुनि सुपात्र, धर्मी गृहस्थ पात्र अने करुणा करवा योग्य अपंगादिक जीवो पात्र ए त्रणेने पात्र शब्दथी ओळखवा. अने शेष सर्व अपात्रमां गणाय. तेमां पण सुपात्रने [1] मुख्यत्वे धर्मनी बुद्धिए अन्नादिक आपवाथी अशुभकर्मनी महानिर्जरा पूर्वक महा पुण्य उपार्जन थाय. अने धर्मी गृहस्थने अन्नादिक आपवाथी मुनिनी अपेक्षाए अल्प पुण्य उपार्जन थाय, अपंगादिक दुःखी जीवोने अन्नादिकथी उद्धार करतां पुण्य उपार्जन थाय, ते शिवायनो गमे ते जीव घरने द्वारे आवी उभो रहे तेने निराश करी काढतां मारो धर्म निंदाशे माटे तेम नहिं थवा देवानी इच्छाए आपे तो पुण्य उपार्जन करे, अने लक्ष्मीना निर्मोहपणाथी लक्ष्मीनी असारता दर्शाववाने माटे (श्री

१ गौणपणे पौद्गलादिक सुखनी, अने देवादिक सद्गति मळवानी अभिलाषा धर्मराग होवाथी पुण्य बंधाय.

तीर्थंकरादि दीक्षा लेनार जीवोनी पेठे) गमे ते जीवने दान आपे तो पण 'पुण्य बंधाय ए सर्व विगत पात्रत्वने अपेक्षीने कही शेष भेद सुगम छे.

हवे ते बंधायलुं पुण्य कये कये प्रकारे उदय आवे छे-भोगवाय छे? तेज ४२ प्रकारे पुण्य भोगववानो संबन्ध गाथामां कह्यो छे. ते आ प्रमाणे—

१ शातावेदनीय—जे कर्मना उदयथी सुखनो अनुभव थाय ते कर्म तथा ते सुखनो अनुभव बन्ने पुण्यमां कहेवाय.

उच्चगोत्र—जे कर्मना उदयथी उच्चकुळ-जाति-धन-ठकुराइ इत्यादि प्राप्त थाय ते कर्म तथा उच्चकुल वगेरे सर्व पुण्य कहेवाय.

---

१ प्रसंगे ए पण ख्याल रहेवो जोइए के——

१ श्वान-कबूतर-वगेरे जीवोने अन्नादिक आपवाथी तथा जीवितदान आपवाथी पण पुण्य बन्धाय छे. कारणके तेमां करुणा भावथीज पुण्य बन्धाय छे

२ घेर आवेला ब्राह्मण-बावा-जोगी-संन्यासी विगेरे के जेओ सम्यधर्मथी विमुख छे तेओने "आ पण धर्मी जीवो छे" अथवा "आपणे एमने आपीशुं तो धर्म थशे पुण्य थशे" एवी बुद्धिथी आपवुं नहिं. पण श्रावकनां अभंगद्वार होवाथी कोइपण बारणे आवेलो जीव सर्वथा निराश थइ पाछो न जाय. अने जाय तो मारो धर्म जगतमां हलको गणाय. अथवा "मारो दाक्षिण्य गुण न गणाय" एम विचारीने अवश्य आपवु. जोइए कारणके एथी पोतानो दान गुण प्रगटे. धर्म मारो गणाय. अने अन्य जीवो पण धर्माभिमुखी थाय.

३ केटलाएक जीवो कूवा वाव—तलाव—खोदाववामां ने सदाव्रत बंधाववामां पुण्य माने छे कारणके घणा जीवो तेथी पोतना आत्मानी शान्ति करे छे. तथा वनादिकमां दव मूकी ढोरने चरवाना क्षेत्र बनाववामां इत्यादि अनेक कार्यमां पुण्य माने छे. परन्तु ते अज्ञानता छे. एम स्पष्ट रीते श्री योगशास्त्रमां कह्यु छे, अने जो एवी रीते पुण्य बंधातु होय तो

३ मनुष्यगति—जे कर्मना उदयवडे मनुष्यपणुं प्राप्त थाय ते कर्म तथा मनुष्यपणुं बन्ने पुन्य कहेवाय.

४ [1] मनुष्यानुपूर्वी—जे कर्मना उदयवडे वक्रगतिए जतो मनुष्यगति वाळो जीव पोताने ज्यां उत्पन्न थवुं होय त्यां ज जइ शके ते कर्म तथा ते कर्मनो उदय बन्ने पुन्य कहेवाय.

५ देवगति—जे कर्मना उदयथी देवपणुं प्राप्त थाय ते.

६ देवानुपूर्वी—जे कर्मना उदयथी देवपणामां ज्यां उत्पन्न थवुं होय तेज क्षेत्रमां जइ देवपणे उत्पन्न थाय ते.

७ पंचेन्द्रियजाति—जे कर्मना उदयथी पंचेन्द्रियपणुं प्राप्त थाय ते कर्म तथा पंचेन्द्रियपणुं बन्ने पुन्य कहेवाय.

८ [1] औदारिकशरीर—जे कर्मना उदयथी औदारिक शरीरनी प्राप्ति थाय ते कर्म तथा शरीर बन्ने पुन्य कहेवाय.

९ [2] वैक्रियशरीर—जे कर्मना उदयथी वैक्रिय शरीरनी प्राप्ति थाय ते कर्म तथा शरीर बन्ने पुन्य कहेवाय.

दरेक जीवोना सुखने माटे खेतरो खेडी धान्य उगाडी आपवां, दरेकने माटे मकानो बांधी आपवां, दरेकने परणावी आपवां अने दरेक जीवो जेमां जेमां पोते सुख मानता होय तेवां तेवा साधन तेओने बनावी आपवां तो पछी पापनु कार्य ज कयुं बाकी रह्युं ? माटे ए मान्यता अज्ञानसूचक छे, परन्तु तरस्यो जीव अथवा व्याकुळ थयेलो जीव आपणी पासे आव्यो होय तो आपणे करुणाभावथी तेने पाणी अने अन्न आपी शान्त करवो ए फरज छे. आ संबन्धमां घणो तर्कवाद धर्ममार्गने बाध न पहोंचे तेम विचारवो.

१ ऋजुगतिए (सीधी गतिए) जता जीवने आनुपूर्वीनो उदय नथी पण वक्रगतिए जता जीवने जे ठेकाणेथी वळवानुं आवे ते ठेकाणे जे कर्म जीवने बळदने नाथनी पेठे वाळी आपे ते वाळनार कर्मनुं नाम आनुपूर्वी कहेवाय छे.

१० [3] आहारक—जे कर्मना उदयथी आहारकशरीरनी प्राप्ति थाय ते कर्म तथा शरीर बन्ने पुन्य कहेवाय.

११ [4] तैजस—जे कर्मना उदयथी तैजस शरीरनी प्राप्ति थाय ते कर्म तथा शरीर बन्ने पुन्य कहेवाय.

१२ [5] कार्मण—जे कर्मना उदयथी कार्मण शरीरनी प्राप्ति थाय ते कर्म तथा का० शरीर बन्ने [6] पुन्य कहेवाय.

१३ औदा० उपांग—जे कर्मना उदयथी औदा० शरीरने आंख-नाक-कान-इत्यादि अवयवो प्राप्त थाय छे ते. (अहिं अवयव विनानुं पण औदा० शरीर एकेन्द्रिय जीवोने होय छे. माटे अवयवोनी प्राप्ति पुण्यरूपे जाणवी.)

१४ वैक्रियउपांग—जे कर्मना उदयथी वै० शरीरने अवयवो (आंख-नाक-कान-आंगळीओ) इत्यादि प्राप्त थाय ते (अहिं वायुकायना वै० शरीर ने अवयवो होता नथी ने देवादिकने होय छे माटे पुण्यप्रकृतिरूप छे).

१५ आहारक उपांग—जे कर्मना उदयवडे आहा० शरीरने अवयवोनी प्राप्ति थाय ते (अहि कोइपण आहा०शरीर अवयव विनानु थतुं नथी पण एकेन्द्रियने जेम अवयव [1]विनानु औ-

१—२ ३—४—५ ए पांचे शरीरनुं विस्तृत वर्णन ७ मी गाथाना अर्थमां आवी गयुं छे माटे अहिं तो नाम मात्रज दर्शावेल छे.

६ कार्मण शरीर भवमां भ्रमण करावनार छे छतां पुन्य रूप केम गणाय ? ए सबन्धि समजवानुं ए छे के—सर्व पौद्गलिकसुखो अने दुःखो कार्मण शरीरना प्रभावथी छे, परन्तु पौद्गलिकसुखमा कार्म० शरीरनी मुख्यता गणीने पुन्यप्रकृतिमा गणेल छे.

१. शंका - वनस्पतिने शाखा-प्रशाखा पुष्प-फळ इत्यादि अनेक अवयव छतां एकेन्द्रियनुं औदा०शरीर उपांगरहित केम कहेवाय ?

दा०शरीर बूठुं थाय छे तेम आहा०शरीर न थाय माटे आहा०उपांग कर्मनी आवश्यकता छे. जो ए कर्म न होयतो आहा०शरीर रुंड मुंड आ त्रणे उपांगनी अंदर १ अंग २ उपांग ३ अंगोपांग ए त्रणे पण समजवा. १ अंग–बे भुजा. बे उरु, पृष्ठ, मस्तक, उदर, छाती, ए आठ छे, २ उपांग–आंगळीओ विगेरे. ३ अंगोपांग–रेखाओ विगेरे. जेवुं अशोभनिक थाय माटे ए उपांगकर्म पुण्यरूप छे.)

१६ वज्रऋषभनाराच संघयण—जे कर्मना उदयथी वज्रऋषभनाराच संघयण प्राप्त थाय ते. (अहिं संघयण एटले हाडकाना सांधानुं बंधारण ते ६ प्रकारनुं छे तेमांनुं आ प्हेलुं संघयण छे. त्यां वज्र–खीली, ऋषभ–हाडनो पाटो, अने नाराच–वांदरीनुं बच्चुं जेम माने हाथनी आंटी मारी मजबूत वळगी रहे छे तेम बे हाडकांना बे छेडा परस्पर एकबीजाने आंटी मारी मजबूत रीते वळगी रहे ते मर्कटबन्ध कहेवाय. तेमां प्हेला संघयण वाळा जीवनां हाडकांना ज्यां सांधा होय ते सांधाने स्थाने आवेलां बे हाडकांना बे छेडा एकबीजाने मर्कटबन्ध माफक वळगी रहेला होय ने ते मर्कटबन्ध उपर हाडकानो मजबूत पाटो उपर नीचे वींटाइ रहेलो होय छे, अने एक हाडकानी खीली ते पाटाउपरथी ठेठ नीचे सुधी पाटो–अने बे हाडना छेडाने भेदीने उतरेली होय छे जेथी ए सांधो एवो मजबुत थाय छे के मोटी शीलाओथी ६ माससुधी कचडना पण ते हाडकांना सांधा त्रुटता नथी पण मात्र पीडाज थाय छे, एवां संघयणनी प्राप्ति खरेखर पुन्यविना न ज होय! बीजां पांच संघयणनुं स्वरूप पापतत्त्वमां आवशे.)

उत्तर–ते दरेक अवयवना अधिष्ठाता जीवो जुदा जुदा छे पण ते अवयवो वस्तुताए कोइपण एक वृक्षजीवना बनावेला नथी. माटे एकेन्द्रियने उपांगनो उदय नथी

१७ समचतुरस्र संस्थान—जे कर्मना उदयथी समचतुरस्र संस्थाननी प्राप्ति थाय ते. (अहिं संस्थान एटले जीवना शरीर नो लक्षणयुक्त आकार ते ६ प्रकारनो छे तेमां आ प्रथम संस्थान छे. आ संस्थानवाळो जीव पर्यंकासने बेठो होय ते वखते डावा पगना ढींचणथी जमणा खभा सुधीनी लंबाइ, जमणा पगना ढींचणथी डावा खभासुधीनी लंबाइ, जमणा ढींचणथी डावा ढींचण सुधीनी लंबाइ. पर्यंकासनना मध्यभागथी ललाटोपरिभाग सुधीनी उंचाइ एम सर्व रीते मापतां लंबाइओ सरखे दापे आवी रहे ते समचतुरस्र संस्थान कहेवाय. तेमां सम एटले सरखा, चतुः एटले चार ने अस्र खूणा, अर्थात् जेना चारे खूणा सरखा मापना होय ते समचतुरस्र कहेवाय. अथवा जे मनुष्य पोताना अंगुल वडे १०८ अंगुलथी उंचो होय ते पण समचतुरस्र सस्थानी होय. सर्व तीर्थंकरो अने सर्वे देवो समचतु० संस्थानीज होय ने शेष जीवो बन्ने प्रकारे होय.

शंका—मनुष्यने अपेक्षीने तो समचतु०नो ए अर्थ संभवे पण गर्भजतिर्यंचोनु समचतु० संस्थान होय छे तो ते केवीरीते मापी शकाय ?

उत्तर—समचतुरस्र शब्दनो व्युत्पत्तिनिमित्तनी अपेक्षाए उपर कह्यो ते अर्थ जाणवो पण प्रवृत्तिनिमित्तथी तो सामुद्रिकशास्त्रोक्तलक्षणयुक्त शरीराकृतिने समचतुरस्र कहीये. अने ते उत्तमलक्षणयुक्त संस्थान तो गर्भजतिर्यंचोने पण संभवे, कारणके श्री सर्वज्ञोए हाथी-घोडा-बळद-गाय वगेरे जे जीवोना अवयवोनुं प्रमाण शरीरना जेटलामे भागे जोडए ते तथा लक्षण विगेरे सर्व दर्शावेल छे ने ते प्रमाणे हवाथी समचतुरस्र संस्थानी कहेवाय. बाकीना पांच संस्थानोनु स्वरूप पापतत्त्वमां कहेवाशे. ॥

अवतरण—पूर्व गाथामां पुण्यना १७ भेद गणावीने हवे आ गाथामां बाकी रहेला पुण्यना २५ भेद गणावे छे.

॥ मूळ गाथा १६ मी. ॥

वन्नचउक्काऽगुरुलहु-परघा उस्सास आयवुज्जोअं ।

सुभखगइ निमिण तसदस,सुरनरतिरिआउ तित्थयरं॥१६।

॥ संस्कृतानुवादः ॥

वर्णचतुष्काऽगुरुलघु-पराघातोच्छ्वासातपोद्योतं ।

शुभखगतिनिर्माणत्रसदशक-सुरनरतिर्यगायुस्तीर्थकरं॥१६॥

॥ शब्दार्थः ॥

वन्नचउक--(शुभ)वर्ण--गंध--रस ने स्पर्श ए चार.	सुभखगइ-शुभविहायोगतिनामकर्म
अगुरुलहु--अगुरुलघुनामकर्म.	निमिण--निर्माणनामकर्म.
परघा--पराघातनामकर्म	तसदस--त्रस वगेरे १० नामकर्म
उस्सास--श्वासोच्छ्वासनामकर्म	सुर--देवनु आयुष्य.
आयव--आतपनामकर्म.	नर--मनुष्यनु आयुष्य.
उज्जोअं--उद्योतनाम कर्म.	तिरिआउ--तिर्यचनु आयुष्य.
	तित्थयरं--तीर्थंकरनामकर्म.

गाथार्थः—शुभवर्ण—शुभगंध—शुभरस—शुभस्पर्श—अगुरुलघुनामकर्म—पराघातनामकर्म—श्वासोच्छ्वासनामकर्म— आतपनामकर्म—उद्योतनामकर्म—शुभविहायोगतिनामकर्म— निर्माणनामकर्म— त्रसनामकर्म—बादरनाम०—पर्याप्तनाम०·प्रत्येकनाम०--स्थिरनाम०-शुभनाम० —सौभाग्यनाम०-सुस्वरनाम०--आदेयनाम० --यशनाम०-देवायुष्य--मनुष्यायुष्य--तिर्यंचायुष्य- अने तीर्थंकरनाम० ए सर्व (२५) पुण्यना उदयथी प्राप्त थाय छे.

विस्तरार्थः—वर्णचतुष्कमां वर्ण एटले रंग–गंध एटले गंध–रस एटले स्वाद–अने स्पर्श एटले स्पर्श ते अहिं शुभ ग्रहण करवाना होवाथी ते शुभवर्णादिकनां नाम आप्रमाणे—

१८ शुभवर्ण—जे कर्मना उदयथी जीवनुं शरीर श्वेत (धोळा)–रक्त (लाल)–अने पीत (पीळा) वर्णनु थाय ते कर्म अने प्राप्त थयेलो शुभवर्ण बन्ने पुन्य गणाय.

१९ शुभगंध—जे कर्मना उदयथी जीवनु शरीर सुरभि गंधवाळुं थाय ते, जेम मोगरो–गुलाब–केवडो इत्यादिक जीवोनु०

२० शुभरस—जे कर्मना उदयथी जीवनु शरीर आम्ल (खाटुं)–मधुर[1] (मिष्ट)–अने कषायली (तूरुं) होय ते जेम अनुक्रमे आमली–शेलडी–अने हरडे वगेरे जीवोनुं.

२१ शुभस्पर्श—जे कर्मना उदयथी जीवनुं शरीर उष्ण–मृदु (कोमळ)–स्निग्ध (चिकणुं)–अने लघु (हलकुं) होय ते जेमके अनुक्रमे अग्नि–कमळ–गुंदा–अने आकडानुं तूर इत्यादि जीवोनु.

२२ अगुरुलघु—जे कर्मना उदयथी जीवनु शरीर पोताने निर्वहन न थइ शके एवुं अति भारी अने हवामां उडी जाय तेवुं अति हल्कुं पण न थाय परन्तु मध्यमसर थाय ते. (दरेक जीव मात्रनु शरीर अगुरुलघुज होय छे.)

२३ पराघात—जे कर्मना उदयथी जीवनी एवी प्रभा पडे के बीजो सामो जीव गमे तेवो बळवान होय छतां पण तेने देखतां ज लाचार बनी जाय ते

२४ उच्छ्वास—जे कर्मना उदयथी जीव सुखपूर्वक श्वासोच्छ्वास लइ मूकी शके तेवी लब्धिवाळो थाय ते. (ए कर्मनो उदय सर्व पर्याप्त जीवोने ज होय छे.)

१ लवणनो जे खारो रस ते पण बीजा पदार्थोने मधुर रसवाळा बनावनार होवाथी मिष्ट-मधुररसमां गणाय छे.

२५ आतप—जे कर्मना उदयथी जीवनुं शरीर शीत छतां उष्णप्रकाशयुक्त होय ते, जेमके सूर्यना विमानगत पृथ्वीजीवो तथा सूर्यकांत मणीना जीवोने. ए कर्म खर बादरपृथ्वीकाय पर्याप्त जीवोनेज होय परन्तु अग्निने पण नहिं.

२६ उद्योत—जे कर्मना उदयथी जीवनुं शरीर शीतप्रकाश युक्त थाय ते. जेमके सूर्य शिवाय चार ज्योतिषी विमानना पृथ्वीकाय–आगीआ–वगेरेने (उत्तरवै० शरीरने पण.)

२७ [1]शुभविहायोगति—जे कर्मना उदयथी जीवनी गति (चाल) हंस अने बळदना सरखी मलपती होय ते. जेमके हंस–हाथी-बळद-वगेरे जीवोने. (अहिं शुभ-सारी विहायस्-आकाशमां—खुल्ली जगामां गति—गमन करवुं—चालवुं ए व्युत्पत्यर्थ छे.)

२८ निर्माण—जे कर्मना उदयथी जीवनुं शरीर ज्यां जेवुं जोइए त्यां तेवुंज बने ते. ए कर्म सुतार सरखुं छे

२९ थी—३८ (त्रसादि १० प्रकृति आगळनी गाथामां कहेवाशे.)

३९ देवायुष्य—जे कर्मना उदयथी देवभवमां रहेवाना कारण रूप देव संबन्धि आयुष्यनी प्राप्ति थाय ते (जेम देवोने)

४० मनुष्यायुष्य—पूर्ववत्

४१ [2] तिर्यंचायुष्य—पूर्ववत्

---

१ आकाश शिवाय कोइनी पण गति थती नथी छतां गतिनाम कर्म जुदु होवाथी आकाश वाचक विहायस विशेषण आपवुं पडे छे

२ तिर्यंच जीवो पोताना जीवतव्यने सारुं समजी मरवाने इच्छता नथी माटे तिर्यंचनुं आयुष्य पुण्यरूप छे, अने नारकजीवो पोताना जीवतरमांथी छूटवानेज इच्छे छे माटे नारक जीवनुं आयुष्य पापमां गणाशे

४२ तीर्थंकर—जे कर्मना उदयथी त्रणे भुवनमां पूज्य पणुं प्राप्त थाय, चतुर्विध संघ स्थपाय, अने सर्व जीवोनो उद्धार थाय छे. (जेम ऋषभदेवादिकने)

अवतरण—पुण्यतत्त्वना ४२ भेदमां जे त्रसनुं दशक कह्युं ते त्रस वगेरे १० प्रकृतियो (भेद) कइ कइ ? ते आ गाथामां गणावे छे.

॥ मूळ गाथा १७ मी. ॥

तस बायर पज्जत्तं, पत्तेय थिरं सुभं च सुभगं च ।
सुस्सर आइज्जजसं, तसाइदसगं इमं होइ ॥ १७ ॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

त्रसबादरपर्याप्तं, प्रत्येकं स्थिरं शुभं च सुभगं च ।
सुस्वरादेययशस्त्रसादिदशकमिदं भवति ॥ १७ ॥

॥ शब्दार्थः ॥

तस—त्रसनामकर्म	पत्तेय—प्रत्येक नामकर्म
बायर—बादरनामकर्म	थिरं—स्थिर नामकर्म
पज्जत्तं—पर्याप्तनामकर्म	सुभं—शुभ नामकर्म

प्रश्न—जेम देवायु-नरायु नी साथे तेनीगति-आनुपूर्वीओ पुण्यप्रकृतिगणी छे तेम तिर्यंचायुनी साथे तेनी गति-आनुपूर्वी केम गणतरीमां लीधी नथी ?

उत्तर—जे विशुद्ध अध्यवसाये बंधाय अ शुभ रस पणे भोगवाय तेज पुण्य प्रकृति गणाय छे अने संक्लिष्ट अध्यवसाये बंधाय ते पाप प्रकृति गणाय छे जे माटे शतकादि प्रकरणोमां कह्युं छे के–"बायालंपि पसत्था, विसोहिगुणमुक्कडस्स जीवस्स बासीइमप्पसत्था इत्थुक्कडसंकिलिट्ठस्स ॥ १ ॥" वली-आयुष्यकर्म भिन्न छे अने नामकर्मना उत्तर भेदरूप गति आनुपूर्वीकर्मां भिन्न छे माटे तेना बन्धकारणो पण भिन्न भिन्न छे

च–वळी	जसं–यश नामकर्म
सुभगं–सौभाग्य नामकर्म	तसाइ–त्रस विगेरे
सुस्सर–सुस्वर नामकर्म	दसगं–१० भेद
आइज्ज–आदेय नामकर्म	इमं–ए प्रमाणे होइ–छे.

गाथार्थः—त्रसनाम०–बादरनाम०–पर्याप्तनाम० –प्रत्येकनाम०–स्थिरनाम०–शुभनाम०–सौभाग्यनाम०-सुस्वरनामकर्म–आदेयनाम०-अने यशनाम०-ए प्रमाणे त्रस वगेरे १० प्रकृतियो-भेद छे.

विस्तरार्थः—त्रसदशक एटले त्रस नाम कर्म विगेरे १० प्रकृति ते त्रसदशक कहेवाय. ते आ प्रमाणे—

१ त्रस—जे कर्मना उदयथी जीवने त्रसपणुं (त्रास पामी एक स्थानथी बीजे स्थाने जवानी शक्ति) प्राप्त थाय ते अहिं वायु अने अग्नि ए बे स्थावर छतां पण गतिक्रियावाळा छे परन्तु तेओनी गतिक्रिया त्रास–भय अने अनिष्टपणाना कारणथी नथी माटे वास्तविकरीते गतित्रस कहेवाय पण लब्धि (–नामकर्मना उदयथी) त्रस नहिं

बादर—जे कर्मना उदयथी जीवने स्थूल शरीर (इन्द्रियगोचर थइ शके तेवुं शरीर) प्राप्त थाय ते. अहिं एक पृथ्विकायादि जीवनुं शरीर इन्द्रियगोचर थतुं नथी तो पण अनेक पृथ्विकायजीवोना शरीर एकठां थये दृष्टिगोचर थाय छे माटे एक पृथ्विकायादिकनुं शरीर पण बादर कहेवाय.

३ पर्याप्त—जे कर्मना उदयथी जीव स्वयोग्य पर्याप्तियो संपूर्ण करीने मरण पामे ते.

४ प्रत्येक—जे कर्मना उदयथी एकज जीव एक शरीरनो मालिक होय ते (अथवा एक शरीर एकज जीवने प्राप्त थाय ते)

५ स्थिर—जे कर्मना उदयथी जीवने शरीरना दांत–हाडकां वगेरे अवयवोने स्थिरतानी प्राप्ति थाय ते—

६ शुभ—जे कर्मना उदयथी जीवना शरीरनो नाभि उपरनो भाग परने स्पर्श थतां प्रीति उपजावनार थाय ते.

७ सौभाग्य—जे कर्मना उदयथी कंइ पण उपकार कर्या विना पण जीव लोकने प्रीति उपजावनार होय ते.

८ सुस्वर—जे कर्मना उदयथी जीवनो कंठ-अवाज मधुरहोय ते.

९ आदेय—जे कर्मना उदयथी जीवनुं वचन अयुक्त अने गांडु घेलुं होय तो पण लोक तेना पर बहु आदर भाव राखे अने इश्वरना वचन सरखुं माने ते.

१० यश—जे कर्मना उदयथी अवळां काम करे तो पण लोकमां तेनी कीर्त्तिज गवाय ते.

ए प्रमाणे [१] ४२ प्रकारे पुण्य उदयमां आवे छे, माटे पुण्यतत्त्वना उदयने आश्रयी ४२ भेद गण्या छे.

॥ इति तृतीयपुण्यतत्त्वविस्तरार्थः समाप्तः ॥

॥ पुण्यतत्त्वपरिशिष्टम् ॥

(०)

आ पुण्यतत्त्वना ४२ भेदमांथी नरकादि चार गतिमां कया कया भेद होय ते कहेवाय छे—

१ नरकगतिमां—[२] शातावेदनीय पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियनामकर्म, तैजसनामकर्म, कार्मणनामकर्म, वैक्रियउपांगनामकर्म, [३] वर्णादि ४

१ तत्त्वार्थकारने मते सम्यक्त्वमोहनीय १ हास्य २ रति ३ पुरुषवेद ४ ए चार मोहनीयकर्मनी प्रकृतिओ पण पुण्यमांज ग्रहण करी छे.

२ जिनेश्वरोना जन्मकल्याणकादि प्रसंगे होय...

३ जो के नारक जीवोनां शरीर स्थूलद्रष्टिए कृष्णवर्णादि अशुभ वर्णचतुष्क वाळां छे तोपण सूक्ष्मद्रष्टिए ए शरीरोमां अल्पांशे शुभ वर्णचतुष्क पण छे)

अगुरुलघु, पराघात, उच्छ्वास, निर्माण, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, अने शुभनामकर्म, ए २० पुण्यभेद नारक जीवोमां होय छे.

२ तिर्यंचगतिमां—मनुष्यत्रिक, देवत्रिक, अने [1] आहारकद्विक, अने जिननाम ए ९ विना शेष ३३ पुण्यभेद तिर्यंचने होय.

३ मनुष्यगतिमां—देवत्रिक, तिर्यंचनुं आयुष्य अने [2] आतप विना शेष ३७ पुण्यभेद मनुष्यने होय.

४ देवगतिमां—मनुष्यत्रिक, तिर्यगायु, औदारिकद्विक, आतप आहारकद्विक अने जिननाम ए १० विना शेष ३२ पुण्यभेद देवगतिमां होय.

५ एकेन्द्रियने—शातावेदनीय, औदारिकअंग, तैजस, कार्मण, [3] वैक्रियअंग, वर्णादि ४, अगुरुलघु, पराघात, उच्छ्वास, [4] आतप, उद्योत, निर्माण, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, यश, अने तिर्यगायु ए २२ पुण्यभेद एकेन्द्रिय जीवोने होय.

६ द्वीन्द्रियने—शातावेदनीय, औदारिकद्विक, तैजस, कार्मण, वर्णादि ४, अगुरुलघु, पराघात, उच्छ्वास, उद्योत, निर्माण, तिर्यगायु, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, यश, ए २२ पुण्यभेद.

७ त्रीन्द्रियने—द्वीन्द्रियवत् २२

८ चतुरन्द्रियने— ''

९ पंचेन्द्रियने—आतपविना ४१ पुण्यभेद होय.

॥ इति पुण्यतत्त्वपरिशिष्टम् ॥

---

१ १४ पूर्वधर लब्धिवंत साधुनेज होय.
२ बादर पर्याप्तपृथ्वीकायने ज होय.
३ बादरपर्याप्तलब्धिवाळा वायुकायनी अपेक्षाये,
४ बादरपर्याप्त केटलाक पृथ्वीकायनी अपेक्षाये



॥ पापतत्त्वम्. ॥

अवतरण—हवे पापतत्त्वना ८२ भेद गणावतां प्रथम आ गाथामां पापतत्त्वना ६२ भेद कहे छे.

॥ मूळ गाथा १८ मी. ॥

नाणंतरायदसगं, नव बीए नी असाय मिच्छत्तं ।
थावरदस निरयतिगं कसायपणवीस तिरियदुगं १८।

॥ संस्कृतानुवादः ॥

ज्ञानान्तरायदशकं, नव द्वितीये नीचैरसातमिथ्यात्वम् ।
स्थावरदशकनिरयत्रिकं. कषायपंचविंशतिः तिर्यग्द्विकं॥१८॥

॥ शब्दार्थः ॥

नाण—ज्ञानावरण पांच	मिच्छत्तं—मिथ्यात्व
अंतराय—अन्तराय पांच	थावरदस—स्थावर वगेरे दशभेद
दसगं—ए बे मलीने दश	निरयतिगं—नरकत्रिक (नरक संबन्धि ३ प्रकृति)
नव—नव (भेद)	कसाय—कषाय
बीए—बीजा दर्शनावरणना	पणवीस—पच्चीश
नीअ—नीचगोत्र	तिरियदुगं—तिर्यचनी बे प्रकृति
असाय—अशातावेदनीय	

गाथार्थः—५ ज्ञानावरण अने ५ अन्तराय ए बे मलीने १० भेद तथा बीजा दर्शनावरणीय कर्मना ९ भेद—तथा नीचगोत्र—अशातावेदनीय—मिथ्यात्वमोहनीय—स्थावर वगेरे १० भेद- नरक-

नुं त्रिक (नरकनी गति—आनुपूर्वी–ने आयुष्य)—२५ कषाय–ने तिर्यंचनुं द्विक [तिर्यंचनी गति–ने आनुपूर्वी) ए सर्वे ८२ पापना उदयथी प्राप्त थाय छे.

विस्तरार्थः—हवे पापतत्त्वमां पाप एटले अशुभ कर्म अने ते अशुभ कर्मना उदयथी मळेलुं फळ ए बन्ने पाप कहेवाय छे.

आ जीवनो एवो एक पण समय खाली नथी जतो के जे समये पुण्य अथवा पाप कंइ पण न बांधे, कारणके प्रतिसमये जीव शुभ एटले मोक्षमार्गाभिमुखी कापायिक अध्यवसायवडे (परिणामवडे पुन्य बांधे अने अशुभ कापायिक अध्यवसायवडे पाप बांधे. ते पुन्य पाप बांधवाना अनेक प्रकार छे तो पण सामान्यतः पुन्य बांधवाना ९ प्रकार पूर्वे दर्शाव्या अने पाप बांधवाना १८ प्रकार छे ते आ प्रमाणे—

१ जीवहिंसा करवाथी	१० अप्र० राग राखवाथी
२ असत्य बोलवाथी	११ अप्र० द्वेष करवाथी
३ चोरी करवाथी	१२ अप्र० क्लेश करवाथी
४ विषय सेववाथी	१३ कलंक देवाथी
५ परिग्रह राखवाथी	१४ चाडी करवाथी
६ अप्रशस्त क्रोध करवाथी	१५ हर्ष शोक करवाथी
७ अप्र० मान करवाथी	१६ निंदा करवाथी
८ अप्र० माया प्रपंच करवाथी	१७ कपट राखी जूठ बोलवाथी
९ अप्र० लोभ करवाथी	१८ मिथ्यात्वनां आचरणथी

ए १८ पापस्थान कहेवाय ते अप्रशस्तभावे सेववाथी पाप बंधाय छे. (अने कंइकमां प्रशस्तभावे पुन्य बंधाय छे.) अने सर्वथा त्याग करवाथी कर्मनी निर्जरा थइ मोक्ष मळे छे. त्यां प्रशस्तभाव एटले श्री सर्वज्ञनी आज्ञा प्रमाणे देव गुरु धर्म उपर राग रा-

खवो ते प्रशस्त राग पुन्यबंधनुं कारण, अने स्त्री धन कुटुंब इत्यादि संसारपर रागभाव राखवो ते अप्रशस्त राग पापबंधनु कारण अने धीरे धीरे राग दशानो त्याग करवो ते मोक्षनु कारण छे. परन्तु प्रथम प्रशस्तरागथी अप्रशस्तरागनो नाश करवो अने त्यारबाद प्रशस्त राग धीरे धीरे स्वाभाविक रीतेज ओछो थवा मांडशे. ए अनुक्रम छे. तेवीज रीते प्रशस्तक्रोध एटले धर्म अने धर्मनां कारणोनो विध्वंस करनार उपर जे क्रोधादि थाय ते प्रशस्त क्रोध. अने पोतानुं अनिष्ट करनार उपर क्रोध-द्वेष थाय ते अप्र० क्रोधादि इत्यादि रीते सूक्ष्म बुद्धिए विचारतां जे जे [1] मोक्षाभिमुखी कारणो होय तेज विचारी पुण्य पापनो बन्ध विचारवो. ए संबन्धि अधिक वर्णन जाणवुं होय तो श्री अर्थदीपिका ग्रंथथी जाणवुं.

हवे पूर्वोक्त १८ प्रकारे बंधायलुं पाप जीवोने ८२ प्रकारे उदय आवे छे. ते आ प्रमाणे—

१ **मतिज्ञानावरण**—मन अने इन्द्रियोथी थतुं जे अक्षरोपलब्धिरूप ज्ञान ते मतिज्ञान, अने ते ज्ञाननुं आच्छादन करनार जे कर्म ते मतिज्ञानावरण.

२ **श्रुतज्ञानावरण**—मन अने इन्द्रियोथी थतुं जे अर्थोपलब्धिरूप ज्ञान ते श्रुतज्ञान, अथवा द्वादशांगीरूप जे शास्त्रज्ञान ते श्रुतज्ञान, अने तेने आवरनार जे कर्म ते श्रुतज्ञानावरण.

१ ए हेतुथीज प्रभुनी द्रव्यपूजा प्रभुपर रागभाववाळी होवाथी पुण्यनु कारण छे. पण जळादिक जीवोने हणवाना कारणथी नथी के जेथी प्रभुपूजामां पापबंध होय. ए प्रमाणे सर्वधर्मान्नतिना मार्गो सेवतां देखीति हिंसा अवश्य थाय छतां पण हिंसा करवाना परिणामनो अभाव होवाथी पाप नहिं बाधतां धर्माध्यवसाये पुण्यज बंधाय

३ अवधिज्ञानावरण—मन अने इन्द्रियोनी सहाय विना साक्षात् रूपीपदार्थनुं जे ज्ञान ते अवधिज्ञान तेनुं आवरण.

४ मनःपर्यायज्ञानावरण—मन अने इन्द्रियोनी सहायविना मनपणे परिणमेला पुद्गलोनुं (अथवा संज्ञीपंचेन्द्रियना मनोभावनुं जे ज्ञान ते मनःपर्याय अथवा मनः पर्यवज्ञान तेनुं आवरण.

५ केवलज्ञानावरण—मन अने इन्द्रियोनी सहायविना सर्वपदार्थनुं साक्षात ज्ञान ते केवलज्ञान तेनुं आवरण.

६ दानान्तराय—जे कर्मना उदयथी भाव अने सामग्री छतां पण दान न दइ शकाय ते.

७ लाभान्तराय—जे कर्मना उदयथी वस्तुनो लाभ न मळे ते.

८ भोगान्तराय—जे कर्मना उदयथी भोग्य एटले एकवार भोगववा योग्य वस्तु (आहारादि) न भोगवी शकाय ते.

९ उपभोगान्तराय—जे कर्मना उदयथी उपभोग एटले वारंवार भोगववायोग्य वस्तु (स्त्री—आभूषण वगेरे) न भोगवी शकाय ते.

१० वीर्यान्तराय—जे कर्मना उदयथी बळ हीण थवाय ते.

ए प्रमाणे ५ ज्ञानावरण अने पांच अन्तराय मळी १० भेद कह्या. पुनः आठ कर्मना अनुक्रममां पहेलुं ज्ञाना० कर्म बाद बीजुं जे दर्शना० कर्म तेना ९ भेद पण पापना उदय रूप ते आ प्रमाणे—

११ चक्षुदर्शना०—जे कर्मना उदयथी चक्षुवडे देखी शकाय नहि ते.

१२ अचक्षुदर्शना०—जे कर्मना उदयथी चक्षु सिवायनी बीजी इन्द्रियोवडे पदार्थनुं सामान्य ज्ञान न थइ शके ते.

१३ अवधिदर्शना०—जे कर्मना उदयथी रूपी पदार्थनो साक्षात् सामान्य बोध न थाय ते.

१४ केवलदर्शना०—जे कर्मना उदयथी साक्षात्पणे सर्व

पदार्थनो बोध न थइ शके ते. (अहिं सर्वत्र ज्ञान एटले विशेष उपयोग, अने दर्शन एटले सामान्य उपयोग एवो अर्थ जाणवो.)

१५ निद्रा—जे कर्मना उदयथी सुखे (एक शब्दमात्रथी) जागी शकाय तेवी अल्प पण निद्रा आवे ते. (पाप रूप ज छे)

१६ निद्रानिद्रा—जे कर्मना उदयथी घणीवार बोलावे त्यारे जागे तेवी गाढनिद्रा आवे ते.

१७ प्रचला—जे कर्मना उदयथी बेठां बेठां अथवा उभां उभां उंघ आवे ते.

१८ प्रचलाप्रचला—जे कर्मना उदयथी चालतां चालतां उंघ आवे ते (जेमके घोडा वगेरेने).

१९ थीणद्धी —जे कर्मना उदयथी दिवसनुं चिंतवेलुं कार्य रात्रे उंघमां ज करे ते. (आ निद्रा वाळो जीव उंघमांने उंघमां जागता माणसनी पेठे घरमां फरे—हरे—बजारमां जइ वस्तुओनुं तोल वगेरे करे—वनमां जइ वनपशुओथी युध्ध पण करे—हाथीना दंतूशळ पण काढी लावे, इत्यादि सर्व कार्य जागतानी पेठेज करे, वळी ए निद्रावाळो जो प्रथमसंघयणी होय तो उंघमां चक्रवर्त्तिथी चोथाभाग जेटलु बळ होय, अने शेष जीवोने जाग्रत अवस्थाना बळथी वधुमां वधु सात आठगणुं बळ होय). ए पांचे निद्रा आत्मानी दर्शनलब्धिने सर्वथा आवरे छे माटे पापरूप गणाय छे नहिंतर आत्माने तो सुखरूपे ज अनुभवाय छे. ए ९ भेद दर्शनावरणना कह्या.

२० नीचगोत्र—जे कर्मना उदयथी हीन कुळ—जाति—ठकुराइ—इत्यादि प्राप्त थाय ते.

२१ अशातावेदनीय—जे कर्मना उदयथी जीवने दुःखनो अनुभव प्राप्त थाय ते

२२ मिथ्यात्व—जे कर्मना उदयथी जीव सत्यमार्गने अस-

त्य रूप जाणे अने असत्य ने सत्यरूप जाणे तेवी विपरीत श्रद्धा ते.

२३ थी ३२—(आगळनी थावरसुहुमअपज्जं गाथामां स्थावरदशकनो अर्थ कहेवाशे ते जाणवो)

३३ नरकगति—जे कर्मना उदयथी नारकीपणुं प्राप्त थाय ते

३४ नरकानुपूर्वी—जे कर्मना उदयथी वक्रगतिए नरके जता जीवने उत्पत्तिक्षेत्र तरफ वळवुं थाय ते.

३५ नरकायुष्य—जे कर्मना उदयथी नरकनुं आयुष्य प्राप्त थाय ते.

३६ थी ३९ अनंतानुबंधि क्रोध-मान-माया-लोभ-जे क्रोधादिना उदयथी अनन्त संसार बंधाय सम्यक्त्व रोकाय, अने नरकगति प्राप्त थाय अने आखी जींदगी सुधी टके, तथा भवांतरमां पण साथे आवे एवो होय ते.

४० थी ४३ अप्रत्याख्यानी क्रोध-मान-माया-लोभ—जे क्रोधादिकवडे स्हेज पण प्रत्याख्यान (त्याग वृत्ति) न थइशके, देशविरतिचा० रोकाय, अने तिर्यंचगति प्राप्त थाय अने १ वर्ष सुधी रहेनारो होय ते,

४४ थी ४७ प्रत्याख्यानी क्रो०-मा०-मा०-लो०—जे क्रोधादिवडे सर्वं सावद्यव्यापारनो त्याग न थइ शके (पण लेश त्याग वृत्ति होय), सर्वविरतिचारित्रने रोके, अने मनुष्यगति प्राप्त थाय अने ४ मास रहेनार होय ते,

४८ थी ५१ संज्वलन क्रो०-मा०-मा०-लो०—जे क्रोधादिवडे महात्यागी वैरागी महात्माओ पण शब्दादि इष्ट अनिष्ट विषयो पामीने कंइक रूचि अरूचिभाव धारण करनारा थाय ते. आ कषाय चारित्रमां अतिचार-दूषण लगाडे माटे संपूर्ण शुद्ध यथाख्यात चारित्र ने रोकनार, अने देवगति आपनार छे

अने १५ दिवस सुधी रहेनार होय छे,

ए कषायोनो व्युत्पत्त्यर्थ आ प्रमाणे—अनंत–अनंत संसारने अनुबंधी–बांधवा (उपार्जन करवा) वाळो ते अनंतानुबंधि. तथा अ एटले नथी प्रत्याख्यान–पच्चक्खाण (त्यागवृत्ति) नो लेश जेमां ते अप्रत्याख्यानी. तथा प्रत्याख्यान एटले सर्वविरति पच्चक्खाणने आवरण रोकनार ते प्रत्याख्यानावरण कहेवाय तथा सं–सम्यक् प्रकारे (अति अल्प) ज्वलन–जाज्वल्यमान थनारो ते संज्वलन. तथा क्रोध-खेद, इर्ष्या-गुस्सो. मान-अभिमान. माया–छळ–प्रपंच-कपट. लोभ–तृष्णा, अधिकनी इच्छा. पुनः ए कषायोनी जे जावजीव–एकवर्ष इत्यादि स्थिति कही ते व्यवहारथी स्थूलदृष्टिए जाणवी, अन्यथा अनन्तानुबंध्यादि हीनाधिक स्थितिवाळा (अन्तर्मु० प्रमाण पण) होय.

ए १६ कषाय कहेवाय अने कषायनी साथेज रहेनारा अथवा कषायने उत्पन्न करवामां कारणरूप होवाथी बीजा ९ नोकषाय (नो–देशथी अथवा कारणरूप जे कषाय ते नोकषाय) छे. तेनां नाम तथा अर्थ आ प्रमाणे—

५२ हास्य—जे कर्मना उदयथी जीवने हर्ष उपजे अथवा हास्य आवे ते.

५३ रति–जे कर्मना उदयथी जीव इष्टविषयमां सुख माने ते.

५४ शोक—जे कर्मना उदयथी जीवने दीलगीरी उपजे ते.

५५ अरति—जे कर्मना उदयथी जीव अनिष्ट विषयमां दुःख माने ते.

५६ भय--जे कर्मना उदयथी जीव भय पामे-बीकण थाय ते.

५७ दुगंछा—जे कर्मना उदयथी जीवने बीभत्स वस्तुओ उपर तिरस्कारभाव उपजे ते.

५८ पुरुषवेद—जे कर्मना उदयथी जीवने स्त्रीसंगमनो अभिलाप उपजे ते.

५९ स्त्रीवेद—जे कर्मना उदयथी पुरुषसंगमनो अभिलाप थाय ते.

६० नपुंसकवेद—जे कर्मना उदयथी स्त्री अने पुरुष बन्नेना संगमनो अभिलाप थाय ते. ए ९ नोकषाय कह्या.

६१ तिर्यंचगति—जे कर्मना उदयथी तिर्यंचपणु प्राप्त थाय ते.

६२ तिर्यंचानुपूर्वी—जे कर्मना उदयथी वक्रगतिए तिर्यंचमां जता जीवने उत्पत्तिक्षेत्र तरफ वळवुं थाय ते.

अहिं तिर्यंचजीवने तिर्यंचपणुं इष्ट नथी माटे तिर्यंचनी गति अने आनुपूर्वी पापरूप गणाय, अने तिर्यंचपणुं प्राप्त थया बाद तिर्यंचजीवो आयुष्य दीर्घ–लांबु होय तो इष्ट माने छे माटे तिर्यंचनुं आयुष्य पुन्यरूप छे.

—(०)—

अवतरण—पूर्वगाथामां पापतत्त्वना (८२ मांथी) ६२ भेद गणाव्या अने हवे आ गाथामां बाकी रहेला २० भेद गणावे छे.

॥ मूळ गाथा १९ मी. ॥

इगबितिचउ जाईओ, कुखगइ उवघाय हुंति पावस्स ।
अपसत्थं वन्नचउ, अपढमसंघयणसंठाणा ॥१९॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

एकद्वित्रिचतुर्जातयः, कुखगतिरुपघातो भवन्ति पापस्य ।
अप्रशस्तं वर्णचतुष्क–मप्रथमसंहननसंस्थानानि ॥१९॥

शब्दार्थः

इग–एकेन्द्रिय	ति–त्रीन्द्रिय
बि–द्वीन्द्रिय	चउ–चतुरिन्द्रिय

जाइओ–ए चार जातिओ
कुखगइ–अशुभविहायोगति
उवघाय–उपघात नामकर्म
हुंति–छे
पावस्स–पापतत्त्वना (भेद)
अपसत्थं–अशुभ
वन्नचउ–वर्णचतुष्क (वर्ण–गंध–रस–ने स्पर्श)
अपढम–पहेला सिवायनां पांच
संघयण–संघयण (हाडना सांधानुं बंधारण.)
संठाणा–संस्थान (लक्षणवाळो आकार)

गाथार्थः–एकेन्द्रियजाति–द्वीन्द्रियजाति–त्रीन्द्रियजाति–अने चतुरिन्द्रियजाति ए चार जाति–अशुभविहायोगति—उपघात-नामकर्म–अशुभवर्णादि चार–अने पहेला सिवायनां पांच संघयण अने पांच संस्थान ए सर्व (पूर्वोक्त सहित ८२) भेद पापतत्वना छे.

विस्तरार्थः—पापतत्वना ८२ भेदमांथी ६२ भेद कहेवाया अने २० भेद बाकी रह्या छे ते आ प्रमाणे—

६३ एकेन्द्रिय जाति—जे कर्मना उदयथी जीवने एकेन्द्रियपणुं प्राप्त थाय ते (अहिं एकेन्द्रियने मात्र स्पर्शेन्द्रियज प्राप्त थाय)

६४ द्वीन्द्रियजाति—जे कर्मना उदयथी जीवने बे इन्द्रियपणुं (स्पर्श–ने रसना) प्राप्त थाय ते.

६५ त्रीन्द्रियजाति—जे कर्मना उदयथी जीवने त्रीन्द्रिय पणुं (स्पर्शन–रसनाने घ्राण) प्राप्त थाय ते.

६६ चतुरिन्द्रिय जाति—जे कर्मना उदयथी जीवने चतुरिन्द्रिय पणु (स्पर्शन–रसना–घ्राण–ने चक्षु) प्राप्त थाय ते.

६७ अशुभविहायोगति—जे कर्मना उदयथी उंट अने गर्दभ सरखी अशुभ चाल प्राप्त थाय ते.

६८ उपघात—जे कर्मना उदयथी जीव पोताना रसोळी प-

हजीभी–चोरदांत वगेरे अवयवोथी पोतेज पीडा पामे ते.

६९ अशुभवर्ण—जे कर्मना उदयथी जीवना शरीरनो लीलो अने काळो वर्ण होय ते (जेम मयूर–पोपट अने कागने)

७० अशुभगंध—जे कर्मना उदयथी जीवनुं शरीर दुर्गंधवाळुं होय ते जेम के लसण डुंगळी विगेरे.

७१ अशुभरस—जे कर्मना उदयथी जीवनुं शरीर तीखा अने कडवा रसवाळु होय ते (जेमके मरचां कारेलांने.)

७२ अशुभस्पर्श—जे कर्मना उदयथी जीवनुं शरीर शीत –कर्कश–रुक्ष–अने गुरुस्पर्शवाळु होय [जेमके जळ–सागनां पान –रेती अने पारो वगेरे जीवने.)

७३ ऋषभनाराचसंघयण—जे कर्मना उदयथी जीवने ऋषभनाराच संघयण प्राप्त थाय ते (आ संघयण पूर्वे कह्या प्रमाणे वज्रऋ० ना० सरखुं होय पण मात्र खीली न होय. पुनः केटलाएक आचार्य अहिं वज्रनाराचसंघयण कहे छे के जे पाटा रहित पण खीली अने मर्कटबंध सहित होय छे एम श्री 'द्रव्यलोकप्रकाशमां' कह्युं छे.

७४ नाराच संघयण—जे कर्मना उदयथी हाडकांना सांधा मात्र मर्कटबंधवाळा होय ते.

७५ अर्धनाराचसंघयण—जे कर्मना उदयथी हाडकांना सांधा एक बाजु मर्कटबंध अने बीजी बाजु खीलीवाळा होय ते.

७६ कीलिकासंघयण—जे कर्मना उदयथी हाडकांना सांधा फक्त खीलीथीज दृढ थयेला होय ते.

७७ सेवार्त्त (छेदस्पृष्ठ) संघयण—जे कर्मना उदयथी हाडकांना बे छेडा उखलमां रहेला मुशलनी पेठे स्पर्शसंबन्धवाळा होय ते. अहिं एक हाडकानो छेडो खोभणवाळो (उखलवत् रहे-

ज छेडो) होय छे. तेमां (जो छेडो मुशलनी पेठे वेठेलो होय छे.) ए पांचे संघयण अशुभ पाप रूप छे.

७८ न्यग्रोध संस्थान—जे कर्मना उदयथी जीवना शरीरनो नाभिथी उपलो भाग लक्षणयुक्त होय अने नाभिथी नीचेनो भाग लक्षण रहित होय ते. (न्यग्रोध एटले वड सरखुं आ संस्थान छे,)

७९ सादि—जे कर्मना उदयथी जीवनुं शरीर नाभिथी नीचेना भागमां शुभ लक्षणवाळु होय अने नाभिथी उपरनुं अपलक्षणवाळु होय ते. (आ संस्थानने केटलाक आचार्य साची–शाल्मली वृक्ष सरखुं पण कहे छे.)

८० वामन—जे कर्मना उदयथी जीवनां मस्तक–डोक–हाथ अने पग ए चार अंग सुलक्षण युक्त होय अने शेष सर्व अवयव अपलक्षणवाळां होय ते.

८१ कुब्ज—जे कर्मना उदयथी शरीरना मस्तक–डोक–हाथ –अने पग ए चार अवयव अपलक्षण वाळा होय अने शेप अवयव सुलक्षण होय ते. ए पांच अशुभ संस्थान कह्यां.

ए प्रमाणे पुन्यतत्त्वनी ४२ प्रकृति अने पाप कर्मनी ८२ प्रकृतिमां ५ ज्ञानाव० नी–९ दर्शना० नी–बे वेदनीयनी–२ गोत्रनी –४ आयुष्यनी–मिथ्यात्व अने २५ कषाय ए २६ मोहनीयनी– ५ अन्तरायनी–अने शेप वर्णचतुष्क बे वार छे तेने एकवार गणतां ६७ प्रकृति नामकर्मनी जाणवी.

अवतरण—आ पाप तत्त्वमां जे स्थावरदशक कह्युं ते स्थावर वगेरे १० भेद कया कया ते गणावे छे

॥ मूळ गाथा २० मी. ॥

थावर सुहुम अपज्जं, साहारण मथिरमसुभदुभगाणि ।
दुस्सरणाइज्ज जसं, थावरदसगं विवज्जरथं ॥ २० ॥

॥ स्थावरदशकनो अर्थः ॥

१ स्थावर—जे कर्मना उदयथी जीवने स्थावरपणुं प्राप्त थाय,टाढ तडको इत्यादि सुखदुःख हिताहितनुं गमेतेवुं कारण पडे छते पण जे एकथी बीजे स्थानके जइ शके नही तेवा पृथ्वी आदि पांच सूक्ष्म बादर एकेन्द्रियोने होय. तेउकाय अने वायुकाय स्वभावे गतिस्वभाववाला होवाथी गति करे छे. पण ते संज्ञा पूर्वक नहि.

२ सूक्ष्म—जे कर्मना उदयथी जीवने सूक्ष्मपणुं प्राप्त थाय असंख्य वा अनन्त जीवो मल्या छतां पण जे चर्मचक्षुगोचर थाय नही असंख्य जीवोना असंख्य शरीरो या अनन्त जीवोना असंख्य शरीरो एकठा थया छतां पण देखाय नही कारण चउदराज लोकमां त्रस नाडीनी अंदर अथवा बहार एवो एक पण आकाशप्रदेश नथी के ज्यां ते सूक्ष्म जीवो न होय सूक्ष्म कर्मना उदयवाला पृथ्व्यादि पांच छे. तेमां वनस्पति ते सूक्ष्म निगोद रूप जाणवी बादर पृथ्व्यादि पण एक बे यावत् असंख्य सूक्ष्मदृष्टि गोचर थता नथी छतां पण तेने सूक्ष्मनाम कर्मोदय नथी.

३ अपर्याप्त-जे कर्मना उदयथी जीव स्वयोग्य पर्याप्तिओ पूर्ण कर्या विनाज मरण पामे जोके आहार-शरीर इन्द्रिय ए त्रण पर्याप्तिओ तो तमाम जीवो पूर्ण करेछे छतां पण अपर्याप्ता जीवो (एकेन्द्रिय४द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय असंज्ञि पंचेन्द्रिय५ अने संज्ञिपंचेन्द्रिय६) पोतपोतानी पर्याप्तिने पूरी करी शक्ता नथी अपर्याप्ताना लब्धि करण भेदो छे.जेनो विचार पूर्वे जीवतत्त्वमां पर्याप्तिविचार करेल छे. परन्तु अही लब्धि अपर्याप्त लेवा.

४ साधारण—जे कर्मना उदयथी एक शरीरमां अनन्त जीवो रहे छे. अने तेओनी उच्छ्वास निःश्वास आहार-वेदना वि-

गेरे क्रिया समानरोते थाय छे ते कर्मनो उदय प्रत्येक वनस्पति वर्जिने साधारणवनस्पतिजीवोने हाय ते साधारण सूक्ष्म १ बादर २९ मवे भेद छे.साधारण-निगोद-अनन्तकाय-ए सर्व एकार्थक छे. साधारण (निगोद) एटले अनन्तजीवोनुं एक शरीर-तेवी असंख्य निगोदो एक गोळामां होयछे.अने तेवा असंख्य गोळाओ चौदराज लोकमां छे देखाती कन्द जाति विगेरे बादर निगोदो (अनन्तकायो) छे.

५ अस्थिर—जे कर्मना उदयथी जीवोना शरीरना जीभचामडी विगेरे अवयवोमां आस्थिर पणुं प्राप्त थाय

६ अशुभ—जे कर्मना उदयथी नाभिनी निचेनो शरीरनो भाग अशुभ कहेवाय छे के पग विगेरे बोजाने अडवाथी अप्रीति थाय छे, गुरु आदिना चरण या चरणनी रज जे भक्त जीवो प्रेमथी स्पर्शे छे ते गुरु आदि प्रत्येना बहुमान विगेरेथी छे.

७ दुर्भग—जे कर्मना उदयथी माणस बीजाने वहालो लागे नहि तीर्थंकर भगवान् जे भारेकर्मीजीवोने प्रिय लागता नथी तेमां ते जीवोना पापकर्मनो उदय जाणवो,

८ दुःस्वर—जे कर्मना उदयथी जीवनो स्वर अप्रिय कर्णकटु लागे स्वर उष्ट्रादिजेवोकठोर होय.

९ अनादेय—जे कर्मनाउदयथी जीवहितकारी बोलतांछतां पण कोइने ग्राह्य थाय नहि तीर्थंकर प्रभुनीवाणी आदेयनामवाळी छतां अभव्य पाखंडीजीवोने तेओना भारी पापकर्मना उदयथी वहाली लागे नहि

१० अयश—जे कर्मना उदयथी सारुं कार्य करतां छतां पण जस-कीर्ति मळे नही.

॥ संस्कृतानुवादः ॥

स्थावरसूक्ष्मापर्याप्तं साधारणमस्थिरमशुभदुर्भाग्ये ।
दुःस्वरानादेयायशः, स्थावरदशकं विपर्ययार्थम् ॥ २० ॥

॥ शब्दार्थः ॥

थावर—स्थावर नामकर्म.	दुस्सर—दुःस्वर नामकर्म.
सुहुम—सूक्ष्म नामकर्म.	अणाइज्ज—अनादेय नामकर्म
अपज्जं—अपर्याप्त नामकर्म.	अजसं—अपयश नामकर्म.
साहारणं—साधारण नामकर्म	थावरदसगं—ए स्थावर विगेरे १० कर्म.
अथिरं—अस्थिर नामकर्म.	विवज्जत्थं—विपरीत अर्थवाळुंछे
अशुभ—अशुभ नामकर्म.	
दुभगाणि—दुर्भाग्य नामकर्म.	

गाथार्थः—स्थावर नाम०, सूक्ष्मनाम०, अपर्याप्तनाम०, साधारणनाम०. अस्थिरनाम०, अशुभनाम०, दुर्भाग्यनाम०, दुःस्वरनाम०, अनादेयनाम०, अने अपयशनाम०, ए स्थावरदशक कहेवाय अने ते (त्रसदशकथी) विपरीत अर्थवाळुं छे,

विस्तरार्थः—ए स्थावर विगेरे १० कर्मना समुदायने स्थावरदशक कहेवामां आवे छे, स्थावरपंचक स्थावरछक्क इत्यादि गणवुं होय तो स्थावर विगेरे (प्रथमथी) पांच अने ६ विगेरे गणाय छे, प्रकृतिओ टुंकी रीते गणवा माटे ए दशक इत्यादि संज्ञाओ छे, तेथी अनुक्रमे तेटलीज संख्यावाळी प्रकृतिओ ग्रहण कराय छे, ए १० कर्मना अर्थ पूर्व गाथामां कहेवायो छे,

॥ पापतत्त्वपरिशिष्टम् ॥

चार गति अने पांच इन्द्रियवाळा जीवोमां कया जीवने केटली पाप प्रकृतिओ (नो उदय) होय ते कहेवाय छे.

१ नरकगतिमां ५५—५२. स्थावर-सूक्ष्म-अपर्याप्त-साधारण-

नरकत्रिक-नपुंसकवेद-तिर्यंचगति-तिर्यंचानुपूर्वी-एकेन्द्रियादि ४ जाति-५ संघयण अशुभ, ५ अशुभ संस्थान, अशुभविहायोगति दुःस्वर अने नीचगोत्र ए२७पाप प्रकृति विना शेष५५प्रकृति होय, अने जो स्त्यानर्धित्रिक वर्जे तो ५२ पाप प्रकृतिओ होय.

नरकगतिमां ५८—स्थावर-सूक्ष्म-अपर्याप्त-साधारण-५ अशुभसंघयण-४ अशुभसंस्थान-एकेन्द्रियादि ४ जाति--पुरुषवेद--स्त्रीवेद-तिर्यंचगति-अने तिर्यंचानुपूर्वी ए २१ विना शेष ६१ पाप प्रकृतिओनो उदय होय अथवा स्त्यानर्धित्रिकनो उदय न गणीए तो ५८नो उदय होय,

मनुष्यगतिमां ७०—स्थावर-सूक्ष्म-साधारण-एकेन्द्रियादि ४ जाति-तिर्यंचगति-तिर्यंचानुपूर्वी-अने नरकत्रिक ए १२ सिवाय शेष ७० पाप प्रकृतिओ उदयमां होय.

तिर्यंचगतिमां ७९-नरकत्रिक विना शेष ७९ पाप प्रकृतिओ होय.

एकेन्द्रियमां ६३-दुःस्वर-नरकत्रिक-पुरुषवेद-स्त्रीवेद-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-अशुभविहायोगति-५ अशुभसंघयण-४ हुंडक-विनानां अशुभसंस्थान ए १९ विना शेष ६३ पाप प्रकृतिओ होय.

द्वीन्द्रियमां ६३—एकेन्द्रियवत्. परन्तु द्वीन्द्रियने स्थाने " एकेन्द्रिय विना " एम कहेवुं.

त्रीन्द्रियमां ६३—एकेन्द्रियवत्, परन्तु त्रीन्द्रियने स्थाने " एकेन्द्रिय विना " कहेवुं.

चतुरिन्द्रियमां ६३—एकेन्द्रियवत्. परन्तु चतुरिन्द्रियने स्थाने " एकेन्द्रिय विना " कहेवुं.

पंचेन्द्रियमां ७५-एकेन्द्रियादि ४ अशुभजाति, सूक्ष्म, साधारण-अने स्थावर ए ७ पापप्रकृतिओ विना शेष ७५ पापप्रकृतिओ उदयमां होय.

॥ इति पापतत्त्वपरिशिष्टम् ॥



॥ आश्रवतत्त्वम् ॥



अवतरण—आ गाथामां सामान्यथी आश्रवतत्त्वना ४२ भेद गणावे छे.

॥ मूळगाथा २१ मी. ॥

इन्दिअकसायअव्वय–जोगा पंच चउ पंच तिन्नि कमा
किरियाउं पणवीसं--इमा उ ताउं अणुक्कमसो ॥२१॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

इन्द्रियकषायाव्रतयोगाः पञ्च चत्वारि पञ्च त्रीणि क्रमात् ।
क्रियाः पंचविंशतिः, इमास्तु ता अनुक्रमशः ॥ २१ ॥

॥ शब्दार्थः ॥

इंदिअ--इन्द्रियो.
कसाय--कषाय.
अव्वय--अव्रत
जोगा--योग
पंच--पांच
चउ--चार
तिन्नि--त्रण.
कमा--अनुक्रमे
किरियाओ--क्रियाओ
पणवीसं--पचीश
इमा--आ (आगळ कहेवाती)
उ--वळी (अथवा पादपूर्त्यर्थे)
ताओ--ते क्रियाओ
अणुक्कमसो--अनुक्रमे

गाथार्थः—अनुक्रमे ५ इन्द्रिय–४ कषाय–५अव्रत ३ योग-अने २५ क्रिया ते क्रियाओ अनुक्रमे आ प्रमाणे छे. (ए रीते ४२ भेद आश्रवतत्त्वना सामान्यथी कह्या.)

विस्तरार्थः—पूर्वे कहेला पुन्य–शुभकर्म तथा पाप–अशुभ

कर्मनुं जेनावडे आववुं थाय ते आश्रव कहेवाय. हवे ते शुभाशुभ कर्मनुं आगमन शाथी थाय छे, ते दर्शावाय छे.

इन्द्रियनुं वर्णन प्राणसंबंधि गाथाना विवेचनमां करेलुं छे, अने अहिं तो ते इन्द्रियोथी कर्मनुं आगमन केवी रीते थाय ते कहेवाय छे.

शीत–उष्ण–स्निग्ध–रुक्ष–मृदु–कर्कश–लघु अने गुरु ए आठ स्पर्श स्पर्शेन्द्रियनो विषय छे. तेमां जे जे स्पर्श पोताने अनुकूळ होय ते ते स्पर्शवाळा पदार्थोनी प्राप्तिथी राजी (रागी) थाय. अने प्रतिकूळ स्पर्शवाळा पदार्थोनी प्राप्तिथी नाराज (द्वेषवाळो) थाय ए प्रमाणे ज्यारे स्पर्शेन्द्रियना विषयोमां राग द्वेषपणे आत्मा वर्ततो होय त्यारे कर्मनुं जे आववुं थाय ते स्पर्शेन्द्रिय संबंधि आश्रव गणाय

आम्ल (खाटो)–मधुर–कषायेल (तूरो)–तिक्त एटले (तीखो)–अने कटु (कडवो) ए पांच रस रसनेन्द्रियनो विषय छे. त्यां अनुकूळ रसवाळा पदार्थोपर रागवाळा अने प्रतिकूळ रसवाळा पदार्थो पर द्वेषवाळा थवाथी कर्मनुं जे आववुं थाय ते रसनेन्द्रियाश्रव गणाय,

सुगंध अने दुर्गंध ए घ्राणेन्द्रियनो विषय छे, त्यां सुगंधी पदार्थो तेल फुलेल अत्तर वगेरे पामीने रागवाळो अने विष्ठादि दुर्गंधवाळा पदार्थ पामीने आत्मा द्वेषवाळो थवाथी कर्मनुं जे आववुं थाय ते घ्राणेन्द्रियाश्रव गणाय

रक्त (लाल)–पीत (पीळो)–श्वेत (धोळो)–लीलो अने काळो ए पांच वर्ण (रूप तथा आकार) ए चक्षु इन्द्रियनो विषय छे, त्यां मनोहर रंग रूप ने आकारवाळा पदार्थो पर राग भाव अने अमनोहर रंग रूप ने आकार वाळा पदार्थोपर द्वेष भाव थवाथी जे कर्मनु आववु थाय ते चक्षुरिन्द्रियाश्रव गणाय; माटे ज नाटक–

खेल–तमासा जोवाथी कर्मबंध थाय छे.

सचित्त शब्द–अचित्त शब्द–अने मिश्र शब्द ए त्रण प्रकारनो शब्द श्रोत्रेन्द्रियनो विषय छे त्यां जीवनु गान तान वगेरे सचित्त शब्द फोनोग्राफ वगेरेना अवाज अचित्त शब्द अने मृदंगा दिकनो शब्द ते जीवप्रयत्नमिश्रित होवाथी मिश्रशब्द कहेवाय, ए त्रणे प्रकारना मनोहर शब्दो उपर राग अने अमनोहर शब्दो उपर द्वेषभाव थवाथी कर्मनु जे आगमन थाय ते श्रोत्रेन्द्रियाश्रव गणाय

ए प्रमाणे ५ इन्द्रियोना २३ विषयो प्रशस्तभावे सेवाता होय तो पुण्य(शुभाश्रव)अने अप्रशस्तभावे सेवाता होय तो पाप (अशुभाश्रव)होय छे; जेम के देवगुरुने स्पर्श करी राजी थतां देवगुरुना चरणामृतनु पान करतां, भगवाननु रूप–प्रतिमा– आंगी वगेरे जोइने राजी थतां अने भगवानना गुणग्राम–स्तवन स्वाध्यायादि सांभळी राजी थतां अनुक्रमे पांचे इन्द्रियोद्वारा शुभाश्रव थाय ते प्रशस्त भावे कहेवाय, अने स्त्री पुत्रादिकने प्रेमथी स्पर्श करतां देहपुष्टिने माटे मनोहर रसवती (भोजन) जमतां इत्यादि रीते अप्रशस्त भावे पांच इन्द्रियोना विषय सेवनथी अनुक्रमे पांचे इन्द्रियोद्वारा पाप–अशुभाश्रव थाय.

ए पांच इन्द्रियना अनुकूळ अने प्रतिकूळ विषयो प्राप्त थतां विचार करे के हे आत्मा ! आ सर्व पुद्गलनो स्वभाव छे तो त्हारे एमां राजी थवाथी अथवा नाराज थवाथी शुं लाभ छे! इत्यादि भावनापूर्वक जो राजी–पण न थाय–अने नाराज पण न थाय तो ते जीवने पांच इन्द्रियो संबंधि कर्मनु आववुं थाय नहिं पण कर्मनु रोकाणज थाय.

॥ ४ कषाय ॥

क्रोध–मान–माया–ने लोभ ए चार कषाय छे. त्यां क्रोध एटले

गुस्सो–खेद–अने ईर्षा, मान एटले मद अथवा अहंकार अथवा अ-भिमान, माया एटले कपट, अने लोभ एटले तृष्णा अथवा अधिकनी इच्छा. ए चार कषायमां—क्रोध अने मान द्वेष कहेवाय छे, अने माया तथा लोभ रागमां गणाय छे, पुनः केटलाक आचार्य फक्त क्रोधनेज द्वेषमां गणी शेष त्रणने रागमां गणे छे,अहिं चार कषाय ग्रहण कर्या छे, तो पण अनंतानुबंधि–अप्रत्याख्यानी–प्रत्याख्यानी अने संज्वलन एनाज दरेकना भेद होवाथी १६कपाय गणवा तथा एक अनंतानुबंधी वगेरे भेद पण स्वजातीय४-४-भेदवाळा होवाथी ६४ कपाय पण गणाय ए प्रमाणे १६ प्रकारनो क्रोध–१६ प्रकारनुं मान–१६ प्रकारनी माया–अने १६ प्रकारनो लोभ थाय छे, तेमां १६ प्रकारनो क्रोध नीचे प्रमाणे गणवो,

१ अनं ० अनं ० क्रोध	९ अनं ० प्रत्या ० क्रोध
२ अप्र ० अनं ० क्रोध	१० अप्र ० प्रत्या ० क्रोध
३ प्रत्या ० अनं० क्रोध	११ प्रत्या० प्रत्या० क्रोध
४ सं० अनं ० क्रोध	१२ संज्व ० प्रत्या ० क्रोध
५ अनं ० अप्र ० क्रोध	१३ अनं ० संज्व ० क्रोध
६ अप्र ० अप्र ० क्रोध	१४ अप्र ० संज्व ० क्रोध
७ प्रत्या ० अप्र ० क्रोध	१५ प्रत्या ० संज्व ० क्रोध
८ संज्व ० अप्र ० क्रोध	१६ संज्व ० संज्व ० क्रोध

जे अनंतानुबंधि क्रोध पोताना स्वरूपवाळो (उग्र) होय ते अनं० अनं० क्रोध कहेवाय. जे अनंतानु० क्रोध अप्रत्या० सरखो (कंइक मंद) होय ते अप्र० अनं० क्रोध कहेवाय, जे अनं० क्रोध प्रत्या० सरखो (वधारे मंद) होय ते प्रत्या० अनं० क्रोध अने जे अनंतानुबंधी क्रोध संज्वलन सरखो (अत्यंत मंद) होयते संज्व० अनं० क्रोध कहेवाय. इत्यादि शेष भेदनो अर्थ स्वबुद्धिए

विचारवो. ए प्रमाणे जेम क्रोध १६ प्रकारनो कह्यो तेम मान माया अने लोभना १६-१६ प्रकार पण जाणी लेवा. ए सर्व ६४ भेद ते ४ कषायमां अंतर्गत ग्रहण करवा.

ए चारे कषाय प्रशस्त भावे वर्तता होयतो शुभाश्रव, अप्रशस्तभावे वर्तता होय तो अशुभाश्रव. अने न वर्तता होय तो संवर थाय छे. जेमके देव-गुरु चतुर्विध संघ-अने शासनने विध्वंसकरनार-पर जे क्रोध थाय अथवा उन्मार्गे चालता[१]शिष्यने सन्मार्गे चलाववा माटे क्रोध करवो पडे ते प्रशस्तक्रोध अने पोताना कुटुंब वगेरेने अने संसारवर्धक साधनोने विध्वंस करनार पर जे क्रोध थाय ते अप्रशस्त

१ अहिं पोताना पुत्रादिकने भविष्यमां सारो संसार निभावनार थाय एवी इच्छाए शिक्षण आपवामां अशुभाश्रव जाणवो, अने कइक बोध थायतो आ संसारजाळथी छूटे एवा लक्षबिंदुथी जे धर्ममार्गनुं शिक्षण आपवामाटे ताडना तर्जनादिमां क्रोध करवो पडे ते शुभाश्रव जाणवो. तेमज संसारत्यागी गुरुमहाराज पण जो पोतानी चाकरी कराववाना हेतुथी शिष्यने संसारमांथी खटपट करी काढे तो पोताने माटे अशुभाश्रव छे,अने प्रपंच करी निकळनार आत्मार्थी भद्रक शिष्यने शुभाश्रव छे. माटे कोइपण कषाय जो स्वार्थबुद्धिए थाय तो ते अप्रशस्तकषाय गणाय अने आत्मधर्मनी उन्नतिमाटे अथवा शासननी उन्नति माटे थाय तो प्रशस्तकषाय गणाय, पण जो संसार उन्नतिनुं लक्ष्यबिंदु होय अथवा स्वार्थपरायणता होयतो अशुभाश्रव ज जाणवो.

पुन. आ चालु प्रकरणमां वस्तुस्थिति दर्शावी छे. माटे कोइ एम न जाणवुं के प्रशस्त कषायनो प्रयत्न करवो. कारणके मोक्षमार्ग तो प्रशस्त या अप्रशस्त कषाय टाळवाथी ज छे, परन्तु संसारमां जीवोने जे अप्र० कषाय वर्ती रह्यो छे, तेमांथी दूर थवा माटे तथा अमुक गुणस्थानकनी हदे न पहोंच्यो होय त्यांसुधी प्रशस्तनी जरूर छे, अने त्यारबाद ते पण टाळवानुं लक्ष्यबिंदु राखवानुं होय छे.

क्रोध कहेवाय. हुं अथवा मारु कुटुंब श्रेष्ठ छे इत्यादि विचार अप्र० मान अने पोताना देव गुरु धर्मनी श्रेष्ठतानुं जे मान आवे ते प्रशस्त मान. संसारनी वृद्धिमाटे (द्रव्य–कुटुंबादिकनी वृद्धिमाटे) जे प्रपंच रचवा ते अप्र० माया अने अनेक उपाय करवा छतां कुटुंब संसारमां रोकी राखे तो तेमांथी छूटी संसार त्याग करवामाटे जे प्रपंच रचवा पडे ते इत्यादि मोक्षाभिमुखीपणे जे प्रपंच रचाय ते प्रशस्तमाया, तथा धन कुटुंब वगेरे अधिक अधिक मेळववानी इच्छा ते अप्र०लोभ अने ज्ञान-दर्शन-चारित्रादि धर्ममाटे जे अधिक अधिक लोभ ते प्रश० लोभ ए प्रमाणे प्रशस्त अथवा अप्रशस्त भाव मोक्ष मार्ग तरफ दृष्टि राखी विचारवा, नहिंतर आ विचारमां शीघ्र संसारवृद्धिनो प्रसंग आवशे

॥ ५ अव्रत ॥

प्रमादना योगथी जीवोना द्रव्य प्राणनो जे विनाश करवो अर्थात् जीवहिंसा करवी ते [1]प्राणातिपात नामनु पहेलुं अव्रत छे, [जोके हालतां चालतां उठतां बेसतां इत्यादि दरेक क्रिया करतां बादर जीवोनी [सूक्ष्मनी हिंसा थती नथी] हिंसा थाय छे, परन्तु ते जीवोने प्रमादथी एटले पोतानी स्वार्थवृत्ति माटे मारवानी बुद्धि पूर्वक हणवामां आव्या होय तो जरुर जीवहिंसा करी कहेवाय परन्तु आत्मामां दयापरिणाम वर्त्ततो होय अने ते दयापरिणामथी जयणादिक अनेक उपाये जीवहिंसा टाळवानो उद्यम थतो होय तेम छतां पण मोक्षाभिमुखी क्रियाओमां जे प्रासंगिक जीवहिंसा थाय छे तेनु हिंसारूप फळ नहि होवाथी ते हिंसा पण अहिंसा ज जाणवी,

---

१ प्राण—द्रव्यप्राणनो अतिपात, श्री तत्वार्थसूत्रमां " प्रमत्तयोगात् प्राणव्यपरोपणं हिंसा " एम कहेलुं छे. अने मोक्षाभिमुखो क्रिया प्रमत्तयोग नथी माटे ते क्रियाओमां थनी प्रासंगिकहिंसा संसारवृद्धिमां हेतुरूप नथी.

स्वार्थने अंगे अथवा परना अहित माटे जे सत्य अथवा असत्य बोलवुं ते बन्ने मृषावाद नामे बीजुं अव्रत छे, (अहिं अप्रिय अने अहित वचन बन्ने मृषावाद छे. माटे चोरने चोर कहेवो तथा शिकारीए पूछतां देखेलां मृगादिकनुं कहेवुं ते पण मृषावाद ज छे) कारणके स्वार्थने अंगे संसारमां सत्य बोलतां पण अशुभाश्रय छे,

अदत्त–कोइए नहिं आपेली चीजनुं आदान–ग्रहण करवुं ते अदत्तादान कहेवाय एमां ते वस्तुना मालिके नहिं आपेली वस्तु स्वामिअदत्त गणाय जीवे राजी खुशीथी नहिं आपेली वस्तु जीव-अदत्त. गुरुए आज्ञा नहिं आपेली वस्तु गुरुअदत्त अने तीर्थंकरे निषेधकरेली वस्तु तीर्थंकर अदत्त गणाय एमांनी कंइपण वस्तुनुं ग्रहण करवुं ते अदत्तादान गणाय निषेध करेल वस्तुने अंगीकार करवी विना पूछ्ये लेवु, राज्य वगेरेना कायदाथी विरुद्ध वर्त्तन करवु इत्यादि सर्व अदत्तादान गणाय,

अब्रह्म–एटले अनाचारनुं चर्या–सेवन करवुं ते अब्रह्मचर्य नामे चोथुं अव्रत छे, ते १८ प्रकारनुं छे, वैक्रिय (देवी) अने औदारिक (मानुषी–अने तीर्यंचो) ए बे प्रकारनी स्त्री साथे मन वचन अने कायावडे अब्रह्म करवुं–करावबुं–अने अनुमोदवुं ए त्रण जोग अने करणपूर्वक २×३×३१×८ भेद थाय

तथा धन धान्य सोनुं रूपुं क्षेत्र वास्तु वासण द्विपद (दास दासी] अने चतुष्पद (गाय भैंस बळद हाथी वगेरे) ए ९ प्रकारनी वस्तुओनो जे संग्रह ते ९ प्रकारनो परिग्रह कहेवाय ते परिग्रह उपर जे ममत्वभाव ते परिग्रह नामे पांचमुं अव्रत कहेवाय ए पांचे प्रकारमां अव्रनथी शुभाशुभ कर्मनुं आववुं थाय छे, एमां पण प्रशस्ताप्रशस्तभावे शुभाशुभ कर्मनो आश्रव स्वबुद्धिए विचारवो, जेम के धन धान्यादि संसारवर्धक वस्तुओ पर ममत्व भावथी अशुभाश्रव

अने पाटी-पुस्तक-वगेरे ज्ञानदर्शन चारित्रनां उपकरणो उपर धर्मबुद्धी-एज ममत्वभाव ते शुभाश्रव अने अममत्वभावे संवर इत्यादि शेष अर्थदीपिकामांथी जाणवो. वळी हिंसानी बाबतमां पण शासनद्रोही- संघ धर्म वगेरेने उपद्रव करनारनो निरुपाये (विष्णुकमारे नमुचीनो नाश कर्यो तेम) विनाश करवो पडे तो शुभाश्रव अने पोताने नडतर करनार वगेरेनो स्वार्थबुद्धिए विनाश करवो पडेते अशुभाश्रव गणाय इत्यादि सूक्ष्मबुद्धिए विचारवु.

॥ ३ योग ॥

मनः पर्याप्ति नामकर्मना उदयथी काययोगवडे मनोयोग्य वर्गणा लइ मनपणे [1]परिणमावी अवलंबीने विसर्जन करवानो जे व्यापार ते मनोयोग, तेनां सत्य–असत्य–मिश्र–अने व्यवहार ए प्रमाणे चार प्रकार छे. त्यां सत्ने सत्रूपे अने असत्ने असत्रूपे चिंतववु ते सत्यमनोयोग सत्ने असत् अने असत्ने सत् चिंतववुं ते असत्यमनोयोग तथा मिश्रपणे चिंतववुं ते मिश्रमनोयोग अने जेमां सत्य पण नहिं अने असत्यपण नहिं एवुं चिंतववु ते जेम,के हे देवदत्त ! घट लाव, तु जा, इत्यादि आज्ञावाचक–प्रश्नवाचक-संकेतवाचक वगेरे भावोनुं चिनववुं ते व्यवहारमनोयोग १२ प्रकारनो ग्रन्थान्तरथी जाणवो (अहिं सत् ने सत्रूपे एटले जे पदार्थ जेवारूपे छे, तेने तेवा रूपे चिंतववो एम जाणवुं). ए सर्व प्रकारनो मनोयोग जो प्रशस्तभावे सरागपणे वर्ततो होयतो शुभाश्रव, अने अप्रशस्त भावे वर्ततो होयतो शुभाश्रव गणाय,

---

१ अहिं मनोवर्गणा ग्रहण करवाने समये काययोग अने शेषपरिणमाववा अने अवलम्बवाना वखत पूरतो मनोयोगछे,

भाषापर्याप्तिनामकर्मना उदयथी काययोगवडे भाषायोग्य वर्गणा ग्रहण करी भाषापणे परिणमावी अवलंबीने विसर्जन करवानो जे व्यापार ते वचनयोग पण उपर मुजब चार प्रकारनो छे, परन्तु "चिन्तववुं" ए शब्दने बदले "बोलवु" अथवा "कहेवुं" एटलो तफावत जाणवो. ए चारे प्रकारना प्रशस्तवचनयोगथी शुभाश्रव अने अप्रश०वचनयोगे अशुभाश्रव थाय,

औदारिकादि काययोग ७ प्रकारे छे. ते आ प्रमाणे—औदा० शरीरद्वारा जीवोनो जे व्यापार ते औदारिक काय योग शरीरपर्याप्ति समाप्त थया बाद संपूर्ण भवसुधी चालु रहे छे, पण ते संबंधि आश्रव वारंवार अन्तर्मु० सुधीज होय छे, कारणके त्रण योगमांथी कोइपण एक योग अन्तर्मु० थी वधु वखत टकी शके नहिं पण परावृत्ति थया करे ते आगळ कहेवाशे तथा तैजसकार्मण शरीरसहित औदा० शरीरनो जे व्यापार ते औदारिकमिश्र काययोग भवान्तरे उत्पन्न थया बाद बीजा समयथी शरीरपर्याप्ती थाय त्यां सुधी होय. अने सर्वज्ञने समुद्घात वखते बीजे छट्ठे अने सातमे समये होय त्यां सर्वज्ञना औदा० मिश्रयोग वखते शुभाश्रव ज होय. शेष जीवोना औदा० मिश्रयोगमां शुभ अने अशुभ आश्रव होय. तथा वै० शरीरद्वारा जे आत्मानो व्यापार ते वैक्रियकाययोग पण वै० शरीरपर्याप्ति थया बाद संपूर्ण भव सुधी होय अने उत्तरवै०मां ते देह टके त्यां सुधी होय, तथा मूलवैक्रियनी अपेक्षाए तैजसकार्मण सहित वै० शरीरनो जे व्यापार अने उत्तर वैक्रियनी अपेक्षाए औदा० शरीर सहित वै० शरीरनो व्यापार ते वैक्रियमिश्र काययोग तथा आहारक शरीरनो व्यापार ते आहारककाययोग अने औदा० शरीर सहित आहा० शरीरनो जे व्यापार ते आहा० मिश्रकाययोग कहेवाय. ए बन्ने मिश्रयोग उत्तर शरीरनो प्रारंभ करती वखते अने संहार करती वखते

अन्तर्मु० सुधी होय. तेमज आहा० योग पण आहा० शरीरपर्याप्ति पूर्ण थया बाद अन्तर्मु० सुधीज होय. तथा जीवने परभवमां वक्रगतिए जतां १-२-३ समय सुधी अने श्री सर्वज्ञने समुद्घात वखते त्रीजे-चोथे-ने ५ मे समये तैजसकार्मण काययोग होय, ए सिवायना बीजा वखतमां सर्वथा न होय तेम नहिं पण गौणभावे होवाथी एनी मुख्यता न गणाय. ए साते काययोगथी जीव शुभाशुभ आश्रव प्राप्त करे छे. एमांनो कोइपण योग जघन्यथी १ समय रह्या बाद बीजे समये बीजो योग प्रवर्ते छे जेमके मनोयोग बदलाइने वचनयोग प्रवर्ते छे. अने वधुमां वधु अन्तर्मु० सुधी १ योग रही शके छे माटे एक योग संबन्धि आश्रव पण जघन्यथी १ समय अने उत्कृष्टथी अन्तर्मु० सुधी होय,

ए प्रमाणे इन्द्रियादि १७ भेदे असंयम पण गणाय छे, हवे शेष २५ क्रियाओनां नाम आगळनी गाथाओमां दर्शावाय छे.

अवतरण—पूर्व गाथामां जे २५ क्रियाओ आश्रवतत्त्वमां गणावी ते क्रिया कइ कइ ? ते गणावे छे,

॥ मूळगाथा २२ मी. ॥

काइअ अहिगरणिया, पाउसिया परितावणी किरिया
पाणाइवायारंभिय, परिग्गहिया मायवत्तीया ॥२२॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

कायिक्यधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी पारितापनिकी क्रियाः।
प्राणातिपातिक्यारंभिकी, पारिग्रहिकी मायाप्रत्ययिकी ॥२२

॥ शब्दार्थः ॥

काइअ—कायिकी क्रिया.	किरिया—क्रिया.
अहिगरणीया—अधिकरणिकी क्रिया.	पाणाइवाय—प्राणातिपातिकी क्रिया
पाउसिया—प्राद्वेषिकी क्रिया.	आरंभिय—आरंभिकी क्रिया.
पारितावणी—पारितापनिकी क्रिया	परिग्गहिया—पारिग्रहिकी क्रिया.
	मायवत्तीय-माया प्रत्ययिकी क्रिय

गाथार्थः—कायिकी, अधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी, पारितापनिकी प्राणातिपातिकी, आरंभिकी, पारिग्रहिकी, अने मायाप्रत्ययिकी क्रिया (ए ८ क्रिया आ गाथामां कही छे.)

विस्तरार्थः—जे व्यापारवडे आत्मा शुभाशुभकर्म प्राप्त करे ते व्यापार नामनुं क्रिया कहेवाय तेमां आत्मानो व्यापार कषाय रहित पणे होय तो असांपरायिकी क्रिया, अने सकषाय पणे होय तो (संपराय एटले कषाय ए अर्थथी) सांपरायिकी क्रिया कहेवाय. त्यां असांपरा० क्रिया एक ईर्यापथिकी नामे छे. अने सांपरा० क्रिया २४ प्रकारनी छे. ए प्रमाणे सर्वमली २५ क्रियाओनु स्वरूप कहेवाय छे.

१ [1]कायिकी क्रिया—कायाना व्यापारथी उत्पन्न थयेली ते कायिकी क्रिया बे प्रकारनी छे, त्यां मिथ्यादृष्टि अथवा सम्यग्दृष्टि अविरतिवन्तजीवनी उठवुं-बेसवुं-मूकवुं-उपाडवुं चालवुं सूवुं इत्यादिक कर्मबन्धना कारणवाळी जे सावद्यक्रिया ते अनुपरत कायिकी क्रिया कहेवाय. (अहिं अनुपरत—अविरतिवन्त). अने अशुभ

१ अहिंथी सर्व क्रियाओनुं स्वरूप पन्नवणाजी-ठाणांगजी-अने विचारसार—तथा नवतत्त्व भाष्यमांथी तारवणी करीने संक्षेपथी लखेलुं छे, माटे विस्तरार्थीए पन्नवणाजीथी तेनुं स्वरूप जाणवुं, पुन पन्नवणाजीमां १० क्रियाओ प्रथमनीज वर्णवेली छे अने नवतत्वभाष्यमां सर्व वर्णवेली छे,

योगवाळा जीवोने इन्द्रियना इष्ट विषयो प्राप्त थये रति अने अनिष्ट विषयोनी प्राप्तिथी अरति पामवा रूप इन्द्रिय संबन्धि क्रिया, तथा अनिन्द्रिय संबन्धी ते अशुभमनना संकल्पद्वारा मोक्ष मार्ग तरफ दुर्व्यवस्थित एवा प्रमत्तमुनिनी कायक्रिया ए बन्ने दुष्प्रयुक्त कायक्रिया कहेवाय. आ कायिकी क्रिया कषायोदयवाळा सर्व काययोगी जीवोने होय, एमां पहेली कायक्रिया अविरत सुधीना जीवोने अने बीजी अनुपयोगी [1]मुनिने पण होय.

२ अधिकरणिकी क्रिया:—जेना वडे आत्मा नरकादिगतिनो अधिकारी थाय ते अधिक० क्रिया बे प्रकारनी छे, त्यां प्रथम बनावी राखेला खड्गादिकनां अंगने परस्पर जोडी तैयार करवुं ते संयोजनाधिक०, अने शरुथी नवां खड्ग वगेरे अधिकरण के जेना वडे जीवनो घात थाय तेवां बनाववां ते [2]निर्वर्त्तनाधिक० क्रिया कहेवाय. अहिं अधिकरण एटले जीवघात थाय तेवु आचरण अथवा खड्गादि शस्त्र जाणवां. आ क्रिया बादरकषायोदयी जीवने होय (माटे ९ मा गु० सुधी).अहिं पोतानो देह पण अधिकरण छे.

३ प्राद्वेषिकी क्रिया—उत्कृष्ट क्रोधादि द्वेष करवाथी उत्पन्न थयेली ते प्राद्वे० क्रिया बे प्रकारनी छे. त्यां जीव उपर द्वे-

१ विचारसार ग्रंथमां १० मा गुण० सुधी ए क्रिया गणी छे, परन्तु ठाणांगजी तथा पन्नवणाजीमां ६ठा गुण स्थान सुधी कहेली छे माटे ए अनुसारे लखी छे.

२ औदा० वगेरे पांचे शरीरने मूळथी बनाववां ते अथवा खड्गादि शस्त्रोने मूळथी नवां बनाववां ते मूलगुणनिवर्तन क्रिया, हाथपग वगेरे अवयवो रचवा अथवा ते खडगादि शस्त्रोने पाणी पावु उज्वळ करवु धार काढवी, अने तेनां अंग बनाववां ते उत्तरगुणनिवर्त्तन क्रिया एम पन्न० तथा नव० भा० मां कह्यु छे.

प—मत्सर राखवाथी जीवप्राद्वेषिकी. अने पोताने पीडा करता एवा कांटा—पत्थर वगेरे अजीव पदार्थ उपर द्वेष थाय ते अजीवप्राद्वे० क्रिया कहेवाय. आ क्रिया [1]क्रोध कषायोदयी जीवने होय. (माटे ९ मा गु० सुधी.)

४ पारितापनिकी क्रिया—परिताप एटले ताडना तर्जनादिकथी संताप उपजाववो ते पारिता० क्रिया बे प्रकारनी छे. त्यां स्त्री पुत्रादिकना वियोगे पोताने हाथे पोतानी देहने माथुं फोडवादिके करीने अथवा बीजानी देहने परिताप—संताप उपजाववां स्वहस्त पारिता०, अने तेवी रीते बीजाने हाथे करावतां परहस्तपारिता०, *क्रिया कहेवाय आ क्रिया बादर कषायोदयी जीवोने होय माटे नवमा गुण० सुधी होय.

[2]५. प्राणातिपातिकी क्रिया—अपवर्तनीय आयुष्यवाळा जीवना प्राणनो अतिपात—विनाश करवाथी उत्पन्न थयेली ते प्रा-

१ पन्नवणाजीमां चारे कषाय रागद्वेषरूपे गणेला छे ते अपेक्षाए चारे कषायोदयी जीवने पण ए क्रिया गणी शकाय. (इति विचारसारः)

* नवतत्त्वभाष्यमां आ प्रमाणे छे के—स्त्री पुत्रादिकना वियोगथी पीडा पामेलो जीव पोताने हाथे अथवा परने हाथे पोतानी छाती कूटे माथु कूटे तो स्वपारितापनिकी अने पुत्रशिष्यादिकने ताडना तर्जना करे ते परपरितापनिकी क्रिया कहेवाय

२ नवतत्त्वभाष्यमां आ प्रमाणे छे के—पर्वतना शिखरपरथी पडवुं, पाणी अथवा अग्निमां झपापात करवो अथवा शस्त्र मारवादिकवडे पोताने हाथे अथवा परने हाथे पोताना प्राण गुमाववा ते स्वप्राणातिपातिकी अने मोह लोभ के क्रोधना आवेशवाळाए पोताने हाथे अथवा परने हाथे बीजाना प्राण लेवा ते परप्राणातिपातिकी,

तथा पन्नवणाजीमां आ क्रिया अपवर्त्तनीय आयुष्यवाळा जीवपर लागु पडे. एम कह्यु छे, केमके अनपवर्त्तनीय आयुष्यवाळाना प्राण आपणाथी गुमावाय नहिं,

णाति० क्रिया पण पूर्वोक्त प्रकारे स्वहस्तिकी अने परहस्तिकी एम बे प्रकारे छे. आ प्राणाति० क्रिया असंयत (अविरत) जीवोने होय छे माटे ५ मा गुण० सुधी छे. आ क्रिया हणेलो जीव मरण पामे तो ज लागे अन्यथा नहिं.

६ आरंभिकी—आरंभ (कोइक कार्य करवानी प्रवृत्ति) थी उत्पन्न थयेली ते आरंभिकी क्रिया बे प्रकारनी छे त्यां जीवनो घात करवारूप कार्य प्रवृत्तिवाळी जे क्रिया ते जीवआरंभिकी, अने चित्र—अथवा कोरणी वगेरेथी बनावेला जीवोने घात करवारूप प्रवृत्ति ते अजीव आरंभिकी. आ क्रिया सर्व प्रमादयोगी जीवोने होय छे माटे ६ ठा गुण० सुधी छे

७ पारिग्रहिकी क्रिया—परिग्रह (धनधान्यादिकनो संग्रह वा ममत्वभाव) थी उत्पन्न थयेली ते पारिग्र० क्रिया बे प्रकारनी छे. त्यां धान्य—ढोर—दास—दासी वगेरे जीवना संग्रहथी जीव पारिग्र०, अने आभूषण—वस्त्र इत्यादि अजीवना संग्रहथी अजीवपारिग्र० कहेवाय, आ क्रिया परिग्रहना अत्यागी जीवोने होय छे, माटे ५ मा गुण० सुधी छे,

८ मायाप्रत्ययिकी क्रिया—माया एटले छळ प्रपचथी उत्पन्न थयेली ते माया प्र० क्रिया बे प्रकारनी छे, त्यां अंतरंगमां दुष्ट भाव होय छतां बहारथी शुद्धभाव दर्शाववो. ए प्रमाणे पोतानो भाव विपरीत पणे देखाडवो ते आत्मभाववंचनमाया प्र०, अने बीजानी जूठी साक्षी पूरवी, खोटो लेख लखी आपवो इत्यादि परभाववंचन मायाप्र० क्रिया कहेवाय श्री पन्नवणाजीमां पण आ क्रियाने मात्र ७ मा गुण० सुधीज कही छे,

१ माया मोहनीयना उदयनी अपेक्षाए तो ८ ९ मा गुण० सुधी संभवे. परन्तु अहिं माया प्रपंचनी प्रवृत्ति रूप क्रिया गणेली छे माटे-तेवी प्रवृत्ति तो ७मा गुण० सुधीज पन्नवणाजीमां संघादिकना कारणथी कहेली छे अने ८—९मे गुणस्थाने माया उदयरूपे होय पण प्रवृत्ति रुप न होय

अवतरण— आ गाथामां मिथ्यादर्शनप्रत्ययिकी वगेरे ८ क्रियाओ कहेवाय छे.

॥ मूळगाथा २३ मी ॥

मिच्छादंसणवत्ती, अपच्चक्खाणी य दिट्ठि पुट्ठि य।
पाडुच्चिय सामंतो—वणीअ नेसत्थि साहत्थी ॥ २३॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

मिथ्यादर्शनप्रत्ययिकी अप्रत्याख्यानिकी च दृष्टिकी स्पृष्टिकी च प्रातित्यकी सामंतोपनिपातिकी नैशस्त्रिकी स्वाहस्तिकी २३

॥ शब्दार्थः ॥

मिच्छादंसणवत्ती—मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी क्रिया
अपच्चक्खाणी -अप्रत्याख्यानिकी क्रिया
य—अने
दिट्ठी—दृष्टिकी क्रिया
पुट्ठी—स्पृष्टिकी क्रिया (या पृष्टिकी)
पाडुच्चिय—प्रातित्यकी क्रिया
सामंतोवणीअ—सामंतोपनिपातिकी क्रिया
नेसत्थि नैशस्त्रिकी (अथवा—नैसृष्टिकी)
साहत्थी—स्वाहस्तिकी क्रिया.

गाथार्थः— मिथ्यादर्शनप्रत्ययिकी, अप्रत्याख्यानिकी, दृष्टिकी, स्पृष्टिकी, प्रातित्यकी, सामंतोपनिपातिकी, नैशस्त्रिकी (अथवा नैसृष्टिकी) अने स्वाहस्तिकी क्रिया.

विस्तरार्थः—

१ मिथ्यादर्शनप्रत्ययिकी क्रिया—जगतमां जे पदार्थो जे रूपे विद्यमान छे ते पदार्थोने तेवारूपे न मानतां विपरीत रूपे माने ते मिथ्याद० प्र० क्रिया बे प्रकारनी छे, त्यां सत् पदार्थोने सत् माने पण ते सत् पदार्थना केटलाएक गुणपर्यायने विपरीतपणे माने.

जेपके केटलाएक दर्शनवाळा आत्मा देहव्यापी छे तोपण एम माने छे के आत्मा अंगुठानी पर्वरेखाप्रमाणव्याप्त छे, अथवा एक तन्दुल मात्र जेटलो छे ए प्रमाणे न्यूनपणे माने छे, अने केटलाएक दर्शनवाळा आत्मा सर्वव्यापी छे, ५०० धनुष्य जेटलो छे इत्यादि अधिकपणे माने ते ऊनातिरिक्त मिथ्याद०प्र० क्रिया. अने जेओ आत्मा छे ज नहिं इत्यादि मूळथी विच्छेद माने ते तद्व्यतिरिक्त मिथ्या द०प्र० क्रिया कहेवाय. आ क्रिया सम्य० मोह सिवाय दर्शन छक्कना उदयथी होय माटे त्रीजा गुणस्थान सुधी छे.

१० अप्रत्याख्यानिकी क्रिया— जे पदार्थना उपयोगना ज्यां सुधी त्याग नथी कर्यो त्यां सुधी जे अत्यागवृत्ति संबंधि कर्म प्राप्त थाय छे ते अप्रत्या० क्रिया बे प्रकारनी छे. त्यां सजीववस्तुओनो त्याग न करे ते जीवअप्रत्या०. अने अजीव वस्तुओनो त्याग न होयनो अजीव अप्रत्या० क्रिया कहेवाय. परभवमां जे जे कलेवरो छोडयां छे अने जे जे शस्त्रादि जीवोपघातनां साधनो तैयार कर्यां छे ते ते कलेवरो अने शस्त्रादि निमित्तथी जे जे हिंसादि थाय छे ते ते सर्व कर्मनो आश्रव जीवने आ भवमां पण लागु पडे छे माटे धर्ममार्गना जाणनार जीवोए पूर्वभवोमां करेलां साधनो सबंधि आवता आश्रवनो त्याग करवो तेज श्रेयस्कर छे, वळी जे जे चीजो आपणा उपभोगमां स्वप्ने पण आवती नथी तेवी तेवी अप्राप्य चीजोनो पण ज्यां सुधी त्याग नथी कर्यो त्यां सुधी तत्संबंधि कर्मबंध आत्माने निरन्तर वर्ती रह्यो छे. माटे तेवी अप्राप्य चीजोनो पण त्याग करवो श्रेयस्कर छे. आ क्रिया अविरतिवंत जीवोनेज होवाथी चोथा गुण० सुधी होय छे.

११ दृष्टिकी क्रिया— जीव अथवा अजीवने रागादिकथी देखतां जे क्रिया लागे ते अनुक्रमे जीवदृष्टिकी अने अजीव दृ०

क्रिया एम बे प्रकारे जाणवी. आ क्रिया सकषायी चक्षुरिन्द्रियवाळा जीवोने होय छे माटे १० मा गुण० सुधी छे.

१२ स्पृष्टिकीक्रिया— जीव अथवा अजीवने रागादिके स्पर्श करवो ते जीवस्पृष्टिकी अने अजीवस्पृष्टिकी ए प्रमाणे बे प्रकारनी छे. स्त्री वगेरेने रागथी आलिंगन करतां आ वस्तु घणीज सुंवाळी छे आ वस्तु घणीज कोमळ छे ए प्रमाणे रागभावथी स्त्री अश्व तथा बीजी कोइ अजीववस्तुने पंपाळतां— हाथ फेरवतां ए क्रिया संबंधि आश्रव आवेछे. अहिं स्पृष्टिकीने बदले पृष्टिकी क्रिया पण जीव अजीवने (वा जीवअजीवसंबंधि) रागद्वेषथी पूछतां बे प्रकारनी गणेली छे. आ क्रिया सरागी जीवने होवाथी १०मा गुण० सुधी छे.

१३ प्रातित्यकी क्रिया— अन्यने आश्रयि जे कर्मबंध अथवा रागद्वेष उत्पन्न थाय ते प्रातित्यकी क्रिया बे प्रकारनी छे. त्यां अन्यजीवना निमित्तथी आपणने रागद्वेष थाय तो जीवप्रातित्यकी अने (स्तंभादिकमां शीर्ष अफळातां) स्तंभादि अजीव पदार्थना निमित्ते जे रागद्वेष उपजे ते अजीवप्रातित्यकी क्रिया गणाय.

१४ सामंतोपनिपातिकी क्रिया — समंतात्—चारे बाजुथी उपनिपात एटले लोकनुं आववुं थाय अर्थात् जेनावडे सर्वबाजुथी लोक आवी भेगा थाय तेवी क्रिया ते सामंतोप०क्रिया बे प्रकारनी छे. त्यां कोइ सारो सांढ—आखलो—वा बळद वा हस्ति इत्यादिक लावेल होयतो तेने घणा लोको जोवा आवतां सारो होय ने प्रशंसा करे तो तेनो मालीक खुश थाय. अने कोइ

१ नवतत्वभाष्यमां" पूर्वना पापमां उपादान कारण रूप अधिकरणने आश्रयि उत्पन्न थयेली क्रिया ते प्रातित्यकी " एम कहयुं छे.

खोड खांपण काढे तो द्वेषवाळो थाय इत्यादिक रीते जीव संबंधि लोकनुं मळवुं थतां पोताने रागद्वेष थवाथी जीवसामंतोप० क्रिया अने तेवीज रीते अजीव पदार्थने जोवा मळेला लोकोथी रागद्वेष थतां अजीव सामंतोप० क्रिया लागे. नाटक उभा करनार—खेल तमाशा बनावनार —कौतुक देखाडनार इत्यादिकने मुख्यत्वे आ क्रिया संबंधि आश्रव गणाय. आ क्रिया आरंभादिकना अत्यागी जीवोने होय छे माटे पांचमा गुण०सुधी छे.

१५ नैसृष्टिकी क्रिया— निसर्जन करवुं एटले काढवुं अथवा फेंकवुं अथवा त्याग करवुं तेनाथी उत्पन्नथयेली क्रिया ते बे प्रकारनी छे. त्यां यन्त्रादिवडे कुवादिकमांथी पाणी काढी खाली करवुं ते जीव नैसृष्टिकी· अने धनुष्यमांथी बाणनुं जे फेंकवुं ते इत्यादि अजीवनैसृ० क्रिया गणाय. अथवा गुरु वगेरेने ए क्रिया आ प्रमाणे— शिष्य अथवा पुत्रने (सुपात्र होय छतां) काढी मूकतां जीवनैसृ०· अने एषणीय (निर्दोष) भातपाणी नो त्याग करतां अजीवनैसृ० क्रिया लागवी· आ क्रिया पण पूर्ववत् पांचमा गुण० सुधी कही छे.

१६- स्वाहस्तिकी क्रिया— पोताने हाथेज जीवनो घातादि करवो ते स्वाह० क्रिया बे प्रकारे छे. त्यां पोताना हाथमां ग्रहण करेला जीव पदार्थवडे जीवने हणे ते अथवा पोताने हाथेज जीवने हणे ते एम बन्ने प्रकारे जीवस्वाहस्तिकी, अने पोताना हाथमां रहेला खड्गादि अजीव पदार्थवडे जीवने हणे ते अथवा पोताने हाथेज अजीवने हणे ते एम बन्ने प्रकारे अजीवस्वाह० क्रिया गणाय, आ क्रिया पण पूर्ववत् ५ मा गुण०सुधी छे.

१ घणा काळथी प्रवर्तेला परोपदेशित पाप कार्यमां भावथी जे अनुज्ञा(अनुमति) ते नैसृ० (इति नवतत्त्वभाष्ये)

अवतरण— आ गाथामां बीजी आज्ञापनिकी वगेरे ९ क्रियाओ कहेवाय छे.

॥ मूळगाथा २४ मी. ॥

आणवणि विआरणिया, अणभोगा अणवकंखपच्चइया
अन्नापओगसमुदा–ण पिज्ज दोसेरियावहिया ॥२४॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

आज्ञापनिकी वैदारणिकी, अनाभोगिक्यनवकांक्षप्रत्ययिकी
अन्य प्रायोगिकी सामुदायिकी प्रेमिकी द्वेषिकीर्यापथिकी ॥

शब्दार्थः

आणवणि–आज्ञापनिकी क्रिया	पओग–प्रायोगिकी क्रिया
वियारणिया–वैदारणिकी क्रिया	समुदाण–सामुदायिकी क्रिया
अणभोगा–अनाभोगिकी क्रिया	पिज्ज–प्रेमिकी क्रिया
अणवकंखपच्चइया–अनवकांक्षाप्रत्ययिकी क्रिया	दोस द्वेषिकी क्रिया
अन्ना–बीजी, २१ मो (वगेरे)	इरियावहिया–ईर्यापथिकी क्रिया

गाथार्थः— आज्ञापनिकी, वैदारणिकी, अनाभोगिकी, अनवकांक्षाप्रत्ययिकी, वळी बीजी(२१ मी वगेरे) क्रिया सामुदायिकी, प्रेमिकी, द्वेषिकी, अने ईर्यापथिकी क्रिया. (ए सर्वमळी २५ क्रियाओथी कर्मनुं आगमन थाय छे.)

विस्तरार्थः—

१७ आज्ञापनिकी क्रिया—जीवने आज्ञा–हुकम फरमावतां जीवआज्ञाप०, अने अजीवने आज्ञा फरमावतां (जादुगरवगेरेने) अजीव आज्ञाप० क्रिया गणाय. अहिं आज्ञा० ने बदले आनयनिकी क्रिया कहेवाय छे ते पण जीव वा अजीव वस्तुने

अणावतां- मंगावतां जीवानयनिकी अने अजीवानयनिकी एम बेप्रकारनी छे. आ क्रिया पांचमा गुण० सुधी कारण छे.के आ क्रिया जिनाज्ञाना उल्लंघनपूर्वक पोतानी बुद्धिए जीवादिपदार्थोने मगाववाथी लागे एम नवतत्त्वभाष्यमां कह्युं छे, अने ते चारित्री जीवोने होतुं नथी माटे.

१८ वैदारणिकी क्रिया— जीव अथवा अजीवने विदारवाथी-फोडवाथी-भिन्नकरवाथी उत्पन्न थयेली क्रिया ते जीव अने अजीव ना भेदथी बे प्रकारनी छे. अहिं वैदा० ने बदले वैतारणिकी क्रिया एटले वितारण-ठगवुं तेनाथी उत्पन्न थयेली ते पण जीवाजीव भेदे बे प्रकारनी छे. जेमके जीव सद्गुणी होय तो पण ठगवानी बुद्धिए दुर्गुणी कहे, अथवा दुभाषीयो जेम एकनी कहेली वात बीजा अजाणने कंइक अवळी रीते समजावे इत्यादिक ते जीववैता०, अने अजीवपदार्थना पण अछता गुणदोष कहे ते अजीववैता०कहेवाय अहिं सामा जीवनुं हृदय भेदाय तेवां म्हेणां मारवां कलंक चढाववुं-खड्गथी बे भाग करवा-परने फाळ पडे तेवी खोटी खबर आपवी इत्यादि कार्योथी आ क्रिया संबंधि आश्रव लागे. आ क्रिया बादर कषायोदय सुधी होवाथी ९ मा गुण० सुधी छे.

१९ अनाभोगिकी क्रिया— अनाभोग एटले उपयोग रहितपणे जे लेवा-मूकवादिकनो क्रिया करवी ते बे प्रकारनी छे, त्यां उपयोगरहित-प्रमार्जनादि कर्या विना वस्त्र पात्रादि लेवा मुकवाथी अनायुक्तादान क्रिया. अने उपयोग रहित प्रमार्जनादि करी लेवा मूकवाथी अनायुक्तप्रमार्जना क्रिया गणाय आ क्रिया ज्ञानाव० ना उदयथी सकषायी जीवने छे माटे १० मागुण०सुधी होयछे

२० अनवकांक्षाप्रत्ययिकी क्रिया— पोताना अथवा

परना हितनी आकांक्षा-अपेक्षा रहित जे आलोक अने परलोक विरुद्ध एवुं चोरी परस्त्रीगमनादि आचरण ते स्व अनवकांक्षा अने पर अनवकांक्षा एम बे प्रकारे छे, आ क्रिया बादरकषायोदयप्रत्ययिक होवाथी ९मा गुण० सुधी छे.

२१ प्रायोगिकी क्रिया — मन वचन अने कायाना शुभाशुभ व्यापाररूप जे क्रिया ते प्रायो० क्रिया. आ क्रिया शुभाशुभ सावद्य योगवाळाने होवाथी ५ मा गुण० सुधी छे.

२२ समादान क्रिया—जेनाथी विषय समादीयते-ग्रहण कराय ते समादान एटले इन्द्रिय ते संबंधि देशघातक वा सर्वोपघातक जे व्यापार ते समादान क्रिया, अर्थात् जेनावडे आठे कर्म समुदाय पणे बंधाय तेवा प्रकारनो इन्द्रियनो व्यपार ते समादानक्रिया अथवा सामुदायिकी क्रिया पण कहेवायछे आ क्रिया इन्द्रिय अप्रनवाळा जीवोने होवाथी ९ गुण० सुधी होय छे.

२३ प्रेमिकी क्रिया— बीजा उपर प्रेम करवाथी अथवा बीजाने प्रेम उपजे एवां वचनादिथी जे कर्मबंध थाय ते प्रेमिकी क्रिया. आ क्रिया लोभना उदय रूप होवाथी १०मा गुण० सुधी छे.

२४ द्वेषिकी क्रिया— बीजा जीवने क्रोध अने मानरूप द्वेष उपजे तेवा आचरणथी उत्पन्न थयेली ते, आ क्रिया बादर कषायोदयवाळाने होवाथी ९ मा गुण० सुधी छे.

२५ ईर्यापथिकी क्रिया— इर्या एटले गमनागमनादि काययोग (उपलक्षणथी वचन अने मनोयोग) एज पथ- कर्म आववानो मार्ग तत्संबंधि जे क्रिया ते ईर्यापथिकी क्रिया. अर्थात् मन वचन कायाना अकाषायिकयोगथी उत्पन्न थयेली क्रिया ते इर्याप० क्रिया आ क्रिया ११-१२-ने १३ मा गुण०वाळा अकषायी जीवने योगमात्रथीज होय छे आ योगमात्रथी बंधातुं सातावे० कर्म मनोहर वर्णगंधरसस्पर्शवाळुं पण अतिरूक्ष होय छे, जेथी प्रथम समये

बंधाय अने बीजे समये वेदाय छे अने निर्जरे छे जेथी आइर्यापि० क-र्मनी स्थिति मात्र बे समयनी ज छे अने अकषायी जीवने एक शाता-वेदनीय ज बंधाय छे बीजुं कोइ कर्म बंधाय नहि आ क्रिया बध्यमान अने वेद्यमान ए बे भेदथी बे प्रकारनी छे. त्यां प्रथम समये बध्यमान अने बीजे समये वेद्यमान जाणवी. ए प्रमाणे आश्रव तत्वना कहेला भेद घणाखरा एवा पण छे के स्थूल दृष्टिए परस्पर एक सरखा जणाय छे जेमके इन्द्रिय आश्रवमां चक्षुइन्द्रिय दृष्टिकी क्रियामां अने स्पर्शनेन्द्रिय स्पृष्टिकी क्रियामां अन्तर्गत थाय छे. चारे कषाय प्रेम प्रत्ययिक-द्वेषप्रत्ययिक-प्राद्वेषिकी मायाप्रत्ययिकमां यथा योग्य अन्तर्गत था-य छे, तथा पांचे अव्रत सामान्यतः अप्रत्याख्यानिकीक्रियामां अने विशेषतः पहेलु अव्रत प्राणातिपा० क्रियामां तथा पांचमुं अव्रत प-रिग्रहिकी क्रियामां समाय छे, त्रणे योग प्रायोगिकी क्रियामां समाय छे, ए प्रमाणे इन्द्रियादि पिंडभेद साथे क्रियाओ ते पण परस्पर सरखी जणाय छे जेमके प्रायोगिकी क्रियामां कायिकी समाय छे. प्राद्वेषिकी अने द्वेषप्रत्ययिकी एक सरखी जेवी छे इत्यादि रीते आ-श्रवतत्वना ४२ भेद सर्वे परस्पर भिन्न पडता नथी एम स्थूल दृष्टिए भासे छे तोपण सूक्ष्म दृष्टिए विचारतां सर्व भेदमां फेरफार मालुम पडे छे जेमके चक्षुन्द्रियनो आश्रव इन्द्रिय निमित्तक छे अने दृष्टिकी क्रियानो आश्रव ते क्रिया निमित्तक छे इत्यादि परस्पर भेद सूक्ष्म बुद्धिए विचारवा. (इति नवत० भा०)

पुनः प्रज्ञापनासूत्रमां कायिकी थी अप्रत्या० क्रियासुधीनी १० क्रियाओ बे विभागमां (५-५) वर्णवेली छे, अने ठाणांगजी मां बे बे क्रियाओ जुदी जुदी वर्णवी छे, पुनः ठाणांगजीमां ए सर्वे क्रि याओने कर्मपुद्गलग्रहणना कारणनी मुख्यताए अजीवक्रियाओ क-ही छे. अने विचारसारमां जीवनापरिणामना मुख्यताए जीवक्रि-याओ कही छे, अने जीवनी तत्वश्रद्धान-मिथ्यात्वभाव-मिश्रभाव-सम्यक्त्वभावे परिणति ते जीवक्रिया गणी छे.

आ प्रमाणे ठाणांगजी प्रज्ञापनाजी—नवतत्त्वभाष्य—विचारसार-प्रकरण इत्यादि ग्रन्थोने आधारे क्रियाओनुं वर्णन कर्युं. आ बेंतालीश आश्रवोनुं कर्मबन्धमां हेतुपणुं जाणी जेम बने तेम आश्रवस्थानोथी निवर्ती कर्मबन्धनथी अलग थवुं एज शास्त्रबोधनुं फल छे.



॥ आश्रवतत्त्वपरिशिष्टम् ॥

नरकगतिमां ४१—एक ईर्यापथिकी क्रिया विना शेष आश्रवना ४१ भेद नरकगतिमां होय छे. ईर्यापथिकी क्रिया केवळ योगप्रत्ययिक छे; अने ते योग कषायरहित ११ मा गुणस्थानथी यथाख्यात चारित्र सद्भावे होय छे, तेवुं यथाख्यात चारित्र नारकने होय नहिं माटे ईर्यापथिकी क्रिया संबंधि आश्रव पण न होय जेथी ५ इन्द्रिय-४ कषाय-५ अव्रत-३ योग अने २४ क्रिया ए ४१ आश्रवभेद होय.

तिर्यंचगतिमां ४१—नरकगतिवत्.

देवगतिमां ४१—नरकगतिवत्.

मनुष्यगतिमां ४२—यथाख्यात चारित्र मनुष्यगतिमां होय छे. माटे ते चारित्रना कारणथी केवळ योगप्रत्ययिक ईर्यापथिकी क्रिया पण होय छे जेथी मनुष्यगतिमां आश्रवना सर्व भेद ४२ होय.

एकेन्द्रियमां ३०—दृष्टिकी क्रिया चक्षुदर्शनवाळा जीवने होय, प्रातीत्यकी, सामंतोपनिपातिकी, आनयनिकी, अने आज्ञाप्रयोगिकी ए चार क्रिया दीर्घकालिकी संज्ञावाळा वचनयोगीने होय, अने एकेन्द्रिय जीवमां चक्षुदर्शन अने वचनयोगनो अभाव होवाथी ए पांच क्रिया अने छट्ठी ईर्यापथिकी क्रिया तो पूर्वोक्त कारणथी न होय माटे १९ क्रिया होय छे. इन्द्रिय आश्रवमां १ स्पर्शनेन्द्रिय संबंधि आश्रव छे, कषाय ४ छे, अने योगमां १ काययोगाश्रव छे, अव्रत ५ छे माटे सर्व मळी ३० आश्रवभेद होय छे.

द्वीन्द्रियमां ३२—एकेन्द्रियमां जे ३० आश्रवभेद कह्या तेमां १ रसनेन्द्रिय अने १ वचनयोग ए बे अधिक होवाथी द्वीन्द्रियमां ३२ आश्रव होय छे.

त्रीन्द्रियमां ३३—द्वीन्द्रियना ३२ आश्रवमां १ घ्राणेन्द्रियाश्रव अधिक करतां त्रीन्द्रियमां ३३ आश्रवभेद होय.

चतुरिन्द्रियमां ३५—त्रीन्द्रियना ३३ आश्रवमां १ चक्षुरिन्द्रियाश्रव, अने दृष्टिकी क्रिया अधिक करतां ३५ आश्रवभेद चतुरिन्द्रियमां होय.

पंचेन्द्रियमां ४२—पंचेन्द्रियमां गर्भजमनुष्यने सर्व आश्रव भेद होयछे.

पृथ्वीकायमां ३०—एकेन्द्रियवत्.

अप्कायमां ३०—एकेन्द्रियवत्.

तेउकायमां ३०—एकेन्द्रियवत्.

वायुकायमां ३०—एकेन्द्रियवत्.

वनस्पतिकायमां ३०—एकेन्द्रियवत्.

त्रसकायमां ४२—मनुष्यगतिवत्.

॥ इत्याश्रवतत्त्वपरिशिष्टम् ॥

अथ संवरतत्त्व

अवतरण—आ गाथामां संवरतत्त्वना ५७ भेद कहेवाय छे

॥ मूळगाथा २५ मी ॥

समिईगुत्तिपरिसह–जईधम्मो भावणा चरित्ताणि
पणतिदुवीसदसबार - पंचभेएहिं सगवन्ना ॥ २५ ॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

समितिगुप्तिपरिषहयतिधर्माणि भावनाश्चारित्राणि
पंचत्रिद्वाविंशतिदशद्वादशपञ्चभेदैः सप्तपञ्चाशत् ॥ २५ ॥

शब्दार्थः—

समिइ—समिति	ति—त्रणभेद
गुत्ति—गुप्ति	दुवीस—बावीशभेद
परिसह—परिषह	दस—दशभेद
जइधम्मो—यतिधर्म	बार—बारभेद
भावणा—भावना	पंच—पांच
चरित्ताणि—चारित्र	भेएहिं—भेदवडे
पण—पांचभेद	सगवन्ना—सत्तावनभेद

गाथार्थः—पांच समिति—त्रण गुप्ति—बावीश परिषह—१०यति-धर्म—१२भावना ने पांच चारित्रना भेदवडे संवरतत्त्वना ५७भेदछे.

विस्तरार्थः—सम्–सम्यक् उपयोगपूर्वक इति–प्रवृत्ति ते समिति, तथा परि–समन्तात्– सर्वबाजुथी अथवा सर्वप्रकारे

सह्-कष्ट सहनकरवुं पण सदोष आचरण न करवुं ते परिषह. तथा यति-मोक्षमार्गमां जे यत्न-प्रयत्न करे तेवा मुनिओनो जे धर्म ते यतिधर्म. तथा मोक्षमार्ग तरफ रुचि वधे तेवुं चिन्तवन ते भावना अने चय-आठे कर्मनो संचय समूह तेने जे रित्त-रिक्त करे-खाली करे ते चारित्र कहेवाय. ए सर्व नवां आवतां कर्मने रोकनार होवाथी संवररूप कहेवायछे. हवे आगळनी गाथाओमां तेना उत्तरभेदोनुं स्वरूप कहेवाय छे

अवतरण-पूर्वगाथामां पांचसमिति अने त्रणगुप्ति सामान्यथी कही तेनां नाम आ गाथामां कहे छे.

मूळ गाथा २६ मी

इरिया भासेसणादाणे, उच्चारे समिईसु अ
मणगुत्ति वयगुत्ति, कायगुत्ति तहेव य ॥ २६॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

ईर्याभाषैषणादानान्युत्सर्गः समितिषु च
मनोगुप्तिर्वचोगुप्तिः कायगुप्तिस्तथैव च ॥ २६॥

॥ शब्दार्थः ॥

इरिया-ईर्यासमिति
भासा-भाषासमिति
एसणा-एषणासमिति
आदाण-आदानसमिति
उच्चारे-उत्सर्गसमिति
समिइ-समिति (सम्यक् प्रवृत्ति)
अ-वळी
मणगुत्ति-मनोगुप्ति
वयगुत्ति-वचनगुप्ति
कायगुत्ति-कायगुप्ति
तहेव-तेमज
य-वळी

गाथार्थः— ईर्यासमिति–भाषासमिति -एषणासमिति–आदानभंडमत्तनिक्खेवणासमिति– अने उत्सर्गसमिति (अथवा पारिष्ठापनिकासमिति) ए पांचसमिति, तेमज वळी मनगुप्ति वचनगुप्ति अने कायगुप्ति (ए आठ प्रवचनमाता) ते संवर तत्त्व छे (अर्थात् ए ८थी कर्म रोकाय छे.)

विस्तरार्थः— सम्यक् उपयोगपूर्वक प्रवृत्ति ते समिति,अने सावद्ययोगथी निवृत्ति ते गुप्ति, नवां आवतां कर्मोने रोकवामां साधनभूत छे. तेना उत्तरभेदनुं स्वरूप कहेवाय छे.

५ समिति

आगळ युगमात्र (३॥हाथ) भूमिने दृष्टिथी जोता अने बीज-लीलोतरी–पाणी–तथा त्रसजीव वगेरेथी सजीवभूमिने वर्जता मार्गमां चालवुं ते ईर्यासमिति

जे वचन सत्य होय अने कहेवायोग्य होय,वळी जे सत्य असत्यमिश्रित न होय, अने जे बुध्धिवडे विचारेलुं होय, मधुर होय अल्प होय, कार्यप्रसंग वाळुं ज होय,गर्वरहित होय,तुकारादितुच्छतारहित होय, स्वपरने हितकारी होय. मर्मवाळुं न होय इत्यादि मोक्षमार्गने अनुकूळ वचन बोलवुं ते भाषासमिति

सिद्धान्तमां कहेली विधि प्रमाणे ४२दूषणरहित आहारपाणी अंगीकार करवां ते एषणासमिति

प्रथम भूमीने चक्षुवडे जोइ प्रमार्जिने वस्त्रपात्रादिकने पण जोइ प्रमार्जीने भूमिपर मूकवां अने लेवां ते आदान समिति (आदानभंडमत्तनिक्खेवणासमिति)

प्रथम भूमिने चक्षुवडे जोइ प्रमार्जीने(निर्जीव जग्यामां) वडीनीति (झाडो) लघुनीति (पेशाब) श्लेष्म--थुंक इत्यादि देहनिर्गत अशुचिपदार्थ तेमज कोइकवखतें वधेलांआहारपाणी इत्यादि परठवे

(त्यागे-विसर्जे) ते उत्सर्गसमिति (अथवा पारिष्ठापनिका समिति) कहेवाय.

॥ ३ गुप्ति ॥

मनने सावद्य मार्गमांथी रोकी निरवद्य मार्गमां जोडवुं ते मनोगुप्ति ३ प्रकारनी छे. त्यां आर्त्तध्यान अने रौद्रध्यान संबंधी मनोव्यापारनो त्याग करवो ते अकुशलनिवृत्ति रूप, धर्मध्यान अने शुक्लध्यानमां मनने प्रवर्तावबुं ते कुशलप्रवृत्तिरूप, अने मनोव्यापारनो सर्वथा (केवलिपणामां योगनिरोध वखते) त्याग करवो ते योगनिरोध रूप मनोगुप्ति कहेवाय.

तथा वचननो सावद्य व्यापार रोकी निरवद्य वचन बोलवुं ते वचनगुप्ति बे प्रकारनी छे. त्यां भ्रूसंज्ञा-शिरकंपन-हस्तचालन इत्यादि संज्ञाओनो त्याग करी मौनपणु अङ्गीकार करवुं ते मौनावलंबिनी अने वाचना-पृच्छना-परिवर्तनादि वखते मुहपत्ति राखीने बोलवुं ते वाङ्नियमिनी, कहेवाय.

शंका—भाषासमिति अने वचनगुप्तिमां शुं तफावत ?

उत्तर—वचनगुप्ति ते सर्वथा वचननिरोध करवारूप अने निरवद्यवचन बोलवारूप बे प्रकारनी छे अने भाषासमिति तो निरवद्य वचन बोलवा रूप एकज प्रकारनी छे ए प्रमाणे तफावत छे. (इति नवतत्त्वावचूरी.)

कायप्रवृत्तिने सावद्यमार्गमांथी रोकी निरवद्यमार्गमां जोडवी ते कायगुप्ति बे प्रकारनी छे. त्यां उपसर्गादि होते छते पण कायोत्सर्गथी चलायमान न थवुं, अने केवलिने योगनिरोध वखते शरीरव्यापारनो सर्वथा त्याग थवो ते चेष्टानिवृत्ति रूप, अने सिद्धान्तमां कहेली विधि प्रमाणे कायानुं चलन—गमनागमनादि थाय ते यथासूत्रचेष्टानियमिनी कायगुप्ति कहेवाय.

अवतरण—२५ मी गाथामां परिषह सामान्यथी कह्या ते २२ परिषहनां नाम कहेवाय छे तेमां पण आ गाथामां १४ परिषह कहे छे

॥ मूळ गाथा २७ मी. ॥

खुहा पिवासा सी उन्हं, दंसा चेलारइत्थिओ ।
चरिया निसिहिया सिज्जा, अक्कोस वह जायणा॥२७॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

क्षुधापिपासाशीतमुष्णं, दंशोऽचेलकोऽरतिः स्त्रियः ।
चर्या नैषेधिकी शय्या, आक्रोशो वधो याचना ॥२७ ॥

॥ शब्दार्थः ॥

खुहा—क्षुधापरिषह
पिवासा–पिपासा परिसह
सी—शीत परिषह
उन्हं–उष्ण परिषह
दंस–दंश परिषह
अचेल–अचेलक परिषह (नग्न-परिषह)
अरइ—अरति परिषह
त्थिओ—स्त्री परिषह
चरिया—चर्या परिषह
निसिहिया–नैषेधिकी परिषह
सिज्जा—शय्या परिषह
अक्कोस–आक्रोश परिषह
वह—वध परिषह
जायणा—याचना परिषह

गाथार्थः—क्षुधापरि०–तृषापरि०–शीतपरि०–उष्णपरि० –दंशपरि०–अचलेकपरि०–अरतिपरि०-स्त्रीपरि०—चर्यापरि०—नैषेधिकीपरि०-शय्यापरि०-आक्रोशपरि०–वधपरि०-याचनापरि०

विस्तरार्थ—पूर्वगाथामां ५ समिति अने ३ गुप्तिनुं स्वरूप कह्या बाद हवे आ गाथाथी २२ परिषहनुं स्वरूप कहेवाय छे.

क्षुधाने सहन करवी पण सदोष आहार न ग्रहण करवो ते क्षुधा परिषह. श्री उत्तराध्ययनजीमां कहुं छे के–" शरीर क्षुधावडे व्याप्त थये छते तपस्वी अने पराक्रमी साधु फळादिक छेदे नहिं, छेदावे नहिं, रांधे नहिं, अने रंधावे पण नहि. काकजंघावनस्पति सरखां अतिकृश (दुर्बल) बाहु जंघादिक थये छते, अने शरीरमां एकली नसो देखातीहोय तेवुं दुर्बळ शरीर थयेछते पण आहार पाणीनुं परिमाण जाणनार मुनि मनने दिलगीर कर्या विना संयम मार्गमां विचरे "

---

१ दृष्टान्त—उज्जयिनी नगरीमां हस्तिमित्र नामना श्रेष्ठि पोतानी स्त्रीना मरणवियोगथी वैराग्य पामी पोताना पुत्र हस्तिभूतिसहित दीक्षा अंगीकारकरी, त्यारबाद भोजकट देश तरफ विहार करतां मार्गमां महा अरण्यनी अंदर हस्तिमित्र मुनिने पगमां पयो कांटो वाग्यो के एक पगलुं पण आगळ चालवाने अशक्त थया. बीजा मुनिओए उपाडीने नगरमां पहोंचाडवानुं कह्या छतां पण हस्तिमित्रमुनिए कह्युं के मारुं मरण नजीकमां आवेलुं होवाथी हवे हुं कोइने श्रम आपवा इच्छतो नथी माटे आ भयंकर अरण्यमांथी तमो सर्व कुशळतापूर्वक नगरमां जाओ अने हुं तो अहिंज देहत्याग करीश. त्यारबाद मुनिओ विहार करी गया, परन्तु पुत्र मुनिने पिता प्रत्येना प्रेम छोडी आगळ जवुं अशक्य थइ पडयुं, जेथी पितामुनिए घणुं समजाव्या छतां पण पुत्रमुनि पितानी सेवामांज रह्या. त्यारबाद हस्तिमित्रमुनि काळधर्म पाम्या छतांपण पुत्रमुनि मोहथी जीवताज जाणे छे. हवे पितामुनि काळधर्म पामी देव थया त्यां अवधिज्ञानथी अरण्यमां पडेलुं पोतानु कलेवर अने पुत्र मुनिने देखी ते देवे कलेवरमां प्रवेश करी पुत्रने गोचरी जवा माटे कह्युं. पुत्रे कह्युं के आ अरण्यमां गोचरी कोण आपे ? त्यारे पितादेवे कह्युं के वृक्षोनी आगळ धर्मलाभ देवाथी वृक्षोनी अंदर रहेला लोक गोचरी आपशे. ए प्रमाणे पितानुं वचन अंगीकार करी पुत्र वृक्षोनी आगळ धर्मलाभ कही उभो रहे छे,

तृषाने सम्यक् प्रकारे सहन करवो पण सदोष पाणी न वापरवुं ते तृषापरिषह कहेवाय. श्री उत्तरा०मां कह्युं छे के " एकान्ते मार्गमां जतो, तृषाथी व्याकुळ थयेलो, सुकाइ गयेला मुखवाळो, पण मुनि (पाणी संबंधि शास्त्रोक्त) मर्यादानुं उल्लंघन न करे "

त्यारे देवमायाथी वृक्षनी अंदरथी नीकळेलो मनुष्यनो अलंकृत हाथ गोचरी व्होरावे छे. आ प्रमाणे कंइक दिवस व्यतीत थया बाद पुनः तेज मुनिओ विहार करता आ अरण्यमां आव्या, अने आ सर्व बनाव देखी आश्चर्य पामी पुत्रने पिता मरण पाम्या छे. अने निरंतर सदोष एवा देवपिंडनो तुं आहार करे छे ए प्रमाणे घणी शिखामण आपवाथी ते पुत्रमुनि पण पुनः दोषनी आलोचना लइ मुनिओनी साथे रह्या. अहिं केटलाएक आचार्य फळादिक आहार होते छते पण गोचरीनी विधिथी आहार पाणी लीधां माटे पुत्रे क्षुधापरिषह जीत्यो एम कहे छे अने केटलाएक कहे छे के वृद्ध एवा पिता मुनिए अतिकष्ट छतां फलाहारादि नहि करी मरण अंगीकार कर्युं माटे पिता-मुनिए क्षुधापरिषह जीत्यो एम कहे छे (अपेक्षापूर्वक बन्ने वात सत्य छे.)

१ दृष्टान्त—उज्जयिनी नगरीमां धनमित्र नामना वणिके धनशर्मा पुत्र सहित दीक्षा लइ बीजा मुनिओ सहित एलगपुर तरफ विहार करतां मार्गमां मध्यान्हकाळे धनशर्मा बाळमुनि ग्रीष्मऋतुना सख्त तापथी अत्यंत तृषाकुल थया. जेथी चालवानी शक्ति ओछी थतां वारंवार पाछळ रही जाय छे. धनमित्र पिता पोताना पुत्रना प्रेमथी समुदायथी पाछळ रही पुत्र साथे चाले छे त्यारबाद रस्तामां नदी आवतां पुत्रप्रेमथी कह्युं के हे वत्स ! हुं जाणुं छुं के तने तृषा लागी छे छतां मारी पासे निर्दोष पाणी नहि होवाथी शुं करुं ? परन्तु आ नदीनुं पाणी पोतानो जीव बचाववाने माटे पी ! कारण के अत्यन्त आपदामां बुद्धिमानो पण निषेध करेलु कार्य विना उपाये अंगीकार करे छे. नीतिशास्त्रमां कह्यु छे के " जो श्रेष्टक्रिया रक्षण कर-

वाने सर्वथा असमर्थ होय तो निषिद्धक्रिया पण आचरवी, जेम राजमार्ग घणा कादवथी खराब थयो होय तो पंडितो पण बीजा अवळा मार्गे थइने जाय छे. " वळी आ नदीनुं पाणी पीने पछीथी आलोचना लइ शुद्ध थजे. ए प्रमाणे पुत्रने उपदेश दीधा छतां पण पुत्र पाणी पीतो नथी तेथी बाळमुनि मने देखशे त्यांसुधी लज्जाथी पाणी नहिं पीये एम विचारी पितामुनि नदी उतरीने शीघ्र पुत्र देखी न शके तेटले दूर चाली गया. हवे अहिं आगळ चालवाने असमर्थ बाळमुनि नदीमां रह्या छता विचारवा लाग्या के आ वखते हुं जळ पीने पश्चात् गुरु पासे प्रायश्चित लइश एम विचारीने पाणीनी अंजली भरी पीवामाटे मुख आगळ आणे छे तेटलीवारमां अहो जैनतत्वने जाणनार हुं अपवाद मार्गनु आलंबन लइ असंख्यजीवात्मक एक बिन्दुवाळा पाणीमां रहेला असंख्य जीवोने मारा एक जीव माटे केम हणुं? इत्यादि भावना भावी अंजळीमां भरेलुं जळ यतनापूर्वक नदीमां मूकी दइ महाकष्टे नदी उतरी नदीना किनारापर पडया, अने धर्मनी दृढतापूर्वक तृषाना व्याकुळपणाथी उत्तम समाधिए काळ करी ते बाळमुनि देवलोकमां देवपणे उत्पन्न थया त्यां अवधिज्ञानथी पोतानो पूर्वभव देखी अने आगळ जइ बाळमुनिनी राह जोता उभा रहेला पिताने देखवाथी तुर्त पोताना मृतकलेवरमां प्रवेश करी पितानी पासे जइ पहोच्यो अने बन्ने मुनि मार्गमां समुदाय भेगा थइ गया हवे सर्व मुनिओ तृषावडे व्याकुळ थयेला जोइ देवमुनिए रस्तामां गोकुळ बनावी दहिं छाश व्होरावी तृषारहित कर्या ए प्रमाणे मार्ग मोटो होवाथी वच्चे वच्चे घणां गोकुळ बनावी मुनिओनी तृषा शान्त करी त्यारबाद पोतानी मायाजाळ मुनिओने जणाववा माटे ते देवे आगळ जता मुनिओनु छेल्ला गोकुळने स्थाने उपधिनुं वींटणु भुलावी दीधु ते मुनि दूर जइने पोतानी उपधि संभारी पाछा वळ्या त्यां उपधीनुं वींटणु तो देख्युं पण गोकुळ न देख्यु त्यांथी ते वींटणुं लइ समुदायमां आवी मळ्या अने वींटणुं देख्यु पण गोकुळ नहोतुं एम कहेवाथी सर्वेए अनुमान कर्यु के ए सर्व देवकृत होवु जोइए तेटलामा ते देवे प्रगट थइ पिता सिवायना सर्व मुनिने नमस्कार कर्यो पितामुनिने नहिं नमवानुं

शीत (ठंडी) ने सम्यक् प्रकारे सहन करवी पण अग्नि वगेरे सदोषाचरणथी निवारवी नहिं ते शीतपरिसह. कह्युं छे के " रूक्ष शरीरवाळा अने गामे गाम विहार करता मुनिने कोइ वखत अत्यन्त शीत लागे तोपण शीतना भयथी स्वाध्यायादि अवसरनुं उल्लंघन न करे, तथा मारे शीत निवारणकरवानुं मकान विगेरे साधन नथी, कांवळ वस्त्र वगेरे नथी, हुं अग्निए तापुं इत्यादि दीन चिंतवन मुनि न करे "

कारण पूछवाथी देवे पोतानो सर्व वृत्तांत जणाव्यो, के आ पितामुनिए मने सचित्त जळ पीवानी आज्ञा आपवाथी हुं वंदना करतो नथी. जो ए आज्ञा प्रमाणे वर्त्यो होत तो दुर्गतिमां अनेक भव भ्रमण करत. वळी तेज पिता तेज गुरु अने तेज पूज्य कहेवाय के जे पोताना पुत्रादिने उन्मार्गे न प्रवर्तावे, ए प्रमाणे देवनी हकीकत सांभळी सर्व मुनिओ आश्चर्यसहित नगरमां पहोंच्या अने देव पण पोताने स्थाने गयो.

१ दृष्टान्त—राजगृहीनगरीमां चार मित्रवणिकोए श्रीभद्रबाहु स्वामी पासे दीक्षा लइ उत्तम योग्यता प्राप्त करी एकाकी विहारप्रतिमा (अभिग्रह) अंगीकार करी ए प्रतिमामां एवो अभिग्रह होय छे के विहार अथवा भोजन त्रीजे प्रहरेज थाय अने त्रीजो प्रहर पूर्ण थइ चोथा प्रहरना प्रारंभमां जे ज्यां होय ते मुनिए त्यांज उभा रही त्रीजा ७ प्रहर सुधी प्रतिमाए (काउस्सग्गादि ध्यान विशेषमां) रहेवुं. ए प्रमाणे ते चारे मुनिओए एकाकि विहारकल्प अंगीकारकरी विहार करता त्यांज राजगृहनगरमां पधार्या. ए वखते भरशियाळानी हेमंत ऋतु चाले छे. अत्यंत शीत पडे छे हवे ते चारे मुनिओ वैभारगिरिपर आव्या हता त्यांथी नगरमां त्रीजे प्रहरे गोचरी करी पुनः वैभारगिरि तरफ जाय छे त्यां एक मुनिने वैभारगिरिनी गुफाने द्वारे आवतां, बीजा मुनिने नगरना उद्यानमां आवतां, त्रीजा मुनिने उद्याननी पासे, अने चोथा

गरमीने सम्यक् प्रकारे सहन करवी पण सदोष आचरणथी शीतलता न सेववी ते उष्णपरिषह कहेवाय. कह्युं छे के " गरम तपीगयेली पृथ्वी-रेती-अने शिलादिकथी. तृषावडे उत्पन्न थयेला दाहथी, अने सूर्यनां किरणोनी गरमीथी संताप पामेला मुनि चन्द्र-चन्दन-पवन इत्यादिथी मने शाता क्यारे थशे? एवी दीनता न राखे. तथा उष्णताथी संताप पामेला मुनि स्नान न इच्छे, गात्र पर जळ छंटन न करे, अने कपडादिथी वायु पण न नाखे "

मुनिने नगरना दरवाजा बहार आवतां त्रीजो प्रहर समाप्त थवाथी ते मुनि महात्माओ ते ते स्थानेज काउस्सग्गध्याने उभा रह्या. त्यां गुफाद्वारे रहेला मुनि पर्वतनी अत्यत शीत लागवाथी समाधिपूर्वक पहेले प्रहरे काळधर्म पाम्या, बीजा मुनि पर्वतनी नीचे ओछी ठंडी लागवाथी बीजे प्रहरे, त्रीजा मुनि त्रीजे प्रहरे, अने चोथा मुनि चोथे प्रहरे काळधर्म पाम्या ए प्रमाणे जेम ए चारे मुनि महात्माए शीतपरिषह सहन कर्यो तेम अन्य मुनिए पण शीतपरिषह सहन करवो. तेमज श्रावके पण यथायोग्य शीतपरिषह सहन करवो.

१ दृष्टान्त—तगरा नामनी नगरीमां दत्त नामे वणिक, अने तेनी भद्रा नामे स्त्री छे. तेओने अति कोमळ अंगवाळो अने भद्रपरिणामी अरहन्नक नामे नानो बालक छे. अर्हन्मित्राचार्य पासे धर्म सांभळी वैराग्य पामी ते त्रण्नेए नाना बालक सहित दीक्षा अंगीकार करी. हवे दत्तमुनि पोते सारां सारां मिष्टान्न व्होरी लावी पोताना बाळमुनिने पोषे छे, पण ते अरहन्नकने कोइ दिवस स्नेहथी गोचरीए जवा देता नथी. बीजा मुनिओना मनमां सहज लागणी थाय पण पिता पुत्रने पोषे तेमां कोण कही शके ? अथवा कोण निषेध करी शके ? हवे ग्रीष्मऋतुमां दत्तमुनि काळधर्म पाम्या अने अरहन्नकमुनि पिताविनाना थया त्यां बे त्रण दिवस सुधी तो पिताना पीडायला अरहन्नक मुनिने बीजा मुनीओए गोचरी लावी आपीने पछी कह्युं के हवे

तो तमे पोतेज गोचरीए फरो, कारण के पितानी पेठे हरहमेश कोण गोचरी लावीने आपशे ? दाइथा उपर डाम सरखां ए वचनो सांभळी अत्यंत दिलगीरीपूर्वक अरहन्नक मुनि बीजा मुनिओनी साथे भिक्षा लेवा माटे गया. कोइ पण वखते उपासराथी बहार नहिं निकळेला अरहन्नकमुनिने आ ग्रीष्मऋतुना तापमां घेर घेर फरी गोचरी लाववाना परिश्रमथी घणो खेद थयो. पग रेतीथी दाझे छे, मस्तक सूर्यथी तपी जाय छे, इत्यादि अनेक वेदनाथी व्याकुळ थइ गभराइ गयेला अरहन्नक मुनि बीजा मुनिओथी पाछळ रही कोइक शेठनी हवेली नीचे विसामो लेवा बेठा. ते वखते ते म्हेलनी स्वामिनी स्त्री के जेनो पति प्रथम मरण पाम्यो छे ते आ नवयुवान अने कोमळ अंगवाळा रुपवान मुनिने जोइ कामातुर थइ दासी मोकलीने भिक्षाना मिषथी मुनिने म्हेल उपर पोतानी पासे बोलाव्या. अने अनेक प्रकारना उपायो करी मीठुं मीठुं बोली मुनीने पोताने आधीन कर्या मुनि पण साधुपणाना कष्टथी कंटाळेला होवाथी आ स्त्री साथे गृहवास मांडी रह्या हवे भिक्षाचर्याए निकळेला सर्व मुनिओए उपाश्रयमां आवी जुए छे तो अरहन्नक मुनिने देख्या नही तेथी मुनिओए नगरमां सर्व ठेकाणे तपास करावतां पण अरहन्नकमुनिनो पत्तो लाग्यो नहिं, त्यारे अन्ते मुनिओए तेनी माता साध्वीने खबर मोकली के तमारो अरहन्नकमुनि क्यां छे ? ते सवधि अमोए शोध करी छतां खबर मळी नथी माटे तमो पण शोध करावो आ समाचार सांभळतामांज माता साध्वी एकदम स्नेहना वशथी विलाप करती नगरमां हे अरहन्नक ! हे अरहन्नक ! एम बमो पाडती बजारे बजार गलीए गली अने घेरेघेर शोधवा निकळी. घणु फरी फरीने ज्यारे ते शेठाणीना म्हेल नीचे आवी त्यारे हे अरहन्नक ! हे अरहन्नक ! एम बूमो पाडती साध्वीनो अने बीजा भेगा थयेला लोकोनो कोळाहळ गवाक्षमां बेठेला अरहन्नके नीचे देख्यो, अने मारी माता मारे माटे आवी दुर्दशामां आवी पडी छे एम चिंतवी पुन. वैराग्य उत्पन्न थयो, अने करेला अघोर कर्मनो अति प

डांस-मच्छर-मगतरां वगेरे क्षुद्र जतुओए उपजावेली पीडा सम्यक् प्रकारे सहन करवी पण ते जीवोनुं अशुभ न चिंतववुं ते दंसपरिषह कहेवाय. कह्युं छे के—" मच्छरादि जन्तुओ शरीरनुं मांस-रुधिर खाता होय तोपण उद्वेग न करवो, तेओने उडाडवा नहिं, मनथी पण तेओना पर द्वेष न लाववो, अने तेओने न हणवा परन्तु ते तरफ बेदरकार रहेवु "

श्चाताप करवा लाग्यो, अने नीचे उतरी माताने पगे लाग्यो, माता पण अरहन्नकने देखी तुरत शुद्धिमां आवी अने अनेक प्रकारनी शीखामण आपी फरीथी चारित्र अंगिकार कराव्युं. अरहन्नक मुनिए पण पुनः चारित्र अगीकार करी उत्कृष्ट वैराग्यवडे गुरुनी आज्ञा मागी नगर बहार ग्रीष्मऋतुना सख्त तापथी तपेली धगधगती शिलापर चारे शरण लइ पादपोपगमन अनशन अगीकार कर्युं. अने पच परमेष्ठिनुं स्मरण करता अरहन्नकमुनिनु शरीर एक मुहूर्तमात्रमां माखणना पिंडनी पेठे गळीगयु. अने काळ करी देवलोके गया. ए प्रमाणे अन्यमुनिए पण उष्णपरिषह सहन करवो

१ दृष्टान्तः—चंपानगरीमां जितशत्रुराजाना पुत्र श्रमणभद्रे श्रीधर्मघोषसूरि पासे चारित्र अंगीकार करीने उत्कृष्ट योग्यता मेळवी गुरुनी आज्ञापूर्वक एकाकी विहारप्रतिमा अंगिकार करी. हवे श्रमणभद्रमुनि विहार करता शरदऋतुना वखतमां कोइक महा अटवीनी अदर रात्रे प्रतिमाए (काउ०ध्याने) रह्या छे, ते वखते सोय सरखा तीक्ष्ण मुखवाळा हजारो डांस तेमनी कोमळ कायाने लागी रुधीर पीवा लाग्या, जेथी मुनीनी स्वर्ण सरखी कायापण लोखंड सरखी काळी पडी गइ. उत्कृष्ट वैराग्यभावनावडे ते डांसने उराडया नहि, अने चिंतववा लाग्या के नरकनी उग्र पीडा आगळ आ डांसनी पीडा कइ गणत्रीमां छे ? वळी जीव अने शरीर ए बे भिन्न छे तो पछी अस्थिर शरीरमां ममत्व भाव शाथी ? वळी जो आ अल्पका-

वस्त्रनो सर्वथा अभाव होते अथवा तो जीर्णप्राय अने अल्प वस्त्र होते वस्त्र प्राप्तिनुं दीन चिंतवन न करवु ते अचेलक परिषह कहेवाय (अहिं चेल एटले वस्त्र एवो अर्थ जाणवो,) कह्युं छे के— " अतिजीर्ण वस्त्र थयां छे ते फाटवाथी थोडा दिवसमां हुं वस्त्र विनानो थइश, अथवा मारा जीर्ण वस्त्र देखीने कोइ गृहस्थ नवां वस्त्र आपशे ए प्रमाणे दीन चिंतवन न करे पण आ जीर्ण वस्त्र जो फाटी जशे तो मने जिनकल्पी सरखुं अचेलकपणुं प्राप्त थशे, अने जो नवां प्राप्त थशे तो स्थविरकल्पगत सचेलकपणुं प्राप्त थशे, बन्ने धर्मने हितकारी छे एम जाणी मुनि दीनता न करे. "

ळमां विनाशी शरीरवडे जो आ प्राणीओने तृप्ति थती होय तो एथी बीजुं शुं विशेष छे? ए प्रमाणे डांसनी अत्यत पीडाने सहन करता श्रमणभद्रमुनिए प्राणत्याग कर्यो ए प्रमाणे अन्यमुनि तथा व्रतधारी श्रावकोए दंशपरिषह सहन करवो.

१ दृष्टान्तः—दशपुरनगरमां सोमदेव नामनो ब्राह्मण अने रुद्रसोमा नामे तेनी स्त्री श्राविका छे, तेमने आर्यरक्षित अने फल्गुरक्षित नामना बे पुत्र थया. त्यां आर्यरक्षित पितानी पासे विद्या भणी अधिक अभ्यास माटे पाटलीपुत्र नगरे जइ वेद-वेदांगादि चौद विद्याओ भणी दशपुरनगरे आव्यो ते वखते नगरना राजा अने नगरना लोकोए पण घणा आडंबरथी सामैयू करी नगरप्रवेश कराव्यो. पछी घेर आवी पोतानी माताने नमस्कार करवा गयो त्यारे माता अति उदासीन थइने बेठेली छे. पुत्रे कह्यु हे माता हु आटली विद्याओ भणी राजा वगेरेनु सन्मान मेळवी भेटणांनी अनर्गल लक्ष्मी प्राप्त करी हु तारी पासे नमस्कार करवा आव्यो छतां तु उदासी केम बनी गइ छे? माताए कह्यु' हे पुत्र ! तु अनेक विद्याओ भण्यो पण ते सर्व संसारनी वृद्धि करनारी छे अने तेथी तु परभवमां

महाकष्ट पामीश, ए संबंधि विचार करवाथी मने अत्यंत उदासिनता थइ छे माटे जो तुं एक पण विद्या परभवना सुखनी अने मोक्ष प्राप्त करवानी विद्या भण्यो होत तो मने उदासीनता न होत. आर्यरक्षिते कह्यु हे माता ते कइ विद्या अने कोनी पासे मळे छे के जेथी मोक्षनो प्राप्ति थाय त्यारे माताए कह्यु के जो तारो मारा वचनपर विश्वास होय अने तुं भक्तिवाळो होय तो स्वर्ग अने मोक्ष आपनार एवा दृष्टिवादनो अभ्यास शेलडीनी वाडीमां पधारेला श्री तोसलीपुत्राचार्य पासे कर. पुत्रे विचार्युं के जे शास्त्रो भणवाथी मातानुं मन रीझतुं नथो तेवां शास्त्रोवडे शु? एम विचारी तुर्त आज्ञा लइ तोसलीपुत्राचार्य पासे चाल्यो, तेटलामा प्रभातकाळे प्रथम मळवाने उत्सुक एवो आर्यरक्षितना पितानो मित्र भेट तरीके ९ सांठा आखा अने एक सांठानो ककडो लइ आवी सामे मल्यो अने भेट करी, ते भेट स्वीकारी कह्युं के आ शेलडी तमो मारी माताने सोंपजो अने हुं कोइक कार्यार्थे बहार जाउं छुं. ते पितामित्रे ते शेलडी तेनी माताने सोंपी सर्व विगत कहेवाथी माताए विचार्युं के आ शेलडी शकुनमां सामी मली छे माटे मारो पुत्र जरुर ९॥ पूर्व जेटली विद्या भणशे. हवे आर्यरक्षित तोसलीपुत्राचार्य पासे जइ अभ्यास कराववानी विनति करतां आचार्ये कह्युं के जो दृष्टिवाद भणवुं होय तो दीक्षा अंगीकार कर. त्यारे आर्यरक्षिते कह्यु के आप मने दीक्षा आपो पण अहिं नगरना राजा–प्रजा सर्व मारी दीक्षा तोडावशे माटे अहिंथी तुर्त बीजे स्थाने चाल्याजवु ठीक छे. तोसलीपुत्राचार्ये पण तुर्त ते आर्यरक्षितने साथे लइ अन्यत्र विहारकरी त्यां दीक्षा आपी श्रीवीरना शासनमां ए प्रथम ज शिष्यचोरी थइ त्यारबाद आर्यरक्षितने अगीयारअंग अने १२मु दृष्टिवाद पोताना अभ्यास जेटलुं सारी रीते भणाव्युं अने आगळ अभ्यास करवा माटे श्रीवज्रस्वामि पासे मोकल्या त्यां जइ ९॥ पूर्व संपूर्ण अभ्यासकर्यो आगल तेटली बुद्धिना अभावे कंटाळो आववाथी अने पिताना उपराउपरी संदेशा आववाथी अभ्यास न थयो

हवे अहिं आर्यरक्षितना पिताने सर्व समाचार मळतां घणा संदेशा मोकल्या छतां पण पुत्र नहिं आववाथी फल्गुरक्षितने तेडवा माटे मोकल्यो. श्रीवज्रस्वामिए श्रुतोपयोग मूकी जाण्युंके हवे आगळ अभ्यास नहिं करी शके अने अहिं पुनः आवशे पण नहिं जेथी मारी वधु विद्या मारी पासेज रही जशे.

हवे आर्यरक्षितने प्रथम सूरिपद मळ्युं छे तेओ फल्गुमित्रनी साथेज विहार करता पोताने नगरे आव्या त्यां आर्यरक्षितना उपदेशथी राजा अने नगरजनो पण अनन्य भक्तिवाळा थया. माता रुद्रसोमाए पण पुत्रआचार्यपासे घणा कुटुंब सहित दीक्षा लीधी, अने राजाए सम्यक्त्वव्रत अङ्गीकार कर्युं. पण पुत्री अने पुत्रवधू वगेरेनी आगळ हुं नग्न सरखो (काछडी सीव्या विना छूटे वस्त्रे) केम उभो रहुं ? एवी लज्जाथी सोमदेवे दीक्षा लीधी नहिं, पण निरन्तर उपाश्रयेज रहे छे. आर्यरक्षिताचार्ये घणो उपदेश दीधो त्यारे सोमदेव पिताए कह्युं के जो जनोई-पगरखां-छत्री-पीतांबर-अने कमण्डलु राखवानी आज्ञा आपो तो हुं दीक्षा लउं आचार्ये पण कोइरीते पिताने संसारथी तारवानी बुद्धिए ते सर्व अनुज्ञा आपी दीक्षा अंगीकार करावी. अने त्यारबाद केटलांक बाळकोने युक्तिथी नमस्कार नहिं करतां मश्करीओ करे अने उपदेश आपे तेवी युक्ति शीखवाडी धीरे धीरे सर्व चीजो छोडावी आखरे पीतांबर रह्युं ते छोडाववाने आचार्य युक्ति शोधे छे तेटलामां कोइक मुनि अणसण करी काळधर्म पाम्या. ते वखते पितामुनिनु पीतांबर छोडाववाने युक्ति रची कह्युं के आ मुनिने कांधे धरी लइ जाय तो घणी निर्जरा थाय. ते लाभ लेवाने बीजा सर्व प्रथम शीखवी राखेला मुनिओ अत्यन्त उत्सुकता धरी उठ्या त्यारे सूरिए कह्युं के जो ए निर्जरानो लाभ तमो सर्व लइ जाओ तो अमारा पिता वगेरे बन्धुवर्ग शुं लाभ लइ शके ? एम कहेवाथी सोमदेवमुनिए पुत्रने पूछ्युं के, आ मुनिनी देह हुं जाते उपाडीश. त्यारे सूरिए कह्युं के, देहने उचकी लइ जतां भविष्यमां घणो बाळ उपसर्ग

महाकष्ट पामीश, ए संबंधि विचार करवाथी मने अत्यंत उदासिनता थइ छे माटे जो तुं एक पण विद्या परभवना सुखनी अने मोक्ष प्राप्त करवानी विद्या भण्यो होत तो मने उदासीनता न होत. आर्यरक्षिते कह्युं हे माता ते कइ विद्या अने कोनी पासे मळे छे के जेथी मोक्षनो प्राप्ति थाय. त्यारे माताए कह्यु के जो तारो मारा वचनपर विश्वास होय अने तुं भक्तिवाळो होय तो स्वर्ग अने मोक्ष आपनार एवा दृष्टिवादनो अभ्यास शेलडीनी वाडीमां पधारेला श्री तोसलीपुत्राचार्य पासे कर. पुत्रे विचार्युं के जे शास्त्रो भणवाथी मातानुं मन रीझतुं नथो तेवां शास्त्रोवडे शुं ? एम विचारी तुर्त आज्ञा लइ तोसलीपुत्राचार्य पासे चाल्यो, तेटलामा प्रभातकाळे प्रथम मळवाने उत्सुक एवो आर्यरक्षितना पितानो मित्र भेट तरीके ९ सांठा आखा अने एक सांठानो ककडो लइ आवी सामे मल्यो अने भेट करी, ते भेट स्वीकारी कह्युं के आ शेलडी तमो मारी माताने सोंपजो अने हुं कोइक कार्यार्थे बहार जाउं छुं. ते पितामित्रे ते शेलडी तेनी माताने सोंपी सर्व विगत कहेवाथी माताए विचार्युं के आ शेलडी शकुनमां सामी मली छे माटे मारो पुत्र जरुर ९॥ पूर्व जेटली विद्या भणशे. हवे आर्यरक्षित तोसलीपुत्राचार्य पासे जइ अभ्यास कराववानी विनति करतां आचार्ये कह्युं के जो दृष्टिवाद भणवुं होय तो दीक्षा अंगीकार कर. त्यारे आर्यरक्षिते कह्यु के आप मने दीक्षा आपो पण अहिं नगरना राजा--प्रजा सर्व मारी दीक्षा तोडावशे माटे अहिंथी तुर्त बीजे स्थाने चाल्याजवु ठीक छे. तोसलीपुत्राचार्ये पण तुर्त ते आर्यरक्षितने साथे लइ अन्यत्र विहारकरी त्यां दीक्षा आपी श्रीवीरना शासनमां ए प्रथम ज शिष्यचोरी थइ त्यारबाद आर्यरक्षितने अगीयारअंग अने १२मुं दृष्टिवाद पोताना अभ्यास जेटलुं सारी रीते भणाव्युं अने आगळ अभ्यास करवा माटे श्रीवज्रस्वामि पासे मोकल्या त्यां जइ ९॥ पूर्व संपूर्ण अभ्यासकर्यो आगल तेटली बुद्धिना अभावे कंटाळो आववाथी अने पिताना उपराउपरी संदेशा आववाथी अभ्यास न थयो

हवे अहिं आर्यरक्षितना पिताने सर्व समाचार मलतां घणा संदेशा मोकल्या छतां पण पुत्र नहिं आववाथी फल्गुरक्षितने तेडवा माटे मोकल्यो. श्रीवज्रस्वामिए श्रुतोपयोग मूकी जाण्युं के हवे आगल अभ्यास नहिं करी शके अने अहिं पुनः आवशे पण नहिं जेथी मारी पधु विद्या मारी पासेज रही जशे.

हवे आर्यरक्षितने प्रथम सूरिपद मल्युं छे तेओ फल्गुमित्रनी साथेज विहार करता पोताने नगरे आव्या त्यां आर्यरक्षितना उपदेशथी राजा अने नगरजनो पण अनन्य भक्तिवाला थया. माता रुद्रसोमाए पण पुत्रआचार्यपासे घणा कुटुंब सहित दीक्षा लीधी. अने राजाए सम्यक्त्वव्रत अङ्गीकार कर्युं, पण पुत्री अने पुत्रवधू वगेरेनी आगल हुं नग्न सरखो (काछडी खोल्या विना छूटे वस्त्रे) केम उभो रहुं ? एवी लज्जाथी सोमदेवे दीक्षा लीधी नहिं, पण निरन्तर उपासरेज रहे छे. आर्यरक्षिताचार्ये घणो उपदेश दीधो त्यारे सोमदेव पिताए कह्यु के जो जनोइ-पगरखां-छत्री-पोतांवर-अने कमन्डल राखवानी आज्ञा आपो तो हु दीक्षा लउ आचार्ये पण कोइरीते पिताने संसारथी तारवानी बुद्धिए ते सर्व अनुज्ञा आपी दीक्षा अंगीकार करावो. अने त्यारबाद केटलांक बालकोने युक्तिथी नमस्कार नहिं करतां मश्करीओ करे अने उपदेश आपे तेवी युक्ति शीखवाडी धीरे धीरे सर्व चीजो छोडावी आखरे पीतांबर रह्यु ते छोडाववाने आचार्य युक्ति शोधे छे तेटलामां कोइक मुनि अणसण करी कालधर्म पाम्या. ते वखते पितामुनिनु पीतांबर छोडाववाने युक्ति रची कह्युं के आ मुनिने कांधे धरी लइ जाय तो घणी निर्जरा थाय. ते लाभ लेवाने बीजा सर्व प्रथम शीखवी राखेला मुनिओ अत्यन्त उत्सुकता धरी उठया त्यारे सूरिए कह्यु के जो ए निर्ज्जरानो लाभ तमो सर्व लइ जाओ तो अमारा पिता वगेरे बन्धुवर्ग शु लाभ लइ शके ? एम कहेवाथी सोमदेवमुनिए पुत्रने पूछयुं के, आ मुनिनी देह हुं जाते उपाडीश. त्यारे सूरिए कह्युं के, देहने उचकी लइ जतां भविष्यमां घणो बाळ उपसर्ग

चारित्र मार्गमां विचरतां जे अरति-अधैर्य अथवा अरुची उपजे तेने निवारवी अर्थात् चारित्रमां धैर्य राखवुं ते अरतिपरिषह कहेवाय. अरति उपज्या छतां पण चारित्र मार्गनो त्याग न करवो,

---

थशे ते सहन करवानी जो शक्ति होय तो उपाडो त्यारे पितामुनीए उपसर्ग सहनवुं पण कबूल करी मुनिनी देह उपाडी रस्ते चालेछे. बीजा पण अनेक कुटुम्बना मुनीओ अने साध्वीओ तथा श्रावक श्राविकादि चाले छे. तेटलामां प्रथमथी शीखवी-राखेला बालकोए आवी प्रथम सोमदेवमुनिनो प्रथम कछोटो काढी नाख्यो, पुन आगल चालतां. पाछली काछी नाखी अने आगल चालतां आखु पीताम्बर काढी लइ तद्दन नग्न करी मुक्या के एकदम बीजा साधुओए प्रथमथी लावेलो चोलपट्ट पहेरावी दीधो. अने त्यारपछी ते चोलपट्ट हमेश माटे कायम रह्यो अने तेथी सोमदेवमुनि अचेल परिषह सहनकरवा लाग्या तेम बीजा मुनिओए पण अचेल परिषह सहन कर्यो.

(आ दृष्टान्त अति संक्षेपमां उतार्युं छे. माटे विस्तरार्थीए उत्तराध्ययनथी जाणवुं.)

१ दृष्टान्त—अचलपुर नगरमां जीतशत्रु राजाना युवराज पुत्रे श्री राधाचार्य पासे दीक्षा अंगीकार करी ते वखते उज्जयिनीमां आर्यराध नामना आचार्य हता तेमना केटलाक शिष्यो तगरा नगरीमां अभ्यास करवा गया हता. हवे राधाचार्य पण युवराजमुनि सहित तगरा नगरीए आव्या. त्यां तेओ आर्यराधाचार्यना शिष्योने आर्यराधाचार्यना कुशल समाचार पूछतां तेओए कह्युं के उज्जयिनीमां सर्वरीते कुशलता छे पण राजा अने पुरोहितना बे पुत्रो मुनिओने बहु कदर्थना करे छे ते सांभळी युवराज मुनिए विचार्युं के. ते राजपुत्र मारो भत्रीजो थाय छे, ते साधुओने कदर्थना उपजावी दुर्गतिमां न जाय तो ठीक एम विचारी गुरुनी आज्ञापूर्वक युवराज मुनि उज्जयिनिमां आवीने राजपुत्रने घेर गोचरी गया ते वखते रा-

जपुत्र अने पुरोहितपुत्रे कह्युं के हे साधु ! तुं नाटक करी जाणे छे के नहिं ? युवराज मुनिए कह्युं के हुं नाटक सारी रीते करुं छुं पण तमो मृदंग ताल वजावो, ते सांभळी ते बन्ने मृदंगादि वगाडवा लाग्या, अने युवराज मुनि नृत्य करे छे तेटलामां नृत्यना ठेका साथे मृदंगादिनो ताल नहिं मळवाथी युवराजर्षिए कह्युं के -हे भीलडा सरखा ! मूर्खना शिरोमणि ! तमो नृत्य साथे वाजिंत्र बराबर केम वगाडता नथी ? ते सांभळीने क्रोधातुर थयेला बन्ने पुत्रो मुनिने मारवा आव्या, तेवाज मुनिए ते पुत्रोने कूटी कूटीने हाडकाना सांधा उतारी नाख्या जेथी बन्ने कुमारो अत्यन्त रडवा लाग्या अने मुनि तुरत बहार निकळी पोताने स्थाने आव्या, आ वातनी राजाने खबर पडतां अनेक उपाये पण हाडसंधिओ ठेकाणे न आववाथी तेज मुनिनी पासे आवी करगरीने विनंति करतां मुनिए घणो ठपको आपो कह्युं के महा उद्धत ए कुमारो जो चारित्र अंगीकार करे तो बन्नेने साजा करुं अन्यथा नहिं. निरुपाये राजाए कबूल करवाथी मुनिए प्रथम लोच कर्या बाद हाडनी संधिओ ठेकाणे लावी साजा करी दीक्षा आपी, त्यां राजपुत्र तो सारी रीते चारित्र पाळे छे. अने पुरोहित पुत्र तो आ मुनिए मने बळात्कारे दीक्षा आपी इत्यादि विचारथी अरति —उद्वेगपूर्वक अनादर पणे चारित्र पाळे छे. तेथी राजपुत्र बवमां केटलाक देवादि उत्तम भव करी मोक्षे गयो अने पुरोहित पुत्र घणीवार दुर्गतिमां रखडी अर्हद्दत्तना भवमां राजपुत्रना जीवे बोध आपवाथी अरतिपरिषह सहन करी चारित्र पाळ्युं जेथी सद्गति पाम्यो, ए बन्नेना भवनो विस्तार उत्तराध्ययनथी जाणवो.



स्त्रीए विषयेच्छा पूर्ण करवाने माटे करेला उपसर्ग (-उपद्रव सम्यक्प्रकारे सहन करवा पण लेशमात्र विकार थवा देवो नहिं अने स्त्रीने आधीन थवु नहिं ते स्त्री परिषह कहेवाय.

ग्रामानुग्राम विहार करवो पण एक स्थाने नियतवास करी रहेवु नहिं ते चर्यापरिषह कहेवाय. कह्युं छे के—"गृहस्थादिकनी साथे रागनो प्रतिबन्ध राख्या विना मुनि ग्रामानुग्राम जिनाज्ञा प्रमाणे विचरे."

---

१ दृष्टान्तः—पाटलीपुत्र नगरमां नन्दराजाना शकडाल नामे मन्त्रीनो पुत्र स्थूलिभद्र प्रथम १२ वर्ष सुधी कोशा नामनी वेश्याने त्यां अनेक मोज शोख भोगवी पोताना पितानु राजाने हाथे दुर्मृत्यु थयेलु जाणी वैराग्य पामी श्री संभूतिसूरि पासे दीक्षा लइ तेज कोशा वेश्याने घेर गुरुनी आज्ञा लइ षटरस भोजन करता चित्रशाळामां चोमासु रहेवा आव्या ते वखते पहेलांनी प्रीति संभारी अनेक रीते स्थूलिभद्रमुनिने हाव भाव विकारादिथी लोभाव्या छतां पण महा निर्विकारी मुनिए चोमासाने अन्ते काउस्सग्ग पारी कोशाने उपदेश आपी श्राविका बनावी अने राजा मोकले ते पुरुष सिवाय अन्य पुरुषने अङ्गीकार न करवो इत्यादि यथा योग्य व्रत उच्चराव्यां. जेथी गुरुए पण सर्व मुनिओनी आगळ दुष्कर-कार दुष्करकार एम त्रेवार कही बोलाव्या ए प्रमाणे स्त्रीप-रिषहने सम्यक् प्रकारे सहन करवो.

२ दृष्टांत·—कोलकिर नगरमां संगम नामना आचार्य अत्यन्त वृद्ध थया छता पण एकज उपाश्रयमां नव भाग क-ल्पीने नवकल्प विहारनी विधि साचवता हता (इत्यादि अ-हिं मळेला कुशिष्यनु वृत्तान्त उत्तरा०मांथी जाणवु) ते प्रमाणे अन्य मुनियोए पण बनता प्रयत्ने नवकल्पी विहारनी विधि साचववी

श्मशान- शून्यगृह-वृक्षनी नीचे--इत्यादि स्थाने दुष्टचेष्टा रहित बेसे छतां पोते डरे नहिं, तेम बीजाने डरावे पण नहिं ते नैषेधिकी परिषह कहेवाय

उंची-नीची एवी प्रतिकूल शय्या मळतां उद्वेग न करवो ते शय्यापरिषह कहेवाय. कह्युं छे के—" अनुकूळ शय्या (--वसति--स्थान अथवा शयन) मळतां हर्ष न करे, अने प्रतिकूळ शय्या मळतां उद्वेग न करे के अहो ! हुं केवुं सुन्दर स्थान पाम्यो छुं ? अथवा मने सारी शय्या पण प्राप्त न थइ ? इत्यादि हर्ष विषाद न करे "

---

१ दृष्टांतः—गजपुर नगरना कुरुदत्तपुत्र नामे शाहुकार पुत्रे दीक्षा लइ एकाकी विहारप्रतिमा अङ्गीकार करी साकेतपुरनी पासे काउस्सग्ग ध्याने उभा रह्या ते दरम्यानमां केटलाक गोवाळोनां ढोर कोइ चोर लइ गया, ते गोवाळ चोरने देखता देखता मुनि पासे आवी चोर देख्या छे के नहिं ? एम पूछतां कांइपण उत्तर नहिं मळवाथी अत्यन्त क्रोधवाळा थइ लीली माटीथी मुनीना मस्तकपर पाळ बांधी तेमां अग्नि नाखवाथी मुनिनु मस्तक मळगी उठयुं अने गोवाळ नासी गया मुनिए समता राखी अग्निनुं कष्ट सहन कर्युं, अने थोडीवारमां मुनि काळ करी परलोक पाम्या. ए प्रमाणे अन्य मुनिओए पण नैषेधिकी परि० (स्थान परिषह) सहन करवो.

२ दृष्टान्तः—कौशम्बी नगरीना यज्ञदत्त विप्रना सोमदत्त अने सोमदेव नामना बे पुत्रो दीक्षा अंगीकार करी विहार करी गया. घणे दिवसे कुटुंबीओने मळवानी इच्छाथी कौशम्बीए आवतां तेओना मातपिता अवन्तीमां जइने रह्या छे एवी खबर मळतां ते बे मुनिओ पण अवन्तिमां आव्या, ते देशमां केटलाएक ब्राह्मणोने पण दारु पीवानो रिवाज हतो तेथी त्यां

वचनथी अथवा कायाथी करेली ताडना तर्जना सम्यक् प्रकारे सहन करवी पण तेनुं अशुभ न चिंतववुं ते आक्रोशपरिषह कहेवाय. कह्युं छे के—"बीजो कोइ मुनिने आक्रोश करे तो मुनिए तेनापर सामो आक्रोश न करवो कारण तेथी मुनि पण अज्ञानी सरखो थाय छे. माटे पोते आक्रोश न करे."

व्होरवा आवेला मुनिओने बीजी वस्तुमां मदिरा भेळवीने (कोइक आचार्य कहे छे एकली मदिरा ज) ब्राह्मणनी स्त्रीओए व्होरावी. अजाणपणे आ बे मुनिए तेनो आहार कर्या बाद चक्कर वगेरे आववाथी मदिरा प्राप्त थयेली जाणी अतिपश्चाताप करी विचार्युं के आहारना अर्थीने कोइक वखत आवो अयोग्य आहारपण वापरवो पडे माटे मूलथी आहारभोज त्याग करवो एम धारी नदीने कांठे पडेला सूका काष्ठ उपर बन्ने मुनिए पादोपगमन अणसण अंगीकार कर्युं त्यां अकाळे पण मेघवृष्टि थवाथी नदीमा पुर आवतां मुनि सहित ते सूकुं काष्ठ पण नदीमां तणायुं छतां मुनि उतर्या नहिं. अन्ते ते काष्ठ तणाइने समुद्रमां आव्युं, त्यां जळचर जीवोए करेली अनेक पीडा सहन करी धीरता वाळा बन्ने मुनि काळ करी गया. जेम आ बे मुनिओए सूकाकाष्ट जेवी शय्या सहन करी तेम अन्य मुनिओए पण शय्यापरिषह सहन करवो.

१ दृष्टान्तः—कोइक नगरमां महा तपस्वी मुनिना तपथी आकर्षायली कोइक देवी ते मुनिने निरन्तर नमस्कार करवा आवती अने कहेती के हे पूज्य ! मारा सरखुं कोइ कार्य होय तो फरमावो परन्तु निस्पृही मुनिने शुं कार्य होय? एक वखते कोइक विप्रनु दुर्वचन सांभळीने क्रोधवाळा थयेला ते मुनि ते विप्रनीसाथे युद्धकरवा लाग्या पण तपवडे दुर्बळथयेली देहवाळा मुनिने लष्टपुष्ट एवा ब्राह्मणे मुठी मारतांज जमीन पर पाडी नाख्या. अने उपरथी पण घणी ताडना तर्जना करी

पोतानो वध करे तो पण सम्यक् प्रकारे सहन करवो पण वध करनारनुं अशुभ लेश मात्र पण न चिंतववु ते वधपरिषह कहेवाय.

ते विप्र नासीगयो मुनि पण महाकष्टे उठीने स्वस्थाने आव्या हवे रात्रीना वखतमां आवेली ते देवीए नमस्कार करी शाता पूछी, परन्तु मुनिए धर्मलाभ पण न आप्यो. त्यारे देवीए अत्यन्त करगरीने नहिं बोलवानुं कारण पूछतां मुनि उंचे शब्दे देवीने ठपको देवा लाग्या के तारो नमस्कार अने तारी भक्ति जाणी लीधी, कारणके ब्राह्मणे मने आटलो उपसर्ग कर्या छतां पण तें कंइ निवारण न कर्युं, माटे हवेथी हु तने बोलावीश पण नहिं. आ प्रमाणे मुनिनु वचन सांभळी देवीए कह्युं के हे पूज्य! हुं ते वखते हाजर हती पण बन्ने जणने क्रोधाविष्ट देखवाथी तमो बेमां मुनि कोण? अने विप्र कोण? ते मने खबर पडी नहिं. आ जवाब सांभळी मुनि ते पापनी आलोचना करी संयममार्गमां स्थिर थया, ए प्रमाणे अन्य मुनिओए पण आक्रोशपरिषह सहन करवो.

१ दृष्टान्तः—श्रावस्तिनगरीना जितशत्रुराजाना पुत्र स्कंदक कुमारे श्री मुनिसुव्रतस्वामीनी धर्मदेशना सांभळी वैराग्यपामी दीक्षा लीधी ते वखते कुंभकार नगरमां दंडकीराजानो प्रधान पालक नामे हतो ते कोइ राजकार्यना कारणथी श्रावस्तिनगरीमां आवी राजसभामां जैनमुनिओनी निन्दा करवा लाग्यो-तेने राजसभामां स्कन्दक मुनिए निरुत्तर करवाथी अत्यन्त अपमान थयेलुं समजी मुनिपर द्वेष राखे छे हवे अनुक्रमे स्कन्दक मुनि बहुश्रुत थयेला ने योग्य जाणी स्कन्दकनी साथे दीक्षित थयेला ५०० मुनिओनो परिवार श्री सुव्रतप्रभुए स्कन्दकमुनिने सोंपी आचार्यपद आप्यु हवे ते ४९९ शिष्यो सहित स्कन्दकाचार्य पोताना बनेवी दन्डकी राजाना नगरे जवाने आज्ञा मागतां प्रभुए सर्वने मरणान्त उपसर्ग दर्शाव्यो ने पुनः पूछतां कह्यु के तारा विना सर्व आराधक थशे अने तुं विराधक थइश तेम सांभळ्या छतां पण स्कदकाचार्ये ५०० शिष्योनुं भलु थशे तोपण श्रेयस्कर छे एम विचारी दंडकी राजानो नगर बहार

बगीचामां आव्या ते वखते अभवी एवा पालक प्रधाने प्रथमनु अपमान संभारी ते बगीचामां हजारो छूपां शस्त्र दटावी राजाने कहेवा लाग्यो के हे राजन् मुनिपणुं दुष्कर लागवाथी आपनो साळो स्कंदक पांचसें सुभटोने साधु वेष पहेरावी आपनुं राज्य लेवा आवेल छे, अने ज्यारे आप वन्दना करवा जशो त्यारे तमने हणीने तमारुं राज्य लेशे, आ कथनमां जो तमारे खात्री जोइए तो तेओए पोताना निवास स्थानमां छूपां शस्त्र दाटयां छे ते देखाडुं पछी राजाए ते दाटेलां शस्त्र देखवाथी अत्यन्त क्रोधवाळो थइ सर्व मुनिओने बांधी पालकने कह्यु के आ सर्वने योग्य शिक्षा तारे हाथे करवी. बिलाडीने मळेला दूध सरखी आ आज्ञा सांभळतांज पालक प्रधाने घाणी तैयार करावी अनुक्रमे एकेक मुनिने घाणीमां घाली पीलवा लाग्यो ते वखते आचार्य पण ते मुनिने समाधि संभळावे छे जेथी दरेक मुनि समाधि पामी अन्तकृत केवली थइ मोक्षे जाय छे. हवे ४९८ शिष्यो पीलाइ रह्या बाद एक बालमुनिने पीलवो रह्या छे त्यारे सूरिए कह्युं के प्रथम मने पीलीने पछी आ बालमुनीने पीलजे कारणके मने कंइक राग होवाथी आ बाळमुनिनुं कष्ट मारी नजरे नहिं जोइ शकाय. छतां पण पालक पापीए सूरिने बधु दुःख उपजाववाना हेतुथी प्रथम बालमुनिने पील्यो, एथी आचार्यने क्रोधाग्नि व्याप्यो अने नियाणुं कर्युं के जो मारा तपनुं फल होय तो अहींथी काळ करीने हुं आखा देशनो नाश करनार थाउं. एम नियाणुं करता आचार्यने पण पालक पापीए घाणीमां घाली पीली नाख्या. आचार्य काळ करीने अग्निकुमार देवमां उत्पन्न थया, त्यां अवधिज्ञानवडे पोतानो पूर्वभव जाणी दंडकी राजाए आपेली आज्ञा अने पालक पापीनुं अघोर कृत्य जोइ अत्यन्त द्वेष आववाथी आ स्कंदक देवे दन्डकी राजानो आखो देश बाळीने भस्म कर्यो. ते आजे दंडकारण्य नामे ओळखाय छे. आ पालकने शास्त्रमां अभवी जीव कहेलो छे, ए प्रमाणे जेम ४९९ शिष्योए वध परिषह सहन कर्यो तेम अन्यमुनिओए पण वधपरिषह सहन करवो परन्तु स्कंदकाचार्यवत् चारित्रनुं मोक्षफळ हारी जवुं नहिं.

गृहस्थनी आगळ भीक्षा मागतां लज्जा न पामवी ते याचना परिषह. कह्युं छे के—" गोचरीए विचरता मुनिने गृहस्थनी आगळ हाथ धरवो युक्त नथी, एथी तो गृहवास श्रेष्ठ छे, एम मुनिए न चिंतवे " मुनिने दरेक वस्तु मागीनेज लेवानी होय छे, अने माग्या विना जमीन परथी एक तृणखंड के दांत खोतरवानी सळी पण उपाडाय नहिं, एवो मुनिनो आचार होवाथी मोटा गृहस्थोए या राजपुत्रोए दीक्षा लीधी होय अने पछी घेरेघेर मान अपमान सहन करतां भीक्षा मागवाने भमवुं पडे तो तेओने आ परिषह विशेष होय छे. कारणके जे राजाओ अने धनवानो गृहस्थपणामां अनेक परजीवोने दान आपी उद्धार करनार हता ते राजाओ अने धनवानोने दीक्षा लीधा बाद बीजानी आगळ हाथ लांबो करवो पडे अने कदाच अपमानादि करे तो ते पण सहन करवु पडे ए तेओने दुष्कर होय छे माटे उत्तम वैराग्यवाळाए एम न विचारवु के हुं बीजानी आगळ हाथ केम धरु ? ए याचना परिषह सहन कर्यो कहेवाय,

---

अवतरण—२२ परिषहमांथी पूर्व गाथामां १४ परिषह कह्या अने हवे आ गाथामां शेष रहेला ८ परिषह कहे छे.

---

१ - दृष्टान्त-कृष्णवासुदेवना भाइ बळभद्रमुनिए चारित्र लीधाबाद पोताना रुपथी स्त्रीओने मोह पामती जोइ पोते वनमाज रहेवा लाग्या अने नगरमां नहिं आववानो अभिग्रह कर्यो, त्यां वनमां आवेला सुतारनी पासेथी तेओ गोचरी ग्रहण करता हता, परन्तु हुं त्रण खण्डनो मालिक होइ ने आ सुतारनी आगळ भिक्षा केम मागुं ? एवो लेश पण विचार आवतो नहिं. तेथी जेम आ बळभद्रमुनिए याचनापरिषह सहन कर्यो तेम अन्य मुनिओए पण याचना परिषह सहन करवो.

॥ मूल गाथा २८ मी. ॥

अलाभरोगतणफासा, मलसक्कारपरीसहा ।
पन्ना अन्नाण सम्मत्तं, इअ बावीस परीसहा २८

॥ संस्कृतानुवादः ॥

अलाभरोगतृणस्पर्शों, मलसत्कारपरिषहौ
प्रज्ञाऽज्ञानसम्यक्त्वा, न्येतानि द्वाविंशति परिषहाणि॥२८॥

॥ शब्दार्थ ॥

अलाभ–अलाभ परि०	पन्ना–प्रज्ञापरि०
रोग–रोगपरि०	अन्नाण--अज्ञान परि०
तणफासा–तृणस्पर्श परि०	सम्मत्त—सम्यक्त्व परि०
मल—मलपरि०	इय—ए
सक्कार सत्कार परि०	बावीस—बावीश
परिसहा—परिषह	परिसहा–परिषह छे,

गाथार्थः—अलाभपरि०—रोगपरि०–तृणस्पर्शपरि०–मल-परि०--सत्कारपरि०–प्रज्ञापरि०–अज्ञानपरि०–सम्यक्त्व परि० ए २२ परिषह (ते संवर तत्त्व) छे.

विस्तरार्थः—याचेली (मागेली) वस्तुनी प्राप्ति न थाय तो उद्वेग न करवो पण लाभान्तराय कर्मनो उदय विचारवो ते अलाभपरिषह.

---

१ दृष्टान्त— एक वखते दुःशिक्षितअश्वनी प्रेरणाथी बळदेव -कृष्ण दारुक अने सत्यक ए चारे जण महा अटवीमां आवी पड्या. त्यां रात्री पडवाथी एकेक जणने पहेरगीर नीमी वड-नी नीचे सूता, तेटलामां कोइक पिशाचे आवी पहेरो भरता

दारुकने कह्युं के जे वणे जण सुता छे तेओनुं हुं भक्षण करीश. अने तुं जो तेओनुं रक्षण करनार होय तो मारी सामे युद्ध करवा तैयार था. दारुके युद्ध करवानु अंगीकार करी पिशाचनी साथे युद्ध करवा मांड्युं पण पिशाचने जीतवो अशक्य जाणी अत्यन्त क्रोधायमान थयो, हवे अहिं दारुक जेम जेम कोप करतो जाय छे तेम तेम कोपरूप पिशाच पण पोतानुं शरीर वधारतो जाय छे, ए प्रमाणे वारंवार शरीर वधारता पिशाचनी सामे युद्ध करीने हाथ पग पण छोडाइ गया छे ते दरम्यां एक प्रहर पूर्ण थवाथी सत्यकने उठाडी पोते सूइ गयो. सत्यकने पण तेवी रीते युद्ध करतां पोताने जेम जेम कोप व-धतो जाय छे तेम तेम पिशाच शरीर वधारतो जाय छे. ने युद्धमां जीत मळती नथी. ए प्रमाणे करतां बीजो प्रहर पूर्ण थवाथी बळदेवने उठाडी सत्यक सुइ गयो. बळदेवे पण क्रोध-सहित तेवीरीते युद्ध करवाथी विजय नहिं मळतां त्रीजो प्रहर पूर्ण थये कृष्णने उठाडीने पोते सुइ गयो. कृष्णनी साथे पण पिशाच युद्ध करे छे, ते वखते कृष्णना मनमां घणो संतोष उ-पज्यो के हुं वासुदेवनीसाथे आवुं युद्ध करनार आ जबरो मल्ल कोण हशे ? कारणके शूरवीर पुरुषोनी सामे शूर पुरुष युध्ध करनार होय तो तेओ घणा खुशी थाय छे. तेथी कृष्णवासुदेव जेम जेम सन्तोष पामे छे तेम तेम आ पिशाचनु शरीर घटतुं जाय छे अने ए प्रमाणे वासुदेवना सन्तोषथी पिशाच घटतो घटतो तद्दन बारीक थइ गयो जेथी कृष्णे ते सूक्ष्मरूप वाळा पिशाचने पोतानी नाभीमां राखी मूक्यो, हवे प्रभात थ-तां कृष्णे सर्वने छोलायला हाथ पगवाळा देख्या अने पूछ्युं त्यारे रात्रीनी बनेली सर्व हकीकत कही त्यारपछी कृष्णे ना-भीमांथी ते पिशाचने बहार काढी देखाडी कह्युं के रात्रे जे आव्यो हतो ते कोप-क्रोध पिशाच हतो. एनी साथे तमो कोप करी युद्ध करवा लाग्या तेथी ए कोप पोतानी देह वधारतो गयो कारणके कोपवडे कोप वृद्धि ज पामे छे, अने तेथी तमो पराभव पाम्या, अने में सन्तोष अने शान्तताथी

शरीरे उत्पन थयेला रोगने सम्यक् प्रकारे सहन करवो पण उद्वेग करवो नहिं ते रोगपरिषह कहेवाय. अहिं जिनकल्पी मुनि होय तो थयेला रोगने निवारवानो औषधादि उपाय न करे, अने स्थविरकल्पी मुनि कोइक अवश्य कारण होय तो औषधादि करावे अन्यथा सम्यग् प्रकारे सहन करे

युद्ध कर्युं माटे आ कोप पिशाच सूक्ष्म थइ गयो कारणके कोप क्षमावडे ज जीताय छे. ए प्रमाणे कृष्णे पिशाचमूर्त्तिवाळा कोपने जेम शान्तिथी जीत्यो तेम मुनिओए अलाभपरिषहने पण शान्तिथी जीतवो

१ दृष्टान्त—सनत्कुमार चक्रवर्तिनुं एवुं अलौकिक रूप हतुं के जे रूपनी प्रशंसा सौधर्मेन्द्रे इन्द्रसभामां करवाथी बे देव रूपनीपरीक्षा करवा आव्या ने रूप देखी अति आश्चर्य पाम्या, पण ते वखते चक्रवर्ति स्नान करता हता तेथी विप्ररूप धारी देवोने गर्वथी राजसभामां रूप देखवा आववानुं कह्यु देवो ए राजसभामां आवी रूप देखी मस्तक हलावतां कारण पूछवाथी देवोए कह्यु' के जे रूप स्नान करवानी तैयारी वखते हतुं ते रूप हवे रह्युं नथी ने शरीरमां अनेक रोग उत्पन्न थया छे तेनी खात्री माटे राजाए पान खाधेलुं थुंकतां उपर बेठेली माखी मरण पामी जोइ राज्य अने देहनी असारता चिंतवतां वैराग्य वृद्धि पाम्याथी चारित्र अङ्गीकार करी अनेक प्रकारना तपथी मोटी लब्धिओ उपार्जन करी पण शरीर कुष्ठादि अनेक रोगवडे व्याप्त थइ गयुं. सनत्कुमार राजर्षिए अभिग्रह कर्यो के चक्षु वर्जीने कोइ पण अङ्गना रोगनी चिकित्सा न करवी. आ दृढ अभिग्रहनी प्रशंसा सौधर्मेन्द्रे इन्द्रसभामां करवाथी पुनः अश्रद्धावाळा बे देव वैद्यनुं रुप लइ सनत्कुमार मुनि पासे आवी रोगनी चिकित्सा करवा कह्युं त्यारे मुनीश्वरे कह्यु के हे वैद्यो ! तमो जो भावरोगनी (=कर्मनी) चिकित्सा करी जाणता हो तो मारे कराववी छे. नहिंतर आ द्रव्यरोगनी चिकित्सा तो हुं पण करी जाणुं छुं एम कही पो

दर्भादि घास वगेरेना संथारापर शयन करनार मुनिने घास नी अणीओ वगेरे वागे तेने सम्यक् प्रकारे सहन करवी ते तृण-स्पर्श परिषह कहेवाय. कह्युं छे के वस्त्ररहित (-अति अल्प अने जीर्णवस्त्रवाळा) रूक्ष देहवाळा एवा तपस्वीमुनिने घासना संथारा पर सूतां देहपीडा थाय, अने ते उपर पुनः तडको पडवाथी घणी वेदना थाय छतां घासना वागवावडे पीडा पामेला मुनि व-स्त्रनी इच्छा न करे (आ जिनकल्पनी अपेक्षाए छे, अने स्थविर कल्पी नो वस्त्र राखे पण खरा.)

तानुं थुक पोतानी आंगळीए लगाडतां ज ते आंगळी सुवर्णसरखी कान्तिवाळी थइ ते वैद्योने दर्शावी. इत्यादि अनेक रीते वैद्योए प्रपंच कर्या छतां पण मुनिए रोगनी चिकित्सा नहिं कराववा-थी बन्ने देवो तुष्ट थइ प्रत्यक्ष स्वरूपे प्रगट थया, अने सौध-र्म सभामां थयेली प्रशंसानी अश्रद्धाथी अमो परीक्षा करवा आव्या छे, एम जणावी अत्यन्त खुशी थइ स्वस्थाने गया.

ए प्रमाणे श्री सनत्कुमार चक्रवर्तिमुनिए जेम रोगपरिषह सहन कर्यो तेम अन्य मुनिओए पण रोगपरिषह सहन करवो. (अहिं उत्तराध्ययनमां कालवैशिक मुनिनी कथा कहीछे. परन्तु तेने बदले मे अहिं सनत्कुमार चक्रवर्तिमुनीनी कथा कही छे)

१ दृष्टान्त:—श्रावस्ति नगरीना जितशत्रुराजाना पुत्र भद्र-कुमारे दीक्षा अङ्गीकार करी बहुश्रुत थइ एकाकी विहारप्रतिमा अङ्गीकार करी कोइक बीजा राज्यमां गया त्यां राजपुरुषोए कोइक चोर वा बातमीदार जाणी तुं कोण छे इत्यादि पूछतां जवाब नहिं मळवाथी तीक्ष्ण शस्त्रो वडे मुनिनु शरीर छोली ते पर खार छांट्यो छतां पण भद्रमुनि जेम समाधिध्यानमां रह्या तेम अन्य मुनिओए पण भद्रमुनिवत् तृणस्पर्श परिषह सहन करवो.

शरीरे मल वगेरे उत्पन्न थाय तो तेनी दुगंछा न करतां सम्यक् प्रकारे सहन करवो ते मल परिषह. मुनिने स्नान दातण वगेरे अंगविभूषा करवानो अधिकार नहिं होवाथी दांत अने शरीरे मेल-प्रस्वेद वगेरेनी उत्पत्ति थाय छे, परन्तु तेनो तिरस्कार करी मेल साफ करवाने स्नान के दातण वगेरे न आचरे पण सम्यक् प्रकारे सहन करे ते मलपरिषह कहेवाय.

बीजो माणस मुनिने अत्यंत मान सत्कार आपे तो पण गर्व न आणे ते सत्कारपरिषह.

---

१ दृष्टान्त—चम्पानगरीमां सुनन्द नामनो वणिक दरेक मुनिओने विना मूल्ये औषध आपेछे. एकवार मुनिना शरीरनो मल देखीने विचार कर्यो के आ मुनिओनो आचार सर्व रीते ठीक छे पण स्नानादि न करवुं ते ठीक नथी इत्यादि अति अशुभ चिंतवन कर्युं ने ते काळक्षये मरण पामी कौशाम्बी नगरीमां श्रेष्ठीपुत्र थयो त्यां दीक्षा अंगीकार करी, ते वखते मुनिपणामां पूर्वकर्मनो उदय थवाथी शरीर महादुर्गंधमय थयुं ने ते मुनिना शरीरनो वायु पण कोइ सहन करी शके नहिं. मुनिओ पण तेने नगरमां फरवाथी शासननी निंदा थाय धारी नगरमां भिक्षा लेवा मोकलता नथी. आखरे ते मुनिए कटाळी शासनदेवीने आराधी पोतानुं शरीर एवुं सुगन्धीदार कराव्युं के बीजाओ ते देहनो सुगन्धी लइने कस्तूरीनो पण परवा करता नथी. परन्तु नगरमां एवी अफवा फेलाइ के आ मुनि निरन्तर सुगन्धी द्रव्योथी पोतानुं शरीर वासित करे छे. एवो अपवाद सांभळी पुनः शासनदेवी आराधी पोतानुं शरीर प्रथमवत् दुर्गन्धमय कराव्युं जेम आ मुनिए मलपरि० सहन न कर्यो तेम अन्य मुनिए न करवुं.

२ ए परिषहनुं द्रष्टान्त उत्तराध्य०मां छे, पण कारणसर अत्रे दर्शाव्युं नथी.

अतिशय ज्ञाननो गर्व न करवो ते प्रज्ञापरिषह.

अज्ञानता होवाथी अज्ञानतानो खेद न करवो पण ज्ञानावरणकर्मनो उदय विचारी बनता प्रयत्ने ज्ञानमां उद्यम करवो ते अज्ञानपरिषह.

---

२ दृष्टान्त.—पूर्वधर श्री कालिकाचार्य शिष्योना अविनयथी कंटाळीने सागराचार्य पासे आव्या पण सागराचार्यें नहि ओळखवाथी उभा न थया अने तमो आ भण्या छो ? आनो अर्थ न जाणता होय तो सांभळो इत्यादि बुद्धिना गर्वथी पोते बुद्धिशाळी छे एम जणाववाने शिष्यो आगळ विशेष अर्थ विस्तार कालिकसूरि सांभळे तेवी रीते करे छे. केटलेक दिवसे कालिकाचार्यना शिष्यो गुरुने शोधता त्यां आव्या जेथी सागराचार्यने खबर पडवाथी श्री कालिकसूरी पासे अपज्ञानी क्षमा मागी, ते वखते बुद्धिनो मद उतारवा माटे श्री कालिकसूरी ए नदीमांथी एक प्यालो रेती लावी एक स्थाने ढगली वाळी ए प्रमाणे घणीवार करतां रेती ओछी आछी थतां अति अल्प रेती रही त्यारे कह्युं के हे सागर ! सर्वज्ञनुं ज्ञान नदीनी रेती जेटलुं छे तेमांथी प्याला रेती जेटलुं ज्ञान गणधरोए ग्रहण कर्युं ने त्यारबाद शिष्यपरंपराए घटतुं घटतुं ज्ञान आवतां आ काळमां आटलुं ज ज्ञान रह्युं छे तो बुद्धिनो मद शुं करवो इत्यादि उपदेश आपी सागराचार्यनो बुद्धिमद टाळ्यो. अहिं जेम कालिकाचार्य पूर्वधर छतां पण ज्ञानना गर्वरहित होवाथी प्रज्ञापरिषहने जीतनार हता तेम अन्यमुनीए पण प्रज्ञापरिषह जीतवो पण सागराचार्यवत् प्रज्ञापरिषहने तावे न थवुं.

२ पूर्वे बांधेल ज्ञानावरण कर्मनो उदय थवाथी कोइक मुनिने मा रुष—मा तुष एटला शब्दो पण शुद्ध नहि आवडवाथी मासतुष शब्द गाखवा लाग्या जेथी तेमनुं नाम पण मासतुष मुनि प्रसिद्ध थयु तेओए पण १२ वर्ष सुधी एज शब्द विना खेदे गाखी ज्ञानाव० कर्मनो उदय विचारी आत्मचिंता करतां

तथा अनेक उपसर्ग–कष्ट प्राप्त थया छतां पण सर्वज्ञोक्त धर्म उपरनी श्रद्धा न फेरववी अने मिथ्या आचरण न आचरवुं त सम्यक्त्वपरिषह,

१२ वर्षे केवलज्ञान उपार्जन कर्युं तेम अन्यमुनिए पण अज्ञानपरिषह सहन करवो

१ दृष्टान्तः--आर्य आषाढाचार्ये दरेक शिष्योने समाधिमरण करावी कह्युं हतुं के तमो देवपणे उत्पन्न थाओ तो मने एकवार मलवा आवजो परन्तु कोइपण शिष्य देवपणे उत्पन्न थया बाद मलवा आव्यो नहिं जेथी आचार्यने शंका थइ के कोण जाणे देवलोक छे के नहिं. अने जो न होय तो आटली कष्ट क्रियाओ व्यर्थ शामाटे करवी ? एवो विचार आववाथी धीरे धीरे आचार्य चारित्रमां मन्द थया अने आरंभसमारंभमां पण प्रवर्तवा लाग्या. पछी छेल्ली वखते मरणपामेला शिष्ये देवपणामां पोताना गुरुने पतित परिणामी जोइ उद्धार करवाना विचारथी अनेक मायाओ रची उपदेश आपी चारित्रमांने श्रद्धामां स्थिर कर्या ए सम्बन्धि अधिक वर्णन उत्तरा०थी जाणवुं ए प्रमाणे आषाढाचार्यनी माफक अन्यमुनिए न वर्तवुं पण अनेक उपसर्ग आवतां पण श्रद्धामां अडग रहेवुं.



२२ परिषहमां कर्मोदय अने गुणस्थान,

परिषहनां नाम.	कया कर्मना उदयथी	कये गुणस्थाने
क्षुधा-पिपासा-शीत-उष्ण-दंश-चर्या-शय्या मल-वध-रोग-तृणस्पर्श (११)	वेदनीय	१ थी १३ सुधी.
प्रज्ञा	ज्ञानाव०ना क्षयोपशमथी	१ थी १२
अज्ञान	ज्ञानाव०	”
सम्यक्त्व	दर्शन मोहनीय	१
अलाभ	लाभान्तराय	१ थी १२
आक्रोश-अरति-स्त्री नैषेधिकी--अचेल--याचना-सत्कार	चारित्र मोहनीय	१ थी ९ सुधी.

अहिं शीत-उष्ण. अने चर्या-नैषेधिकी ए बे द्विकमां शीत होय तो उष्ण न होय, चर्या होय तो नै० न होय पम कोइपण विरोधी एकेक परिषहना अभावथी एक जीवने समकाळे २० परिषह १ थी ९ गुण० सुधी. १०थी १२ सुधीनाने १२ परिषह अने स-योगिकेवलिने ९ परिषहनो उदय समकाळे होय अने सामान्यतः अनुक्रमे २०-१४-११ परिषहनो उदय होय.

अवतरण—आ गाथामां संवरतत्त्वमां कहेला १० यति धर्म (साधु धर्म) कहेवाय छे.

॥ मूळ गाथा २९ मी, ॥

खंती मद्दव अज्जव, मुत्ती तव संजमे अ बोधव्वे ।
सच्चं सोअं आकिंचणं च बंभं च जइधम्मो ॥२९॥

संस्कृतानुवादः

क्षान्तिर्मार्दव आर्यवो, मुक्तिः तपः संयमश्च बोद्धव्यः ।
सत्यं शौचमाकिंचनं च ब्रह्म च यतिधर्मः ॥ २९ ॥

शब्दार्थः

खंती–क्षमा धर्म	बोधव्वे -जाणवो
मद्दव-मार्दव धर्म(निरभिमानता)	सच्चं--सत्यधर्म
अज्जव- आर्यवधर्म (सरळता)	सोअं--शौचधर्म
मुत्ती--निर्लोभता	अकिंचण- अपरिग्रहधर्म
तव--तप	बंभं—ब्रह्मचर्य
संजमे--संयम	जइधम्मो--साधुनो धर्म
अ--वळी	

गाथार्थः—क्षमा–निरभिमानता–सरळता–निर्लोभता तप–संयम--सत्य--शौच--अपरिग्रह--अने ब्रह्मचर्य ए १० प्रकारनो साधुधर्म (ते संवरतत्त्व) छे.

विस्तरार्थः— १० यतिधर्मथी आवता कर्मोनुं रोकाण थाय छे ते.१० यतिधर्म आ प्रमाणे—

१ खंति—क्षमा एटले छतिशक्तिए पण कष्ट सहन कर-

वानो स्वभाव ते क्षमा अर्थात् सहनशीलता कहेवाय. त्यां क्षमा ५ प्रकारनो छे ते आ प्रमाणे-कोइए आपणुं कांइ बगाड्या छतां आ मारो उपकारी छे माटे एनापर क्रोध करवो युक्त नहिं एम विचारीने जे सहनशीलता धारणकरवी ते उपकारक्षमा, जो एनी साथे हुं क्रोध करीश तो ए मारुं कांइ बगाडशे एवा अभिप्रायथी अने पोतानामां सामे थवानी शक्ति नथी तेथी निर्बळताने अंगे सहनशीलता धारण करवी ते अपकारक्षमा, कर्मादिकना भयथी सहनशीलता राखे ते विपाकक्षमा, कोइना वचनथी दुभाय नहि, अने कोइने आकरु वचन कहे नही ते वचनक्षमा, अने आत्मानो धर्मज क्षमा छे एम शिक्षा करवानी शक्ति छतां पण विचारी सहनशीलता राखे ते धर्मक्षमा एज सर्वथी श्रेष्ठ छे ने एवीज क्षमा राखवी जोइए. कदाच आ क्षमा न आवे तो पण पूर्वोक्त चार क्षमाओमांनी पण कोइएक क्षमा राखवीज जोइए.

२ अज्जव-आर्जव एटले सरळता अर्थात् कपटरहितपणुं ए पण संवरमार्ग छे. ज्यांसुधी मनुष्यना मनमां कोइपण वातनो दंभ-कपट रहेल होय त्यांसुधी आत्ममार्ग शुद्ध थाय नहिं माटे दंभनो त्याग करी सरळता राखवी ते आर्जवधर्म कहेवाय.

३ मद्दव-मार्दव एटले अभिमाननो त्याग करवो. ज्यां सुधी अभिमान होय छे त्यां सुधी कषायनी प्रबळता रहे छे तेथी मोक्ष मार्ग साधी शकाय नहिं माटे मुमुक्षुए निरभिमानता राखवी.

४ मुक्ति-मुक्ति एटले निर्लोभता अर्थात् कोइपण इष्ट पदार्थमां के विषयमां तृष्णा-आसक्ति न राखवी तेमुक्तिधर्म कहेवाय.

५ तव-तप एटले इच्छानिरोध करवो ते. आ धर्म निर्जरा तत्त्वमां आवे छे छतां संवरतत्त्वमां केम कह्यो ? तेनुं कारण ए छे के सर्व क्रियाओमां एवो तप उत्तम छे के जेनाथीसंव

र अने निर्ज्जरा बन्ने थाय छे. तेमां पण मुख्यत्वे निर्ज्जरा विशेष थती होवाथी निर्ज्जरा तत्त्वमां तपनेज मुख्य गण्यो अने अहिं तपथी संवर पण थाय छे एम सिद्ध करवा तप धर्म पण कह्यो ए तपधर्म १२ प्रकारनो छे ते आगळ कहेवाशेः

संजमे—संयम एटले पंचमहाव्रत-पांच अणुव्रत-इत्यादि अङ्गीकार करवुं ते संयमधर्म कहेवाय. ए संयम धर्म ५ व्रत-५ इन्द्रियनो निग्रह-४ कषायनो जय-अने ३ दंड (-मन-वचन-कायाना अशुभ व्यापार) नी निवृत्ति एम १७ प्रकारनो छे.

७ सच्चं-सत्य अर्थात् प्रिय-हितकारी-अने साचुं ए त्रण विशेषणवाळुं जे वचन बोलवु ते सत्यवचन कहेवाय अथवा लीधेली शुभप्रतिज्ञा पाळवी ते पण सत्यवचन कहेवाय.

८ सोअं-शौच एटले पवित्रता राखवी. त्यां दातण-स्नान -मज्जन इत्यादि द्रव्यशौच.अने अध्यवसायनी परिणति शुभराखवी ते भावशौच कहेवाय. तेमां ग्रहस्थने बन्ने प्रकारनां शौच होय छे, अने मोक्षमार्गाभिमुखी मुनिने मुख्यत्वे भावशौच होय छे, कारणके दातण-स्नान-मज्जनादि देहनी पवित्रता ने टापटीप ते सर्व शृंगारिक विषय होवाथी सर्व ब्रह्मचारी एवा मुनिमार्गमां ते देहनी टापटीपनो अवकाशज न होय ने जो तेम थवा पामे तो मुनि पण श्रंगारी विषयमां रक्त थइ संसारी जेवाज थइ जाय. माटे मुनिओने दातण स्नानादि अंगसंस्कार वर्ज्य छे,

९ अकिंचणं--एटले आकिंचन धर्म. एमां अ-नहिं अने किंचण-कंइपण, अर्थात् कंइपण जातनो परिग्रह नहिं ते अकिंचन (अने तद्धितमां आकिंचन) कहेवाय अर्थात् कोइपण जातनो परिग्रह संबन्धी सर्व उपाधीओ दूर थवाथी मोक्षमार्ग सुखे

साधी शकायछे, माटे अकिंचन धर्म ते संवर रूप छे, (परिग्रहना नवप्रकार प्रथम दर्शाव्या छे.)

१९ बंभं—ब्रह्म अर्थात् ब्रह्मचर्य. एटले विषय वासनानो सर्वथा त्याग करवो ते संवररूप छे, एना १८ भेद प्रथम दर्शाव्याछे.

ए १० प्रकारना यतिधर्म—साधुधर्म कह्या, परन्तु यथायोग्य-पणे ए दशे धर्म अमुक अमुक अंशे गृहस्थने पण अङ्गीकार करवा योग्य छे. एमां प्रथमना चार धर्म ते चार कषायना विजयरूप छे, कारणके क्रोधनो जय ते क्षमा, माननो जय ते मार्दव, मायानो जय ते आर्जव, अने लोभनो जय ते मुक्ति धर्म कहेवाय, अहिं मार्दवशब्द मृदु (—कोमळता) ना भाववाळो अने आर्जव श-ब्द ऋजु (—सरळता) ना भाववाळो छे. अर्थात् एमां मूळ शब्द मृदु अने ऋजु परथी मार्दव ने आर्जव शब्द थया छे,

---

अवतरण—आ गाथामे विषे संवरतत्त्वमां आवेली १२ भा-वनाओमांनी ९ भावनाओ कही छे.

॥ मूळ गाथा ३० मी, ॥

पढममणिच्चमसरणं, संसारो एगया य अन्नत्तं ।
असुइत्तं आसव संवरो य तह निज्जरा नवमी ॥३०॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

प्रथममनित्यमशरणं, संसार एकता चान्यत्वं ।
अशुचित्वमाश्रवः संवरश्च तथा निर्जरा नवमी ॥३०॥

॥ शब्दार्थः ॥

पढमं–प्रथम	असुइत्तं- अशुचित्वभावना
अणिच्चं–अनित्यभावना	आसव–आश्रवभावना
असरणं–अशरणभावना	संवरो संवरभावना
संसारो–संसारभावना	य तह—तथा वळी
एगया एकत्वभावना	निज्जरा—निर्जराभावना
अन्नत्तं- अन्यत्वभावना	नवमी—नवमी

गाथार्थः—प्हेली अनित्य भावना, बीजी अशरणभावना त्रीजी ससारभावना, वळी चोथी एकत्वभावना, पांचमी अन्यत्वभावना, छठ्ठी अशुचित्वभावना. सातमी आश्रवभावना, तथा आठमी संवरभावना, अने नवमी निर्जराभावना

विस्तरार्थः—लक्ष्मी–कुटुंब–यौवन–शरीर–द्रव्यपदार्थो –सुख इत्यादि सर्वभावो क्षणमां उत्पन्न थइ क्षणमां विनाश पामनाराछे इत्यादि अस्थिरता-अनित्यतानुं चिंतवनकरवुंने प्हेलीअनित्यभावना.

दुःख वखते अने मरण वखते राजा–चक्रवर्त्ति के पोतानां सगां व्हालां–तेमानुं कोइपण शरण थाय तेम नथी दुःख पण पोताने भोगववानुं छे, अने आवेला मरणने पण रोकवा कोइ समर्थ नथी इत्यादि चिंतववुं ते बीजी अशरण भावना

माता होय ते स्त्री थाय, पुत्र पिता थाय, पिता होय ते पुत्र थाय इत्यादि प्रत्येक जीव आ संसारभ्रमणमां प्रत्येक संबंधवाळो अनन्त वखत थाय छे. इत्यादि चिंतववुं ते संसारभावना,

आ जीव संसारमां एकलो आव्यो छे, एकलो जवानो छे, अने सुखदुःखादि पण एकलोज भोगवनार छे, परन्तु कोइ सहायक के साथे थवानुं नथी इत्यादि रूपे चिंतववुं ते एकत्वभावना.

शरीर–धन–कुटुंब इत्यादि अन्य छे, अने आत्मा अन्य पदार्थ छे, पण शरीरादि ते हुं आत्मा नथी इत्यादि चिंतववुं ते अन्यत्वभावना,

आ शरीर रस–रुधिर–मांस–मेद अस्थि–मज्जा–ने शुक्र ए सात अशुचिमय धातुओनुं बनेलुं छे पुरुषना शरीरमां ९ द्वार (२ चक्षु-२ कान-२ नाक-१ मुख-१ गुदा-१ लिंग) सदाकाळ अशुचिथी वह्या करे छे, अने स्त्रीनां १२ द्वार (२ स्तन ने १ योनि अधिक कारणके योनि बे होय छे,) निरन्तर अशुचीथी वह्या करेछे, वळी अत्तरादिसरखा सुगंधी अने शुचीपदार्थों पण आ अशुची देहना संगे अशुची रूप थाय छे, एवी उपरथी सुन्दर देखाती पण अवळो करीने देखे तो त्रास उपजावती आ देह उपर ममत्व भाव शुं ! इत्यादि चिंतववु ते छट्ठी अशुचीभावना.

मिथ्यात्व–अविरति–कषाय–ने योग ए चार हेतुओमांना कोइपण एक अथवा अनेक हेतुए कर्मनो आश्रव (आगमन) थाय छे. अने ज्यां सुधी कर्मनो आश्रव चालु छे, त्यां सुधी आ आत्मा सर्वथा स्वस्वरूप प्रगटाववा समर्थ नथी इत्यादि चिंतवन करवुं ते ७ मी आश्रवभावना. छे

समिति–गुप्ति–परिषह–यतिधर्म–भावना–ने चारित्रवडे नवा आवता कर्मनुं रोकाण थाय छे. इत्यादि स्वरूप चिंतववुं ते आठमी संवर भावना:

छ प्रकारना बाह्य तपथी अने ६ प्रकारना अभ्यन्तर तपथी कर्मनी निर्जरा (धीरे धीरे क्षय) थाय छे. इत्यादि चिंतववु ते नवमी निज्जराभावना छे,

——— ० ———

अवतरण—आ गाथामां बाकी रहेली ३ भावनाओ कहेवाय छे.

॥ मूळ गाथा ३१ मी. ॥

लोगसहावो बोही, दुल्लहा धम्मस्स साहगा अरिहा ।
एआओ भावणाओ, भावेअव्वा पयत्तेणं ॥ ३१ ॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

लोकस्वभावो बोधि, दुर्लभा धर्मस्य साधका अर्हतः ।
एता भावना, भाव्याः प्रयत्नेन ॥ ३१ ॥

॥ शब्दार्थः ॥

लोगसहावो--लोकस्वभावभावना	अरिहा- अरिहंत
बोही--सम्यक्त्वभावना	एआओ--ए सर्व
दुल्लहा--दुर्लभ	भावणाओ- भावनाओ
धम्मस्स--धर्मना	भावेअव्वा--भाववी
साहगा--साधनारा	पयत्तेणं- प्रयत्नवडे

गाथार्थः—१० मी लोकस्वभावभावना. ११ मी बोधिदुर्लभभावना अने १२ मी धर्मना साधक अरिहन्त भगवन्त पण दुर्लभ छे एवी भावना (अर्थात् धर्मभावना अथवा अरिहन्त दुर्लभ भावना) ए १२ भावनाओ प्रयत्न पूर्वक भाववी (ते संवर कर्मने रोकनार छे,

विस्तरार्थः—आ लोक ६ द्रव्यथी भरेलो छे, तेनो आकार केडे हाथ दइने उभेला जामावाळा पुरुष सरखो छे. अधोलोकमां सात नरक—१० भुवनपति-ने ८ व्यन्तर देवोनी वस्ती छे, ने ते

उंधा वाळेला कोडीआ सरखा आकारनो छे, मध्यलोक गोळ थाळी सरखो १८०० जोजन जाडो ने १ राज लांबो प्होळो छे ने तेमां मनुष्य तिर्यंचनी तथा ८ वाणव्यन्तर पांच ज्योतिषीनी वस्ती तथा असंख्य द्वीप समुद्रवाळो छे ऊर्ध्वलोक उभी करेली मृदंगना आकारवाळो छे. ने तेमां २६ वैमानिक देवोनी वस्ति छे, लोकाग्रे सिध्ध शिलापर शिद्ध परमात्माओ रहे छे, सर्व लोक १४ रज्जु प्रमाण उंचो ने लंबाइ प्होळाइमां नीचे सात राज ने ब्रह्मलोकने स्थाने पांच राज प्रमाण छे, लोकना मध्यमां १४ राज उंची ने १ राज लांबो प्होळी भुंगळी सरखी त्रस नाडीमांज त्रस जीवोनी वस्ती छे, शेष सर्वत्र पांच स्थावर जीवोनी वस्ति छे, लोकने कोइए बनाव्यो नथी के कोइए धरी राख्यो नथी परन्तु स्वभावतः छे. इत्यादि १४ राजलोकनुं स्वरूप चिंतववुं ते लोकस्वभावभावना छे,

जीवने संसारमां भमतां अनन्त काळ थयो ते दरम्यानमां अनन्तवार राजऋद्धि वगेरे सर्व वस्तु पाम्यो, परन्तु सम्यक्त्व (-शुद्धदेव--गुरु धर्मनो श्रद्धा) प्राप्ति थइ नहिं,कारणके सम्यक्त्व प्राप्ति थवो आ जीवने महा दुर्लभ छे, वळी जीवने वैराग्यादि कारणथी द्रव्य चारित्र पण प्राप्त थाय छे, अनेक प्रकारनी कष्टक्रियाओ पण सुलभ थाय छे, परन्तु शुद्ध श्रद्धा थवी महा दुर्लभ थाय छे, इत्यादि स्वरूप चिंतववु ते बोधिदुर्लभभावना,

हवे कदाच महा कष्टे शुद्ध श्रद्धा थाय छे तो ते शुद्ध श्रद्धापूर्वक अरिहन्तनो कहेलो हेय ने उपादेयरूप श्रावकधर्म आचरवो महा मुश्केल छे, कह्युं छे के कथनो कथे सब कोय--रहणी अति दुर्लभ होय, इत्यादि स्वरूप चिंतववुं ते धर्मदुर्लभभावना

ए उपर कहेली १२ भावनाओ प्रयत्नपूर्वक भाववी (चित-

थी) के जेथी नवां आवतां कर्मोनुं रोकाण थाय.

अवतरण—आ गाथामां संवरतत्त्वमां आवेलां पांच चारित्रोमांनां चार चारित्र कहे छे.

॥ मूळ गाथा ३२ मी. ॥

सामाइअत्थपढमं, छेओवट्ठावणं भवे बीअं।
परिहारविसुद्धीअं, सुहुमं तह संपरायं च ॥ ३२ ॥

॥ संस्कृतानुवादः ।

सामायिकमथ प्रथमं, छेदोपस्थापनं भवेद् द्वितीयं ।
परिहारविशुद्धिकं, सूक्ष्मं तथा सांपरायिकं च ॥ ३२ ॥

॥ शब्दार्थः ॥

सामाइअ—सामायिक चारित्र	परिहारविसुद्धीअं--परिहार विशुद्धि चारित्र
अत्थ—अथ--हवे	सुहुमं--सूक्ष्म
पढमं- पहेलुं	तह--तथा
छेओवट्ठावणं-छेदोपस्थापनचारित्र	संपरायं--संपराय
भवे--छे	च--वळी
बीयं--बीजुं	

गाथार्थः—हवे १ लुं सामायिक चारित्र, अने बीजुं छेदोपस्थापन चारित्र छे. तथा त्रीजुं परिहारविशुद्धी, अने ४ थुं सूक्ष्मसंपराय चारित्र छे.

विस्तरार्थः—हवे आ गाथामां पांच प्रकारनां चारित्र कहेछे सम-एटले ज्ञान--दर्शन--चारित्रनो आय- लाभ ते समाय अने

तेनो तद्धित प्रत्यय लागतां **सामायिक** एटले जेनावडे अथवा जे ज्ञान-दर्शन—चारित्रनो लाभ ते, अर्थात् सामायिक एटले सर्व सावद्यव्यापारना त्यागरूप सर्वविरतिचारित्र कहेवाय, अहिं जोके पांचे प्रकारनां चारित्र परमार्थथी सामायिकरूप छे. तोपण कंइक जातना फेरफारवडे पांच जुदा जुदा नाम पाडेला छे. त्यां प्रथम दीक्षा अङ्गीकार करवी ते अहीं **सामायिक चारित्र** कहेवाय छे आ सामायिक चारित्र बे प्रकारनुं छे तेमां भरत अने ऐरवत क्षेत्रमां पहेला अने छेल्ला तीर्थंकरना शासनमां ज्यां सुधी शिष्यने महाव्रतनो आरोप न कराय त्यां सुधी लघु दीक्षारूप अल्पकाळनु (विशेषतः ६ मासनुं) जे चारित्र ते **इत्वर सामा० चा०** कहेवाय, अने भरत ऐरवत क्षेत्रमां मध्यना २२ तीर्थंकरना शासनमां अने महाविदेहमां सर्व मुनीओने प्रथमथीज महाव्रतनो आरोप छे. ने ते यावज्जीव सुधीनो होवाथी तेओनु ते चारित्र यावत्कथिक सामा० चा० कहेवायछे

हवे बीजु छेदोपस्थापना चारित्र त्यां छेद एटले प्रथम जेटली मुदतनी लघु दीक्षा पाळी होय ते काळ दीक्षानो नहिं गणवो ते पूर्वपर्यायनो छेद कहेवाय, अने उपस्थापना एटले पुनः महाव्रतनी स्थापना करवी ने त्यांथी दीक्षापर्याय (दीक्षाकाळ) नी गणत्री थाय एवी रीतनु जे पुनः चारित्र ग्रहण ते छेदोपस्थापना चारित्र कहेवाय, आ चारित्र भरत ऐरवतमां पहेला अने छेल्ला तीर्थंकरना शासनमां होय छे, ए चारित्रने लोकमां वडीदीक्षा लीधी कहे छे. ए चारित्र बे प्रकारनु छे. त्यां शिष्यने ज्यारे इत्वर सामायिक चारित्रनु आरोपण थाय (—वडीदीक्षा अपाय) त्यारे अने एक जिनेश्वरना शासनना मुनिने बीजा जिनेश्वरनु शासन (तुं चारित्र) अङ्गीकार करवुं होय (जेमके पार्श्वनाथना शिष्यने महावीरस्वामिनुं शासन अंगीकार करवुं होय) ते वखते जे चार के पंचमहाव्रत रूप चारित्र धर्म अंगीकार करे ते निरतिचार छेदो-

५० चारित्र कहेवाय. अने चारित्रना मूळगुणनो (महाव्रतनो) घात करनारने जे पुनः चारित्र आपवुं पडे ते सातिचार चारित्र कहेवाय,

हवे त्रीजुं परिहारविशुद्धि नामनुं चारित्र छे. त्यां परिहार एटले तप विशेषवडे विशुद्धि एटले चारित्रने जे विशुद्ध करवुं ते परिहार विशुद्धि चारित्र बे प्रकारनुं छे, तेमां प्रथम ९ मुनिनो समुदाय होय छे, तेमां एक वाचनाचार्य होय छे, चार मुनि तप करनार होय, अने चार मुनि ते तपस्वीओनी वैयावच्च (सारवार) करनार होय. एमां जेओ तप क्रियामां प्रवर्ते छे ते वखते तेओ निर्विशमानक चारित्री अने तप संपूर्ण कर्यां बाद तेज मुनिओ निर्विष्टकायिक चारित्री कहेवाय छे, एओनो तप ग्रीष्मऋतुमां जघन्य उपवास, मध्यम छट्ठ अने उत्कृष्ट अट्ठम, शिशिरऋतुमां जघ० छट्ठ, मध्यम अट्ठम ने उ० दशम, वर्षाकाळमां ज० अट्ठम म० दशम ने उ० द्वादशभक्त होय छे, दरेक पारणे आयंबिल, भिक्षामां पांचनुं ग्रहण ने बे (वस्तुनो) अभिग्रह होय, ए प्रमाणे ६ मास सुधी तप कर्यां बाद सारवार करनार मुनिओ एज विधिए ६ मास तप करे, ते वखते निर्विष्टकायिक मुनिओ निर्विशमानकनी सारवार करे, तेओनो पण ६ मास तप पूर्ण थया बाद वाचनाचार्य ६ मास सुधी तप करे अने आठे निर्विष्टकायिक मुनिओ निर्विशमानक वाचनाचार्यनी सारवारमां रहे ए प्रमाणे ए तप १८ मासे पूर्ण थया बाद इच्छा होय तो जिनकल्पी मार्ग अंगीकार करे अथवा तो पुनः गच्छमां प्रवेश करे, आ परिहारविशुद्धि चारित्र केवली भगवान पासे अंगीकार थाय छे; अथवा तीर्थंकर पासे रहेलागणधरादिकनो पासे अंगीकार कराय छे. पण बीजानी पासे नहिं ए परिहारविशुद्धि चारित्रनां २० द्वार आ प्रमाणे—

१ क्षेत्र—परि० वि० चारित्र अंगीकार करनार मुनिओनुं जन्मक्षेत्र ५ भरतअने ५ ऐरवत, पण महाविदेह नहिं, अने परिहारकल्प अंगीकार करवानुं क्षेत्र पण एज. वळी जिनकल्पीनु संहरण थवाथी जेम सर्व क्षेत्रोमां जिनकल्पीनी प्राप्ति छे तेम एओनुं संहरण पण नथी.

२ काळ—अवसर्पिणीना त्रीजे अने चोथे आरे तेओनो जन्मकाळ होय छे, अने सद्भाव (हयाती) तो अव०ना ३–४–५ अने उत्स० न ३–४ आरामां.

३ चारित्र—सामायिकचारित्र अने छेदोप० चारित्रनां संयमस्थान (–अध्यव० स्थान) थी उपरनां जे असं० लोकप्रदेश प्रमाण परि० वि० नां संयमस्थानो छे तेमां वर्तता जीवनेज परि० वि० चारित्रनी प्राप्ति होय.

४ तीर्थ—जिनेश्वरनुं शासन विच्छेद पाम्युं होय अथवा उत्पन्न पण न थयु होय तेवा अवसरमां परि० वि० चारित्रीया न होय पण शासन प्रवर्तमान समयेज होय.

५ पर्याय—जेनो गृहस्थपर्याय जघ० २९ वर्षनो अने उ० देशोनपू० क्रोड वर्षनो होय अने यतिपर्याय जघ० २० वर्ष अने ने उ० देशोन पू० क्रो० वर्षनो होय तेवो मुनि परि० वि० चारित्र अंगीकार करे,

६ आगम—नवुं सिद्धान्त न भणे पण प्रथमनुं भणेलुं स्मरण करे.

७ वेद—नपुंवेदी वा पुरुषवेदी होय पण स्त्रीवेदी नहि.

८ कल्प—स्थित कल्पमांज होय. (त्यां अचेलकादि १० कल्पवाळा मुनि स्थितकल्पी, अने शय्यातरादि चारमां वर्तवावाळा अने शेष६कल्पमां नहि वर्तवावाळा मुनिओ अस्थितकल्पी कहेवाय

१. शय्यातरपिण्ड-चतुर्याम-पुरुषज्येष्ट अने कृतिकर्मकरण ए ४ अवस्थितकल्प छे, ने शेष ६ अनवस्थितकल्प छे.

९ लिंग—द्रव्यलिंग (-मुनिवेष) अने भावलिंग बन्ने होय

१० लेश्या—कल्प अंगीकार करती वखते ३ शुभ लेश्या अने त्यारवाद् छए लेश्या होय. (कर्मपरिणति विचित्र होवाथी अशुभलेश्याओनो उद्य थाय पण ते अत्यंतसंक्लिष्ट न होय अने तेमां पण थोडो कालज रहे छे पछी शुभलेश्यामांज आवे छे.)

११ ध्यान—अंगीकार काळे धर्मध्यान अने त्यार बाद आर्त-रौद्र-ने धर्मध्यान पण होय. तीव्रकर्म परिणामथी अशुभयोगोनी उत्कृष्टदशामां आर्तरौद्र पणुं आवे पण ते निरनुबन्ध होयछे

१२ गण—जघन्यथी ३ गण अने उत्कृष्ट शत संख्यावाळा (सयस उक्कोसा एवो पाठ होवाथी सोकरतां वधारे समजाय छे)गण अगीकार काळे (सर्व क्षेत्रमां मळीने) होय, अने अंगीकार कर्या-बाद् जघ० वा उ० समकाळे वर्तता सेंकडो (घणा १००) गण होय तेमां पुरुषसंख्या जघ० थी २७ उत्कृष्टथी १००० अंगीकारकाळे होय अने त्यार बाद परि० वि० मां वर्तता जघ० थी सेंकडो पुरुष अने उत्कृष्टथी हजारो होय अने प्रवेश करनार तथा निकळनार बन्ने समकाळे जघ० थी एक ने उ० थी पृथक्त्व होय

१३ अभिग्रह—द्रव्यादि कोइपण अभिग्रह न होय कारण ए कल्पज अभिग्रहरूप छे.

१४ प्रव्रज्या—कोइने पण दीक्षा न आपे (एज कल्पस्थिति छे) परन्तु यथाशक्ति उपदेश आपे.

१५ मुंडापन—आ मुनि कोइने मुंडे नहिं (प्रव्रज्यानंतर मुंडन अवश्य होय एवो नियम नथी कारणके अयोग्यने दीक्षा दीधी होय तोपण पाछळथी अयोग्यता मालूम पडतां मुंडन न करे माटे अहिं मुंडनद्वार भिन्न कह्युं.)

१६ प्रायश्चित्तविधि—मनवडे सूक्ष्म अतिचार लागतां पण निश्चय चतुर्गुरुक प्रायश्चित्त आवे.

१७ कारण आ कल्पनी यथाविधि पालना एज कर्मक्षयनुं नि-

मित्त होवाथी तेओने बीजुं ज्ञानादिक शुद्ध आलंबन पण न होय (अर्थात् ए कल्प पतितदशावाळो नथी के जेथी ज्ञानादि आलम्बने पण स्थिर रहे.) अथवा जेनावडे तत्संबंधि अपवाद स्थान सेववा पणुं होय तेवुं ज्ञानादि आलम्बन न होय.

१८ निष्प्रतिकर्मता—शरीरसंस्कार न करे, आंखमां पडेलुं तृण पण बहार न काढे. प्राणांतकष्टे पण अपवाद मार्ग सेवे नही

१९ भिक्षा त्रीजे प्रहरे गोचरी तथा विहार करे, शेष वखते काउस्सग्ग करे—निद्रा अति अल्प करे. कदाच जंघाबलनी क्षीणताये विहार न करी शके तोपण अपवाद स्थान न सेवतां कल्पमर्यादाप्रमाणे संपूर्ण पाळे,

२० बन्ध-परिहारकल्पी कल्प समाप्त थया बाद पुनः ते कल्पमां अथवा गच्छमां प्रवेश करे एटले स्थविरकल्पी थाय नहिंतर जिनकल्प अङ्गीकार करे, तेमां पुनः ते कल्पमां अगर स्थविरकल्पमां रहेनारा इत्वरपरिहारी, अने जिनकल्प अंगीकार करनारा यावत्कथिक परिहारी कहेवाय,

अर्थात् आ चारित्र बे प्रकारनुं छे, त्यां कल्पविधि संपूर्ण थया बाद तुर्तज बीजीवार कल्पने अथवा गच्छने अंगीकार करे ते इत्वर परि० वि० चारित्र, अने कल्पसमाप्ति बाद तुर्त जिनकल्प अङ्गीकार करे तो यावत्कथिक परि० वि० कहेवाय.

हवे सूक्ष्मसंपराय चारित्रनुं स्वरूप कहेवाय छे, त्यां उपशम श्रेणिगत वा क्षपकश्रेणिगत मनुष्य नवमे गुणस्थाने लोभकषायने सूक्ष्म करे (—कषायांशनी वर्गणाओनो अनुक्रम तोडी दरेक वर्गणा घणा अन्तर—व्यवधानवाळी करे) अने त्यारबाद दशमे गुणस्थाने ते सूक्ष्मकषायने उदयमां आणी भोगवे ते सूक्ष्म संपराय चारित्र १० मे गु० स्थाने जाणवुं अहिं सूक्ष्म संपराय—कषाय एवो अर्थ जाणवो,

अवतरण—आ गाथामां बाकी रहेल एक यथाख्यात चारित्रनुं स्वरूप कहे छे,

॥ मूळ गाथा ३३ मी. ॥

तत्तो अ अहक्खायं, खायं सव्वंमि जीवलोगम्मि ।
जं चरिऊण सुविहिया, वच्चंति अयरामरं ठाणं ॥३३

॥ संस्कृतानुवादः ।

ततश्च यथाख्यातं, ख्यातं सर्वस्मिन् जीवलोके ।
यच्चरित्वा सुविहिताः, गच्छन्त्यजरामरं स्थानं ॥३३॥

॥ शब्दार्थः ॥

तत्तो—त्यार पछी
अ—वळी
अहक्खायं—यथाख्यातचारित्र
खायं—प्रसिद्ध
सव्वंमि—सर्व (ने विषे)
जीवलोगम्मि—जगतमां
जं—जे चारित्रने
चरिऊण—आचरीने
सुविहिया—सुविहित (–सारी विधि प्रमाणे पाळनारा) मनुष्यो,
वच्चंति—जाय छे—पामे छे,
अयरामरं—मोक्ष
ठाणं—स्थानने

गाथार्थः—वळी त्यार पछी सर्व जगतमां प्रसिद्ध एवुं यथाख्यात नामनुं पांचमुं चारित्र छे. के जे चारित्रने अंगीकार करीने श्रेष्ठ विधिए पाळनार सुविहित मनुष्यो मोक्ष पामे छे.

विस्तरार्थः -पूर्वे चारित्रना चार भेद कह्या बाद हवे पांचमुं यथाख्यात चारित्र कहेवाय छे. त्यां यथा एटले जेवी रीते ख्यात एटले सिध्धान्तमां कहेलुं छे तेवी रीतनुं सर्व विरति चारित्र (कषायविनानुं) ते यथाख्यात चा० कहेवाय एना बे भेद छे. तेमां उपशमश्रेणिवाळा जीवने ११ मे उपशांत मोह गुणस्थाने मोहनी उपशांति रूपज चारित्र छे, ते उपशम यथाख्यात चा०, अने क्षपकश्रेणिवाळा जीवने १२ मे क्षीणमोह गुणस्थाने मोहना क्षयरू-

॥ संवरतत्त्वपरिशिष्टम् ॥

नरकगतिमां १२—नरकगतिमां १२ भावनारूप १२ संवर भेद होय छे, पण समिति गुप्ति परिषह अने यतिधर्म ए सर्व विरतिवंतने होवाथी अने सर्व विरतिनो नरकमां अभाव होवाथी समिति विगेरे ४५ संवरभेद न होय अने १२ संवरभेद होय.

तिर्यंचगतिमां १२—नरकगतिवत्.

देवगतिमां १२—नरकगतिवत्.

मनुष्यगतिमां ५७—मनुष्यगतिमां सर्वविरतिनो सद्भाव होवाथी संवरतत्वना सर्वे ५७ भेद होय.

एकेन्द्रियमां ०—एकेद्रियमां संवरनो कोइपण भेद न होय, कारण के सर्वविरतिना अभावे समिति विगेरे ४५ संवर न होय, अने मनयोगना अभावे १२ भावना पण न होय.

द्वीन्द्रियमां ०—एकेन्द्रियवत्.

त्रीन्द्रियमां ०—एकेन्द्रियवत्.

चतुरिन्द्रियमां ०—एकेन्द्रियवत्.

पंचेन्द्रियमां ५७—पचेन्द्रियमां गर्भजमनुष्यने सर्वविरति अने मनोयोगना सद्भावे सर्वे ५७ संवरभेद होय छे.

पृथ्वीकायमां ०— कारण एकेन्द्रियवत्

अप्कायमां ० ,,

तेउकायमां ० ,,

वायुकायमां ० ,,

वनस्पतिमां ० ,,

त्रसकायमां ५७— त्रसकाययमां गर्भजमनुष्यने ५७ संवरभेद होय.

॥ निर्जरातत्त्वपरिशिष्टम् ॥

नरकगतिमां १—सम्यग्दृष्टि नारको जे कायपीडा सम्यक् प्रकारे सहन करे छे, परन्तु कोइने दुःख उपजावता नथी तेवा नारकोने सकाम कायक्लेशरूप १ निर्जराभेद होय छे. अने शेष मिथ्यादृष्टिनारकोने अकामकायक्लेशरूप १ निर्जराभेदछे

तिर्यञ्चगतिमां १२—गर्भज तिर्यंचो देशविरतिवंत होवाथी ६ बाह्यतप अने ६ अभ्यतर तपरूप सर्वे १२ सकाम निर्जराभेद होय छे अने मिथ्यादृष्टि तिर्यंचोने १ अकाम कायक्लेशरूप १ निर्जराभेद होय छे.

देवगतिमां ४—विनय-वैयावृत्य-अने स्वाध्याय ए ३ अभ्यंतर तप अने १ सकाम कायक्लेश मळी चार निर्जराभेद होय छे. देवो संघादिकनो विपय वैयावृत्य करे छे, अने जिन वचन श्रवणादि प्रसंगे पृच्छनादि स्वाध्याय पण छे. परन्तु सद्ध्यान-धर्मध्यानादिनो अभाव छे.

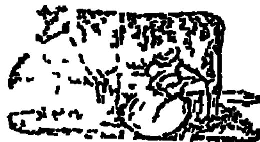
मनुष्यगतिमां १२—मुनिने बार प्रकारना तपरूप सकाम निर्जरा होय छे माटे मनुष्यगतिमां १२ निर्जराभेद छे.

॥ बन्धतत्त्वपरिशिष्टम् ॥

चारे गतिना जीवोने चारे प्रकारना बन्धो होय छे. मात्र मनुष्यगतिमां अगीआरमा गुणठाणाथी स्थिति अने रसबन्ध होता नथीबाकीबन्ध विचार नवतत्त्वसाहित्य विगेरेथी जाणवो.

ए जे चारित्र छे ते क्षायिक यथाख्यात चा० छे. ए बन्ने यथाख्यात चा० मां कषायना (मोहना) उदयनो सर्वथा अभाव छे तेमां पहेलुं यथाख्या० चा० अन्तर्मु० काळ टके छे अने बीजुं यथाख्या० चा० १२ माथी १४ मा सुधी होवाथी भवस्थ केवळीने देशोन पूर्वक्रोड वर्ष पर्यंतनुं होय छे. ए चारित्र सर्वथा अतिचार रहित छे, अने बीजां चारित्रो संज्वलनना उदयथी अतिचारवाळां होय छे. ए चारित्रज सर्वविशुद्ध सर्वविरति (वा सामायिक) कहेवाय छे, एवा प्रकारनुं ए चारित्र सर्वोत्तम होवाथी सर्व जीवलोकमां (-१४ राजलोकमां) प्रसिद्ध छे. वळी ए चारित्र प्राप्त थया विना मोक्ष होय नहिं माटेज ग्रंन्थकारे ए चारित्रथी मोक्ष प्राप्ति कही छे.

ए प्रमाणे संवरतत्त्वना ५७ भेद सविस्तर पणे कह्या ते वांचीने कर्मनो संवर थाय तेवी रीते प्रयत्न करवो, आ म घणखरा भेद मुनिने अङ्गे दर्शाव्या छे, तो पण जेटले अंशे जेटला भेदो श्रावकने उपयोगी होय तेटला भेदो तेटले अंशे श्रावकोए पण अवश्य आदरवा उद्यम करवो.



॥ निर्जरातत्त्व ॥

अवतरण—पूर्वे गाथाओमां संवरतत्त्वनुं स्वरूप कहीने हवे निर्जरा अने बन्धतत्त्वनुं स्वरूप कहे छे. त्यां प्रथम आ गाथामां सामान्यथी निर्जराना १२ अने बंधतत्त्वना ४ भेद कहे छे,

॥ मूळ गाथा ३४ मी, ॥

वारसविहं तवो नि–ज्जरा य बन्धो चउविगप्पो अ ।
पयइ ठिइ अणुभाग--पएसभेएहिं नायव्वो ॥३४॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

द्वादशविधं तपो, निर्जरा च बंधश्चतुर्विकल्पश्च ।
प्रकृतिस्थित्यनुभाग–प्रदेशभेदैर्ज्ञातव्यः ॥ ३४ ॥

॥ शब्दार्थः ॥

वारसविहं–१२ प्रकारनो
तवो–तप
निज्जरा निर्जरातत्त्व
बन्धो–बन्धतत्त्व
चउविगप्पो–चार प्रकारनुं
पयइ–प्रकृति (–स्वभाव)
ठिइ–स्थिति (–काळनियम)
अनुभाग–अनुभाग (–रस)
पएस–प्रदेश (कर्मना अणु)
भेएहिं–(ए चार) भेदोवडे.
नायव्वो–जाणवो,

गाथार्थः—१२ प्रकारनो तप ते निर्ज्जरातत्त्व छे, अने प्रकृति–स्थिति–रस–अने प्रदेश–ए चार भेदवडे बंध (तत्त्व) चार प्रकारनो जाणवो.

विस्तरार्थ—१२ प्रकारनो तप आगळनी गाथाओमां दर्शा-वाशे, ने चारप्रकारना वन्धनुं- किंचित् स्वरूप कहेवाय छे. अहिं कर्मना चार प्रकारना बन्धमां शास्त्रप्रसिध्ध मोदकनुं दृष्टान्त आ-प्रमाणे छे—

जेम सुंठ वगेरे पदार्थना-लाडुमां-कोइ लाडुनो स्वाभाव वायु दूर करवानो, कोइनो कफ दूर करवानो, अने कोइनो पित्त दूर करवानो एम जुदा .जुदा स्वभाव होय छे. तेम आठप्रकारना कर्मना पण जुदा जुदा स्वभाव होय छे, जेम ज्ञानाव० कर्मनो स्वभाव आत्माना ज्ञानगुणने आवरवानो, दर्शनाव० कर्मनो स्व-भाव दर्शनगुणने आवरवानो, इत्यादि जे कर्मनो जे स्वभाव ते स्व भाव सहितज ते कर्म वन्धाय छे, माटे [1]प्रकृतिबन्ध कहेवाय.

तथा जेम कोइ मोदक १० दिवस सुधी सारो रहे ने त्यार-वाद तेनो गुण विनाश पामे, कोइ १५ दिवस अने कोइ १ मास सुधी सारो रहे तेम कोइ कर्म आत्मानी साथे २० कोडाकोडी सा-गरोपम रहे कोइ कर्म ३०को०को०सा०अने कोइ कर्म वधुमां वधु७० को० को० सागरोपम आत्माना संवन्ध ते स्वभावे रहे छे अने त्या-रवाद ते आत्माथी अलग थइ ते ते स्वभाव रहित थइ जाय छे. ए प्रमाणे कर्मने कर्मपणे रहेवानो काळ पण वन्धमां समयेज नियमित थाय छे माटे कर्मना काळनो नियम ते स्थितिवन्ध कहेवाय,

तथा जेम कोइक मोदक मधुर-मीठो होय छे. ने कोइक कडवो होय छे, ने कोइक तीखो इत्यादि शुभाशुभ रसवाळो होय छे, तेम कोइ कर्म शुभ रसवाळुं (—एटले उदय आवतां जीवने हर्ष—सुख आपनारु) अने कोइ कर्म अशुभ रसवाळुं (एटले उदय आवतां

१— कर्मनां नाम तथा ते ते कर्मना स्वभाव अने स्थि-ति आगळ गाथार्थीज कहेवाशे

जीवने दुःख-शोक आपनारुं) होय छे. वळी ते शुभ वा अशुभ रस पण कोइमां तीव्र ने कोइमां मन्द होय छे, ए प्रमाणे तीव्रता अने मन्दता युक्त जे शुभाशुभ विपाकनो नियम पण कर्मबंध वखतेज थाय छे ते रसबंध कहेवाय.

वळी जेम कोइक मोदक ओछा लोटनो अने कोइक मोदक वधारे लोटनो (एटले कोइक पाशेरीयो ने कोइक शेरीयो) बांधेलो होय छे, तेम कोइ कर्म बीजां कर्मथी ओछा वा अधिक प्रदेश (अणुओ) वाळु बंधाय ते प्रदेशबंध कहेवाय.



अवतरण—पूर्व गाथामां १२ प्रकारना तपने निर्जरातत्त्व कह्युं त्यां ६ प्रकारनो बाह्य तप अने ६ प्रकारनो अभ्यन्तर तप मळीने १२ प्रकारनो तप थाय छे, ते आ गाथामां प्रथम ६ प्रकारनो बाह्य तप दर्शावे छे,

॥ मूळ गाथा ३५ मी ॥

अणसणमूणोअरिया-वित्तीसंखेवणं रसच्चाओ ।
कायकिलेसो संलीणया य बज्झो तवो होइ ॥३५॥

---

१ आ चारे बन्ध मात्र मोदकना दृष्टान्तेज होय एम नहिं. परन्तु बीजा दुग्ध-घृतादि पदार्थोना दृष्टान्ते पण होइ शके- जेमके अमुक अमुक दूधना जेम देह पुष्टयादि भिन्नभिन्न गुण छे, तेम कर्मना पण भिन्नभिन्न स्वभाव छे, अमुक दूध जेम अमुक वखत सुधी सारुं रही शके छे, तेम अमुक कर्म पण अमुक वखत सुधी कर्म पणे रही शके छे, अमुक दूध जेम अमुक तीव्रादि रसवाळुं छे तेम अमुक कर्म पण अमुक तीव्रादि रसवाळु छे. ने अमुक दूध जेम हीनाधिक प्रदेशोवाळुं छे तेम कर्म पण हीनाधिक प्रदेशोवाळुं छे इत्यादि रीते अनेक पदार्थोद्वारा आठकर्मनां दृष्टांत यथायोग्य विचारवां

॥ संस्कृतानुवादः ॥

अनशनमुनोदरिका-वृत्तिसंक्षेपणं रसत्यागः ।
कायक्लेशः संलीनता च बाह्यस्तपो भवति ॥ ३५ ॥

॥ शब्दार्थ ॥

अणसणं–अनशन (उपवासादि तप
ऊणोयरिया–उनोदरिका (बे-चार कवल उणा रहेवुं
वित्ती—वृत्तिनो (आजीवकानो)
संखेवणं--संक्षेप करवो,
रसचाओ–रसत्याग (विगय त्याग)
कायकिलेसो–कायक्लेश (लोच वगेरे करवो)
संलीणया संलीनता (-अंगोपांगादिनो संकोच करवो)
बज्झो—बाह्य
तवो-तप
होइ--छे.

गाथार्थः—उपवासादि करवो ते अनशनतप–बे चार कवल उणा रहेवुं ते उनोदरिकातप–आजीविकानो संक्षेप करवो ते वृत्तिसंक्षेपतप–विगयादिनो त्याग करवो ते रसत्यागतप–लोचादि कष्ट सहन करवां ते कायक्लेशतप अंगोपांगादिनो संकोच करवो ते संलीनतातप–ए प्रमाणे ६ प्रकारनो बाह्य तप (थी कर्मनो क्षय–निर्जरा थाय) छे,

विस्तरार्थः—चालु गाथामां ६ प्रकारनो बाह्य तप कह्यो छे त्यां मोक्षप्राप्तिमां बाह्य कारणरूप जे तप ते बाह्यतप कहेवाय तेना ६ प्रकार आ प्रमाणे—

अनशन-अहिं अन् एटले नहिं अशन एटले चारप्रकारनो आहार,

१ भात वगेरे रांधेलो आहार अशन, सर्व जातनां तृषा मटाडनारां पाणी पान, धाणी-चणा इत्यादि काचुं कोरु फराळ ते खादिम अने सोपारी-एलायची आदि मुखवास ते स्वादिम ए चार प्रकारना आहार गणाय छे,

अर्थात् आहार न करवो ते अनशनतप बे प्रकारनो छे, त्यां उपवास–आयंबिल-एकाशन–पोरिसि–नवकारशी–छट्ठ–अट्ठम इत्यादि तप अमुक नियमित काळना होवाथी इत्वर अनशन कहेवाय अने मरण पर्यंत आहार पाणीनो त्याग करवो ते यावत्कथिक अनशन कहेवाय. प्रसिद्धिमां एनेज अनशन अंगीकार कर्युं कहेछे

उनोदरिका—क्षुधा लागी होय त्यारेज जमवुं ते पण पेट भरीने अकळामण थाय तेम नहिं जमतां १–२–३ ४ इत्यादि कवल उणा रहेवुं के जेथी आरोग्यता पूर्वक एक कवल आहार जेटलो पण अनशन तप गणाय छे, कारणके तेटले अंशे भोजननी आशक्ति–लोलुपता टळी होय तोज बे चार कवल उणा रहेवानुं बनी शके छे, अहिं, ऊन एटले न्यून उदर—पेट राखवुं अर्थात् पेट कंइक ऊणुं राखवुं ते उणोदर परथी उनोदरिका शब्द बन्यो छे,

---

१ ए यावत्कथिक अनशनना पण पादोपगमन अने भक्तप्रत्याख्यान ए बे भेद छे, ते दरेकना पुनः निहारीम अने अनिहारिम ए बे भेद छे, त्यां पडी गयेला वृक्षमाफक निश्चेष्ट काया राखवी ते पादोप० अने कायचेष्टा प्रवर्ते पण मात्र आहारनोज त्याग होय ते भक्तप्रत्या० जाणवुं तथा नियमित स्थानथी शरीर बहार काढवु ते निहारिम, अने शरीरने गुफादि एकज स्थानमां राखवुं ते अनिहारिम जाणवु.

२ कह्यु छे के

बत्तीसं किर कवला—आहारो कुच्छिपूरओ भणिओ ।
पुरिसस्स महिलियाए, अट्ठावीसं मुणेयव्वा ॥ १ ॥

अर्थः– " पुरुषने निश्चय ३२ कवल जेटलो आहार उदर पूरनारो (तृप्ति करनार) कह्यो छे. अने स्त्रीने २८ कवल जेटलो आहार जाणवो " एमांथी जेटला कवल उणा रहेवाय तेटलो उनोदरी तप जाणवो अहिं कवळनु सामान्य प्रमाण मु-

वृत्तिसंक्षेप—अहिं जे जे आहार–वस्त्र इत्यादि द्रव्योवडे वृत्ति एटले आजीविका (–जीवननिर्वाह) चालती होय ते ते द्रव्योमां वृत्ति एटले मनोवृत्तियोना संक्षेप-संकोच्च करवाना अभ्यास रूपे अनेक प्रकारना अभिग्रहो धारण करवा ते वृत्तिसंक्षेप कहेवाय ते द्रव्य–क्षेत्र–काळ–ने भावथी चार प्रकारे छे, त्यां द्रव्यथी अमुक पदार्थ—क्षेत्रथी अमुकस्थळे–काळथी अमुकवखते अने भावथी अमुक अमुक रीते मले तोज ते वस्तु ग्रहण करवी, जेम श्री महावीरस्वामिए करेलो अभिग्रह चन्दनबाळाथी पूरायो तेम अभिग्रह धारण करवा ते पदार्थ उपरथी लोलुपता टळी होय तोज बनी शके अन्यथा नहिं, माटे ते वृत्तिसंक्षेप पण तपरूप छे,

रसत्याग—रस एटले दूध–दहिं–घी–गोळ–तेल ने साकर ए ६ रसिक पदार्थो आत्माने विकार उपजावनारा होवाथी विकृति कहेवाय छे ते ६ विकृतियोमांथी यथाशक्ति एक बे यावत् सर्व नो त्याग करवो ते रसत्याग तप कहेवाय,

कायक्लेश—लोच करवो–आतापना लेवी इत्यादि कष्ट मोक्षनी इच्छाए सहन करवां ते कायक्लेश तप कहेवाय,

---

रथीना इंडा जेटलुं शास्त्रमां कह्युं छे—अथवा अर्थान्तरथी विचारीये तो एक प्रक्षेपथी सुख पूर्वक जेटलो आहार मुखमां राखी शकाय तेटला प्रमाणनो एक कवल जाणवो ने तेवा ३२ के २८ कवल संपूर्ण तृप्ति करनार गणाय छे एथी अधिक आहार करनार अपथ्य आहारी जाणवो

१ अथवा वृत्ति एटले "भिक्षा" नो संक्षेप आ प्रमाणे—हाथथी वा कडछीथी उपाडीने आहार आपे तोज लेवो ते भिक्षानियम अने एक धाराए अथवा बे इत्यादि धाराये अखंडीत पणे जेटली वस्तु पडे तेटलीज लेवी एवो नियम ते दत्तिनियम

संलीनता—अहिं संलीनता एटले संकोच एटले अशुभ व्यापारनी निवृत्ति जाणवी, ते संलीनता चार प्रकारनी छे, त्यां अशुभ मार्गे प्रवर्तती इन्द्रियोने संकोची कबजामां राखवी ते इन्द्रिय संलीनता, कषायथी निवृत्त थवुं ते कषायसंलीनता, अशुभ योगथी निवृत्त थवुं ते योगसंलीनता, अने स्त्री--पशु--नपुंसक-इत्यादि विकारोत्पादक जीवोना संसर्गवाळां स्थान त्याग करीने सारा स्थानमां रहेवुं ते विविक्तचर्या संलीनता कहेवाय ए चारे प्रकारनो संलीनता तप कर्मनी निर्जरा करनार छे,

ए ६ प्रकारना तप बाह्यतप कहेवाय. अने ते कर्मनी निर्जरा करनार छे.

अवतरण—आ गाथामां ६ प्रकारनो अभ्यन्तर तप कहे छे,

॥ मूळ गाथा ३६ मी. ॥

पायच्छित्तं विणओ, वेयावच्चं तहेव सज्झाओ ।
झाणं उस्सग्गो वि अ, अब्भिंतरओ तवो होइ॥३६॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

प्रायश्चित्तं विनयो, वैयावृत्यं तथैव स्वाध्यायः ।
ध्यानं कायोत्सर्गो पि चा- भ्यन्तरस्तपो भवति ॥ ३६ ॥

॥ शब्दार्थः ॥

पायच्छित्तं—प्रायश्चित्त
विणओ—विनय
वेयावच्चं--वैयावृत्य (सारवार)
तहेव--तेमज
सज्झाओ--स्वाध्याय
झाणं--ध्यान
उस्सग्गो--काउस्सग्ग
वि अ—वळी पण
अब्भितरओ—अभ्यन्तर
तवो--तप
होइ--छे.

गाथार्थः—१० प्रकारनुं प्रायश्चित–७ प्रकारनो विनय–१० प्रकारनी वैयावच्च– ५ प्रकारनो स्वाध्याय– २ प्रकारनुं शुभध्यान– अने २ प्रकारनो काउसग्ग ए ६ प्रकारनो अभ्यन्तर तप (थी कर्मनो क्षय थाय) छे,

विस्तरार्थः—मोक्षप्राप्तिमां जे तप अन्तरंग कारणरूप छे ते अभ्यन्तर तप नीचे प्रमाणे ६ प्रकारनो छे,

प्रायश्चित्त—प्रायः एटले बाहुबल्यताए (पापनो विच्छेद करनार--इति अध्या०), अने चित्त एटले मननी विशुद्धि करनार ते प्रायश्चित्त १० प्रकारे छे, त्यां गुर्वादि समक्ष करेला पापनो प्रकाश करवो ते आलोचना प्राय०, पुनः ते पापने नहिं आचरवाना संस्कारथी जे मिच्छामि दुक्कडं आपवु (-मिथ्यादुष्कृत एटले मारुं पाप मिथ्या थाओ ए प्रमाणे माफी मागवी) ते प्रतिक्रमणप्राय०, गुरु समक्ष पापनो प्रकाश करवो अने मिथ्यादुष्कृत पण आपवुं ते मिश्रप्राय०, अकल्पनीय अन्नपानादिनो त्याग करवो ते विवेकप्राय०, काउस्सग्ग करवो(कायचेष्टानो त्याग करी अमुक लोगस्स गणवा अथवा अमुक ध्यान करवु) ते कायोत्सर्गप्राय०. नीवी प्रमुख तपरूप दंड आचारवो ते तपप्राय० दीक्षापर्याय घटाडवारूप दंड ते छेदप्राय०, कोइ मोटो अपराध थवाथी पुनः महाव्रत उचरवारूप दंड ते मूलप्राय०. करेला अपराधनो जे तपरूप दंड आप्यो छे ते ज्यां सुधी न करे त्यांसुधी महाव्रतमां न स्थापवो ते अनवस्थाप्यप्राय०, तेवा प्रकारना अपराधथी १२ वर्ष सुधी गच्छनो अने वेषनो त्याग करी अमुक प्रकारनी मोटी शासन प्रभावना करीने पुनः महाव्रतोच्चार करी गच्छमां प्रवेश करी शके एवो दंड ते पारांचिकप्राय०, कहेवाय, ए १० प्रकारना प्रायश्चित्तथी कर्मनी निर्जरा थाय छे.

विनय—वि एटले विशेषे करीने आठप्रकारनुं कर्म जेनावडे नय (ति) दूर थाय ते विनय, अथवा गुणवन्तनी भक्ति ते विनय कहेवाय ते ज्ञान--दर्शन- चारित्र--ने उपचार विनय ए प्रमाणे ४ प्रकारनो छे, त्यां पांच ज्ञाननुं विशेषे करी बहुमान करवुं, अने तेनुं श्रद्धान करवुं ते ज्ञानविनय, अने श्रुतज्ञानमां तो काले विणए बहुमाणे इत्यादि गाथामां कहेलो आठ प्रकारनो ज्ञानाचार ते पण ज्ञानविनय कहेवाय, तथा प्रशम (--कषायमन्दता)--संवेग (--वैराग्य)--निर्वेद (--संसारथी उदासीनता)--अनुकम्पा (--दया-कृपा) ने आस्तिक्य [धर्म-अधर्म देवलोक-नारक इत्यादि पदार्थो छे एवी प्रतीति, ए ५ सम्यक्त्वलक्षणने धारण करवां, तथा निस्संकिय निक्कंखिय इत्यादि गाथामां कहेला आठ दर्शना-

१ १ जे काळे जे भणवा योग्य होय ते काळे ते भणवु ते काळ आचार.
२ ज्ञाननो अने ज्ञानीनो विनय करवो ते विनयाचार
३ ज्ञाननी अने ज्ञानीनी अन्तरंग प्रीति राखवी ते बहुमानाचार
४ जे अध्ययनने माटे जे तप कह्यो होय ते तप वगेरे क्रिया करी अध्ययन करवु ते उपधान आचार
५ जेनी पासे भण्या होय तेनुज नाम लेवु ते अनिन्हवाचार
६ अक्षरो शुद्ध बोलवा ते व्यंजनाचार
७ अर्थ शुद्ध विचारवो ते अर्थाचार
८ सूत्र तथा अर्थ बने शुद्ध बोलवां ते तदुभयाचार

२ १ सर्वज्ञोक्त तत्त्वमां शंका न राखवी ते निःशंकित दर्शनाचार
२ सर्वज्ञमतसिवाय अन्यमतनी इच्छा न करवी ते निःकांक्षा दर्शनाचार
३ मुनिनां मलिन गात्रादिकथी दुःगछा न करवी ते निर्विचिकित्सक दर्शनाचार
४ सर्वज्ञोक्ततत्त्वमां मुझावुं नहिं ते अमूढदृष्टि दर्शनाचार
५ सम्यक्त्व अने सम्यग्दृष्टिजीवोना गुणोनो ते उपबृंह दर्शना०

चारनुं पालन करवुं ते दर्शनविनय कहेवाय. तथा पूर्वे कहेलां सामायिकादि ५ प्रकारनां चारित्रनी श्रद्धा--तेनुं विधिपूर्वक पालन करवुं-- अने तेनी सत्यप्ररूपणा करवी ते चारित्रविनय कहेवाय, तथा सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रादि उत्तम गुणयुक्त मुनिवगेरेने देखी उभा थवुं--सामे जवु--हाथ जोडवा--खमासमणादि वन्दन आपवां, मिष्ट संभाषण करवुं, इत्यादि शुद्धक्रियाना व्यवहाररूप जे विनय ते उपचारविनय. वळी बीजा ग्रन्थोमां तो मनविनय--वचनविनय--अने कायविनय सहित गणतां ७ प्रकारनो विनय पण गणेल छे, ए प्रमाणे चार अथवा ७ प्रकारनो विनय कर्मनी निर्जरा करवामां अन्तरंग कारणरूप होवाथी एने अभ्यन्तर तपरूपे कहेल छे,

वैयावृत्त्य—आचार्यादिकनी सेवा करवी--औषध--वस्त्र-अन्नपानादि आपवुं ते वैयावृत्य कहेवाय ते आचार्य--उपाध्याय--तपस्वी -शिष्य--ग्लान--कुल--गण--संघ--साधु--ने समनोज्ञ ए १०नुं वैयावृत्य करवुं ते वैयावृत्यना १० भेद छे, (त्यां नव दीक्षित शिष्यने चारित्राचार शिखववो इत्यादि शिष्यवैयावृत्य गणाय, ग्लान--रोगीनी सेवा करवी ते ग्लान विनय, चांद्रकुल इत्यादि एक आचार्यनी सन्तति ते कुल कहेवाय, कुलनो समुदाय गण, अने साधु साध्वी-श्रावक-ने श्राविका रूप चतुर्विध संघ कहेवाय, ने समनोज्ञ एटले स्वधर्मी बन्धुओ जाणवा. शेष सुगमछे)

---

६ धर्मथी पडताने स्थिर करवो ते स्थिरिकरण दर्शना०

७ स्वधर्मीनी भक्ति करवी ते वात्सल्य दर्शना०

८ शासननी शोभा वृद्धि थाय तेम करवुं ते प्रभावना दर्शना०

१ विनयना ४ भेद गणवा होयतो ए त्रण भेदने उपचार विनयमां अन्तर्गत जाणवा,

२ वस्तुतः संघः एटले [ज्ञान दर्शनगुणास्ते परमार्थतः

स्वाध्याय—(सु-शोभनिक-प्रशस्त अध्याय-भणवुं वगेरे ते स्वाध्याय) अर्थात् प्रशस्त अध्ययनरूप स्वाध्याय पांच प्रकारनो ते आ प्रमाणे—

१ शिष्यादिकने सूत्र तथा अर्थ पाठ आपवो ते वाचना
२ संदेह पडे त्यां पूछवुं ते पृच्छना,
३ प्रथमनुं भणेलुं संभारी जवुं ते परि(रा)वर्त्तना
४ प्रथम भणेला सूत्रार्थनो अर्थ (रहस्य) विचारवो ते अनुप्रेक्षा,
५ धर्मनी देशना (उपदेश) आपवी ते धर्मकथा.

ए पांचे प्रकारनो स्वाध्याय अभ्यन्तर तपरूप होवाथी कर्मनी निर्जरा करनार छे,

ध्यान–चित्तनी एकाग्रता–अथवा योगनो निरोध ते ध्यान कहेवाय छे. एमां चित्तनी एकाग्रतारूप ध्यान १३ मा गुणस्थान सुधी अने योग निरोधरूप ध्यान १४ मे गुणस्थाने छे, त्यां प्रथम चित्तनी एकाग्रतारूप ध्यानना आर्त्तध्यान–रौद्रध्यान-धर्मध्यान अने शुक्लध्यान ए चार प्रकार छे तेमां पण दरेक ध्यान चार चार प्रकारनुं ते आ प्रमाणे—

॥ आर्त्तध्यानना ४ प्रकार ॥

१ स्वजन कुटुंबादि इष्ट (प्रिय) पदार्थनो वियोग थवाथी जे चिंता–शोक–विलाप वगेरे थाय ते इष्टवियोगार्त्तध्यान.

२ अप्रिय पदार्थोना संगमथी (–प्रतिकूळ परिवार मळवो

संघः इति वचनात्) ज्ञानादि गुणनो समुदाय अने ते समुदायनो आधार साधु वगेरे ते पण आधाराधेय भावे संघ कहेवाय.

इत्यादिकथी जे चिंता-विलाप वगेरे थाय ते अनिष्टसंयोगार्त्त ध्यान.

३ शरीरे रोगादिक थवाथी जे चिंता विलापादि थाय ते रोगचिंतार्त्तध्यान

४ भविष्य काळमां सुख मेळववा संबंधी जे चिंता-नियाणु इत्यादि करवुं ते अग्रशोचार्त्तध्यान ए चारे त्याग करवा योग्य छे

॥ रौद्रध्यानना ४ प्रकार ॥

१ द्वेषवडे प्राणीने बांधवा-हणवादिकनी चिंता ते हिंसानुबन्धिरौद्रध्यान.

२ छळ प्रपंचादि करवाना परिणामथी असत्य बोलवानी ने तेने सत्य तरीके स्थावानी जे चिंता ते मृपानुबन्धिरौद्रध्यान.

३ क्रोधादिकषायना वशथी परनुं द्रव्यादि हरण करवानी इच्छा ते स्तेयानुबन्धिरौद्रध्यान.

४ विषयना साधन-धन-परिवारादिकनुं रक्षण करवानी जे चिंता ते संरक्षणानुबन्धिरौद्रध्यान.

॥ धर्मध्यानना ४ भेद ॥

१ वीतरागनी जे आज्ञा तेज धर्म छे एवी भावना पूर्वक वीतरागनी आज्ञाओ विचारवी ते आज्ञाविचय धर्मध्यान.

२ राग-द्वेष-कषाय-इत्यादि संसार बन्धननां निमित्त सर्व अपाय-कष्टरूप छे, इत्यादि विचारवुं ते अपायविचय धर्मध्यान

३ सर्व जातनां सुख वा दुःख ते पूर्वकृत कर्मनुंज (विपाक-) फळ छे इत्यादि विचारवुं ते विपाकविचय धर्मध्यान,

४ (छ द्रव्यरूप) लोकनी आकृति तथा ६ द्रव्यनुं स्वरूप चिंतववुं ते संस्थानविचय धर्मध्यान.

॥ शुक्लध्यानना ४ भेद ॥

१ पृथत्त्ववितर्क सविचार--२ एकत्ववितर्क अविचार
३ सूक्ष्मक्रिया अप्रतिपाति—४ व्युपरतक्रिया अनिवृत्ति,

ए ४ भेद छे, तेमां पृथक्त्व एटले भिन्नभिन्न, वितर्क एटले श्रुतज्ञान, अने विचार एटले अर्थ-व्यंजन-ने योग ए त्रणनुं संक्रमण अर्थात् एक ध्येय (- अर्थ) थी अन्य ध्येयपर जवुं ते अर्थ संक्रान्ति, एक व्यंजन (विचारातो अक्षर श्रेणिपर) थी बीजा व्यंजनमां जवुं ते व्यंजनसंक्रान्ति अने एक योग परावर्ती अन्ययोगमां जवु ते योगसंक्रान्ति कहेवाय, ए प्रमाणे आ शुक्लध्यानना प्रथम भेदमां श्रुतज्ञानने अनुसारे त्रणे जातनां भिन्नभिन्न संक्रमण होय छे, परन्तु एकज पदार्थ उपरनुं स्थिर ध्यान नथी पण द्रव्यथी गुणमां गुणथी पर्यायमां पर्यायथी द्रव्यमां इत्यादि परावृत्ति वाळु ध्यान ते माटे एनुं नाम पृथक्त्ववितर्क सविचार छे,

तथा जे द्रव्य वा पर्यायनुं ध्यान छे तेज द्रव्य वा पर्यायमां स्थित रहे, अने ध्येयनी-व्यंजननी के योगनी संक्रान्ति होय नहिं (--मनयोगे वा काययोगे वा वचनयोगे कोइपण एकज योगमां स्थितपणे ध्यान होय) ने ते श्रुतज्ञानने अनुसारे (वा चतुर्दशपूर्वधर श्रुतज्ञानीने) ए ध्यान होय छे माटे ए बीजा भेदनुं नाम एकत्ववितर्कअविचार छे,

तथा जे वखते सूक्ष्म योगप्रवृत्ति (योग निरोध क्रियाकाळे) होय छे ते वखते जे आत्मरमणतारूप ध्यान वर्ते छे ते ते (सूक्ष्म क्रिया योगनिरोध थतां पुनः विनाश पामनार होवाथी प्रतिपाति छे माटे ए त्रीजा ध्याननुं नाम सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति छे,

तथा जे वखते क्रिया (व्युपरत एटले) विराम पामी छे, ने

तेथी थयेलुं अक्रियपणु हवे (अप्रतिपाति एटले) सदाकाळ रहेवानुं छे माटे ए चोथा भेदनुं नाम व्युपरतक्रियाप्रतिपाति छे,

एमां आर्त्त ने रौद्रध्यान अशुभ छे माटे अहिं निर्जरा प्रकरणमां तेनो उपयोग नथी तोपण प्रसंगथी दर्शावेल छे ने ते बन्ने अशुभध्यान ५ मा गुणस्थान सुधी (मतान्तरे ६ ठ्ठा सुधी) कहेल छे अने धर्मध्यान अप्रमत्त मुनिने कहेल छे, अने वधुमां वधु १२ मा गुणस्थान सुधी पण (तत्वार्थमां) कहेल छे, पुनःतत्त्वार्थमां प्रथमनां बे शुक्लध्यान पण ११-१२ ए बे गुणस्थाने कहेल छे वळी ए बे ध्यान पूर्वधरनेज होय छे, छतां पण मरुदेवादिवत् कोइ जीवने पूर्व विना पण होय. तथा त्रीजुं शुक्ल ध्यान मात्र सू० काययोगे वर्तता सयोगीकेवलिने योगनिरोधकाळे होय, अने चोथुं शु० ध्यान अयोगिगुणस्थानेज (-शैलेशी अवस्थामांज होय,)

उत्सर्ग—शरीरादिनो उत्सर्ग–त्याग ते कायोत्सर्ग कहेवाय ते द्रव्यथी अने भावथी एम बे प्रकारनो छे, तेमां पण द्रव्योत्सर्ग चार प्रकारनो अने भावोत्सर्ग ३ प्रकारनो छे ते आ प्रमाणे

१ गच्छनो त्याग करी जिनकल्पादि कल्प अंगीकार करवो ते गणोत्सर्ग

२ अणसणादि व्रत लइ शरीरचेष्टानो—कायक्रियानो त्याग करवो ते कायोत्सर्ग

३ कल्पविशेष वडे (अन्यकल्प अंगीकार करतां सर्वज्ञनी आ

---

१ घणा ग्रन्थोमां उपशान्त क्षीणकषाययोः वाक्य छे पण तेनो अर्थ "उपशम श्रेणिवंत अने क्षपक श्रेणिवन्तने" एवो करवो. एम विचारसारमां कह्युं छे.

२ १३ मे गुणस्थाने पण शुक्लध्याननो बीजो भेद निर्विकल्पदशाए संभवे छे.

ज्ञानानुसारे] उपधिनो त्याग करवो ते उपधीउत्सर्ग.

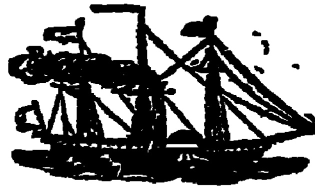
४ अशुद्ध आहार ग्रहण करवानो त्याग करवो ते अशुद्धा० हारोत्सर्ग. (ए ४ द्रव्योत्सर्ग कह्या.)

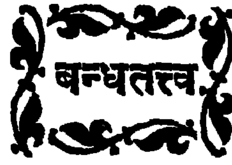
१ क्रोधादिकषायनो त्याग करवो ते कषायोत्सर्ग.

२ मिथ्यात्वादि भवबन्धनना कारणनो त्याग करवो ते भवोत्सर्ग

३ कर्मबन्धना कारणोनो त्याग ते कर्मोत्सर्ग. ए ३ भावोत्सर्ग कह्या.

ए प्रमाणे १२ प्रकारनो तप कर्मनी निर्जरा करनार छे.





अवतरण—पूर्वे ३४ मी गाथामां बन्धतत्त्वना जे ४ भेद कह्या हता ते चार भेदनो अर्थ आ गाथामां कहे छे,

॥ मूळ गाथा ३७ मी. ॥

पयइसहावो वुत्तो, ठिई कालावहारणं ।
अणुभागो रसो णेओ. पएसो दलसंचओ ॥३७॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

प्रकृतिः स्वभाव उक्तः, स्थितिः कालावधारणं ।
अनुभागो रसो ज्ञेयः, प्रदेशो दलसंचयः ॥३७॥

॥ शब्दार्थः ॥

पयइ—प्रकृति	अणुभागो—अनुभाग
सहाव—स्वभाव	रसो—रस
वुत्तो—कह्यो छे	णेओ—जाणवो
ठिई—स्थिति	पएसो—प्रदेश
काल—काळनो	दल—(कर्मना) अणुओनो
अवहारणं—अवधारण (—नियम)	संचओ—संचय (—समूह)

गाथार्थः—प्रकृति एटले कर्मनो स्वभाव, स्थिति एटले कर्मना काळनो नियम, अनुभाग एटले कर्मनो रस, अने प्रदेश एटले कर्मना दळिकनो (अणुओनो) समूह कह्यो छे, ए चार बन्ध-(तत्त्व) ना भेद छे, अथवा ए चार प्रकारे कर्मबन्ध होय छे,

विस्तरार्थः—प्रकृति एटले जे कर्म आत्मानी साथे बन्धायुं छे, ते कर्मनो स्वभाव केवो छे ? अर्थात् ते कर्म आत्माने शुं फळ

आपशे ? ते प्रकृतिबन्ध कहेवाय. जेमके ज्ञानावरण कर्म आत्माना ज्ञानगुणनुं आच्छादन करे, वेदनीयकर्म आत्माने सुखदुःख उपजावे, मोहनीयकर्म आत्माने विवेकथी भूलावे इत्यादि जे कर्मनो जे स्वभाव ते प्रकृतिबन्ध एटले कर्मनो स्वभाव कहेलो छे. ते दरेक कर्मना स्वभाव आगळ गाथाथीज कहेवाशे,

तथा स्थिति एटले काळनुं अवधारण-एटले निश्चय कहेल छे अर्थात् कयुं कर्म आत्मानी साथे केटलो काळ रही शके ? एवा प्रकारनो जे नियम ते काळनुं अवधारण कहेवाय. ते पण आगळ गाथाथीज कहेवाशे,

तथा अनुभाग एटले कर्मना शुभाशुभ फळनी तीव्रता अथवा मन्दता ते रस कहेवाय छे, जेमके कोइने कोइ कर्म सुखरूपे वेदाय छे, अने कोइ कर्म दुःखरूपे वेदाय छे, अने ते पण कोइने अत्यन्त तीव्र सुख के दुःखरूपे वेदाय छे, अने कोइने अतिमन्द सुख के दुःखरूपे वेदाय छे, जेम कोइक जीवे पूर्वे ज्वरसंबन्धि अशाता वेदनीय कर्म एवा प्रकारनुं बांध्युं छे के जे आ भवे तावरूपे उदय आवतां त्रण दिवसना तावमां शरीर एकदम नहिं उठी शकाय तेवुं अशक्त बनावी दे छे, अने कोइकने महिनाना महिना सुधी ताव शरीरमां रहे छे तोपण तेने खबर सरखी पण पडती नथी तेनुं कारण ए छे के प्हेला जीवे अशाता वेदनीयकर्म तथा प्रकारना तीव्र परिणाम वडे तीव्र रसवाळु बांधेलुं छे, अने बीजा जीवे तेवा प्रकारना रसवाळु नहिं बांधतां मन्द रसवाळु बांधेलुं छे, एवा प्रकारनी कर्मबन्धमां शुभाशुभ उदय आववाना नियम पूर्वक उदय काळे जे तीव्र अनुभव अथवा मन्द अनुभवनो नियम कर्म बन्धाती वखते निर्णित थयेलो होय छे ते अनुभाग अथवा रस कहेवाय,

तथा प्रदेश एटले दल–परमाणुओना संचय–समुदाय. अर्थात् कर्म ते कार्मणवर्गणा नामना पुद्गल परमाणुओना समुदायरूप छे, माटे कर्म अवश्य परमाणुओना समुदायनुं बनेलुं छे, ते परमाणुओ सर्व कर्मना सरखी संख्याए होता नथी पण हीनाधिक होय छे.

ए प्रमाणे कर्मबंध चार प्रकारनो छे तेमां पण कर्म बंधना मुख्य ४ हेतु छे. १ अज्ञान (–मिथ्यात्व)–२ अव्रत (–त्याज्यनो अत्याग)–३ कषाय–ने ४ योग ए चार कारणमांथी पण प्रकृतिबंध अने प्रदेशबंधनुं कारण योग छे, अने स्थितिबंध तथा अनुभागबंधनुं कारण कषाय (मिथ्यात्वने अव्रत ते कषायमां अंतर्गत जाणवा) छे' ए प्रमाणे बंधतत्त्वना ४ भेद कह्या.

---

१ शास्त्रोमां कर्मना अनुभागनो अर्थ घणा खरा ग्रन्थोमां अनुभव करेलो छे, केटलाएक ग्रन्थोमां शुभाशुभफळ, केटलाएक ग्रन्थोमां तीव्रमन्दता, अने कोइक ठेकाणे स्वभाव एवो पण अर्थ करेलो छे, अपेक्षापूर्वक विचारतां सर्वे अर्थ बन्ध बेसता छे अने ते अपेक्षाविचारनुं वर्णन अत्रे ग्रन्थ वृद्धिकारक थवाना भयथी नहिं दर्शावतां मने जे तात्पर्य समजायुं छे ते लखुं छुं ते संक्षेपमां आ प्रमाणे –

उदय काळे तीव्र अथवा मंद एवो शुभ (आल्हादकारी ') वा अशुभ (अनाल्हादकारी] अनुभव आपवामां जे कारणभूत होय ते अनुभाग वा रस कहेवाय,

अर्थात् अनुभागबन्ध ३ प्रकारना नियममां कारणरूप छे ते आ प्रमाणे—१ उदयनुं नियमितपणुं करवुं, २ जीवने अनुकूळपणुं वा प्रतिकूळ पणुं उपजाववुं, ने ३ जुं अमुक प्रमाणमां उदय आववुं, ए त्रण कार्यमा अनुभागबन्ध कारणरूपे छे.

१ चालु ग्रन्थमां कया कर्मना केटला परमाणु छे ते ग्रन्थकारे दर्शावेला नहिं होवाथी संक्षेपमां अत्रे दर्शावाय छे,—त्यां

अवतरण—हवे आ गाथामां आठ प्रकारना कर्मनां नाम अने तेना उत्तरभेद केटला ? ते दर्शावे छे.

॥ मूळ गाथा ३८ मी ॥

इह नाणदंसणावर–णवेयमोहाउनामगोयाणि ।
विग्घं च पण नव दुअ–ट्ठवीस चउतिसयदुपणविहं ॥

संस्कृतानुवादः

अत्र ज्ञानदर्शनावरण–वेदनीयमोहायुर्नामगोत्राणि ।
विघ्नं च पंचनवद्व्यष्टाविंशचतुस्त्रिशतद्विपंचविधं ॥ ३८ ॥

शब्दार्थः—

इह–अहिं
नाण–ज्ञानावरण कर्म
दंसणावरण–दर्शनावरण कर्म
वेय–वेदनीय कर्म
मोह–मोहनीय कर्म
आउ–आयुष्य कर्म
नाम–नामकर्म
गोयाणि–गोत्रकर्म
विग्घं–अन्तराय कर्म
पण–पांचप्रकारनुं
नव–नव प्रकारनुं
दु–बे प्रकारनुं
अट्ठवीस–अठ्ठावीश प्रकारनुं
चउ–चार प्रकारनुं
तिसय–एकसो त्रण प्रकारनुं
दु–बे प्रकारनुं
पणविहं–पांच प्रकारनुं

जे कर्मनी अधिक स्थिति ते कर्मना परमाणु अधिक जाणवा परन्तु वेदनीयना सर्वथी अधिक परमाणु जाणवा ते आ प्रमाणे

आयुष्यना—सर्वथी अल्प (पण अनन्त)
नाम-गोत्रना—आयु०थी विशेषाधिक (वमणाथी ओछा] ने
ज्ञानाव०—दर्श०— ने अन्त० ना { नाम० गो० थी विशेषा० ने परस्परतुल्य
मोहनीयना—ज्ञानावरणादि ३ थी विशेषा०
वेदनीयना—मोह० थी पण विशेषा०

गाथार्थः—आहि ज्ञानावरण कर्म ५ प्रकारनुं—दर्शनावरणकर्म ९ प्रकारनुं—वेदनीय कर्म २ प्रकारनुं—मोहनीय कर्म २८ प्रकारनुं—आयुष्यकर्म ४ प्रकारनुं—नामकर्म १०३ प्रकारनुं—गोत्र कर्म २ प्रकारनुं—ने अन्तराय कर्म ५ प्रकारनुं छे. (ए प्रमाणे ८ मूळ कर्मना १५८ उत्तर भेद छे.)

विस्तरार्थ—हवे पूर्वे गाथामां जे प्रकृतिबंध एटले कर्मनो स्वभाव कह्यो ते कर्मना नाम अने तेना भेद दर्शावे छे. अथवा प्रकृतिबंध बे प्रकारना १ मूळप्रकृतिबंध ने २ उत्तरप्रकृतिबंध तेमां मूळप्रकृतिबंध ८ प्रकार ने उत्तरप्रकृतिबंध १५८ प्रकार छे. ते आ प्रमाण—

आत्माना ज्ञान गुणने आवरे (आच्छादन करे—रोके) ते ज्ञानावरण कर्मना ५ भेद—१ मतिज्ञानाव०—२ श्रुतज्ञाना०—३ अवधिज्ञानाव०—४ मनःपर्यवज्ञानाव०—ने ५ मुं केवळज्ञानावरण. (ए पांच उत्तर प्रकृतिबंध कहवाय.)

आत्माना दर्शन गुणने आवरे ते दर्शनावरण कर्म ९ प्रकारनुं प्रथम पाप तत्त्वना भेदमां कह्या प्रमाणे जाणवुं.

आत्माने सुख दुःखरूप वेदाय ते वेदनीय कर्म बे प्रकारनुं. १ शाता—ने २ अशाता वेदनीय.

आत्माने मोहयति—मोह पमाडे एटले विवेकथी मुंझावे ते मोहनीय कर्म पापतत्त्वमां कह्या प्रमाणे २८ प्रकारनुं जाणवुं.

आत्माने परगतिमां एति—लइ जाय ते आयुष्य कर्म देवायु, नरकायु, तिर्यगायु, ने मनुष्यायु ए प्रमाणे ४ प्रकारनुं छे.

आत्माने नामयति—अनेकरूप प्रत्ये नमावे—पमाडे ते नाम

१ आ गाथा भीमसी माणेक वगेरे तरफथी प्रसिद्ध थयेल पुस्तकोमां ३९ मी छे, पण अहेक्रमना मुख्यताये आ पुस्तकमां ३८ मी राखी छे.

कर्म पुन्य अने पाप तत्वमां कह्या प्रमाणे १०३ प्रकारे छे, तो पण संक्षेपमां ते भेदा आ प्रमाणे छे-४ गति-५ जाति-५ शरीर-३उपांग-१५ बंधन-५संघातन-६संघयण ६-संस्थान-५वर्ण-२गंध-५ रस-८ स्पर्श-४ आनुपूर्वी-२ विहायोगति-१० त्रसदशक-१० स्थावर दशक—ने ८ प्रत्येक प्रकृति. एनो अर्थविस्तार पुन्य अने पाप तत्वमां आवी गयो छे, ने जे बाकी रह्यो होय ते प्रथम कर्म ग्रंथथी जाणवो.

आत्माने उच्च अथवा नीच शब्दोवडे गूयते—बोलावाय ते गोत्र कर्म उच्चगोत्र ने नीच गोत्र एम २ प्रकारनुं छे.

आत्माने जेनाथी दानादिकनो विघ्न—अन्तराय पडे ते अन्तराय अथवा विघ्न कर्म पापतत्वमां कह्या प्रमाणे पांच प्रकारनुं छे. ए प्रमाणे ज्ञानावरणादि मूळप्रकृतियो ८ छे, अने मतिज्ञानावरणादि उत्तरप्रकृतियो १५८ छे.

अवतरण—पूर्व गाथामां आठ कर्म अने तेना विशेष भेद कहीने हवे आ गाथामां ते आठ कर्मोना स्वभाव (प्रकृति बंध) कया कया प्रकारना छे ते दर्शावे छे.

॥ मूळगाथा ३९ मी ॥

पडपडिहारसिमज्ज, हडचित्तकुलालभंडगारीणं ।
जह एएसिं भावा, कम्माण वि जाण तह भावा ॥

संस्कृतानुवादः

पटप्रतिहारासिमद्य-हडिचित्रककुलालभांडागारिणाम् ।
यथैतेषां भावाः-कर्मणामपि जानीथ तथा भावाः ॥३९॥

शब्दार्थः—

पड-पाटो	जह-जेम (जेवा)
पडिहार-द्वारपाळ	एएसिं-एओना (पाटावगेरेना)
ऽसि-तरवार (खडग)	भावा-स्वभाव छे
मज्ज-मदिरा	कम्माण वि-कर्मोना पण
हड-बेडो	जाण-जाणवा
चित्त-चितारो	तह-तेम (तेवा)
कुलाल-कुंभार	भावा-स्वभाव
भंडगारीणं-भंडारी (ना)	

गाथार्थः—वस्त्र वगेरेनो पाटो—द्वारपाळ—खड्ग—मदिरा—बेडी—चितारो—कुंभार—अने भंडारी एओना (ए८ना) जेवा स्वभाव छे तेवा स्वभाव आठ कर्मना पण जाणवा. (अर्थात् ज्ञानाव० नो स्वभाव आंखे बांधेला वस्त्रना पाटा सरखो छे इत्यादि अनुक्रमे ८ कर्मना ८ स्वभाव जाणवा.)

विस्तरार्थः—हवे आठ मूळ कर्मोना जुदा जुदा स्वभाव दृष्टान्तपूर्वक कहेवाय छे ते आ प्रमाणे—

ज्ञानावरणीय कर्म आंखना पाटा सरखुं छे, एटले आंखे पाटो बांधवाथी जेम कोइ पण वस्तु देखी-जाणी शकाती नथी तेम आत्मानी ज्ञानरुप चक्षुने ज्ञानावरण कर्मरुप पाटो—पडदो आवी जवाथी आत्मा कंइ पण जाणी शकतो नथी.

दर्शनावरणीय कर्म द्वारपाळ सरखुं छे, एटले राजा जेम द्वारपाळे राजसभामां आवतां रोकेला मनुष्योने देखी शके नहिं, अथवा राजाने देखवा इच्छता मनुष्यो द्वारपाळे रोकाण करवाथी

१ राजा प्रजाने न देखे अने प्रजा राजाने न देखे एम बन्ने पक्षमां दर्शनाव० कर्मना दृष्टान्तनी साफल्यता प्राचीन कर्मग्रन्थे कही छे.

राजाने देखी शके नहिं तेम आत्मानो देखवानो स्वभाव छे छतां पण दर्शनावरण कर्मना उदयथी पदार्थ या विषयोने देखी शके नहि.

वेदनीय कर्म मधवडे लेपायली तरवार अथवा खड्ग सरखुं छे, एटले मधवडे लेपायला तरवारने चाटतां प्रथम स्वाद लागे पण जीभ कपावाथी परिणाम अत्यंत पीडा करनार थाय तेम शातावेदनीयने अनुभववा परिणाम अत्यंत अशाताना अनुभव करवा पडे तेम वेदनीय कर्म जीवने पौद्गलिक सुख अने दुःख बन्ने आपे छे.

मोहनीय कर्म मदिरा सरखुं छे, एटले मदिरा पीवाथी मनुष्य जेम परवश अने विवेक रहित थवाथी हिताहित जाणी शकता नथी, तेम जीव पण मोहनीय कर्मना वशथी विवेकशून्य थतां आत्माने हितकर अने अहितकर शुं छे ? ते जाणी शकता नथी. अर्थात् मदिरोन्मत्त जीव जेम मानने मा कहे ने बहेनने पण कहे, हाथीने हाथी कहे अने पाडो पण कहे अथवा स्त्रीने स्त्री कहे ने मा पण कहे अने पाडाने पाडो कहे अने हाथी पण कहे एम गमे तेम मनमां आवे तेम साचा जूठो बकवाद कर्या करे तेम मोहनीय कर्मथी उन्मत्त थयेलो जीव पण धर्मने धर्म कहे ने अधर्म पण कहे, अधर्मने अधर्म कहे ने धर्म पण कहे, एम साचा जूठो मनः कल्पित अर्थ बोल्या करे माटे मोहनीय कर्म ते खरेखर मदिरा सरखुंज छे.

आयुष्य कर्म बेडी (जेल) सरखुं छे, एटले जेम जेलमां पूरायलो मनुष्य जेलमांथी छूटवा इच्छे तो पण छूटी शके नहि पर-

---

१ अहिं ५ निद्रा ते आत्मानी उत्पन्न थयेली दर्शनलब्धिने उपघात करनार [-रोकनार) छे. ने चक्षुदर्शनावरणादि चार ते आत्मानी दर्शनलब्धिने मूळथीज हणनार छे [दर्शन लब्धिने उत्पन्नज थवा दे नहिं.]—इति कर्मप्रकृत्यादौ

न्तु, न्यायाधीशे ज्यां सुधीनी टीप मारी छे त्यांसुधी जेलमां रहेवुं ज पडे तेम कुद्रतना न्यायाधीशे आत्मपरिणामरुप गुन्हाने अनुसारे जे गतिमां जेटलो काळ रहेवा फरमाव्युं छे तेटलो काळ ते गतिमां रहेवुंज पडे पण जीव ते गतिमांथी छूटी बीजी गतिमां जवानी इच्छा करे तो पण निर्णित थयेला काळरुप आयुष्यने पूर्ण कर्या विना बीजी गतिमां जइ शके नहिं. माटे आयुष्य कर्म जेल (अथवा पींजरा) सरखुं छे. चार गतिमांथी नरक गतिना जीवो अत्यंत दुःख पडवाथी नरकगतिमांथी छूटवा इच्छे छे, पण छूटी शकता नथी, ने अनुत्तर देवो अनंत पौद्गलिक सुखने वैराग्यवडे असार जाणवाथी मनुष्यगतिमां आवी चारित्र अंगीकार करवा इच्छे छे पण देवगतिमांथी (आयुष्य पूर्ण थया विना स्वयं) छूटी शकता नथी अने बीजा जीवो तो प्रायः पोतानो भव छोडवा इच्छता नथी, अने कदाच उंच गतिमां जवानी आशाए छोडवा इच्छे तो पण छोडी शके नहिं माटे आयुष्य कर्म ते बेडी सरखुंज छे.

नाम कर्म चितारा सरखुं छे, एटले चितारो जेम जीवनी छबीओ चितरतां तेना हाथ पग शरीर वगेरे भिन्न भिन्न जातना आकार चितरीने एक छबी बनावे, तेम नामकर्म पण जीवनां देवत्व—नारकत्वादि तथा हाथ—पग-शरीर-संघयण-आकृति-इत्यादि जुदा जुदा प्रकारनां (जीवनां) रुप घडे (बनावे) छे. माटे नामकर्म चितारा सरखु छे.

गोत्रकर्म कुंभार सरखुं छे, एटले कुंभार जेम एक घडो मदिरानो बनावे ते दुगंछनीय थाय, अने बीजो घडो मंगल कुंभनो बनावे ते पूजनीक थाय तेम गोत्रकर्म पण कोइ आत्माने अंत्यजादि (ढेड—चमार—भंगी-वाघरी इत्यादि) हीनकुळनो बनावे

ते जगतमां हीन मनाय, अने कोइ आत्माने क्षत्रियादि उच्च कुळवाळो बनावे ते जगतमां पूज्य मनाय माटे गोत्रकर्म कुंभार सरखुं छे

१ वर्तमान समयमां अनार्य प्रजाना शिक्षणनी—राज्यकुशळतानी हुन्नरकळानी-अने आबादी वगेरे कारणोनी असरथी अर्थात् ते शिक्षणथी आर्यसंस्कारो पलटावाथी केटलापक भाषाज्ञानीओ एवी कल्पना करे छे के—मनुष्यत्व सर्वने सरखुं छे, माटे सर्वनो हक्क एक सरखो होवो जोइए माटे अमुक माणस उंचकुळनो, अने अमुक माणस हीनकुळनो ए कल्पना साक्षर वर्गने अयोग्य छे, कारणके महात्माओने तो 'वसुधैव कुटुंबकम्' आखी पृथ्वी पोताना कुटुम्ब तुल्य ' छे. तो आवी उच्चभावनामां अमुक उच्च अने अमुक नीच एम मानवानो अवकाशज क्यांथी होय ? इत्यादि अनेक कल्पनाओ करी सर्वने एक सरखो व्यवहार करवानुं शीखववा प्रयत्न करे छे, पण ते सर्व आर्यधर्मनी फीलोसोफीनुं (तत्त्वज्ञाननुं) अनभिज्ञपणुं (अज्ञान] ज जाहेर करे छे, कारणके उंच्च नीच पणानो व्यवहार आर्यधर्ममां मात्र कर्म (कार्य) ने अंगे ज नहि परन्तु तेवा तेवा प्रकारना कर्मथी उत्पन्न थता गुणोवडे पण मनायलो छे. वळी उच्च नीचपणानो व्यवहार मुखमात्रथी भले न मानवामां आवे पण कुद्रतथी राजादिक सद्गुणीने ने जे उच्चत्वनुं मान अपाय छे, अने दुर्गुणीने जे हीनपणानुं मान अपाय छे ते कोनाथी निवारण थइ शके तेम छे ? जो कहो के उच्च गुणोने अंगे उच्चता अने दुर्गणोने अंगे हीनता तो मानवा योग्यज छे, तो पछी आर्य धर्म पण तेमज कहे छे, तो सर्वमनुष्यने एक सरखा मानवानी कल्पना कइ रीते थइ शके ? अहिं सर्व वातनो सार एज छे के दुनियामां उच्चपणुं अने हीनपणुं आज कालथी नहि पण अनादि काळथी चालतुं आव्युं छे. ने चालशे. वळी अनार्य प्रजामां उच्चकुळ हीनकुळ मानवानो व्यवहार नथी एम कहेवुं पण असत्य छे, कारणके ते प्रजामां पण लॉर्ड-अमी

अन्तरायकर्म भंडारी सरखुं छे, एटले राजाने दान देवुं होय छतां पण जो भंडारी प्रतिकूळ होय तो राजाथी दान आपी शकाय नहिं, ने दान लेनारथी लइ शकाय पण नहिं अने अनुकूळ होय तो राजा दानादि करी शके तेम अहिं आत्मा (रूप-राजा) अन्तराय कर्म (रूप भंडारी) नी (क्षयोपशमरूप) अनुकूळताए दानादि करी शके, अने [उदयरूप) प्रतिकूळताए दानादिक न करी शके, माटे अन्तरायकर्म भंडारी तुल्य छे.

ए प्रमाणे पाटा विगेरे आठवस्तुओना जेवा जेवा स्वभाव कह्या तेवा प्रकारे आठकर्मोना पण जुदा जुदा स्वभाव जाणवा.

अवतरण—हवे आ अने आगळनी गाथामां कया मूळ कर्मनी केटली स्थिति बन्धाय छे ? ते (–स्थितिबन्ध) दर्शावे छे.

॥ मूळ गाथा ३७ मी. ॥

नाणे य दंसणावरणे, वेयणिए चेव अन्तराए अ ।
तीसं कोडाकोडी, अयराणं ठिइ अ उक्कोसा ॥४०॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

ज्ञाने च दर्शनावरणे–वेदनीये चैवान्तराये च ।
त्रिंशत्कोटाकोटि–रतराणां स्थिति श्चोत्कृष्टा ॥ ४० ॥

---

२ इत्यादि खानदान कुटुंबवाळा उच्च मनाय छे. अने बीजा ते अपेक्षाए हीन मनाय छे, माटे रूपान्तरथी अनार्य प्रजामां पण उंचकुळ नीचकुळ मानवानो व्यवहार छे ने ते कुदरतना घरनो होवाथी कोइ निवारवा समर्थ पण नथी सारांश के–उच्चत्व नीचत्व मानवानो व्यवहार योग्यज छे. अने कर्मशास्त्रना नियम पूर्वकज छे,

॥ शब्दार्थः ॥

नाणे-ज्ञानाव० कर्मनी	तीसं-त्रीश (३०)
दंसणावरणे-दर्शनाव० कर्मनी	कोडाकोडी-क्रोडक्रोड(१००-00000,0000000)
वेयणिए-वेदनीयकर्मनी	अयराणं-सागरोपम
चेव-निश्चय	ठिइ-स्थिति
अन्तराए-अन्तरायकर्मनी	उक्कोसा-उत्कृष्ट

गाथार्थः—ज्ञानावरणकर्मनी-दर्शनावरणकर्मनी—वेदनीय-कर्मनी—अने अन्तराय कर्मनी उत्कृष्ट स्थिति निश्चय ३० कोडाकोडी (=३००००००००००००००००) सागरोपम जेटली छे,

विस्तरार्थ—सुगम छे.

अवतरण—पूर्वगाथामां ४ मूळकर्मनी उत्कृष्ट स्थिति दर्शावीने हवे आ गाथामां बाकी रहेलां ४ मूळकर्मनी उ० स्थिति दर्शावे छे,

॥ मूळ गाथा ३९ मी.,

सित्तरि कोडाकोडी, मोहणिए वीस नाम गोएसु ।
तित्तीसं अयराइं, आउठिइबन्ध उक्कोसा ॥ ४१॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

सप्तकोटीकोटि-मोहनीये विंशतिर्नामगोत्रयोः ।
त्रयस्त्रिंशदतराण्यायुः, स्थितिबन्ध उत्कर्षात् ॥४१॥

---

१ जेटला क्रोडने एक क्रोडे गुणी तेटली कोडाकोडि संज्ञा कहेवाय. जेमके ५ क्रोडने क्रोडे गुणतां ५००००००००,००००००० ए संख्या ५ कोडाकोडि कहेवाय,

॥ शब्दार्थः ॥

सित्तरि-सित्तेर (७०)	तित्तीसं-तेत्रीश (३३)
कोडाकोडी-क्रोडक्रोड	अयराई-सागरोपम
मोहणिए-मोहनीय कर्मनी	आउ-आयुष्य कर्मनो
वीस-वीश २० (को० को०)	ठिइबंध-स्थितिबंध
नाम-नाम कर्मनो	उक्कोसा-उत्कृष्टथी
गोएसु-गोत्रकर्मनी	

गाथार्थः—मोहनीय कर्मनो स्थितिबन्ध ७० को० को० साग०, नाम अने गोत्रकर्मनो स्थितिबन्ध २० को० को० साग० अने आयुष्यनो उ० स्थि० बन्ध ३३ सागरोपम छे.

विस्तरार्थः—सुगम छे,

अवतरण—हवे आ गाथामां आठ मूळकर्मनो जघन्य स्थितिबन्ध दर्शावे छे.

॥ मूळ गाथा ४२ ॥

वारसमुहुत्त जहन्ना, वेयणिए अट्ठ नामगोएसु ।
सेसाणंतमुहुत्तं, एयं बन्धट्ठिई माणं ॥ ४२ ॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

द्वादशमुहूर्त्तानि जघन्या, वेदनीयेऽष्टौ नामगोत्रयोः ।
शेषाणामन्तर्मुहूर्त्तं-मेतद्बन्धस्थितिमानं ॥ ४२ ॥

॥ शब्दार्थः ॥

वारस-वार (१२)	वेयणिए-वेदनीय कर्मनी
मुहुत्त-मुहूर्त	अट्ठ-आठ (८)
जहन्ना-जघन्य (अल्प)	नाम-नामकर्मनी

गोएसु-गोत्रकर्मनी	एयं-ए (प्रमाणे)
सेसाणं-बाकीनां पांच कर्मनी	बंधट्ठिई-कर्मना स्थितिबंधनुं
अन्तमुहूत्तं-अन्तर्मुहूर्त्त	मानं-प्रमाण छे

गाथार्थ—वेदनीयकर्मनी जघ० स्थिति १२ मुहूर्त्तनी नाम-कर्म अने गोत्रकर्मनी जघ० स्थि० ८ मुहूर्त्तनो, अने शेष (–बाकी-नां) ५ कर्मनी जघ० स्थि० अन्तर्मु० छे. ए प्रमाणे (आठे कर्मना जघ० स्थितिबन्धनुं प्रमाण कह्युं,

विस्तरार्थः—सुगम छे.



१ श्री उत्तराध्ययन सूत्रमां १ अन्तर्मु० नी पण कही छे, अने अकषायी जीवने २ समयनी पण होय छे. बीजी सर्व स्थिति-ओ सकषायी होवाथी अन्तर्मु० थी ओछी न होय.



॥ ८ मूळकर्मनी स्थिति अने *अबाधा ॥

कर्म	उत्कृष्ट स्थिति	जघन्य स्थिति	उत्कृष्ट अबाधा	जघन्य अबाधा
ज्ञानाव०	३० को० को० सा०	१ अन्तर्मु०	३००० वर्ष	अन्तर्मु०
दर्शना०	„	„	„	„
वेदनीय	„	१२ मुहूर्त	„	„
मोहनीय	७० को० को० सा०	१ अन्तर्मु०	७००० वर्ष	„
आयुष्य	३३ सा०	अन्तर्मु०	साधिकपूर्व क्रोडवर्षनो त्रीजो भाग	„
नाम	२० को० को० सा०	८ मुहूर्त	२००० वर्ष	„
गोत्र	„	„	„	„
अन्तराय	३० को० को०	१ अन्तर्मु०	३००० वर्ष	„

* कर्म बन्धाया बाद जेटला काळ सुधी जीवने कंइपण फळ न आपे तेटलो काळ अबाधा काळ कहेवाय छे. अर्थात् दरेक कर्म पोतपोतानो अबाधा काळ वीत्या बाद उदय आवे.



अवतरणः—हवे नवमा मोक्षतत्वनो प्रारंभ थाय छे, त्यां प्रथम आ गाथामां मोक्षना ९ भेद एटले नव द्वार कहेवाय छे.

संतपयपरूवणया, दव्वपमाणं च खित्तफुसणा य ।
कालो अ अंतर भागो, भावे अप्पाबहू चेव ॥ ४३ ॥

संस्कृतानुवादः

सत्पदप्ररूपणा, द्रव्य-प्रमाणं च क्षेत्रं स्पर्शना च ।
कालश्चान्तरं भागो, भावोऽल्पबहुत्वं चैव ॥ ४३ ॥

शब्दार्थः—

संत-छता (विद्यमान)
पय--पदनी
परुवणया-प्ररुपणाद्वार
दव्वपमाणं-संख्या प्रमाणद्वार
च-अने
खित्त-क्षेत्रद्वार
फुसणा-स्पर्शनाद्वार
कालो-काळद्वार
अन्तर-अन्तर (विरह) द्वार
भाग-भागद्वार
भावे-भावद्वार
अप्पाबहुं--अल्पबहुत्वद्वार
चेव--निश्चे

गाथार्थः—१ सत् (विद्यमान) पदनी प्ररुपणानुं द्वार—२ द्रव्य (-संख्या) प्रमाणद्वार-३ क्षेत्रद्वार-४ स्पर्शनाद्वार-५ काळद्वार--६ अन्तरद्वार-७ भागद्वार--८ भावद्वार ने ९ मुं निश्चय अल्पबहुत्वद्वार (ए ९ द्वार अथवा ९ भेद मोक्षतत्वना छे.)

विस्तरार्थः—हवे मोक्षतत्त्वना जे नव भेद छे ते ९ अनुयोगद्वार कहेवाय छे. ए ९ द्वार फक्त मोक्षने अंगे छे, एम नहिं पण दरेक पदार्थने अंगे ए ९ द्वार अवतारी शकाय छे. ते ९ द्वारनुं स्वरुप आ प्रमाणे—

१ सत्पदप्ररूपणाद्वार—कोइ पण पद (-शब्द) वाळो पदार्थ (भाव) सत् (विद्यमान) छे के असत् छे? अर्थात् ते पदार्थ जगतमां छे के नहिं? तेनी जे साबिती आपवी ते सत्पदप्ररूपणा.

२ द्रव्यप्रमाणद्वार—ते पदार्थ जगत्मां केटला छे? तेनी संख्या दर्शाववी ते द्रव्यप्रमाणद्वार.

३ क्षेत्रद्वार—ते पदार्थ (तेमांनो एक वा अनेक पदार्थ) दुनियामां केटली जग्या रोकीने रह्यो छे? एम जे दर्शाववुं ते क्षेत्रद्वार अर्थात् अवगाहनाद्वार.

४ स्पर्शनाद्वार—पुनः ते पदार्थ जे क्षेत्रमां (जग्यामां) रह्यो ते क्षेत्रमां जेटला आकाश प्रदेशो छे तेटलाज स्पर्शीने रहेल छे के तेथी अधिक? एम दर्शाववुं ते स्पर्शनाद्वार. अहिं एक अणु (परमाणु) कमीमां कमी ७ आकाश प्रदेशने (१ पोतानामां अवगाहेलो, ने बीजा ६ दिशिना ६ प्रदेशने) स्पर्शे छे. परन्तु अवगाहना एकज आकाश प्रदेशनी छे, ए प्रमाणे अवगाहना अने स्पर्शनामां तफावत छे, अर्थात् अवगाहनाथी (क्षेत्रद्वारथी) स्पर्शना अधिकज होय छे.

५ काळद्वार—ते पदार्थनी स्थिति (टकाव) केटलाक काळपर्यन्तनी छे? एम दर्शाववुं ते काळद्वार.

६ अन्तरद्वार—जे पदार्थ जे रुपे छे ते पदार्थ मटीने बीजारुपे थइ पुनः ते (असलना) रुपे थाय के नहि? अने

जो तेम थाय तो ते अन्यरुपे केटलो काळ रहीने पुनः विवक्षित रुपमां आवे ? एम जे दर्शाववुं ते अन्तर (एटले व्यवधान—आंतरो) कहेवाय.

७ भागद्वार—ते पदार्थनी संख्या स्वजातीय शेष (वा परजातीय) पदार्थोना केटलामे भागे (वा केटला गुणी ?) छे ? एम दर्शाववुं ते भागद्वार.

८ भावद्वार—औपशमिक—औदयिक—क्षायिक—क्षायोपशमिक—ने पारिणामिक ए भावमांथी ते पदार्थ कया भावमां अंतर्गत थाय छे ? एम दर्शाववुं ते भावद्वार. अहिं जगतना दरेक पदार्थो ५ भावमांना कोइपण एकादिक भावमां अंतर्गत होय छे. त्यां मोहनीय कर्मना उपशमथी उत्पन्न थयेलो जे भाव (कषायादिकनी शान्ति) ते औपशमिकभाव, (उपशम सम्यक्त्व ने उपशम चारित्र ए बे प्रकारनो ने आ भाव मात्र सकर्मक जीवनेज होय छे.) तथा कर्मना क्षयोपशमथी उत्पन्न थयेलो जे भाव ते क्षायोपशमिक भाव, (दान-लाभ-भोग-उपभोग-वीर्य-क्षयोप० सम्यक्त्व-देशविरति-सर्वविरति-मतिज्ञान-श्रुतज्ञान-अवधिज्ञान-मनःपर्यव-ज्ञान-चक्षुर्दर्शन-अचक्षुदर्शन-अवधिदर्शन-मतिअज्ञान-श्रुतअज्ञान-ने विभंगज्ञान ए प्रमाणे १८ प्रकारनो छे ने ते सकर्मक जीवने होय छे). तथा कर्मना क्षयथी उत्पन्न थयेलो जे भाव ते क्षायिकभाव, (केवळज्ञान--केवळदर्शन--दानादिपलब्धि--यथाख्यात चारित्र--ने क्षायिक सम्यक्त्व एम ९ प्रकारे छे ने ते जीवनेज होय छे.) तथा कर्मना उदयथी उत्पन्न थयेलो जे भाव ते ओदयिक भाव, (अज्ञान--असिद्धत्व--अविरति--६ लेश्या--४ कषाय--४ गति--३ वेद--मिथ्यात्व--एम २१ प्रकारनो छे ने ते सकर्मक जीवने छे) तथा जीव अने अजीवने अनादिस्वभाव परिणमनरुप जे भाव ते पारि-

णामिक भाव. (जीवने भव्यत्व-अभव्यत्व-ने जीवत्व एम ३ प्र-कारनो, अने अजीवने पोतपोताना स्वभावरुप अनेक प्रकारनो छे). ए ५ भावमांथी कयो पदार्थ कया भावमां अंतर्गत थइ शके छे ? एम विचारवुं ते भावद्वार.

९ अल्पबहुत्वद्वार—ते पदार्थना भेदोमां परस्पर संख्यानी हीनाधिकता दर्शाववी ते अल्पबहुत्वद्वार,

ए प्रमाणे ए नव द्वारो प्रत्येक पदार्थने अथवा पदार्थना गुणने पण लगाडी शकाय. ने ते पद्धति गुरुगमथी विचारवा योग्य छे, अहिं ग्रंथकर्त्ता ए नवे द्वार मोक्षतत्त्वमां (सिद्ध जीवोने अंगे) उतारनार छे,

---

अवतरण—आ गाथामां मोक्षना (९ भेदमांथी) पहेला भेदनो अर्थ दर्शावे छे.

संतं सुद्धपयत्ता, विज्जंतं खकुसुमव्व न असंतं ।
मुक्खत्ति पयं तस्स उ, परूवणा मग्गणाईहिं ॥४४ ॥

संस्कृतानुवादः

सत् शुद्धपदत्वाद्विद्यमानं खकुसुमवत् न असत् ।
मोक्ष इति पदं तस्य तु प्ररूपणा मार्गणाभिः ॥ ४४ ॥

शब्दार्थः—

संतं-सत् (विद्यमान]
सुद्ध-शुद्ध-एक
पयत्ता-पदपणु होवाथी
विज्जंतं-विद्यमान
ख-आकाशना
कुसुम-पुष्प-फुलनी
व्व-पेठे
न-नथी
असंतं-असत् (-अविद्यमान)
मुक्ख—मोक्ष

चि-ए (इति)
पयं—पद छे
तस्य-तेनी (मोक्षनी)
उ—वळी
परूवणा-प्ररूपणा (कथन)
मग्गणाईहिं-मार्गणाओवडे कराय छे,

गाथार्थः—(मोक्ष ए) एक पद होवाथी सत् एटले विद्यमान छे, परन्तु आकाशना फुलनी पेठे असत् (-अविद्यमान) नथी, अने मोक्ष ए एक पद छे, अने ते मोक्षपदनी प्ररुपणा हवे १४ मार्गणाद्वारे थाय छे.

विस्तरार्थः----हवे आ गाथामां मोक्षतत्वनो प्रथम भेद सत्पद्प्ररूपणाद्वार कहे छे, अर्थात् मोक्ष ए वस्तु जगत्‌मां छे के नहि ? ते साबित करे छे. ते आ प्रमाणे----

दुनियामां जेटली एक पद एटले शब्दवाळी वस्तुओ ते सत्-विद्यमान ज छे, जेमके आकाश-पुष्प वन्ध्या-पुत्र सुवर्ण-आभूषण रत्न-तेज इत्यादि सर्व एकेक पदवाळी वस्तुओ विद्यमानछे, अने बे त्रण चार इत्यादि अधिक पदवाळी वस्तु विद्यमान होय अथवा न पण होय, जेमके सुवर्णाभरण (--सोनानुं आभरण) ए बे पदवाळी वस्तु विद्यमान छे, रत्नतेज (--रत्नोनुं तेज] ए पण बे पदवाळी वस्तु विद्यमान छे, अने आकाशपुष्प [--आकाशनुं फुल तथा वन्ध्यापुत्र [--वांझणीनो पुत्र) इत्यादि बे बे पदवाळी वस्तुओ अविद्यमान छे, ए उपरथी तात्पर्य ए आव्युं के एकेक पदवाळी वस्तुओ सर्वे विद्यमान ज छे, अने एकथी अधिक-बे वगेरे पदवाळी वस्तुओ विद्यमान होय एवो नियम नथी, तो हवे मोक्ष ए एक पदवाळी वस्तु होवाथी अवश्य विद्यमान छे, परन्तु आकाशपुष्पवत् (बे पदवाळी वस्तुनी माफक] अविद्यमान नथी,

तर्क—जो एम कहो के एकेक पदवाळी वस्तुओ सर्व विद्यमानज छे तो डित्थ—कक्कु--दिस्क इत्यादि पण एकेक पदनी कल्पना करीए नो तेवी वस्तु शुं कोइ छे ! अर्थात् नथी, ज तेम मोक्ष ए पण एक पद कल्पनावाळुं होय तो ते विद्यमान ज छे, एम केम कही शकाय ? अने ते साथे एकेक पदवाळी वस्तुओ सर्वे विद्यमान ज होय एम पण बनी शके नहि,

उत्तर---हे तार्किक ! अमो एम कहीए छीए के " एकेक पद वाळी वस्तु सर्व विद्यमानज छे " तो तमारी कहेली डित्थ--कक्कु--दिस्क इत्यादि पदवाळी वस्तु छे ? के अवस्तु छे ! जो वस्तु छे तो वस्तुनी अविद्यमानता केम कहो छो ? अने जो अवस्तु छे तो अवस्तुनुं डित्थ कक्कु दिस्क इत्यादि नाम शी रीते ? कही शका छो ? अर्थात् अवस्तुनुं पद—नाम होय ज नहिं, कारणके वस्तुनुंज नाम होय पण अवस्तुनुं नाम दुनियामां होतुंज नथी, अने पद पण तेज कहेवायके जे ते पदवाळी वस्तु होइ शके, माटे तमारि डित्थ इत्यादि एक पदवाळी वस्तु पण नथी ए तो " एक पदवाळी वस्तुओ " कहीने पुनः " नथी " एम कहेवाथी वदतो व्याघात जेवुं थयुं, माटे मानवुं जोइए के एक पदवाळी वस्तुओ विद्यमान ज छे, अने मोक्ष ए एक पद छे माटे मोक्ष ए विद्यमान ज छे. अने ते मोक्ष कइ कइ मार्गणामां छे तेनी प्ररूपणा कराय छे,



अवतरण---हवे आ गाथामां (मोक्षपदनी प्ररूपणा मार्गणा द्वारे करवा माटे) १४ मूळ मार्गणाओनुं नाम दर्शावे छे,

॥ मूळ गाथा ४९ मी. ॥

गइइंदिये अ काए, जोए वेए कसायनाणे य ।
संजमदंसणलेसा, भवसम्मे सन्नि आहारे ॥ ४५ ॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

गतिरिन्द्रियं च कायः, योगो वेदः कषायो ज्ञानं च ।
संयमो दर्शनं लेश्या, भव्य--सम्यक्त्वेसंज्ञिराहारः ॥ ४५ ॥

॥ शब्दार्थः ॥

गइ--गति मार्गणा
इन्दिए--इन्द्रियमार्गणा
काए--कायमार्गणा
जोए--योग मार्गणा
वेए--वेद मार्गणा
कसाय--कषाय मार्गणा
नाणे--ज्ञानमार्गणा
संजम--चारित्रमार्गणा
दंसण--दर्शनमार्गणा
लेसा--लेश्यामार्गणा
भव--भव्यमार्गणा
सम्मे--सम्यक्त्व मार्गणा
सन्नि--संज्ञिमार्गणा
आहारे--आहारकमार्गणा

गाथार्थः—गति ४-इन्द्रिय ५--काय ६--योग ३-कषाय ४--ज्ञान ८-चारित्र ७-दर्शन ४-लेश्या ६-भव्य २-सम्यक्त्व ६-संज्ञा २-ने आहारक २ ए प्रमाणे १४ मूळ मार्गणा अने ६२ उत्तर मार्गणा (--मार्गणाना भेद] छे,

विस्तरार्थ—मार्गणा एटले विवक्षित भावनुं अन्वेषण--शोधन जे द्वाराए थाय ते मार्गणा कहेवाय, अहिं विवक्षित मोक्ष भावनुं अन्वेषण--शोधन गत्यादिद्वाराए करवानुं छे, अने बीजा पण अनेक भावोनुं अन्वेषण शास्त्रोमां गत्यादिद्वारा करेलुं होवाथी गत्यादि १४ मूळभेद अने ६२ उत्तर भेदने मार्गणा एवी संज्ञा आपेली छे, ते १४ मूळ मार्गणाना ६२ उत्तर भेद [उत्तरमार्गणा] आ प्रमाणे---

(१) गति ४

१ नरकगति
२ मनुष्यगति
३ देवगति
४ तिर्यंचगति

इन्द्रियजाति ५

१ एकेन्द्रिय
२ द्वीन्द्रिय
३ त्रीन्द्रिय
४ चतुरिन्द्रिय
५ पचेन्द्रिय

(३) काय ६

१ पृथ्विकाय
२ अप्काय
३ तैजस्काय
४ वायुकाय
५ वनस्पतिकाय
६ त्रसकाय

(४) योग ३

१ मनोयोग
२ वचनयोग
३ काययोग

(५) वेद ३

१ स्त्रीवेद
२ पुरुषवेद
३ नपुंसकवेद

(६) कषाय ४

१ क्रोध
२ मान
३ माया
४ लोभ

(७) ज्ञान ८

१ मतिज्ञान
२ श्रुतज्ञान
३ अवधिज्ञान
४ मनःपर्यवज्ञान
५ केवळज्ञान

(८) चारित्र ७

१ सामायिक चा०
२ छेदोपस्थापनिक
३ परिहारविशुध्धि
४ सूक्ष्मसंपराय
५ यथाख्यात
६ देशविरति
७ अविरति

१ मति अज्ञान
२ श्रुत अज्ञान
३ विभंगज्ञान

(९) दर्शन ४
१ चक्षुदर्शन
२ अचक्षुदर्शन
३ अवधिदर्शन
४ केवलदर्शन

(१०) लेश्या ६
१ कृष्ण
२ नील
३ कापोत
४ तेजो
५ पद्म
६ शुक्ल

(११) भव्य २
१ भव्य
२ अभव्य

(१२) सम्यक्त्व ६
१ औपशमिक
२ क्षायोपशमिक
३ क्षायिक
४ मिश्र
५ सास्वादन
६ मिथ्यात्व

(१३) संज्ञि २
१ संज्ञि
२ असंज्ञि

(१४) आहारक २
१ आहारक
२ अनाहारक

ए दरेक मूळ मार्गणामां सर्व संसारी जीवोनो समावेश थइ जाय छे, अर्थात् बीजी रीते कहीए तो सर्व संसारी जीवो गतिनी अपेक्षाए ४ प्रकारना, इन्द्रियनी अपेक्षाए ५ प्रकारना कायनी अपेक्षाए ६ प्रकारना इत्यादि रीते संसारी जीवोनुं १४ रीते मार्गण-

अन्वेषण-- ओळखाण थाय छे, अहिं कइ मार्गणाना कया भेद-मां मोक्ष तत्त्वनी प्राप्ति छे ते दर्शाववाने माटे आ मार्गणाओनां नाम तथा उत्तर भेद पण दर्शाव्या छे, (मार्गणाओनो विशेषार्थ चालु नवतत्त्व प्रकरणमां प्रसंगे प्रसंगे प्रथम आवी गयेल छे, छ-तां विशेष जिज्ञासुए चतुर्थकर्मग्रन्थथी जाणवा योग्य छे,)

अवतरण—पूर्व गाथामां मार्गणाओ कहीने हवे आ गाथा-मां कइ कइ मार्गणामां मोक्ष होय छे? ते दर्शावे छे.

॥ मूळ गाथा ४६ मी. ॥

नरगइपणिंदितसभव, सन्निअहक्खायखइअसम्मत्ते
मुक्खोऽणाहार केवल, दंसण नाणे न सेसेसु ॥ ४६ ॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

नरगतिपंचेन्द्रियत्रसभव्य-संज्ञियथाख्यातक्षायिकसम्यक्त्वे ।
मोक्षोऽनाहारकेवलद—र्शनज्ञाने न शेषेषु ॥ ४६ ॥

॥ शब्दार्थः ॥

नरगइ-- मनुष्यगति
पणिंदि--पंचेन्द्रिय
तस--त्रस
भव--भव्य
सन्नि--संज्ञि
अहक्खाय--यथाख्यात चारित्र
खइअ—क्षायिक
सम्मत्ते—सम्यक्त्वमां
मुक्खो--मोक्ष छे
अणाहार--अनाहारक
केवलदंसण--केवलदर्शन
(केवल) नाणे--केवलज्ञानमां
न--नहि
सेसेसु- बाकीनी (४ मूळ अने ५२ उत्तर) मार्गणाओमां

गाथार्थः—मनुष्यगतिमार्ग०-पंचेन्द्रिय मा०-त्रसकाय मा०-भव्यमा०-संज्ञि मा०-यथाख्यात चारित्रमा० क्षायिकसम्यक्त्व मा०-अनाहारक मा०-केवलदर्शन मा०- केवलज्ञान मार्ग० ए १० मार्गणामां मोक्ष थाय छे, पण वाकीनी (४ मूळ अथवा ५२ उत्तर) मार्गणामां मोक्ष होय नहिं.

विस्तरार्थः पूर्व गाथामां मार्गणाओनां मूळ नाम तथा तेना उत्तरभेदनी संख्या दर्शावीने हवे आ गाथामां ते मार्गणाओमांथी [-जीवभेदोमांथी कइ कइ मार्गणामां [-कया कया जीवभेदमां) मोक्षनी प्राप्ति थाय छे ते दर्शावे छे.

गतिमार्गणामांथी नरगइ—मनुष्यगतिमां मोक्षप्राप्ति होय छे, पण शेष ३ गतियोमां मोक्ष होय नहिं. कारणके सर्वविरति चारित्र विना मोक्षनी प्राप्ति होय नहिं, अने नारक देवने सम्यक्त्व होय पण चारित्र न होय अने ग० ति० पंचे० ने वधुमां वधु देशविरति चारित्र ज होय माटे ए त्रणे गतिमां मोक्षनी प्राप्ति नथी (माटे ज मनु० गति सर्वोत्तम छे,)

इन्द्रिय मार्गणामांथी पणिदि—पंचेन्द्रियने मोक्षप्राप्ति होय, पण शेष एकेन्द्रियादिकने मोक्षप्राप्ति न होय, कारणके प्रथम कह्या प्रमाणे मोक्षप्राप्ति मनुष्यगतिमांज होय छे ने मनुष्यगति ते पंचेन्द्रिय मार्गणामांज अन्तर्गत छे माटे,

कायमार्गणामांथी तस—त्रसकायमांज मोक्षप्राप्ति छे, पण मनुष्यत्वना अभावथी स्थावरजीवोने मोक्ष प्राप्ति नथी.

भव्यमार्गणामांथी भव्यजीवनेज मोक्षप्राप्ति छे, परन्तु अभव्यने नहिं, कारणके भव्य ए नामज मोक्षगमननी योग्यताने अंगे पडेलुं छे(अर्थात् भव्य एटले मोक्षगमननी योग्यता वाळो जीव) माटे मोक्ष पाम्या बाद ते जीव भव्य न कहेवाय, कारणके मोक्षे

गया बाद " मोक्षे जवानी योग्यता " ए अर्थ लागु पडतो नथी माटे सिद्ध परमात्मा नोभव्य नोअभव्य–भव्य पण नहिं, अने अभव्य पण नहिं एम कहेवाय छे, पुनः जेटला भव्य जीवो जगतमां छे ते सर्व नहिं पण तेनो अनन्तमो भागज मोक्षप्राप्तिवाळो छे. छतां पण शेष रहेला (मोक्षे जवानी योग्यतावाळा छतां मोक्षे नहिं जनारा) जीवो योग्यतावाळा होवाथी भव्य तो कहेवाय ज. पुनः ते भव्यो पण एवा छे के जेओ कोइ पण काळे सू० निगोदमांथी निकळवानाज नथी तो मोक्षप्राप्तिनी तो वातज शी ? छतां पण जेम गर्भ धारण करवानी शक्तिवाळी स्त्री पतिसंयोगना अभावे पुत्रवाळी न होइ शके परन्तु ते वंध्या न कहेवाय, तेम सामग्रीना अभावे कदीपण मोक्ष नहि पामनारा भव्य जीवो अभव्य तो न ज कहेवाय. (कोइ कोइ स्थाने एवा जीवोने भव्याभव्य कह्या छे,) इत्यादि विशेष वर्णन लोकप्रकाशादि ग्रंथोथी जाणवुं.

संज्ञि मार्गणामांथी संज्ञि–संज्ञि–मनवाळा जीवोनेज मोक्षप्राप्ति छे, पण असंज्ञि जीवोने नहिं, कारणके विशिष्ट मनोविज्ञान विना चारित्रनो अभाव छे, अने चारित्रना अभावे मोक्षनो पण अभावज छे. अहिं संज्ञि एटले विशिष्ट मनोविज्ञानवाळा एवो अर्थ जाणवो, परन्तु विशिष्ट मनोविज्ञानमां वर्तता एटले मनोयोगवाळा एवो अर्थ न करवो, कारण के त्रण योगमांथी कोइ पण योगमां वर्तता जीवने मोक्ष होय नहिं, परन्तु अयोगपणुं प्राप्त थाय त्यारेज मोक्ष होइ शके.

१ सिद्ध परमात्मा नोसंज्ञि नोअसंज्ञि एटले संज्ञि नहिं तेम ज असंज्ञि पण नही एवा कह्या छे, तेम अयोगि अवस्थामां मोक्ष होय छे, छतां अहिं संज्ञिने जे मोक्ष कह्यो छे, ते अयोगि भगवन् द्रव्यमनयुक्त छे, ए अपेक्षाथी अयो-

चारित्र मार्गणामांथी अहक्खाय-यथाख्यात चारित्रीने[1] मोक्षप्राप्ति होय, पण शेष ६ चारित्रमां नहिं, कारण के मोक्षप्राप्ति सर्वोत्कृष्ट अथवा सर्वांशे शुद्ध एवा चारित्रथी होय छे, ने तेवुं सर्वांशे शुद्ध क्षायिक यथाख्यात चारित्रज छे.

सम्यक्त्व मार्गणामांथी क्षायिकसम्यक्त्वी जीवने मोक्ष प्राप्ति होय, कारण के मोक्ष क्षायिक यथाख्यातचारित्रथी होय छे, ने क्षा० यथाख्या० चारित्र क्षायिक सम्यक्त्व विना होय नहि माटे मोक्षप्राप्ति क्षा० सम्य० मां छे.

आहार मार्गणामांथी अनाहारी जीवने मोक्षप्राप्ति छे, परन्तु आहारी जीवने नहिं. कारण के आहार ते सयोगी (मन वचन कायाना योगवाळा) जीवने होय छे, ने सयोगी जीवने मोक्षप्राप्ति थती नथी माटे आहारी जीवने पण मोक्ष प्राप्ति होय नहिं, परन्तु अनाहारी जीवनेज मोक्षप्राप्ति होय छे.

ज्ञानमार्गणामां केवळज्ञानीने मोक्षप्राप्ति होय छे, परन्तु शेष चारज्ञानवाळा जीवोने नहिं. कारण के शेष ४ ज्ञान क्षयोपशमभावनां छे, ने क्षयोपशम भावे मोक्षप्राप्ति होय नहिं पण क्षायिक भावे ज मोक्षप्राप्ति होय माटे शेष ४ ज्ञानीने मोक्ष प्राप्ति होय नहिं. पण क्षायिकभाववाळा केवळज्ञानमांज मोक्षप्राप्ति होय.

दर्शन मार्गणामां केवळ दर्शनीने मोक्ष होय, परन्तु शेष चार

गिभगवान् संज्ञि कहेवाय छे माटे संज्ञिने मोक्ष कह्यो छे, अन्यथा अयोगि भगवान् सज्ञामां वर्तवावाळा नहिं (होवाथीभावप्रवृत्तिनी अपेक्षाए संज्ञिपणामां मोक्ष होइ शके नहिं,

१ ११ मे गुणस्थाने उपशम यथाख्या०, ने १२—१३—१४ गुणस्थाने क्षायिक यथाख्या० चारित्र ए प्रमाणे यथाख्या० चा० बे प्रकारनांछे. पुनः सिद्धने७मांनु एक पण चारित्र नहिं तेथी शास्त्रमां सिद्ध परमात्माने नोचारित्री नो अचारित्रीविशेषणथी कह्या छे.

दर्शन क्षयोपशमभाववाळां होवाथी तेमां मोक्ष न होय.

ए प्रमाणे १४ मूळ मार्गणामांथी गति-इन्द्रिय-काय-ज्ञान -चारित्र-दर्शन-भव्य-संज्ञि-सम्यक्त्व ने आहारक ए १० मूळ मार्गणामां तथा मनुष्यगति विगेरे १० उत्तरमार्गणामां मोक्षप्राप्ति होय छे. पण शेष योगवेद-कषाय-लेश्या ए ४ मूळ मार्गणामां तथा नरकगति आदि ५२ उत्तरमार्गणामां मोक्षप्राप्ति होय नही. त्यां चार मूळ मार्गणाए मोक्षप्राप्ति नहिंहोवा-नुं कारण नीचे प्रमाणे— मोक्ष ए स्थिर परिणामे—स्थि-रध्याने होय छे, ने योग तथा लेश्या बन्ने चळाचळ (अस्थिर) परिणामरूप छे, एटले जीवनी चळ अवस्थानुं निमित्त छे माटे योग तथा लेश्या सद्भावे मोक्षनो अभाव छे, पुनः योग अने ले श्याने अन्वयव्यतिरेक संबंध छे, माटे लेश्या होने योग अवश्य होय, ने लेश्या न होय तो योग पण न होय. अथवा ज्यांसुधी योग छे, त्यां सुधी लेश्या छे. ने योग नथी तो लेश्या पण नथी. एवो योग-लेश्याने परस्पर संबंध छे.

तथा ज्यांसुधी वेद-तथा कषायनो उदय होय त्यां सुधी उप-शम यथाख्यात चारित्र पण प्राप्त न थाय तो मोक्षप्राप्तिना का-रणरूप क्षायिक यथाख्या० चारित्रनी तो वातज शी ? अने क्षा० यथा० पाम्या विना मोक्षपण होइ शके नहिं, माटे सवेदी तथा स-कषायी जीवने मोक्षप्राप्ति नथी.

ए प्रमाणे मोक्षना सत्पद नी प्ररुपणा मार्गणाद्वारे करी.

अवतरणः—पूर्वनी ३ गाथाओमां मोक्षनो पहेलो भेद (सत्पदप्ररुपणाद्वार) वर्णव्युं, अने हवे आ गाथामां मोक्षनो

बीजो भेद द्रव्यप्रमाणद्वार अने त्रीजो भेद क्षेत्रद्वारनुं स्वरुप दर्शावे छे.

॥मूळ गाथा ४२ ॥

दव्वपमाणे सिद्धाणं, जीवदव्वाणि हुंतिऽणंताणि।
लोगस्स असंखिज्जे, भागे इक्को य सव्वे वि ॥४७॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

द्रव्यप्रमाणे सिद्धानां जीवद्रव्याणि भवन्त्यनंतानि।
लोकस्यासंख्येयभागे एकश्च सर्वेऽपि ॥ ४७ ॥

॥ शब्दार्थः ॥

दव्वपमाणे–द्रव्यप्रमाण द्वारमां	लोगस्स–लोकना
सिध्धाणं–सिध्ध परमात्मानां	असंखिज्जे–असंख्यातमे
जीवदव्वाणि–जीवद्रव्यो (जीव संख्या)	भागे—भागे
हुन्ति—छे	इक्को–एक सिध्ध परमात्मा
अणंताणि—अनन्त	य–अने
	सव्वे–सर्वे सिध्ध परमात्मा
	अवि—पण

गाथार्थः—(बीजा) द्रव्यप्रमाणद्वारमां सिद्ध परमात्मानां जीव द्रव्यो (सिद्ध जीवोनी संख्या) अनंत छे, अने (त्रीजा क्षेत्रद्वारमां) एक सिद्ध परमात्मा अने सर्वे पण सिध्धपरमात्मा लोकाकाशना असंख्यातमा भाग जेटला क्षेत्रमां रहेला छे.

विस्तरार्थः—हवे आ गाथामां मोक्ष तत्त्वनो बीजो भेद द्रव्य प्रमाणद्वार, अने त्रीजो भेद क्षेत्रद्वार कहेवामां आवे छे. त्यां द्रव्य एटले पदार्थ अथवा वस्तु एवो अर्थ थायछे परन्तु आ स्थाने

सिद्धरूप जीवद्रव्यनुं एटले सिद्धजीवोनी संख्यानुं एवो अर्थ सुगम थाय छे, अन ते सिद्धजीवोनी संख्यानुं प्रमाण केटलुं छे ? ते दर्शावे छे--के सिद्धाणं जीवदव्वाणि हुंति णंताणि–सिद्ध परमात्मानां जीवद्रव्यो अनंत छे, अर्थात् सिद्धपरमात्मा एक बे नथी पण अनंत छे. अहिं ध्यानमां राखवा योग्य छे के जीव पोतेज सिद्धरूप छे, परन्तु ज्यांसुधी कर्मसहित छे, त्यांसुधी संसारी छे, अने कर्म रहित थतां सिद्ध थाय छे, तो ते संसारी जीवो अनंत छे ने ते संसारी जीवोज सिद्ध थता होवाथी सिद्ध जीवो पण अनंत छे.

हवे ते सिद्ध जीवो केटला क्षेत्रमां रहे छे ते क्षेत्रप्रमाणद्वार दर्शावे छे के–लोगस्स असंखिज्जे भागे इक्को य सव्वेवि–लोकना असंख्यातमा भागमां एक सिद्ध रहे छे, ने सर्व सिद्धपरमात्माओ पण तेटला एटले असंख्यातमा भागना क्षेत्रमां रहेला छे, अहिं भावार्थ ए छे के—सिद्धपरमात्मा १४ राजलोकना अग्र भागे

---

१ आ अर्थ उपरथी सार ए लेवानो छे के दुनियाना घणां भाग के जे ईश्वर एकज छे एम माने छे, ते असत्य छे, कारणके सिद्धपरमात्मा सिवाय बीजो कोइ ईश्वर नथी अने ते सिद्धपरमात्मा अनन्त छे, वळी जा एकज ईश्वर मानीये तो जगतमां ईश्वरनी भक्ति उपासना करनार कोइपण जीव ईश्वर रूप थताज नथी एम मानवुं पडे, कारणके तेम थवाथी तो ईश्वर अनेक थइ जाय ते अन्यदर्शनीयोने मान्य नथी, तो विचारवानी वात छे के ज्यारे ईश्वरनी भक्ति उपासनाथी पण ईश्वर रूप थवानुं नथी तो अनेक कष्टो वेठी ईश्वरनी भक्ति उपासना करवी व्यर्थ छे, माटे जैनदर्शननी एज मान्यता छे के एक जीवे जे मार्गे चाली सिद्धपणुं ईश्वरपणुं प्राप्त कर्युं छे ते मार्गे चालनारा बीजा संसारी जीवो पण सिद्ध—ईश्वररूप बना शके छे, ने ते कारणथी सिद्ध अथवा ईश्वर एक नथी पण अनन्त छे.

३३३ धनुष्य १ हाथ ने ८ आंगळ जेटली जाडी ने ४५ लाख जोजन लांबी पहोळी गोळाकार जग्यामां सर्व सिद्धो रहेला छे, माटे एटला प्रमाणवाळी जग्या १४ राजलोक क्षेत्रनी अपेक्षाए असंख्यातमा भाग जेटलीज छे, तथा एक सिध्ध कमीमां कमी १ हाथ ८ आंगळ जेटली जग्यामां समाय छे, ने वधुमां वधु ३३३ धनुष्य-१ हाथ-ने ८ आंगळ जेटली जग्यामां समाय छे, तो ए जग्या पण १४ राजलोकनी अपेक्षाए असंख्यातमा भाग जेटलीज छे, माटे गाथामां कह्युं छे के "लोकना असंख्यातमा भागमां एक सिध्ध अने सर्व सिध्ध पण रहे छे" ए वात योग्यज छे, मात्र तफावत एज छे के एक सिध्धने माटे जे असंख्यातमो भाग कह्यो छे ते करतां सर्वसिध्धना क्षेत्रनो असंख्यातमो भाग संख्यातगुणो मोटो जाणवो.

अवतरण:—आ गाथामां मोक्षना जीवोने स्पर्शना-काळ-अने अन्तर ए ३ द्वार दर्शावे छे.

१-२ कारणके कमीमां कमी २ हाथनी कायावाळो वामन जीव मोक्षे जइ शके, अने वधुमां वधु ५०० धनुष्य जेटली कायावाळो जीव मोक्षे जइ शके छे, ने अहिंना शरीरना बे तृतीयांसमा भाग जेटलो आत्मा मोक्षे जतां सकोचायली होय छे, माटे ए प्रमाण आवे छे,

३ आ गाथाना अर्थनो सार ए छे के जगतमां जेओ एम कहे छे के "इश्वर सर्व जगतमां व्याप्त छे" तेओनुं कथन जैन दर्शननी अपेक्षाए अयोग्य छे, कारणके जैनदर्शनमां इश्वर देशव्यापी छे पण सर्वव्यापी नथी एम आ गाथाना भावार्थमां कह्यु छे,

॥ मूळ गाथा ३७ मी. ॥

फुसणा अहिया कालो, इगसिद्ध पडुच्च साइओणंतो।
पडिवायाऽभावाओ, सिद्धाणं अंत नत्थि ॥ ४८ ॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

स्पर्शना अधिका कालः, एकसिद्धं प्रतीत्य साद्यनंतः।
प्रतिपाताऽभावतः, सिद्धानामन्तरं नास्ति ॥ ४८ ॥

॥ शब्दार्थः ॥

फुसणा—स्पर्शना
अहिया—अधिक छे
काल—काळ
इगसिद्ध—एक सिध्धने
पडुच्च—आश्रयि
साइओ—सादि
णंतो—अनन्त
पडिवाय—पडवाना
अभावाओ—अभावथी
सिध्धाणं—सिध्धोने
अंतरं—अन्तर (वच्चे असिध्ध-पणु)
नत्थि—नथी

गाथार्थः—(स्पर्शना द्वारमां) सिध्धना जीवने स्पर्शना (पोताना अवगाह करतां) अधिक छे, (अने काळ द्वारमां) एक सिध्धने आश्रयि (–एक सिध्धनी अपेक्षाए) सादि–अनंत काळ छे. अने (अन्तर द्वारमां) पडवाना (सिध्धपणुं मटीने संसारीपणुं प्राप्त थवाना) अभावथी सिध्धना जीवोने अन्तर (–वच्चे असिध्धपणुं) नथी.

विस्तरार्थः—अहिं स्पर्शनाद्वारमां सिद्धने स्पर्शना अधिक छे, एटले एक सिद्ध जीव जेटला आकाशप्रदेशमां अवगाहेल छे, तेटला आकाश प्रदेशो तो अवगाहना रूपे स्पर्शेलाज छे, परन्तु ते सिवाय बीजा पण आकाश प्रदेशो आजुबाजूथी अधिक

स्पर्शेला छे, ए अधिक स्पर्शना मात्र एक आकाशप्रदेश जेटला जाडा अने सिद्धनी अवगाहना जेटला विशाळ एवा प्रतरवाळी छे, अथवा सिद्धना एक जीवे एक प्रदेश जाडुं वस्तर सर्वांगे पहेर्युं होय तेवी छे, अहिं अधिकता ते अवगाहित आकाश प्रदेशोनी अपेक्षाए जाणवी. ने आ स्पर्शनाद्वार एक सिद्धनी अपेक्षाए ज सर्वत्र कहेल छे, पुनः एक आकाश प्रदेश जेटला जाडा ते अधिक स्पर्शनाना प्रतरमां बीजा जीव तथा पुद्गल वगेरेना अनन्तानन्त प्रदेशो अवगाहेला होय ते पण सिद्धने अधिक स्पर्शनामां गणवा, कारणके लोकमां ज्यां आकाशनो एक प्रदेश छे, त्यां धर्मास्ति० नो१ अधर्मास्ति कायनो अने जीव तथा पुद्गलना अनन्त अनन्त प्रदेशो अवश्य रहेला छे,माटे ते पण अधिक स्पर्शनामां गणवा.अहिं स्पर्शना अने अवगाहनामां तफावत ए छे के परस्पर प्रवेशरूपे सर्वांशे संक्रान्तथयेला प्रदेशो ते अवगाहित अने उपरथी देशांशे अडीने रहेला प्रदेशो ते स्पर्शित कहेवाय, ए प्रमाणे अधिकस्पर्शनानुं स्वरूप कह्युं.

हवे सिद्धने काळद्वारनुं स्वरूप कहे छे, त्यां प्रथम एकसिद्धआश्रयि अने अनेक (सर्व) सिद्ध आश्रयि एम काळद्वार बे प्रकारनुं छे, त्यां अमुक एक सिद्ध ज्यारे मोक्षमां गयो त्यारे ते सिद्धनी अपेक्षाए मोक्षनी सादि (स–आदि–आदि सहित –प्रारंभ थयो,) ने हवे ते मोक्षनो कोइपण काळे अन्त नहिं होवाथी अनन्त (अन् नहि अन्त–विनाश) काळ प्रमाणनो जाणवो, ए प्रमाणे एक सिद्ध परमात्मानी अपेक्षाए मोक्ष सादि–अनन्त छे, तथा सर्व सिद्ध परमात्मानी अपेक्षाये विचारीये तो सर्व सिद्धमां प्रथम कोण मोक्षे गया ? अथवा मोक्षनी शरुआत क्यारथी थइ ? एना उत्तरमां सर्वज्ञो एमज कहे छे के मोक्ष प्रवाह

अनादिकाळनो होवाथी अमुक काळे मोक्षनो प्रारंभ थयो तेम नथी माटे अनादि अने मोक्षनो कोइ काळे अन्त नहिं होवाथी अनन्त छे, ए प्रमाणे सर्व सिद्ध परमात्माओनी अपेक्षाए-मोक्षतत्त्व अनादि-अनन्त काळ प्रमाण छे

हवे सिद्धने अन्तरद्वार कहे छे ते आ प्रमाणे—पडिवायाऽभावाओ एटले सिद्धपणामांथी प्रतिपातना-पडवाना अभावथी सिद्धना एक जीवने पण अन्तरं—आंतरुं नथी. कारणके वळी गयेला बीजनो जेम पुनः अंकुरो फुटतो नथी तेम सर्वथा क्षय पामेलां कर्म जीवने पुनः लागी शकतां नथी ने कर्म विना संसारीपणुं होतुं नथी. ने ए प्रमाणे जीवने बे त्रण के चारवार मोक्ष होइ शकतो नथी, पण मोक्ष एकज वार होय छे, तो मोक्षने अन्तर—आंतरुं केवी रीते होय ? कारणके प्रथम एक जीव मोक्षे गयो, त्यां केटलोककाळ रही पुनः संसारमां आवे, ने संसारमां पण केटलोक काळ रही पुनः मोक्षमां जाय आ प्रमाणे जो बनतुं होय तो बे (वार) मोक्षनी वच्चे एक (संसारीपणारूप) अन्तर पड्युं कहेवाय, पण तेम नो बनतुं नथी माटे मोक्षने अन्तर पण न होय, [1](तेमक्षेत्रनी अपेक्षाए पण एक सिद्धथी बीजा सिद्धनी वच्चे अन्तर (—खाली क्षेत्र) नथी

---

१ सादि सान्त, सादि अनन्त, अनादि सान्त. अने अनादि अनन्त, ए ४ प्रकारना काळमां अहिं मोक्षतत्त्वमां २ प्रकारनोज काळ लागु पडे छे- ने सिद्ध थइ पुनः संसारी थवाना अभावथी सादि सान्त, तथा अनादि सान्त ए बे प्रकार मोक्षने अंगे लागुपडता नथी.

१ प्रथम कहेला काळद्वार अने अहिं कहेला अन्तरद्वारथी ए पण भावार्थ आवे छे के लौकिकशास्त्रोमां " ईश्वर परमात्मा मोक्षमांथी संसारमां आवी पुनः भक्तजनोना उद्धार माटे अवतार धारण करे छे." एम कह्युं छे ते जैनदर्शनथी

अवतरण—आ गाथामां सिद्धना जीवोने भागद्वार अने भावद्वार दर्शावे छे,

॥ मूळ गाथा ४९ मी.

सव्वजियाणमणंते, भागे ते तेसिं दंसणं नाणं ।
खइए भावे परिणामिए अ पुण होइ जीवत्तं ॥४९॥

संस्कृतानुवादः

सर्वजीवानामनंते भागे ते तेषां दर्शनं ज्ञानं ।
क्षायिके भावे पारिणामिके च पुनर्भवति जीवत्वं ॥४९॥

विपरीत छे, कारण के सर्व कर्मनो बळेला बीजनी पेठे क्षय कर्याथी मोक्षमां गयेला जीवने पुनः कर्म केवी रीते लाग्यां? अने कर्म विना संसारमां अवतरवुं केम बनी शके? तथा निरंजन निराकार रागद्वेष रहित वीतराग एवा निःकर्म ईश्वरने कर्मविना भक्तजन उपर राग अने अभक्त उपर द्वेष केवी रीते होय? माटे ज जैनदर्शन स्पष्टरीते जणावे छे के—कर्मविना रागद्वेष होय नहि, कर्मविना संसारमां अवतार लेवानुं बने नहिं, एकवार कर्मनो सर्वथा क्षय कर्या बाद पुनः कर्म लागे नहिं, ने निरंजन निराकार वीतराग एवा ईश्वर परमात्माने भक्ति करनारपर राग के ईर्ष्या करनारपर द्वेष पण न होय. अने ते कारणथी मोक्षमां गयेला सिद्ध-ईश्वर परमात्माओ पुन संसारमां अवतरता नथीज

२ अर्थात् ए अन्तर काळनी अपेक्षाए कह्युं तेम क्षेत्रनी अपेक्षाए पण अन्तर नथी, कारण के ४५ लाख योजन व्यास अने ३३३ ध० १ हाथ ८ आंगळ स्थूल प्रमाण सिद्धक्षेत्रमां अनंतसिद्धो परस्पर देशांशे ने सर्वांशे संक्रमीने खीचोखीच रह्या छे, जेथी ४५ लाख योजनमां एवी कोइ एक आकाश प्रदेश जेटली पण खाली जग्या नथी के ज्यां सिद्ध न होय. माटे क्षेत्रनी अपेक्षाए पण एक सिद्धथी बीजा सिद्धनी वच्चे अन्तर खाली क्षेत्र नथी

॥ शब्दार्थः ॥

सव्व--सर्व,	खइए--क्षायिक
जिवाणं--जीवोना	भावे--भावे छे,
अणंते--अनन्तमा	पारिणामिए--पारिणामिकभावे
भागे--भागे	य--वळी
ते--ते सिद्धजीवो	पुण--पुनः
दंसणं--दर्शन	होइ--छे
नाणं--ज्ञान	जीवत्तं--जीवत्व

गाथार्थः—ते सिद्धजीवो (नी संख्या) सर्वजीवोना अनंतमे भागे छे, तेओनुं (केवळ) दर्शन अने ज्ञान क्षायिकभावे छे; अने पारिणामिक भावे जीवपणु छे.

विस्तरार्थः—ते सिद्ध परमात्माओ सर्व जीवना अनन्तमा भाग जेटला अति अल्प छे कारणके जगतमां असंख्याता (निगोदना) गोळा छे, ने एकेक गोळामां असंख्यात निगोद छे, ने एकेक निगोदमां अनन्त अनन्त वनस्पति जीवो छे, ते पण एटला अनन्त जीवो छे के प्रति समय एकेक जीव मोक्षे जाय तोपण त्रणे काळमां एक निगोद पण खाली थाय नहिं, अने तेथीज आज सुधीमां जेटला सिद्ध थया छे, ने हजी भविष्यकाळमां जेटला सिद्ध थवाना छे, ते सर्व सिद्धनी संख्या मेळवतां पण एक निगोदना असंख्यातमा भाग जेटली ज थाय ए प्रमाणे मात्र साधारण वनस्पति जीवोनी अपेक्षाए पण सर्व सिद्ध परमात्माओनी संख्या अनन्तमा भाग जेटली छे तो सर्व संसारी जीवोनी अपेक्षाए सिद्धनी संख्या अनन्तमा भागे होय तेमां शुं आश्चर्य ? ए प्रमाणे भागद्वार कह्युं.

हवे भावद्वारमां प्रथम पांच भावोनां नाम तथा अर्थ कहेला छे

तेमांथी सिद्ध परमात्माने क्षायिक अने पारिणामिक ए बे भावज होय, कारणके सिद्धपणु कर्मना क्षयथी प्राप्त थयुं छे, माटे सिद्ध परमात्मा क्षायिक भावे छे, जे दुनियाना सर्व पदार्थो स्वस्वभावे परिणत होवाथी पारिणामिक भाव वाळा छे,तो सिद्धपरमात्मो पण परिणामिक भाववाळा होइ शके छे. परन्तु औदयिक—औपशमिक—ने क्षायोप० ए त्रण भाव कर्मजन्य होवाथी सिद्ध परमात्माने होइ शके नहिं, हवे सिद्ध परमात्माने जे क्षायिक अने पारिणा० ए बे भाव छे, तेमां क्षायिकभावना ९ भेद, अने पारिणा० भावना ३ भेद छे, तो सिद्ध परमात्माने तेमांना कया कया भेद होइ शके ? ते संबन्धमां ग्रन्थकार पोतेज कहे छे के खइए भावे तेसिं दंसणं नाणं--क्षायिकभावे सिद्धपरमात्मने केवळज्ञान अने केवळदर्शन छे, .अने परिणामिए अ पुण होइ जीवत्तं—वळी पारिणामिक भावे सिद्ध परमात्माने जीवत्व छे, परन्तु भव्यत्व तथा अभव्यत्व नथी (ते वात प्रथम फुट नोटमांज दर्शावी छे के सिध्धपरमात्मा नोभवा नोअभवा—भव्य नहिं तेम अभव्य पण नहिं.) अहिं जो के इन्द्रियादि १० प्राणरूप द्रव्य जीवत्व सिद्धने नथी परन्तु ज्ञानदर्शनादि भाव प्राणोवडे भावजीवत्व छे. ए प्रमाणे भावद्वार कह्यु.

---

१ सिद्धजीवो अभव्यथी अनंतगुण छे, पण सर्वजीवथी अनंतमा भागेछे

१ शेष ५ लब्धि—क्षा० सम्यक्त्व, ने क्षा० चारित्र सिद्धने कहेलुं नथी त्यां अपेक्षाए छे के दानादि क्रियानी प्रवृत्ति अपेक्षाए ५लब्धि नथी अन्यथा अनन्तदातादिने अनन्तवीर्य लब्धि वास्तविक रीते संभवे छे, कारण के अनतलब्धिमां अन्तर्गतज गणाय. तथा क्षा० सम्यक्त्वछे पण

अवतरणः—हवे आ गाथामां मोक्षना जीवोनुं अल्पबहुत्व द्वार दर्शावे छे.

॥ मूळ गाथा ५० मी ॥

थोवा नपुंससिद्धा, थीनरसिद्धा कमेण संखगुणा ।
इअ मुक्खतत्तमेअं, नवतत्ता लेसओ भणिया ॥५०॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

स्तोका नपुंसकसिद्धाः, स्त्रीनरसिद्धाः क्रमेण संख्यगुणाः ।
इदं मोक्षतत्वमेतन्नवतत्वानि लेशतो भणितानि ॥ ५० ॥

शब्दार्थः—

थोवा—थोडा
नपुंस–नपुंसकलिंगे
सिध्धा–सिध्धथयेला
थी·स्त्री लिंगे
नर—पुरुषलिंगे
सिध्धा—सिध्ध थयेला
कमेण–अनुक्रमे
संखगुणा–संख्यातगुणा
इअ—ए
मुक्कतत्तं—मोक्षतत्त्व (कह्युं)
एअं –ए प्रमाणे
नवतत्ता–नवतत्वो
लेसओ–संक्षेपथी
भणिया—कह्या

गाथार्थः—नपुंसकलिंगे सिद्ध थयेला सर्वथी थोडा छे, तेथी स्त्रीलिंगे अने पुरुषलिंगे सिध्ध थयेला अनुक्रमे संख्यातगुणा छे, ए मोक्ष तत्व कह्युं, ए प्रमाणे नवे तत्वो (नुं स्वरुप) संक्षेपथी कह्युं

ते उपलक्षणथी ग्रहण करवा योग्य छे तेमज सिद्धने नोचारित्री नो अचारित्री विशेषणवाळा सिद्धान्तमांकहेला होवाथी क्षायिक चारित्र पण प्रवृत्ति अपेक्षावाळुं नथी, पण वास्तविक रीते अनंत चारित्र गुण छे.

विस्तरार्थः—हवे आ गाथामां कया सिध्धजीवो अल्प छे ? ने कया सिध्ध जीवो घणा छे तेनो परस्पर तफावत दर्शावतां ग्रंथकार कहे छे के नपुंसेक लिंगे सिध्ध थयेला जीवो सर्वथी अल्प छे कारण के तेवा जीवो १ समयमां १० ज मोक्षे जाय छे. अर्थात् जे मनुष्य भवमांथी निर्वाण पामी सिध्ध थाय छे ते मनुष्य भवमांथी नपुंसक लिंगवाळा १० मनुष्यो मोक्षे जइ शके छे, पण वधु नहिं, थोवा नपुंससिद्धा—नपुं० लिंगे सिध्ध थयेला सर्वथी अल्प छे. तेथी स्त्री लिंगे सिध्ध थयेला जीवो संख्यातगुण छे, कारण के मनुष्यभवमांथी १ समये (—समकाळे) २० स्त्रीयो मोक्षे जाय छे, ने २० ते १० थी बमणा होवाथी (जघन्य) संख्यात गुण थाय छे तथा पुरुष लिंगे सिध्ध थयेला ते (स्त्रीलिंग सिध्ध) थी पण संख्यातगुणा छे, कारण के मनुष्यभवमांथी समकाळे १०८ पुरुषो मोक्षे जइ शके छे ने १०८ ते २० थी आठ अधिक पांचगुणी संख्या होवाथी (मध्यम) संख्यात गुणज कहेवाय छे. ए प्रमाणे पूर्वभवना लिंग आश्रयि सिध्ध परमात्मानुं अल्पबहुत्व दर्शाव्युं, कारण के सिध्धपणामां लिंगादि भेदनो अभाव होवाथी अने सर्व सिध्ध परमात्माओ सर्व रीते एक सरखा होवाथी परस्पर (भेदना

१ अहिं कया नपुंसको मोक्षे जइ शके छे, अने कया नथी जइ शकता ते दर्शावाय छे

नपुंसक १६ प्रकारना जाति नपुंसक दीक्षाने अयोग्य होवाथी मोक्षे जइ शकता नथी, ते १० नपुसकनां नाम—

१. पंडक—स्वभाव स्त्री सरखो अने आकार पुरुष सरखो एटले मदगतिए चाले-शंका सहित पछवाडे जोतो चाले-शरीर शीतळ ने कोमळ होय-हाथना तावोटा पाडे- हाथना चाळा करे-आंखो नचावे-केडे हाथ दइ चाले—सेंथा पाडे—शृंगार करवो बहु गमे—स्नानादि गुप्त करे—पुरुष सभामां शंका पामे—स्त्री समुदायनां निडरपणे बेसे—इत्यादि स्त्री सरखा स्व-

भाववाळो होय. ए पंडकना पण ६ प्रकार छे ते धर्मबिंदुटीका वगेरेथी जाणवा.

२ वातिज—पुरुष चिन्ह स्तब्ध थतां स्त्रीसंगम कर्या विना न रही शके ते.

३ क्लीव—स्त्रीने नग्न देखी शुक्र स्खलनादि क्षोभ पामे ते दृष्टि क्लीव, स्त्रीनो शब्द सांभळी विकार जागे ते शब्द स्त्रीने स्पर्श मात्र थतां क्षोभ पामे [शुक्र स्खलनादि थाय] ते स्पर्शक्लीव, अने स्त्रीना निमंत्रणमात्रथी क्षोभ पामे ते निमंत्रणक्लीव, ए प्रमाणे ४ प्रकारना क्लीवनपुंसक छे.

४ कुंभी—जेनुं पुरुषचिन्ह वारंवार स्तब्ध थाय अथवा वृषण (-अंडगोलक) स्तब्ध (-कठीन) रहे ते, अथवा ग्रंथान्तरे कुंभ (-घडा) सरखा मोटा स्तनवाळाने पण कुंभि नपुं० कह्यो छे.

५ ईर्ष्यालु—पोतानामां स्त्रीसंगमनी शक्ति न होय तेथी बीजा पुरुषे सेवेली स्त्रीने जोइ ईर्ष्या-अदेखाइ करे ते.

६ शकुनि - एकज दिवसमां कबूतरादि पक्षिनी माफक) अनेकवार स्त्रीसंगम करनार.

७ तत्कर्मसेवी—स्त्रीसंगम करीने पण अवाच्य अंग चाटवादि कर्म करे ते.

८ पाक्षिकापाक्षिक—शुक्लपक्षमां बहु अने कृष्णपक्षमां अल्प वेद उदयवाळो.

९ सौगंधिक—अवाच्य प्रदेशने सुंघ्या करनार.

१० आसक्त—शुक्रपात थया पछी पण आलिंगन करी पडी रहेनार.

ए १० जाति नपुंसको तीव्र मोहना उदयवाळा होवाथी दीक्षाने पण अयोग्य छे तो मोक्षे जवानी वातज शी ? हवे दीक्षाने योग्य होवाथी मोक्षे जवा योग्य ६ प्रकारना कृत्रिम नपुंसक आ प्रमाणे—

१ वर्धितक—जेओनी इन्द्रियनो छेद कर्यो होय तेवा नाजर अने पावइया विगेरे.

२ चिप्पित—जन्मतांज आंगळीओना मर्दनथी जेनां वृषण (—अंडगोलक) गळावेल होय.

३ मंत्रोपहत—मंत्रवळथी पुरुषवेद नाश पाम्यो होय तेवा.

४ औषध्युपहत—औषधिथी (दवाथी के वनस्पतिथी) जेनो पुरुषवेद हणाइ गयो होय तेवा.

५ ऋषिशप्त—मुनिना शापथी पुरुषवेद हणायो होय तेवा

६ देवशप्त-कोइ देवना शापथी पु० वेद हणायो होय तेवा.

ए ६ प्रकारना कृत्रिम नपुंसको मोक्षे जवा योग्य छे ते संबंधि विशेष स्वरूप श्रीनिशिथसूत्रथी जाणवुं. पुनः ए ६ जातिवडे पुरुष छे, परन्तु ते ते कारणोथी पुरुषवेद हणाया बाद तेओने नपुंसक वेदनो उदय होय छे, आ ६ नपुंसकोने पूर्वे कहेला १० नपुंसकोवत् वेदनो उदय नगरदाहसरखो उत्कृष्ट होतो नथी, पण पुरुषवेद हणावाथी पुरुषवेदना अभावरूपे नपुंसक वेद (न—नहि पुंसक—पुरुषपणुं अथात् पुरुषपणुं नहिं ते नपुंसक) होय छे तेथी वेदनो उदय पुरुषवेद करतां पण मंद होय छे,

पुनः पुरुषाकृति नपुं०—स्त्री आकृति नपुं०—ने नपुं० आकृतिवाळा नपुंसक एम त्रण प्रकारना नपुंसक आकृति भेदे छे ते पण त्रणे मोक्षगमन योग्य छे.

२ पुरुष—स्त्री—अने नपुसक ए त्रणे वेद—लिंगने-पथ्यना भेदथी त्रण त्रण प्रकारना होवाथी ९ प्रकारनाछे ते आ प्रमाणे

१ स्त्रीसंगमना अभिलाषवाळा जीव वेदपुरुष कहेवाय.

२ पुरुषचिन्ह— दाढी—मूछ—इत्यादि लक्षणोवडे लिंगपुरुष.

३ पुरुषनो वेष पहेरेली स्त्रीआदि नेपथ्यपुरुष,

४ पुरुषनी इच्छावाळो जीव वेदस्त्री कहेवाय

५ योनी—स्तन—दाढी मूछनो अभाव इत्यादि चिन्होवाळो जीव लिंग स्त्री कहेवाय.

६ स्त्रीनो वेष पहेरेला एवा पुरुषादि नेपथ्यस्त्री कहेवाय

७ स्त्री अने पुरुष ए बन्नेपर अभिलाषवाळो तीव्र वेदोदयी जीव वेदनपुंसक.

८ स्त्रीपणानां केटलांक चिन्ह स्तनादि होय ने केटलांक चिन्ह योनिवगेरे न होय, तेमज पुरुषपणानां केटलांक चिन्ह पुरुष चिन्ह वगेरे होय' ने केटलाक चिन्ह दाढी मूछ वगेरेने होय एवा प्रकारना (स्त्री पुरुष लक्षणोना सद्भावने अभाव-

अभावे) अल्पबहुत्व (सिद्धत्वावस्था आश्रयि) संभवतुंज नथी,

अहिं लिंग आश्रयि जेम अल्पबहुत्व कह्युं तेम प्रसंगोपात्त वेष भेद आश्रयि पण अल्पबहुत्व (-समकाळे कया जीवो अल्प ने कया जीवो घणा सिद्ध थाय छे ते) कहेवाय छे,

वाळा) जीव लिंगनपुंसक कहेवाय छे,

९ कंइक स्त्रीसरखो अने कंइक पुरुषसरखो विलक्षण वेष पहेरनार (-पावइया-हीजडा वगेरेना सरखा वेषवाळा) एवा पुरुषादि नेपथ्य नपुंसक गणाय,

ए ९ प्रकारमांथी नेपत्थ्य अने लिंग पुरुषादि ६ भेद मोक्षगमन योग्य छे ने त्रण भेद मोक्षने अयोग्य छे.

प्रथम कहेला १६ नपुंसक संबंधि गाथाओ आ प्रमाणे छे.

पंडए वाइए कीवे, कुंभी इसालु यत्तिय ।
सउणी तक्कम्मसेवी य, पक्खियापक्खिए इय ॥ १ ॥

सोगंधिय अ आसत्ते, एए दस नपुंसगा ।
संकिलिट्ठत्ति साहूणं, पव्वावेउं अकप्पिया ॥ २ ॥

अर्थः-पंडक-वातिक-क्लीब-कुंभी-इर्ष्यालु-वळी ए प्रमाणे शकुनि-तत्कर्मसेवी-अने पाक्षिकापाक्षिक ए ६ तथा सौगंधिक-आसक्त ए १० प्रकारना नपुंसको अतिसंक्लिष्ट परिणामी छे माटे मुनिओए दीक्षा आपवामां अकल्पनीय छे. त्यां पंडगनां लक्षणनी गाथा-

महिलासहावो सरवन्नभेओ मेढं महंतं मउरा य वाणी ।
ससद्दयंमुत्तमफेणयं च, एआणि छप्पंडगलक्खणाणि ॥ १ ॥

अर्थः-स्त्री सरखो स्वभाव-स्वर विलक्षण-अने वर्णादि विलक्षण-लिंग मोटुं-वाणी कोमळ-मूत्र शब्द सहित, ने फीण विनानुं-ए ६ पंडकनां लक्षणो छे इत्यादि.

॥ समकाळे सिद्धि गमनयोग्य जीवोनी संख्या ॥

मनु० नी स्त्रीमांथी आवेला	२०
वैमानिक देवांगनानांथी आवेला	२०
ज्योतिषी देवांगनाथी आवेला	२०
भुवनपत्यादि (पाताल वासी देवोनी देवांगनामांथी आवेला	५
तिर्यंच स्त्रीमांथी आवेला	१०
मनुष्य पुरुषमांथी मनुष्य थयेला	१०
ज्योति० देवथी मनु० थयेला	१०
भव० देवथी मनु० थयेला	१०
व्यंतर देवथी मनु० थयेला	१०
तिर्यंच पुरुषथी मनु० थयेला	१०
कल्प देवथी आवेला	१०८
पृथ्विकाय-अप्काय-ने पंकप्रभाथी [प्रत्येकथी) आवेला	४
रत्नप्रभाथी आवेला	१०
शर्कराप्रभाथी आवेला	१०
वालुकाप्रभाथी आवेला	१०
धूमादि ३ मांथी आवेल	०
वनस्प० थी आवेला	६
अग्नि -वायु--विकले० थी आवेला	०

पुरुथी पुरुष थयेला	१०८
पुरुषथी स्त्री थयेला	१०
पुरुषथी नपुं० थयेला	१०
स्त्रीथी पुरुष थयेला	१०
स्त्रीथी स्त्री थयेला	१०
स्त्रीथी नपुं थयेला	१०
नपुं० थी पुरुष थयेला	१०
नपुं० थी स्त्री थयेला	१०
नपुं० थी नपुं० थयेला	१०

नन्दन वनथी	४
प्रत्येक विजयमांथी	२०

१ अर्थात् मोक्ष गमनथी उपान्त्य भवमां जीव मनु० स्त्री ना अवतारमां होय ते मनु० स्त्री पर्यायमांथी मरण पामी अनन्तरभवे (अन्त्य भवे) मनुष्य थइ केटला जीव मोक्षे जाय ?

२ उपान्त्य भवमां पुरुष होइ मरण पामी अन्त्य भवमां पुरुष थइने

अकर्म भूमिमांथी	१०	अन्यलिंगे	१०
कर्म भूमिमां जन्मेला (अथवा		गृहस्थवेषे	४
कर्म भूमिमांथी	१०८	जैन साधुना वेषवाळा	१०८
पंडकवनथी	२	स्त्री लिंगे	२०
उर्ध्व लोकथी	४	पुरुषलिंगे	१०८
अधोलोकथी	२०-२२--४०	नपुं० लिंग	१०
तिर्च्छालोकथी	१०८	अवस० ना } ३--४ था उत्स० ना } आरामां	१०८
समुद्रमांथी	२		
नदी वगेरेना जळथी	३	अवस० ना ५ मा आरामां	२०
*५०० धनु० कायावाळा	२	” १--२--६ आरामां	१०+
२ हस्त कायवाळा	४	उत्स० ना १-२-५-६ आरामां	
मध्यम कायावाळा	१०८		१०+

१-२ कोइ वैरी देवे कर्मभूमिमांथी संहरण करी आणेला केवलिओ ए वे स्थाने मोक्षे जाय अन्यथा नहिं.

३ पंडकवनथी

४ १००० योजन उंडी नलिनावती ने वप्रा नामनी बे कुब्ज विजयोमांथी प्रत्येकमांथी. अहिं त्रण मत [२०-२२-४०)छे,

५-६ कोइ वैरी देवे संहरी समुद्र नद्यादिमां फेंकी दीधेला अथवा कारणवशे त्यां गयेलाने भावनाथी अन्तकृत केवलि थइ मोक्षे गयेला.

७ २ हाथथी उपर ने ५०० धनु० थी कमी

८ तापसादि जैनेतरमुनिना वेषवाळा

* मतांतरे ५२५ धनु० कायावाळा पण

+ ए काळमां संहरण करेला सिद्ध थाय.

अवतरण—आ गाथामां नवतत्वने जाणवाथी शुं लाभ थाय ते कहे छे—

॥ मूळ गाथा ५१ मी ॥

जीवाइनव पयत्थे, जो जाणइ तस्स होइ सम्मत्तं ।
भावेण सद्दहंतो, अयाणमाणेऽवि सम्मत्तं ॥५१॥

संस्कृतानुवादः—

जीवादिनवपदार्थान् यो जानाति तस्य भवति सम्यक्त्वं ।
भावेन श्रद्दधतो, अज्ञानवत्यपि सम्यक्त्वं ॥ ५१ ॥

शब्दार्थः

जीवाइ–जीव वगेरे	सम्मत्तं–सम्यक्त्व
नव–नव (९)	भावेण–भाववडे–भावथी
पयत्थे–पदार्थोने (तत्वोने)	सद्दहन्तो–श्रद्धा करता
जो–जे जीव	अयाणमाणे–अज्ञानीने
जाणइ–जाणे	अवि–पण
तस्स–तेने	सम्मत्तं–सम्यक्त्व
होइ–होय–थाय	

गाथार्थः—जे जीव जीवादि नव पदार्थ (–तत्व) ने जाणे तेने सम्यक्त्व होय छे, अथवा भावथी (नवतत्वनी) श्रद्धा करनार (नवतत्वने सत्य माननार) एवा अज्ञानी जीवने (–नवतत्व नहि जाणनारने) पण सम्यक्त्व होय छे.

विस्तरार्थः—जीव–अजीव–पुन्य–पाप–आश्रव–संवर–निर्ज्जरा–अने मोक्ष ए जीवादी नव पदार्थने जे कोइ जाणे तेने समकित होय छे.

प्रश्नः—देवने नारकने मनुष्यने अने मत्स्य वगेरे जळचरादि तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवोने पण सम्यक्त्व होय छे, त्यां मनुष्य अने देवने तो गुर्वादिना उपदेशथी नवतत्व जाणवानुं बनी शके परन्तु नारक जीवोने नरकमां अने मत्स्य वगेरेने समुद्रादि स्थाने नव-तत्त्व जाणवानुं केवी रीते बनी शके? अने जो नवतत्व ज न जा-णे तो चालु पाठमां कह्या प्रमाणे तेने सम्यक्त्व केवी रीते होय ? तथा मन्द बुद्धिवाळा के जेओ नवतत्वनुं स्वरूप जाणी शके नहि वा जीवोने सम्यक्त्व केवी रीते होय ?

उत्तर—हे जिज्ञासु ! ए सर्व प्रश्ननो उत्तर गाथामांज कह्यो छे भावेण सद्दहन्तो अयाणमाणे वि सम्मत्तं एटले पूर्वोक्त ?। ना स्वरूपने जाणतो न होय छतां पण जो भावथी श्रद्धा-करनार हाय (—सर्वज्ञोए ए नवतत्वनुं जे स्वरूप कह्युं छे ते सत्य ज छे, एव दृढ मान्यतावाळो होय) तो तेवा अज्ञान जीवने पण सम्यक्त्व होय छे,

ए प्रमाणे होवाथी जे जीव नवतत्वनो ज्ञानी होय तेने ज सम्यक्त्व होय एवो एकान्त नियम नहिं, पण बाहुल्यताए नवत-त्वनु ज्ञान ते सम्यक्त्व उत्पन्न करवामां प्रबळ साधनरूप होवाथी नवतत्वना ज्ञानीने सम्यक्त्व होइ शके ए वात बहुधा निर्विवाद छे,

हवे नवतत्वनुं स्वरूप जाणवाथी सम्यक्त्व (शुद्ध श्रद्धा) शी रीते उत्पन्न थाय ? ते कहेवाय छे—नवतत्वना स्वरूपने संक्षेपथी जाणनारा जीवने एवी हृदयभावना प्रगट थाय के सर्वज्ञे जे आ न-वतत्वरूप पदार्थो कह्या छे ते जगतमां कोइ साक्षात् तो कोइ अनु-मानादि प्रमाणथी पण अवश्य संभवे छे, वळी सर्वज्ञोए ज्ञानमां जे देख्युं छे तेज कह्युं छे, माटे ते ते पदार्थो दुनियामां विद्यमान छे ज, इत्यादि संक्षेप ज्ञानीने पदार्थोनी अस्तित्वादिभावना द्वारा सम्य-

त्त्व प्रगट थाय छे, अने विस्तार ज्ञानीने विशेष स्वरूपनुं ज्ञान थ-
तां ते ते स्वरूपनुं अस्तित्व अने कथनना परस्पर अविरोध इत्या-
दि जोइने पण सम्यक्त्व प्रगट थाय छे,

प्रश्न—सम्यक्त्व ते पदार्थ छे के कोइ गुण छे ?

उत्तर—सम्यक्त्व ए पदार्थ नथी पण आत्मानो श्रद्धारूप
गुण छे, अर्थात् जे वस्तु जेवारूपे छे ते वस्तुने तेवारूपे जा-
णवी ते सम्यक्त्व, अथवा देवने विषे देवबुद्धि, गुरुने विषे
गुरुबुध्धि, अने धर्मने विषे धर्मबुध्धि, ते सम्यक्त्व कहेवाय,
(अहिं सम्यक् एटले सारु-अने साचुं-त्व एटले पणुं अर्थात्
सारापणु के साचापणुं ते सम्यक्त्व कहेवाय,] अथवा सर्वज्ञे
जे कह्युं तेज सत्य ते, एवा प्रकारनी दृढ मान्यता तेपण स-
म्यक्त्व कहेवाय इत्यादि सम्यक्त्वना अनेक अर्थ जाणवा.

प्रश्न—आपणने सम्यक्त्व छे के नहि ! ते जाणी शकाय के नहि ?

उत्तरः—आपणने सर्वज्ञे कहेला धर्म उपर तेमज सर्वज्ञे कहेली
दरेक वात उपर घणो दृढ राग अने विश्वास छे, एम आपणुं म-
न खात्री आपतुं होय अने आस्तिक्य-अनुकंपा इत्यादि सम्य-
क्त्वनां ६७ लक्षणोमांनां लक्षणो वर्ततां होय तो व्यवहारथी एम
मानी शकीए के आपणने व्यवहार सम्यक्त्व छे, परन्तु निश्चय
सम्यक्त्व (वस्तुतः सम्यक्त्व) छे के नहिं? ते वात तो सर्वज्ञज जा-
णे परन्तु आपणे छद्मस्थ जाणी शकीए नहिं

प्रश्न—शुध्ध धर्म उपर राग होय छतां आपणने सम्यक्त्व छे
एम निश्चय पूर्वक केम न जाणी शकाय ? पोताना आत्मांना गुण-
नी खात्री पोतानो आत्मा पण न करी शके ए केवुं आश्चर्य ?

उत्तर—हे जिज्ञासु? शुध्ध धर्म उपर राग मात्रथी निश्चय स-
म्यक्त्व होइ शकतुं नथी. पण सर्वज्ञे कहेला पदार्थना अनन्त भा-

बोमांथी एक भाव उपर पण अविश्वास आवतो होय ने शेष सर्व अनन्त भाव उपर विश्वास बेसतो होय तोपण सम्यक्त्व होतुं नथी, वळी सर्व वात उपर विश्वास होय ते पण दर्शन मोहनीय कर्मनुं आवरण खसवाथी थयेल होय तोज निश्चयथी सम्यक्त्व होइ शके, अन्यथा ते कर्मनुं आवरण खस्या विना बाप दादानी रुढी इत्यादिक कारणथी थयेलो जे राग ते निश्चय सम्यक्त्वरूप नथी, अने ते दर्शन मोहनीय कर्मनुं आवरण खस्युं छे के नहिं ते सर्वज्ञ जाणी शके छे, पण आपणा सरखा अल्पज्ञानी जीवो जाणी शके नहिं, मात्र धर्म उपर राग छे एटलुं स्थूल बुध्धिए जाणी शकाय तेथी निश्चय पूर्वक सम्यक्त्व उत्पन्न थयुं छे के नहिं ते आपणे जाणी शकीए नहिं; जेम के आपणने ज्वर आव्यो छे, एम सामान्यथी जाणी शकाय पण ते साध्य छे के असाध्य! अने ते केटली डीग्रीनो छे ? ते यथार्थ अनुभवी वैद्यज जाणी शके तेम धर्म उपर राग छे एम सामान्यतः जाणी शकाय पण ते राग सम्यक्त्वोत्पत्ति जेटली हदनो छे ? के कमी छे ? ते यथार्थ अनुभवी सर्वज्ञ विना कोण जाणी शके ?



अवतरण—आ गाथामां सम्यक्त्व एटले शुं ? अथवा केवी बुद्धिवालाने सम्यक्त्व होइ शके ? ते कहे छे,

मूळ गाथा ५२ मी,

सव्वाइ जिणेसरभासियाइं, वयणाइ नन्नहा हुंति ।
इअ बुद्धी जस्स मणे, सम्मत्तं निच्चलं तस्स ॥५२॥

संस्कृतानुवादः

सर्वाणि जिनेश्वरभाषितानि, वचनानि नान्यथा भवंति ।
एतद्बुद्धीर्यस्य मनसि, सम्यक्त्वं निश्चलं तस्य ॥ ५२ ॥

शब्दार्थः—

सव्वाइ--सर्वे	इअ--(इह--इइ] एवी (अहिं-एवी)
जिणेसर--जिनेश्वरनां	बुध्धी--बुध्धि
भासियाइं--कहेलां	जस्स--जेना
वयणाइ--वचनो	मणे--मनमां
न--नहिं	सम्मत्तं--सम्यक्त्व
अन्नहा--अन्यथा -असत्य	निच्चलं--निश्चल--दृढ
हुंति--होय--छे	तस्स--तेनुं

गाथार्थः—श्री जिनेश्वरनां कहेला सर्वे वचनो असत्य न होय (--एक पण वचन असत्य न होय] एवी बुद्धि जेना मनमां होय तेने निश्चल--दृढ सम्यक्त्व छे,

विस्तरार्थः—जिनेश्वरे कहेलां सर्व वचनो अन्यथा--असत्य न होय, कारणके असत्य भाषण ७ कारणथी होय छे,ते आ प्रमाणे

जीव ज्यारे क्रोधना आवेशमां आवी जाय छे त्यारे जेम मरजीमां आवे तेम सत्यासत्यनो विचार कर्या विना बोले छे,माटे असत्य भाषणमां क्रोध ए कारण छे.

जीवने ज्यारे अभिमान थाय छे, त्यारे पोतानी श्रेष्ठता दर्शा-

१ ए शब्दस्थाने श्री नवतत्त्व वृत्तिमां मूळपाठमां इह छे. ने वृत्तिमां इति शब्द होवाथी मूळपाठमां इइ जोइए एम अनुमान थाय छे, ने विशेषत इअ वा इइ नोज ,'पाठ सार्थक समजाय छे,

१ शास्त्रमां क्रोध--लोभ--भय--ने हास्य ए ४ कारण दर्शाव्यां छे परन्तु अहिं विशेष बोधने माटे मे ८ कारण दर्शाव्यां छे, माटे वांचकवर्गे शास्त्रमर्यादानो लोप कर्यो एम न विचारवुं.

ववाने अथवा तो सत्य बोलतां आ वखते मारुं अपमान तिरस्कार वगेरे थशे, ए कारणथी पण ते वखते असत्य बोले छे. माटे असत्य भाषणमां मान ए कारण छे,

ए प्रमाणे मायाथी ने लोभथी पण असत्य बोले छे, तेमज कोइ भयथी असत्य बोले छे, ने केटलाएक हांसी--मश्करी--कुतूहल इत्यादि माटे असत्य बोले छे तेथी भय अने हास्य ए पण असत्य भाषणमां कारण छे ए रीते क्रोध--मान-माया--लोभ-भय हास्य—ए ६ असत्यनां कारण छे तेमज केटलाएक जीवो ने ए ६ मांनुं कोइपण कारण होतुं नथी अने मनमां सत्य बोलवानोज विचार होय छतां ते बाबतमां अजाणपणुं होय छे, तेथी असत्य बोले छे अने कोइवार ज्ञात पदार्थना संबन्धमां पण अनाभोगे (उपयोग रहित पणे) असत्य बोली जवाय छे. माटे असत्य भाषणमां अज्ञान अने अनाभोग कारण छे,

ए प्रमाणे असत्य भाषणनां ८ कारणोमांनुं एक पण कारण भगवानने छे नहिं कारणके भगवान् कषाय रहित छे माटे क्रोधादि ६ कारण न होय, अने भगवान् सर्वज्ञ छे माटे अज्ञान अने अनाभोग पण कारण न होय, तो हवे एवुं कयुं कारण होइ शके ? के जेथी भगवानने असत्य बोलवानी जरुर पडे ! माटे सर्वज्ञ अने कषाय रहित एवा जिनेश्वरोए जे जे वचनो कह्यां छे तेमांनुं एक पण वचन असत्य नथी पण सत्यज छे, एवा प्रकारनी दृढबुद्धि जेना मनमां होय ते निश्चल सम्यक्त्व--दृढ सम्यक्त्व कहेवाय छे, अने जेओ सर्व वचनो सत्य माने पण एकज वचन असत्य माने तो तेवा जीव.ने पण सम्यक्त्व होय नहिं. जेम श्रीवीर भगवाननो जमाइ जमालि भगवाननां सर्वं वचन सत्य मानतो हतो पण कर्या कामनेज कर्युं कहेवाय, पण करवा मांडेलुं कार्य ते कर्युं कहेवाय एम जे महावीर स्वामि कहे छे ते युक्तिवाळुं नथी एम एकज वचन असत्य मानवाथी ज-

मालि निन्हव (सत्य वचनने ओळवनार] अथवा मिथ्यादृष्टि गणायो छे.

तथा गोष्ठामाहिल्ल आचार्य सर्व पदार्थोने यथार्थ प्ररूपता पण "जीवप्रदेशने कर्म सर्पनी कांचळीवत् स्पर्शेलुं छे, पण आत्मप्रदेशनी अंदर प्रवेशीने रह्युं नथी" ए एकज विपरीत अर्थ कहेवाथी मिथ्यादृष्टि गणाया, एवा आ शासनमां ७ निन्हवो एकेक वचनने असत्य मानवाथी मिथ्यादृष्टि तरीके प्रसिद्ध थया छे, माटे जे प्रमाणिक पुरुषनुं अनेक वचन सत्य मानीए ने एक वचन असत्य मानीए तो ते पुरुषने आपणे सर्वांशे प्रमाणिक मानीए छीए एम कही शकाय नहिं, माटे सर्वज्ञ सरखा प्रमाणिक पुरुषोनां सर्व वचनो सत्यज मानी शकाय.

अथवा जेम न्यायी राजानी सर्व आज्ञाओने प्रमाण करनार प्रजा के सेवक राजनिष्ठ कही शकाय पण केटलीक आज्ञाओ माने ने केटलीक आज्ञाओ न माने तो ते प्रजा या सेवक द्रोही गणाय तेम सर्वज्ञरूप धर्मराजानी सर्व वचनोने सत्य माननार धर्मनिष्ठ अथवा सम्यक्त्वी गणाय पण केटलांक वचनोनो अनादर करे तो ते धर्मद्रोही अथवा मिथ्याद्रष्टिज गणाय माटे श्री जिनेश्वरनां कहेलां सर्व वचनो सत्य माननारा जीवनेज निश्चल सम्यक्त्व होइ शके.

अवतरणः—पूर्वगाथामां सम्यक्त्वनुं स्वरुप कह्युं अने हवे आ गाथामां ते सम्यक्त्व प्राप्तिथी शुं लाभ थाय ? ते कहे छे.

॥मूळ गाथा ५३ ॥

अंतोमुहुत्तमित्तं--पि फासियं हुज्ज जेहिं सम्मत्तं ।
तेसिं अवड्ढपुग्गल--परियट्टो चेव संसारो ॥ ५३ ॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

अन्तर्मुहूर्त्तमात्रमपि, स्पर्शितं भवेत् यैः सम्यक्त्वं ।
तेषामपार्द्धपुद्गलपरावर्त्तश्चैव संसारः ॥ ५३ ॥

॥ शब्दार्थः ॥

अंतोमुहुत्त—अन्तर्मुहूर्त्त
मित्तं—मात्र
ऽपि—पण
फासियं—स्पर्श्युं
हुज्ज—होय
जेहिं—जेओए
सम्मत्तं—सम्यक्त्व
तेसिं—तेओने
अवड्ढ—अपार्ध (छेल्लो अर्धो)
पुग्गलपरियट्टो—पुद्गलपरावर्त्तकाळ
च्चेव—निश्चय
संसारो—संसार

गाथार्थः—जे जीवोए अन्तर्मुहूर्त्त मात्र पण सम्यक्त्व स्पर्श्युं होय ते जीवोने निश्चय छेल्लो अर्ध पुद्गलपरावर्त्त संसार (बाकी रहे छे, ने त्यारबाद अवश्य मोक्षे जाय छे.)

विस्तरार्थः—हवे सम्यक्त्व पामवाथी शुं लाभ थाय ? ते दर्शावे छे के—एक अन्तर्मु० मात्र पण जे जीवोने सम्यक्त्व स्पर्श्युं होय एटले जे जीवोने एक अन्तर्मु० जेटलुं अल्पकाळनुं सम्यक्त्व प्राप्त थयुं होय तो ते जीवोने अर्धपुद्गलपरावर्त्त जेटलोज संसार बाकी रहे छे, अर्थात् ते जीवो अर्धपुद्गलपरावर्त्त जेटला अल्प (पण अनंत) कालमां मोक्षे अवश्य जाय छे.

अहिं अन्तर्मु० नो काळ ते आंख मीचीने उघाडे तेटला काळना पण असंख्यातमा भाग जेटलो अति अल्प होय छे, अथवा वीजळीना एक तीव्र झबकाराने जेटलो वखत लागे तेथी पण अति अल्प (—असंख्यातमा भाग जेटला) वखतने अहिं अन्तर्मु०

कहेवाय छे, ते प्रथम समयावलिमुहुत्ता ए गाथामां दर्शाव्या प्रमाणे जो के ९ समयथी २ घडीमां १ समय कमी (अर्थात् ४८ मिनिटमां १ समय कमी जेटला) काळ सुधीनां पण अन्तर्मुहूर्त्तोज कहेवाय छे, परन्तु अहिं असंख्य समयात्मक मध्यम अन्तर्मु० जाणवुं, एटला अल्पकाळनुं सम्यक्त्व पण जो प्राप्त थाय तो जीव अवश्य मोक्षे जशे एम निर्णय थइ चुक्यो जाणवो.

१० को० को० सागरोपमनी १ अवसर्पिणी अने एटलाज काळनो १ उत्सर्पिणी थाय, अने ए बे मळीने १ काळचक्र थाय, अथवा असंख्यात वर्षनो १ पल्योपम, १० कोडाकोडि (–१०,००००००००००००००) पल्योपमनो १ सागरोपम, २० कोडाकोडि (–२०,०००,०००,०००००००० सागरोपमनुं १ काळचक्र, अने एवां अनंतकाळचक्रनो अथवा अनंत अवस०–उत्स० नो १ पुद्गलपरावर्त्त काळ थाय छे, आ जीवे संसारमां परिभ्रमण करतां एवां अनंतानंत पुद्गलपरावर्त्तो अनादिकाळथी मांडीने आजसुधीमां व्यतीत कर्यां छे, परन्तु कोइ पण सम्यक्त्वादि लाभ प्राप्त कर्यो नथी, अने जो हजी पण सम्यक्त्वादि लाभ न प्राप्त करे तो जेटलां पूर्वे व्यतीत कर्यां तेटलां अथवा तेथी अनंतगुणां पुद्गलपरावर्त्त व्यतीत करवां पडे, अने जो अन्तर्मु० जेटलीवार पण सम्यक्त्व मात्र पामे तो तेटलां

---

१ ए बाबतना बन्ने मत शास्त्रमां प्रसिद्ध छे, कोइ कहे छे के जेटलो काळ पूर्वे व्यतीत थयो तेटलो भविष्यमां व्यतीत करवानो छे, ने कोइ कहे छे के तेथी अनन्त गुणो काळ व्यतीत करवानो छे, अथवा बीजी रीते जेटलो भूतकाळ छे. तेटलो भविष्य काळ छे, एम केटलाएक आचार्यो कहे छे, ने केटलाएक तो 'अणागयद्धा अणंतगुणा' भविष्यकाळ(भूतकाळथी) अनन्तगुणो छे एम कहे छे, बन्ने मत युक्तिवाळा छे

अनंत पुद्‌गलपरावर्त्त व्यतीत न करतां मात्र वधुमां वधु ०॥ पुद्‌गलपरावर्त्तज व्यतीत करवो पडे अने त्यारबाद अवश्य मोक्षप्राप्ति थाय ए आ गाथानो भावार्थ छे. (अहिं अपार्द्ध शब्दनो अर्थ अप-अपगत अर्थात् व्यतीत थयेल छे अर्ध-अर्ध विभाग जेमांथी ते अपार्ध, अर्थात् जेमांथी प्रथमनो अर्ध भाग व्यतीत थया बाद जे छेल्लो अर्ध भाग रहे ते छेल्ला अर्धनुं नाम अपार्ध कहेवाय.)

अवतरणः—पूर्व गाथामां अन्तर्मु० मात्र पण सम्यक्त्व पामनारने ०॥ पुद्‌गलपरा० संसार बाकी रहे एम कह्युं तो पुद्‌गलपरावर्त्त एटले शुं ? ते (आ गाथामां) दर्शावे छे.

॥ मूळ गाथा ५४ ॥

उस्सप्पिणी अणंता, पुग्गलपरिअट्टओ मुणेयव्वो ।
तेऽणंताऽतीअद्धा, अणागद्धा अणंतगुणा ॥५४॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

उत्सर्पिण्योऽनंताः , पुद्‌गलपरावर्त्तको ज्ञातव्यः ।
तेऽनंता अतीताद्धा, अनागताद्धा अनंतगुणा. ॥ ५४ ॥

॥ शब्दार्थः ॥

उस्सप्पिणी—उत्सर्पिणीओ
अणंता—अनंत
पुग्गलपरिअट्टओ—पुद्‌गलपरावर्त्त (काळ)
मुणेयव्वो—जाणवो
ते—ते पुद्‌गलपरावर्त्तो
ऽणंता—अनन्त
ऽती—अतीत-भूत
अद्धा—काळ
अणागय—अनागत भविष्य
अणंतगुणा—अनंतगुणा

गाथार्थः—अनंत उत्सर्पिणीओ (मळीने) १ पुद्गल परावर्त्त काळ जाणवो, ते (—तेवा) अनंत पुद्गलपरावर्त्त प्रमाण (जेटलो) अतीत काळ (—भूतकाळ) छे, अने (तेथी भूतकाळथी) अनंतगुण (पु० परा० जेटलो) अनागत काळ (—भविष्य काळ) छे.

विस्तरार्थः—पूर्व गाथाना विस्तरार्थमां कह्या प्रमाणे १० को० को० पल्योपमनो १ सागरोपम, अने १० को० को० सागरोपमनी १ अवसर्पिणी अथवा १ उत्सर्पिणी (काळ विशेष) थाय छे, एवी अवसर्पिणीओ वा उत्सर्पिणीओ अनंत थाय त्यारे एक पुद्गलपरावर्त्त थाय, अने ते अनंत पुद्गल परावर्त्तनो एक अतीत अद्धा (—भूतकाळ) थाय, अने तेथी अनंतगुणा पुद्गलपरावर्त्तनो एक अनागत अद्धा (—भविष्यकाळ) थाय. आ स्थाने केटलाएक एम पण कहे छे के जेटला पु० परा० नो भूतकाळ छे. तेटला पु० परा० नो भविष्यकाळ छे.)

---

१ पुद्गलपरावर्त्त आठ प्रकारे छे ते आ प्रमाणे—

१— चौद राजमां जेटला पुद्गलो छे ते सर्व पुद्गलोना सर्व अणुओने कोइ एक जीव औदारिक देहपणे परिणमावी परिणमावीने मूके=विसर्जे तेमां जेटलो काळ व्यतीत थाय तेटलो काळ औदा० बादर द्रव्यपुद्गलपरावर्त्त, तेवीज रीते वैक्रिय बा० द्र० पु० परा० इत्यादि (आहारक सिवाय] ७ प्रकारना बा० पुद्गल परा० जाणवा,

२—चौदराजमां जेटला पुद्गलो छे ते सर्व पुद्गलना परमाणुओने औदा० देहपणे अनुक्रमे परिणमावी परिणमावी विसर्जे तेमां जेटलो काळ व्यतीत थाय तेटलो काळ औदा० सूक्ष्म द्रव्य पुद्गलपरावर्त्त, ए प्रमाणे वैक्रियादि सात प्रकारना० सू० द्रव्य पुद्गलपरावर्त्त जाणवा. [अहिं पुद्गल परिणमननी गणत्रीमां एक समये घणा नवा (—प्रथम नहि ग्रहण करेला)

अवतरणः—आ गाथामां सिद्ध जीवोना १५ भेद दर्शावे छे.

॥ मूळ गाथा ५५ ॥

जिण अजिण तित्थऽतित्था, गिहि अन्न सलिंग थी नर नपुंसा।
पत्तेय सयंबुद्धा, बुद्धबोहिय सिद्धणिक्का य ॥ ५५॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

जिनाजिनतीर्थातीर्था, गृह्यन्यस्वलिंगस्त्रीनरनपुंसः
प्रत्येकस्वयंबुध्धाः बुद्धबोधितसिध्धा अनेकाश्च ॥ ५५ ॥

परमाणु ग्रहण थया छतां पण तेमांनो विवक्षित एकज नवो (प्रथम अग्रहित)ग्रहण कर्यो गणवो. अने प्रथमना बादर पु०परा० मां तो एक समयमां जेटला परमाणु नवा ग्रहण थाय ते सर्व ग्रहण कर्यानी गणत्रीमां आवता हता, ए बा० पु०परा०मां उत्क्रम (क्रम विनानी गणत्री)हती तेनी सू०पु०परा०मां अनुक्रम पूर्वक गणत्री गणवी. अने ते अनुसार आगळ पण सू० अने बा० पु० परा० मां क्रमोत्क्रमनी पद्धति स्वयं विचारवी

३-४ सर्व लोकाकाशना प्रदेशोमां विना अनुक्रमे मरण पामतां जेटलो काळ लागे तेटलो काळ बा० क्षेत्र पु० परा० अने अनुक्रमे मरण पामतां जेटलो काळ लागे तेटलो काळ सू० क्षे० पु० परा०.

५-६एक काळ चक्रना सर्व समयोने उत्क्रमे मरण पामतां जेटलो काळ लागे तेटलो काळ बा०काळ पुद्गल परा०,ने अनुक्रमे मरण पामतां जेटलो काळ लागे तेटलो काळ सू० काळ पु० परा०

७-८ कर्मना रस बन्धमां कारणरूप सर्व अध्यवसाय स्थानोमां विना अनुक्रमे मरण पामवामां जे काळ लागे तेटलो काळ बा० भाव पु० परा०, ने अनुक्रमे मरण पामवामां जे काळ लागे ते सू० भाव पु० परा० कहेवाय

॥ शब्दार्थः ॥

जिण–जिनसिध्ध	नर–पुरुषलिंग सिध्ध
अजिण–अजिनसिद्ध	नपुंसा–नपुंसक लिंग सिध्ध
तित्थ–तीर्थसिद्ध	पत्तेय–प्रत्येक वुध्धसिध्ध
अतित्थ–अतीर्थसिद्ध	सयवुध्धा स्वयंवुध्धसिध्ध
गिहि–गृहस्थलिंग सिद्ध	वुध्धवोहिय–वुध्धवोधितसिध्ध
अन्न–अन्यलिंग सिध्ध	सिध्ध एक सिध्ध
सलिंग–स्वलिंग सिध्ध	ऽणिक्क–अनेक सिध्ध
थी–स्त्रीलिंग सिध्ध	य–वळी–अने

गाथार्थः—जिनसिद्ध, अजिनसिद्ध, तीर्थसिद्ध, अतीर्थसि-द्ध, गृहस्थलिंगसिद्ध, अन्यलिंगसिद्ध, स्वलिंगसिद्ध, स्त्रीलिंगसि-द्ध. पुरुषलिंगसिद्ध, नपुंसकलिंगसिद्ध, प्रत्येकवुद्धसिद्ध, स्वयंवुद्ध-सिद्ध, वुद्धवोधितसिद्ध, एकसिद्ध, ने अनेकसिद्ध (ए प्रमाणे सिद्धना १५ भेद छे.)

विस्तरार्थः—हवे १५ भेदे सिद्ध थाय ते १५ भेदनुं स्वरुप दर्शावाय छे.

१ जिन—तीर्थंकर पदवी प्राप्त करीने जे जीवो मोक्षे गया ते जिनसिद्ध.

२ तीर्थंकर पदवी प्राप्त कर्या विना जे जीवो मोक्षे गया ते अजिनसिद्ध.

३ तीर्थ—संघनी स्थापना थया वाद जे जीवो मोक्षे गया ते तीर्थसिद्ध

१ कहेवाता सर्व भेद सिद्ध अवस्थाना समयने आश्रयि नहि पण पूर्वभवावस्थाश्रयी जाणवा

४ तीर्थनी स्थापना थया पहेलांजेओ मोक्षे गया ते अतीर्थसिद्ध.

५ गृहस्थना वेषमां जेओ मोक्षे गया ते गृहस्थलिंगसिद्ध.

६ तापस विगेरे अन्यदर्शनी साधुना वेषमां जेओ मोक्षे गया ते अन्यलिंगसिध्ध.

७ सर्वज्ञोक्त रजोहरण (–ओघो)–मुहपत्ति–चोलपट्ट (–इत्यादि मुनि योग्य वेष) ते स्वलिंग कहेवाय, एवा प्रकारना मुनिना) वेषमां रह्यो छतो जे जीव मोक्षे जाय ते स्वलिंगसिद्ध.

---

१ अहिं मोक्षे जतां वेष भले गृहस्थनो होय के तापसादि अन्य साधुनो होय परन्तु आचार विचार तो श्री सर्वज्ञोक्त सिद्धान्तने अनुसारे ज होवा जोइए, नहितर पोतपोताना मानेला धर्मने अनुसारे क्रियाकांड करनारनो मोक्ष होइ शके ज नहिं अने जो दुनियामा वर्तता सर्व धर्मो मोक्षने आपनार होय तो धर्म के अधर्मनो भेदज न रहे.

अहिं सर्वज्ञोक्त संयमना नियमो पाळवानी अरुचिवाळा जीवो एम कहे छे के " गृहस्थ वेषमां पण मोक्ष थाय छे, पण संसार त्यागीने साधु बनी जवाथी ज मोक्ष थाय छे एम नथी " ए प्रमाणे कहेनाराओए ख्यालमां राखवुं जोइए के एवा विचारथी साधुपणुं नहिं अङ्गीकार करी गृहस्थधर्म पाळवामां के गृहस्थना वेषमां कोइ काळे पण मोक्ष प्राप्ति छे ज नहिं, परन्तु अहिं गृहस्थना वेषमां जे मोक्ष कह्यो ते जे जीवने संसार त्याग करी साधुपणुं अङ्गीकार करवानी उग्र भावना प्रगटी होय, ने ग्रहस्थपणाने काळा केदखाना तुल्य मानतो होय तेवा जीवने भावनानी प्रबळताथी शीघ्र केवळज्ञान उत्पन्न थइ जाय ने आयुष्य अन्तर्मु०मात्र अल्प होय तो तेवाने तेवा गृहस्थ वेषे पण मोक्षे चाल्यो जाय, ने जो आयुष्य अधिक होय तो गृहस्थनो वेष त्याग करी अवश्य साधुपणानो वेष अंगीकार करे एवो नियम छे (कूर्मापुत्र केवलि थया छतां पण ६ मास गृ-

हस्थवेषे रह्या ए अपवाद रूप होवाथी अहिं ग्रहण करवा योग्य नथी.) पुनः तापसादिना वेषमां मोक्ष कह्यो ते पण ए रीते ज जाणवो, अने ते तापसादि पण केवळज्ञान पाम्या बाद अधिक आयुष्य जाणे तो अवश्य साधुवेष अंगीकार करे तेनो पाठ आ प्रमाणे—

" यदा अन्यलिंगिनां भावतः सम्यक्त्वादि प्रतिपन्नानां केवलज्ञानं प्रतिपद्यन्ते तदा अन्यलिंगत्वं द्रष्टव्यं, अन्यथा यदि दीर्घमायुष्कमात्मनः पश्यन्ति ज्ञानेन ततः साधुलिंगमेव प्रतिपद्यन्ते" [नवतत्त्वावचूरी]

अर्थः—भावथी सम्यक्त्वादि पामेला अन्यलिंगिओने ज्यारे केवळज्ञान अंगीकार कराय (—अन्यलिंगीयो ज्यारे केवळज्ञान अंगीकार करे) त्यारे अन्यलिंगीपणुं जाणवुं, नहिंतर ज्ञानवडे जो पोतानुं दीर्घ आयुष्य जाणे तो साधुनो वेषज अंगीकार करे) ए पाठ जो के तापसादि वेषवाळाने अंगे छे तोपण तत्त्व एक होवाथी गृहस्थलिंगना संबंधमां पण उपयोगी छे.

माटे सार एज छे के गृहस्थने पण मोक्ष छे एवा विचारथी गृहजंजाळ नहिं छोडी साधुपणु नहिं स्वीकारनार गृहस्थने मोक्ष होइ शके नहिं.

२ अहिं तापसादिना वेषमां मोक्ष कह्यो ते संबन्ध १ नंबरनी स्फुटनोटमां आपेला शास्त्रपाठथी यथायोग्य विचारवो. अर्थात् सार एज छे के तापसादिना वेषे मोक्ष होवाथी तापसादिनो धर्म पण मोक्ष आपनार छे एम न जाणवुं.

पुनः आ उपरथी एम पण समजवुं जोइए के जैन धर्ममां मात्र (जातिथी) जैनने ज मोक्ष होय एवो आग्रह नथी पण जैन सिवायना बीजा तापस वगेरे अन्य धर्मीओने पण (=अन्यजातिवाळाओने पण) मोक्ष होय एम मानेलुं छे माटे ए वात परथी जनधर्मनुं निष्पक्षपातपणुं स्पष्टरीते जाहेर थायछे. कह्युछे के

सेयंवरो य आसंवरो य बुद्धो य अहव अन्नो वा ।
समभावभाविअप्पा, लहइ मुक्खं न संदेहो ॥ १ ॥
(संबोधसत्तरिका)

८ स्त्रीपणाना चिन्हवाळी देहाकृतिए जे मोक्षे जाय ते स्त्रीलिंगसिद्ध (अर्थात् स्त्रीओ मोक्षे जाय ते स्त्रीलिंग सिद्ध.)

९ पुरुषपणाना चिन्हवाळी देहाकृतिए जे मोक्षे जाय ते पुरुषलिंग सिद्ध (अर्थात् पुरुषो मोक्षे जाय ते पु० लिं० सिद्ध)

१० नपुंसकपणाना चिन्हवाळी देहाकृतिए जे मोक्षे जाय ते नपुंसकलिंगसिद्ध[३] (अर्थात् कृत्रिम नपुंसको जे मोक्षे जाय ते न-नपु० लिंग सिध्ध.)

११ संध्या समयना वादळना रंगो वदलावाथी. संसारमां तेवा तेवा प्रकारनी चीजोनां तेवां तेवां स्वरुप देखीने इत्यादि निमित्त पामीने वैराग्य भावना प्रकटतां केवळज्ञान पामी मोक्षेजाय ते प्रत्येकबुध्धसिध्ध. (अहिं गुरुना उपदेशनो अभाव छे)

१२ गुरुना उपदेश विना तथाप्रकारे कर्म पातळां पडवाथी कंइपण निमित्तविना पोतानेज संसार स्वरुप असार लागवाथी वैराग्यभावना प्रकटतां केवळ ज्ञान पामी मोक्षे जाय ते स्वयंबुध्धसिध्ध कहेवाय.

अर्थः—श्वेताम्बर होय के दिगम्बर होय बौद्ध होय के बीजा कोइपण धर्मवाळो होय तोपण जो समभाववडे (–सर्वज्ञोक्तरीते समताभाववडे) वासित आत्मावाळो होयतो मोक्ष पामे एमां संदेह नथी.

१–२–३ स्त्री त्रण प्रकारनी छे –१ वेदस्त्री–२ लिंगस्त्री–ने पथ्यस्त्री. त्यां जे वखते पुरुषसंगमनो अभिलाष वर्ततो होय ते वखते वेदस्त्री कहेवाय. तथा योनिस्तन वगेरे चिन्हो युक्त ते लिंगस्त्री, अने स्त्रीनो वेष पहेरेला पुरुषादि ते नेपथ्य-स्त्री कहेवाय, ए त्रण भेदमांथी नेपथ्यस्त्री अने लिंगस्त्री मोक्षे जाय (परन्तु वेष अप्रमाण मानवाथी शास्त्रमां लिंगस्त्रीरुप एक ज भेदमां मोक्ष कह्यो छे) पण वेदना उदयवाळी वेदस्त्रीने मोक्ष होय नहिं, ए प्रमाणे पुरुष तथा नपुंसकना संबधमां पण विचारवुं. ४–५ प्रत्येकबुद्ध अने स्वयंबुद्धमां विशेष तफावत बोधि-उप-धि–ज्ञान–ने वेष सबन्धि छे ते आ प्रमाणे—

बोधिभेदः—स्वयंबुद्ध बाह्यनिमित्त विनाज जातिस्मरणादिकवडे बोध पामे छे ते तीर्थंकरने अतीर्थंकर एम बे प्रकारना छे, परन्तु अहिं चालु अधिकारमां अतिर्थंकर स्वयंबुद्ध स्वयंबुद्ध सिद्ध तरीके गणया. तथा प्रत्येकबुद्ध वृषभादि बाह्यनिमित्तथी बोध (-वैराग्यादि) पामे छे, ने प्रत्येक एटले एकला विहार करे छे पण प्रत्येकबुद्ध प्रत्येकबुद्धनी साथे वा अन्यनाथे गच्छवत् एकठामळी विहार करता नथी.

उपधिभेदः- स्वयंबुद्धने पात्रादिक उपधि १२ प्रकारनी ज होय छे, ने प्रत्येकबुद्धने जघन्यथी बे प्रकारनी ने उत्कृष्टथी प्रावरण सिवाय ९ प्रकारनी उपधि होय छे.

श्रुतभेदः— स्वयंबुद्धने श्रुतज्ञान होयतो पूर्वाधित (-पूर्वभवमां भणेलुं) श्रुतज्ञान (जातिस्मरथी) होय अन्यथा न होय. वळी जो पूर्वाधीत श्रुतज्ञान होयतो साधुवेष देव आपे अथवा गुरुपासे जइने पोते ग्रहण करे. अने एकलविहार करवाने समर्थ होय अथवा तेवी इच्छा होय तो एकलविहार करे नहितर गच्छवासमां रहे. अने जो पूर्वाधीतश्रुत न होय तो निश्चय गुरुपासे जइनेज साधुवेष अंगीकार करे अने गच्छमां ज रहे. तथा प्रत्येकबुध्धने तो जघन्यथी ११ अंग ने उत्कृष्टथी किंचित न्यून १० पूर्व जेटलुं पूर्वाधीतश्रुत होय.

वेषभेदः—स्वयंबुद्धने वेष देव आपे अथवा गुरुपासे जइने ग्रहण करे, अने प्रत्येकबुध्धने देव ज वेष आपे अन्यथा वेष रहित पण होय [इत्यादि वर्णन श्री नन्दीसूत्रनी चूर्णी तथा श्री प्रज्ञापना वृत्तिमां छे.)

पुन. स्त्रीयाने प्रत्येकबुध्धपणु होतु नथी. श्री नवतत्त्वावचूर्णीमां कह्युं छे के - तस्मिन् स्त्रीलिंगे वर्तमानाः सन्तो ये सिध्धाः प्रत्येकबुध्धवर्जिता. केचित स्त्रीलिंगसिध्धाः (-ते स्त्रीलिंगमां वर्तता छता प्रत्येकबुध्ध सिवायना जे कोइ मोक्षे गया ते स्त्रीलिंगसिध्ध कहेवाय छे)

१३ बुध्ध एटले गुरु वगेरेना बोधिय–बोध पामेला अर्थात् जेओने गुरु आदिकना उपदेशथी संसारनुं स्वरुप असार लागतां वैराग्यभावना प्रकट थवाथी केवळज्ञान प्राप्त करी मोक्षे गया होय तेओ बुध्धबोधितसिध्ध.

१४ जेओ १ समयमां एकज मोक्षे गया होय परन्तु ते समये अढी द्वीपात्मक मनुष्यक्षेत्रमांथी बीजो कोइ पण जीव मोक्षे न गयो होय तेवा जीवो एकसिध्ध.

१५ तथा १ समयमां जे अनेक जीवो समकाळे मोक्षे गया होय ते सर्व जीवो अनेकसिध्ध कहेवाय.

१–२ एक समयमां जघन्यथी १ ने उत्कृष्टथी १०८ जीवो मोक्षे जाय छे. तेमां पण एवो नियम छे के १ थी ३२ सुधीनी संख्यावाळा जीवो लागलागट आठ समय सुधी मोक्षे जाय ने नवमे समये अवश्य अन्तर पडे अर्थात् विवक्षित समये १ जीव मोक्षे गयो. पुनः बीजे समये १ जीव मोक्षे गयो, पुन त्रीजे समये १ जीव मोक्षे गयो, ए रीते यावत् आठमा समय सुधी एकेक जीव मोक्षे जाय त्यारबाद नवमे समये कोइपण न जाय ए प्रमाणे बे बे–त्रण त्रण–यावत् बत्रीस बत्रीस जीव लागलागट आठ समयसुधी मोक्षे जाय ने नवमे समये कोइपण मोक्षे न जाय. पुनः ३३ थी ४८ सुधीनी संख्यावाळा जीवो लागलागट ७ समय सुधी मोक्षे जाय ने आठमे समये कोइपण न जाय, तथा ४९ थी ६० सुधीनी संख्या ६ समयसुधी, ६१ थी ७२ सुधीनी संख्या ५ समयसुधी, ७३ थी ८४ सुधीनी संख्या ४ समयसुधी, ८५ थी ९६ सुधीनी संख्या ३ समयसुधी ९७ थी १०२ सुधीनी संख्या २ समय सुधी ने १०३ थी १०८ सुधीनी संख्या १ समय सुधी मोक्षे जाय ने त्यारबाद अवश्य कोइ पण मोक्षे न जाय.

३ पुन सिध्धना जे १५ भेद कह्या ते कया कया जीवो मोक्ष पामी शके ते विशेष स्पष्ट समजी शकाय ते कारणथी छे एम श्री प्रज्ञाप०जीमां कह्युं छे अन्यथा परस्पर अन्तर्गतपणुं

अवतरणः—पूर्व गाथामां जे १५ प्रकारना सिध्ध कह्या तेमां जिनसिध्ध वगेरे कोण कहेवाय? ते दर्शावे छे. त्यां प्रथम आ गाथामां जिनसिध्ध-अजीनसिध्ध-तीर्थसिध्ध-ने अतीर्थसिध्ध ते कोण? ते कहे छे.

॥ मूळ गाथा ५६ ॥

जिणसिद्धा अरिहंता, अजिणसिद्धा य पुंडरियपमुहा।
गणहारि तित्थसिद्धा, अतित्थसिद्धा य मरुदेवी ॥५६॥

होवाथी सिध्धना १५ भेद थइ शके नहिं पण वास्तवीकरीते नीचे प्रमाणे सिध्धपरमात्माना बे अने त्रण भेद पडी शके ते आ प्रमाणे —

सिध्धना २ भेद— जिनसिध्ध-अजिनसिध्ध अथवा तीर्थसिध्ध-अतीर्थसिध्ध, अथवा एकसिध्ध-अनेकसिध्ध एम त्रण रीते बे बे भेद थइ शके छे.

सिध्धना ३ भेद—गृहलिंगसिध्ध-अन्यलिंगसिध्ध-स्वलिंगसिध्ध, अथवा स्त्रीलिंगसिध्ध-पुरुषलिंगसिध्ध ने नपुंसकलिंगसिध्ध अथवा स्वयंबुध्धसिध्ध प्रत्येकबुध्धसिध्ध-ने बुध्धबोधितसिध्ध.

ए प्रमाणे प्रत्येक सिध्धने ६-६ भेद होइ शके छे-जेम के श्री महावीरस्वामि मोक्षे गया तो तेओ जिनसिध्ध छे. तीर्थसिध्ध छे, स्वलिंगसिध्ध छे, पुरुषलिंगसिध्ध छे. स्वयंबुध्धसिध्ध छे, ने पोते एकला मोक्षे गया छे माटे एकसिध्ध पणले ए रीते मरुदेवामाता अजिनसिध्ध-अतीर्थसिध्ध-गृहलिंगसिध्ध स्त्रीलिंगसिध्ध-स्वयंबुध्धसिध्ध—ने प्राय अनेक सिध्ध छे. इत्यादि रीते एकसिध्धमां सिध्धना १५ भेदमांनो एकज भेद होय तेम नहिं पण वधुमां वधु ६ भेद होय.

॥ संस्कृतानुवादः ॥

जिनसिध्धा अरिहंता, अजिनसिध्धाश्च पुंडरीकप्रमुखाः।
गणधारिणस्तीर्थसिध्धा, अतीर्थसिध्धा च मरुदेवी ॥५६॥

॥ शब्दार्थः ॥

जिणसिध्धा--जिनसिध्ध	गणहारि--गणधरो
अरिहंता--तीर्थंकरो	तित्थसिध्धा--तीर्थसिध्ध
अजिणसिध्धा--अजिनसिध्ध	अतित्थसिध्धा--अतीर्थसिध्ध
पुंडरिय--पुंडरिक गणधर	मरुदेवी--मरुदेवा माता
पमुहा--वगेरे	

गाथार्थः—श्री तीर्थंकरो (मोक्षे जाय ते) जिनसिध्ध, अने पुंडरिक गणधर वगेरे अजिनसिध्ध, सर्व गणधरो तीर्थसिध्ध, अने मरुदेवा माता अतीर्थसिध्ध कहेवाय.

विस्तरार्थः—अरि एटले रागद्वेषादिरुप शत्रुने हंत एटले हणनार ते अरिहंत सर्व केवलिभगवान कहेवाय छे, परन्तु अ-हिं अधिकारना वशथी सर्व केवलि भगवान नहिं पण श्रीतीर्थंकर भगवानज अरिहंत गणाय छे, तेवा तीर्थंकर परमात्माओ जे मोक्षे जाय ते जिनसिध्ध (जिन=तीर्थंकर ए अर्थ होवाथी) कहेवाय.

तथा श्री आदीश्वर भगवानना मुख्य गणधर श्री पुंडरीक गणधर इत्यादि जेओ तीर्थंकर पदवीने नहिं पामेला मोक्षे गया होय ते सर्व अजिनसिध्ध.

तथा श्री गणधर वगेरे जेओ तीर्थनी (=चतुर्विध संघनी) स्थापना थयाबाद मोक्षे गया होय ते सर्व तीर्थसिध्ध कहेवाय. अहिं श्री गणधर महात्माओ अवश्य तीर्थ स्थपाया बादज मोक्षे जाय एवो नियम होवाथी बीजा जीवोने तीर्थ सिध्धपणे नहिं दर्शावतां मात्र श्री गणधरोनेज तीर्थसिध्ध कह्या छे. परंतु एथी मात्र गणधरोज तीर्थसिध्ध होय ने बीजा न होय एवो

नियम नथी, परन्तु जे कोइ जीव तीर्थस्थपाया बाद मोक्षे जाय ते तीर्थसिध्ध कही शकाय.

तथा श्री आदीश्वर भगवाननी माता श्रीमरुदेवा वगेरे जेओ तीर्थ स्थपाया पहेलां मोक्षे गयेल होय ते अतीर्थसिध्ध कहेवाय.

---

१ श्रीऋषभदेव भगवानने केवळ ज्ञान थयुं ते वखते सर्व इन्द्रादि देवो केवळ ज्ञाननो महोत्सव करवा तथा श्रीभगवंतनी देशना सांभळवाने आव्या ते वखते देवो समवसरण वगेरेनो घणो आडंबर करी उपदेश श्रवण करता हतो. ते दरम्यानमां भरतचक्रवर्तीने खबर मळतां तुरत ज पुत्रना विरहथी रात्री दिवस रुदन करी अन्ध थयेलां मरुदेवा माताने शान्ति उपजाववा कह्युं के हे मातुश्री ? आप तो रात्रिदिवस शोक करोछो के मारो पुत्र ऋषभ क्यां हशे ? शुं खातो हशे ! शु पीतो हशे ! केवुं कष्ट वेठतो हशे, परन्तु हवे चालो के आपना पुत्रनी केवी ऋद्धि छे ते दर्शावुं. आ खबर मळतां तुरत ज मरुदेवा माता हर्षवान् थइ भरते शणगारेला हाथी पर वेसी ऋषभपुत्रने मळवा परिवार सहित जायछे, ने मवसरणमां तो हजी देशना देवायछे, ते वखते इन्द्रो वांसळी आदिथी प्रभुनो स्वर पूरेछे, देवो दुन्दुभि वगाडेछे इत्यादि महामहोत्सव सांभळी मरुदेवा माता मार्गमां ज विचार करे छे के अहो ? हुं पुत्र पर आटलो बधो प्रेम राखु छुं छतां पुत्रतो आटला बधा सुखमां मग्न थइ मारी खबर पण नथी लेतो ! अने संदेशो पण नथी कहावतो ! खरेखर आ मारो मोह बहु दुःखदायी छे, संसारमां कोइ कोइनुं सगुं नथी इत्यादि भावना भावतां मार्गमांज श्रीमरुदेवा माताने केवळज्ञान उत्पन्न थयु ने आयुष्य पण अन्तर्मु० मात्र बाकी रह्यु हतुं तेटलुं अल्प आयुष्य पूर्ण करी मार्गमा हाथी उपर बेठां बेठांज मोक्षे गया

अहिं संघनी (-तीर्थनो) स्थापना तो हजी देशना समाप्त थया बाद करवानी छे. परन्तु ते पहेलांज मरुदेवा माता मोक्षमां गयां माटे अतीर्थसिद्ध छे.

अवतरण—आ गाथामां गृहस्थलिंगसिध्ध आदि दृष्टान्त दर्शावे छे,

॥ मूळ गाथा ५७ मी, ॥

गिहिलिंगसिद्ध भरहो, वक्कलचीरी य अन्नलिंगम्मि
साहू सलिंगसिद्धा, थीसिद्धा चंदणापमुहा ॥ ५७ ॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

गृहिलिंगसिध्धो भरतो, वल्कलचीरी चान्यलिंगे ।
साधवः स्वलिंगसिध्धाः, स्त्रीसिध्धाश्चंदनाप्रमुखाः ॥५७ ॥

शब्दार्थः

गिहिलिंगसिध्ध—गृहस्थलिंग-सिध्ध	साहू—सर्व साधुओ
भरहो—भरतचक्रवर्ती	सलिंगसिध्धा—स्वलिंगसिध्ध
वक्कलचीरी—वल्कलचीरी	थीसिध्धा—स्त्रीलिंगे सिध्ध
अन्नलिंगम्मि—अन्यलिंगे सिध्ध	चंदणा—चन्दनबाळा
	पमुहा—वगेरे

गाथार्थः—भरत चक्रवर्ति गृहस्थलिंगे सिद्ध, वल्कलचीरी

प्रश्नः—अहीं अतीर्थपणुं बे प्रकारनुं होय छे, १ अवसर्पिणी अथवा उत्सर्पिणीकाळमां प्रथम तीर्थंकर प्रभुनुं तीर्थ स्थपायुं न होय त्यां सुधी २ तीर्थंकर भगवाननुं तीर्थ स्थपाया बाद विच्छेद पाम्युं होय अने नवुं तीर्थ स्थपायुं न होय त्यांसुधी तेमां अहिं मरुदेवा माता तो प्रथमभेदे अतीर्थसिद्ध छे त्यारे बीजा कोइ जीवो बीजे भेदे अतीर्थसिद्ध होय के नहि ?

उत्तर—पूर्व भगवाननुं तीर्थ विच्छेद पाम्या बाद ने आगळना भगवान नवुं तीर्थ स्थापे ते पहेलां पण अनेक जीवो जातिस्मरणादि ज्ञानथी वैराग्य पामी मोक्षे जाय छे तेओ पण अतीर्थसिद्ध ज कहेवाय एम श्री प्रज्ञापनावृत्तिमां कह्यु छे

(तापस) अन्यलिंगे सिद्ध, सर्व साधुओ [जैन मुनिओ) स्वलिंगसिद्ध, अने चन्दनबाळा वगेरे स्त्रीलिंगे सिद्ध कहेवाय,

विस्तरार्थः—गृहस्थवेषे सिध्ध ते श्रीऋषभदेवना पुत्र भरतचक्रवर्ति वगेरे जाणवा, कारणके श्रीभरतचक्रवर्ति सर्व शणगार सहित थइ आरिसा भुवनमां बेठा हता ते वखते आंगळीमांथी वींटी पडी जवां ते आंगळी आरिसानी अंदर बीजा अंगनी अपेक्षाए शोभा रहित बेडोळ देखावा लागी, त्यारे लघुकर्मीपणाने लइने एवी भावना प्रगटी के अहो आ अंग परवस्तुवडे करीनेज शोभीतुं छे इत्यादि भावना वृद्धि पामतां केवळज्ञान प्राप्त थयुं, ने त्यारबाद केटक मुदत सुधी विहार करी मोक्षे गया,

तथा प्रसन्नचंद्र राजर्षिना भाइ वल्कलचीरी पोताना तापसपितानी पासे वनमां रहेता हता ने वल्कल एटले झाडनी छालनुं चीर एटले वस्त्र पहेरता, माटे वल्कलचीरी नाम पड्युं हतुं, ते वल्कलचीरी एक दिवस पोताना तापस पितानी तुंबडी वगेरे उपकरण देखीने चिंतववा लाग्या के—आवुं पात्र में कोइ वखत पहेलां पण देख्युं छे, एम चिंतवतां चिंतवतां जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न थयुं ने तेथी पोते पूर्वभवमां जैन मुनिवेषे चारित्र पाल्यानु वृत्तान्त विचारतां भावना भावतां केवलज्ञान पाम्या ने त्यारबाद मोक्षे गया,

तेमज श्री गौतमस्वामिए अष्टापद पर १५०० तापसोने अक्षीणमहानसी लब्धिथी क्षीर जमाडी उपदेश आपतां ते सर्वे केवळज्ञान पाम्या हता तेओ पण अन्यलिंगसिद्ध ज कहेवाय.

तथा सर्वे सर्वज्ञोक्त साधु लिंगने अङ्गीकार करी जेओ मोक्षे गया ते स्वलिंगसिद्ध कहेवाय.

तथा चंपा नगरीना दधिवाहन राजानी पुत्री वसुमती के जे शतानीक राजानी चढाइथी चंपा नगरी भागतां केद पकडाइ अने आखरे कौशाम्बी नगरीमां धनावह श्रेष्ठिए ते राजपुत्रीने वेचाती लइ तेनुं चन्दना नाम राख्युं अने त्यांते शेठनी मूला नामनी स्त्रीए शोक्य थवाना भयथी माथु मुंडावी बेडीमां नांखी हती, छेवटे श्रीमहावीर स्वामिभगवानने अडदना बाकुळानु अति उत्सुकता पूर्वक दानआपी अभिग्रह पूर्यो हतो ते चन्दनबाळा श्रीमहावीर स्वामिनी मुख्य साध्वी हती, ते पोतानी शिष्या(चेली)मृगावती सहित श्री महावीरप्रभुनी देशना सांभळवा आवेल हती ते अवसरे चन्द्र-सूर्य मूळ विमाने वंदना करवा आवेल होवाथी संध्या समय थइ जवा छतां पण मृगावतीजीने खबर पडी नहिंने चन्दनबाला तो प्रवीण होवाथी उपासरे गयां, त्यारबाद चन्द्र सूर्य जवाथी अंधकार व्याप्त थतां मृगावतीजी पण भय पाम्या छतां शीघ्र उपाश्रये आव्या, त्यां गुरु चंदनबाळाए सहज ठपको आप्यो के आटलुं असुर थतां सुधी त्यां बेसी रहेवुं तमारा सरखा कुलीन साध्वीने उचित नथी ए उपालंभने शीखामणरूप गणी गुरुश्री पासे पोतानो अपराध वारंवार खमावे छे ते दरम्यानमां चन्दनबाळा साध्वी निद्रावश थयेल छे, अहिं मृगावतीजीने पोताना अपराधनो पश्चात्ताप करतां केवळज्ञान उत्पन्न थयु. जेथी गुरुनी हाथ नजीकथी सर्प जतो देखी गुरुनो हाथ खसेड्यो, जेथी चंदनबाला जागी उठ्याने कारण पूछवाथी सर्पनी वात कही त्यारे चंदनबालाए कह्युंके तने अंधकारमां सर्पनी केम खबर पडी? मृगावतीए कह्युंके "गुरु प्रसादथी," त्यारे चन्दनबालाए कह्युंके शुं तमने केवळज्ञान थयुंछे? तोपण मृगावतीए एज जवाब आप्यो त्यारे मृगावतीजीने खमावतां चन्दनबालाने पण केवळज्ञान उत्पन्न थयुं, ए प्रमाणे चन्दनबाळा वगेरे जे मोक्षे गयां ते स्त्रीलिंगसिध्ध कहेवाय,

१ अहिं दिगम्बर संप्रदाय एम कहे छे के स्त्रीने मोक्ष

अवतरण—आ गाथामां पुरुषलिंग सिध्ध वगेरेना दृष्टांत कहेछे.

॥ मूळ गाथा ५८ मी, ॥

पुंसिध्धा गोयमाई, गांगेयाई नपुंसया सिध्धा ।
पत्तेयसयंबुध्धा, भणिया करकंडु कविलाइ ॥५८॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

पुरुषसिध्धा गौतमादयो, गांगेयादयो नपुंसकाः सिध्धाः ।
प्रत्येकस्वयंबुध्धा, भणिताः करकंडुकपिलादयः ॥५८॥

॥ शब्दार्थः ॥

पुंसिध्धा—पुरुषलिंगे सिध्ध	पत्तेय--प्रत्येकबुध्धसिध्ध
गोयमाई--श्रीगौतमस्वामि वगेरे	सयंबुध्धा--स्वयंबुध्धसिध्ध
गांगेयाई--गांगेय (मुनि)वगेरे	भणिया—कह्या छे,
नपुंसया—नपुंसकलिंगे	करकंडु—करकंडु मुनि
सिध्धा--सिध्ध थया	कविलाई--कपिलमुनि वगेरे

गाथार्थः—श्रीगौतमस्वामि वगेरे पुरुषलिंगे सिद्ध (कहेवाय) गांगेय विगेरे नपुंसकलिंगे सिध्ध थया कहेवाय तथा करकंडुमुनि वगेरे प्रत्येयबुद्धसिद्ध, अने कपिल केवली वगेरे स्वयंबुद्ध सिद्ध कहेवाय,

विस्तरार्थः-श्री गौतम गणधर श्रीमहावीर भगवानना शिष्यहता

होय नहि, कारणके स्त्रीने वस्त्रपरिग्रह अवश्य होय छे ने परिग्रहीने मुक्ति होय नहिं. पण ते तद्दन अयुक्त छे, कारण संयमना साधन भूत उपकरण ते परिग्रह कही शकाय नही परन्तु ' मुच्छा परिग्गहो वुत्तो '– मूर्च्छा पज परिग्रह छे. माटे वस्त्रादि उपर अममत्व भाववाळी स्त्रीने मोक्ष थवामां कोइ हरकत नथी इत्यादि घणो वाद शास्त्रान्तरथी जाणवो

ते अने बीजा अनेक गणधरो तथा जीवो पुरुषलिंगे सिध्ध थयाछे.

गांगेय विगेरे नपुंसकलिंगे सिद्ध थया छे. अहीं नपुंसक ते कृत्रिम नपुंसक समजाय छे कारण जाति नपुंसकने मुक्ति होय नही तेम घणे स्थले देखाय छे,

तथा करकंडु वगेरे जेओ वृषभादिक बाह्य निमित्तवडे वैराग्य पामी मोक्षे गया ते प्रत्येकबुद्धसिद्ध. अहिं करकंडुनुं संक्षिप्त स्वरूप आ प्रमाणे—चंपा नगरीना दधिवाहन राजाने चेडा राजानी पुत्री पद्मावती नामनी स्त्री हती तेना गर्भनो दोहद पूरवाने राजा स्त्रीसहित हस्ती पर बेसी वनमां गयो ते वखते प्रथम वृष्टि थवाथी पृथ्वीमांथी गंध ऊछळवाने लइने मदमां आवेला हस्तिना नाशवाथी राजा वडवृक्षनी वडवाइए लटकी त्यांथी पोताने नगरे आव्यो अने राणी वडवाइने पकडी शकी नही, हाथी तृषातुर थवाथी चालतां चालतां घणे दूर एक मोटा अरण्यना तलावमां पेठो राणी अवसर जोइ हाथी उपरथी उतरीने तलावने कांठे आवी अने सागारिक अणसण करी वनमां चालतां पोताना पिताना भाइ तापसे नगरमां पहोंचाडी अने कामभोगथी निर्वेद पामेली राणीए साध्वीनी पासे जइ दीक्षा लेवानी इच्छाथी गर्भ विनानो बधो पोतानो वृत्तान्त कही दीक्षा अंगीकार करी. त्यारबाद प्रसव समय नजीक आव्याथी गुरुणीने छूपी रीते पोतानी वात जणावी, अने

१ अहीं गांगेय नामथी भिष्मपितामहनी प्रसिद्धिछे,पण तेतो "पांडवचरित्र" विगेरेमां बारमे देवलोके गया छे, वली श्री भगवतीजीना नवमा शतकमां भंगजालादि प्रश्नो पूछनार गांगेयमुनि छे, परन्तु तेमने नपुंसकसिद्ध तरीके जणाव्या नथी माटे बीजा कोइ गांगेय होवा जोइए अथवा गांगेय (भिष्मपितामह)नी माफक कृत्रिम नपुंसक थया छतां जे मोक्षे गया ते नपुंसक सिद्ध जाणवा, आ प्रमाणे समजायछे तत्त्व केवलिगम्य,

छूपी रीते ते पद्मावती साध्वीए पुत्रने जन्म आप्यो ते पुत्रने तेना पिताना नाम वाली मुद्रिका पहेरावी रत्नकंबलमां वींटी स्मशानमां मूकी कोण उपाडी जाय छे ते जोवा छुपी रही, तेवामां स्मशानना मालीके ते पुत्रने उपाडी पोतानी स्त्रीने सोंप्यो ते चांडालनी पाछळ पाछळ जइने ते चांडालनुं घर जोइ उपाश्रये साध्वी आव्या अने गुरुणीजीने कह्युं के मने तो मरेलु बाळक जन्म्युं हतुं, त्यारबाद कंइक बहानुं काढी निरन्तर साध्वी ते बालकने रमाडी आवे छे. ए बालकनुं नाम अवकर्णक राखेल छे, पण मोटो थया बाद बाळकोनी साथे राजक्रीडा करतां बाळको पासे कर मागे छे, त्यारे बाळको कहे छे के करमां अमे शुं आपीए ! त्यारे अवकर्णके कह्युं के मने कंडू (-चळ) घणी थाय छे माटे तमारा करवडे खंजवाळो तो बीजो कर नहिं मागुं ए प्रमाणे करना बदलामां खंजवालता बालकोए तेनुं नाम करकंडू पाड्युं. ते बालक अनुक्रमे एक दंडनाप्रभावे राज्य पाम्यो ने आज्ञा नहिं माननार दधिवाहन (पोताना पिता) पर चडाइ करी चम्पानगरी घेरी ते वखते परस्पर महा युद्ध थयु पद्मावती साध्वीए लडाइ बन्ध पाडी पुत्र पितानी अने पोतानी ओळखाण करावी जेथी दधिवाहने पोतानुं राज्य पण करकंडुने सोंपी अने दीक्षा लीधी हवे करकंडु राजाए गवलीना वाडामां एक सारो लक्षणवाळो नानो वाछरडो देखीने गवलीने हुकम आप्यो के आ वाछरडाने पोतानी मानु बधुं दूध पीवा देवुं पण दोहवी नहिं, तेमज बीजी गायोनुं दूध पण पीवडाववुं; आ प्रमाणे गवलीए करवाथी ते वाछरडो महा तेजस्वी स्वरूपवाळो मदोन्मत्त बळद थयो. राजा तेने जोइ बहु आनन्द पामे छे. हवे केटलेक दिवसे ते बळद वृद्धावस्थाथी जीर्ण देहवाळो कद्रूपो अने हाडमात्र कायावाळो थइ गयो ते वखते राजाए

तेने देखतां गवलीने दूध नहिं आपतो होय एम धारी ठपको आप्यो त्यारे गवलीए तेनी वृद्धावस्था जणावी, करकंडु राजाने एकदम भावना प्रगटी के शुं आटला उपायोथी पुष्ट करेली कायानी अन्ते आज दशा! इत्यादि भावनाथी वैराग्य पामी स्वतः लोच करी देवे आपेलो मुनिवेष ग्रहण करी प्रत्येकबुद्ध एवा करकंडुराजर्षि पृथ्वीपर विहार करवा लाग्या अने अनुक्रमे मोक्षे गया ए प्रमाणे द्विमुख राजर्षिने इन्द्रध्वजनी कफोडी स्थिति देखवाथी, अने श्रीनमि राजर्षिने पोतानी स्त्रीओनां घणां कंकणोनो खडखडाट (ग्लान अवस्थामां) सहन नहिं थतां स्त्रीओए वधु कंकणो उतारी एकेक कंकण राखतां अवाज नहिं थवाथी पोताना आत्माने सुख उपजतां वैराग्य पामी दीक्षा अंगीकार करी मोक्षे गया. ए सर्व प्रत्येकबुद्धनां चरित्र विस्तरार्थीए श्री उत्तराध्ययनथी जाणवां,

तथा कंइपण बाह्य निमित्तनी अपेक्षाविना वैराग्य पामी कपिलादिवत् मोक्षे गया ते स्वयंबुद्धसिद्ध. त्यां कपिलकेवलिनुं संक्षिप्त दृष्टान्त आ प्रमाणे—कौशम्बी नगरीमां जीतशत्रु राजाना काश्यप नामनो पुरोहितनो पुत्र कपिल नामे अभण होवाथी राजाए पुरोहितना मरणबाद काश्यपना पुत्रने पुरोहित पदवी नहिं आपतां बीजाने आपी तेथी कपिलनी माताए कपिलने घणो ठपको आपी श्रावस्ति नगरीमां काश्यपना मित्र इन्द्रदत्त ब्राह्मणने त्यां अभ्यास करवा मोकल्यो त्यां. कपिल एक श्रेष्ठिने घेर निरन्तर जमी इन्द्रदत्त पासे अभ्यास करे छे, केटलेक दिवसे शेठने घेररहेली दासीसाथे कपिले प्रीति बांधी, परन्तु निर्धनपणाने लइने ते दासी दासीमहोत्सवना दिवसोमां शोकातुर थवाथी कपिले शोकनुं कारण पूछवाथी दासीए निर्धनपणानुं कारण दर्शावी धन

प्राप्तिनो उपाय दर्शाव्यो के आ नगरमां धन नामनो शेठ सवारमां जे प्रथम जगाडे तेने बे मासा (–५ वाल अधिक) सुवर्ण आपे छे, कपिल बीजो कोइ न जइ पहोंचे ते प्हेलां धनश्रेष्टिने त्यां जवाने उतावळथी मध्यरात्रीए उठीनेज उतावळथी जवा लाग्यो तेथी पोलीसे पकडी राजाने सोंप्यो, त्यां प्रभाते पोतानी सत्य हकीकत जाहेर करवाथी राजाए राजी थइ " त्हारे जे जोइए ते माग" एम कहेवाथी कपिले कह्युं के हुं विचार करीने मागीश एम कही राजाए तेने विचारकरवा माटे अशोक वागमां मोकल्यो, त्यां एकान्तमां वेसी विचारे छे के बे मासा सोनुं तो एक बे दिवस चाले माटे १०० सोनैया मागुं, पण एटलेथी घर गाडी वगेरे नहिं थाय माटे १००० सौनैया मागुं, पण तेटलेथी छोकरांना विवाह वगेरे मोटा खर्च नहिं थाय माटे लाख सोनैया मागुं, परन्तु तेटलेथी दीननो उद्धार इत्यादि नहिं थाय ए प्रमाणे आगळ क्रोड–अवज अने आखुं राज्य मागवानी इच्छा थतां तुर्तज लघुकर्मीपणाना प्रभावथी विचार पलटायो के अहो ? बे मासा सोनुं मागवाने बदले मारो लोभ क्यां सुधी पहोची गयो ? खरेखर लोभनो पार नथी इत्यादि वैराग्य भावना प्रगटतां तुर्त जातिस्मरण प्राप्त थतां स्वतः लोच करो देवीए आपेलो मुनि वेष अंगीकार करी राजानी आगळ जइ धर्मलाभ आप्यो, राजाए कह्युं के शुं विचार कर्यो? त्यारे कह्युंकेकरोडोनी मागणीनो विचार थयो हतो परंतु लोभ अति दुःखद लागवाथी में आ निर्लोभ व्रत अंगीकार कर्युं इत्यादि कही विहार करतां अनुक्रमे केवळज्ञान पामी राजगृह नगरीना मार्गमां एक अटवीनी अंदर बुळभद्रादि ५०० चोरोने प्रतिबोध आपवा गया त्यां चोरोए कह्युं के तमने नाचतां आवडे छे ? केवलीए हा कही पण मृदंगादि वगाडवानुं ५००चो-

रोए कबुल करवाथी कपिल केवली 'अध्रुवे असासयंमि' इत्यादि उपदेशक ध्रुवपदो गावापूर्वक नाच करवा लाग्या, त्यां दरेक ध्रुवपदे थोडा थोडा प्रतिबोध पामतां अनुक्रमे ५०० चोरोने दीक्षा आपी. एप्रमाणे कपिलकेवलि जातिस्मरणथी स्वयंबुद्ध सिद्ध कहेवाय.

अवतरण— आगाथामां बुद्धबोधितसिद्ध वगेरेनां दृष्टान्त दर्शावेछे.

॥ मूल गाथा ५९ मी; ॥

तह बुध्धबोहि गुरुबो-हिया इगसमय इगसिध्धा य
इगसमएऽवि अणेगा, सिध्धा तेऽणेग सिध्धा य ॥५

॥ संस्कृतानुवादः ॥

तथा बुद्धबोधिता गुरुबोधिता एकसमये एकसिद्धाश्च ॥
एकसमयेऽप्यनेकाः सिद्धास्तेऽनेकसिद्धाश्च ॥ ५९ ॥

॥शब्दार्थः॥

तह–तथा	इगसमए–एक समयमां
बुद्धबोहिय–बुद्धबोधितसिद्ध	अवि—पण
गुरुबोहिया–गुरुपासे बोधपामेला	अणेगा–अनेक
इगसमय–एक समयमां	सिद्धा–सिद्ध थया
एगसिद्धा–एक सिद्ध थया ते	ते—ते
(एक सिद्ध)	अणेगसिद्धा–अनेक सिध्धा

गाथार्थः—तथा (जेओ) गुरुपासे बोध पामेला (मोक्ष गया होय) ते बुद्धबोधितसिद्ध, एक समयमां एक सिध्ध थया ते

---

१ श्री उत्तराध्ययनना आठमा अध्ययननी गाथाओ.

एकसिध्ध, अने एक समयमां पण अनेक सिध्ध थया ते अनेक सिध्ध कहेवाय.

विस्तरार्थः—गुरुए उपदेश आप्याथी बोध पामेला ते श्री जंबूस्वामि वगेरे अनेक जीवो बुध्धबोधित सिध्ध (–बुध्ध एटले गुरु आदिकथी बोधित एटले बोध पामेल) कहेवाय.

तथा एक समयमां एकलाजमोक्षे गया होय ते श्रीमहावीरस्वामि वगेरे एकसिध्ध कहेवाय कारणके श्रीमहावीरस्वामि जे समये मोक्षे गया ते समये तेमनी साथे कोइपण केवलि मोक्षे गया नथी. तथा एक समयमां अनेक सिद्ध थया होय तेवा श्रीऋषभदेव विगेरे अनेकसिद्ध कहेवाय, कारणके श्रीऋषभदेव जे समये मोक्षे गया छे ते समये पोताना ९९ पुत्र अने ८ भरतचक्रिना पुत्र मळी १०८ जीवो मोक्षे गया छे,

आ प्रमाणे पंदरभेदे मोक्ष पामनाराना दृष्टान्ते बताव्या आ नवतत्त्वनी यथार्थ सद्दहणा करनार जीव सम्यक्त्व पामी परम्पराए सिद्धिपद संपादन करे छे,

॥ इति श्रीमोक्षतत्त्वविस्तरार्थः ॥

॥ तत्समाप्तौ च ॥

॥ श्रीनवतत्त्वविस्तरार्थः संपूर्णः ॥



॥ मोक्षतत्त्वपरिशिष्टम् ॥

श्री नवतत्त्वभाष्यादि ग्रन्थोमां सिध्ध परमात्माओने १२ अनुयोगद्वारे वर्णवेला छे, ते आ प्रमाणे—

१ क्षेत्रद्वारं—४५ लाख योजन प्रमाण मनुष्यक्षेत्रमां ज सिध्ध थाय, तेमां पण संहरणथी संपूर्ण मनुष्यक्षेत्रमां, अने जन्मथी १५ कर्मभूमिओमां सिध्ध थाय, त्यां संहरणमुवित त्रणे लोकमां द्वीपोमां ने समुद्रोमां पण छे, अने असंहरण (–जन्म) मोक्ष तिर्यग्ने अधोलोकमांज होय छे.

२ कालद्वारं—भरत अने ऐरवन क्षेत्रमां उत्सर्पिणी काळना त्रीजा अने चोथा आराना जन्मेलां त्रीजा चोथा आरामां मोक्षे जाय, अने अवसर्पिणी काळना त्रीजा चोथा ने पांचमा आरामां मोक्षे जाय पण तेमां पांचमा आरानो जन्मेल जीव पांचमा आरामां मोक्षे न जाय पण चोथा आरानो जन्मेल पांचमे आरे मोक्षे जाय पुनः उत्सर्पिणीना १ ला बीजा पांचमाने छठ्ठा आरामां तथा अव० ना पेला–बीजा–ने छठ्ठा आरामां संहरायलाज मोक्षे जाय. अने महाविदेहमां सदाकाळ मोक्षे जाय.

३ गतिद्वारं–चार गतिमांथी मनुष्यगतिवाळा ज मोक्षेजाय.

४ लिंग—त्रणे लिंगे मोक्षे जाय. अने द्रव्यथी स्वलिंगे–अन्यलिंगे–ने गृहस्थलिंगमां पण मोक्षे जाय (परन्तु भावलिंग जे क्षायिक सम्यक्त्वादि ते तो छएनुं एक सरखुं ज जाणवुं,)

५ तीर्थद्वारं—तीर्थ प्रवर्त्या पहेलां, तीर्थ प्रवर्तता, ने तीर्थनो विच्छेद थये आंतराओमां, ए त्रणे रीते मोक्षे जाय,

६ चारित्रद्वारं—यथाख्यात चारित्रवाळा (पूर्वभाविनयनी अपेक्षाए) मोक्षे जाय, (पण वर्तमाननयनी अपेक्षाए सिध्धने चारित्र न होय,)

७ बुद्धद्वार—तीर्थंकर अने अतीर्थंकर ए बन्ने प्रकारना स्वयंबुद्ध. तथा बाह्य निमित्तमात्रथी वैराग्य पामेला प्रत्येकबुद्ध, तथा गुरु आदिकना उपदेशथी बोध पामेला ए त्रणे मोक्षे जाय,

८ ज्ञानद्वार—केवलज्ञानी मोक्षे जाय शेष चार ज्ञानी नहि.

९ अवगाहनाद्वार—तीर्थंकर ऊ० थी ५०० धनुष्यकायावाळा ने जघ० थी ७ हाथकायावाळा मोक्षे जाय, अने सामान्यकेवलि उ० थी धनुष्यपृथक्त्व अधिक ५०० धनुष्य कायावाळा, अने जघ० थी वामन एवा कुर्मापुत्रादिवत बे हाथनी कायावाळा मोक्षे जाय.

१० अन्तर—सिध्धपणे उत्पन्न थवानो विरह काळ जघ० थी १ समय अने उत्कृष्ट ६ मास (सुधा कोइ मोक्षे ज न जाय.) तथा अनन्तर पणे (लागलागट) मोक्षे जाय तो जघ०थी २समय सुधी अने उ० थी ८ समय सुधी (मोक्ष चालु रहे तदनन्तर अवश्य १ समय पण अन्तर पडे.)

११ संख्याद्वारं—१ समयमां जघ० थी १ अने उत्कृ० थी १०८ जीव मोक्षे जाय.

१२ अल्पबहुत्वं—श्रीसिध्धपरमात्माओनुं अल्पबहुत्व क्षेत्रादि अनेक भेदे छे ते आ प्रमाणे—

संहरणथी सिध्ध थयेला अल्प, तेथी जन्मक्षेत्रे सिध्ध थये-

१ संहरण बे प्रकारे छे. त्यां विद्याचारण-जंघाचारण अ-

ला असंख्यगुणा छे. (अहिंथी दरेक अल्पबहुत्व सिध्ध थयेला जीवो आश्रयि जाणवुं, पण सिध्ध थता जीवो आश्रयि नहिं.]

ऊर्ध्व लोकमां सिध्ध थयेला अल्प, तेथी अधोलोके असंख्य गुण, ने तेथी पण तिर्यं् लोके असंख्यगुण.

समुद्रमां अल्प, द्वीपोमां असंख्यगुण,

उत्सर्पिणीमां अल्प, तेथी अवस० मां विशेषाधिक, तेथी पण उत्स० अवस० रहित काळमां (महावि० मां)-असंख्यगुण.

तिर्यंचगतिथी आवीने सिध्ध थयेला अल्प, तेथी मनुष्यगति मांथी नारक गतिमांथी—अने देवगतिमांथी आवीने सिध्ध थयेला अनुक्रमे संख्यगुण.

नपुं० लिंगे अल्प, तेथी स्त्रीलिंगे संख्यातगुण, ने तेथी पण पुरुषलिंगे सिध्ध थयेला संख्यातगुणा,

गृहस्थसिध्ध अल्प, तेथी अन्यलिंग सिध्ध संख्यातगुणा, अने तेथी स्वलिंगसिध्ध संख्यातगुणा,

अतीर्थसिद्ध अल्प, तेथी तीर्थसिध्ध असंख्यगुणा,

पांच चारित्र स्पर्शी सिध्ध अल्प,सामायिक वर्जचारचारित्र स्पर्शी सिध्ध संख्यातगुणा,तेथी परिहा० वर्जचारचारित्रस्पर्शीसिद्ध संख्यात

ने विद्याधरो जे पोतानी इच्छाए अन्यस्थाने जाय छे ते स्वकृत संहरण अने चारण वा विद्याधर वा कोइ देव अनुकम्पा बुद्धिवडे अथवा वैरभाव वडे उपाडीने बीजे स्थानके मूके ते परकृत संहरण. आ परकृतसंहरण सर्वनु होतुं नथी कह्यु छेके—

समणिं अवगयवेयं. परिहारपुलागमप्पमत्तं च ।
चोद्दसपुव्वि आहारगं च नवि कोवि संहरइ ॥ १ ॥

अर्थ:—साध्वीने, अवेदीने, परिहारविशुद्धि चारित्रीने, पुलाक लब्धिवाळाने, अप्रमत्तने, चौदपूर्वीने, अने आहारकलब्धिवालाने कोइपण संहरतुं नथी. बीजाओनुं संहरण थाय छे,

५ तीर्थद्वारं—तीर्थ प्रवर्त्या पहेलां, तीर्थ प्रवर्तता, ने तीर्थनो विच्छेद थये आंतराओमां, ए त्रणे रीते मोक्षे जाय,

६ चारित्रद्वारं—यथाख्यात चारित्रवाळा (पूर्वभाविनयनी अपेक्षाए) मोक्षे जाय, (पण वर्तमाननयनी अपेक्षाए सिध्धने चारित्र न होय,)

७ बुद्धद्वार—तीर्थंकर अने अतीर्थंकर ए बन्ने प्रकारना स्वयंबुद्ध. तथा बाह्य निमित्तमात्रथी वैराग्य पामेला प्रत्येकबुद्ध, तथा गुरु आदिकना उपदेशथी बोध पामेला ए त्रणे मोक्षे जाय,

८ ज्ञानद्वार—केवलज्ञानी मोक्षे जाय शेष चार ज्ञानी नहिं.

९ अवगाहनाद्वार—तीर्थंकर ऊ० थी ५०० धनुष्यकायावाळा ने जघ० थी ७ हाथकायावाळा मोक्षे जाय, अने सामान्यकेवलि उ० थी धनुष्यपृथक्त्व अधिक ५०० धनुष्य कायावाळा, अने जघ० थी वामन एवा कुर्मापुत्रादिवत् बे हाथनी कायावाळा मोक्षे जाय.

१० अन्तर—सिध्धपणे उत्पन्न थवानो विरह काळ जघ० थी १ समय अने उत्कृष्ट ६ मास (सुधा कोइ मोक्षे ज न जाय.) तथा अनन्तर पणे (लागलागट) मोक्षे जाय तो जघ०थी २समय सुधी अने उ० थी ८ समय सुधी (मोक्ष चालु रहे तदनन्तर अवश्य १ समय पण अन्तर पडे.)

११ संख्याद्वारं—१ समयमां जघ० थी १ अने उत्कृ० थी १०८ जीव मोक्षे जाय.

१२ अल्पबहुत्वं—श्रीसिध्धपरमात्माओनुं अल्पबहुत्व क्षेत्रादि अनेक भेदे छे ते आ प्रमाणे—

संहरणथी सिध्ध थयेला अल्प, तेथी जन्मक्षेत्रे सिध्ध थये-

१ संहरण बे प्रकारे छे. त्यां विद्याचारण-जंघाचारण अ-

ला असंख्यगुणा छे. (अहिंथी दरेक अल्पबहुत्व सिध्ध थयेला जीवो आश्रयि जाणवुं, पण सिध्ध थता जीवो आश्रयि नहिं.]

ऊर्ध्व लोकमां सिध्ध थयेला अल्प, तेथी अधोलोके असंख्य गुण, ने तेथी पण तिर्यं लोके असंख्यगुण.

समुद्रमां अल्प, द्वीपोमां असंख्यगुण,

उत्सर्पिणीमां अल्प, तेथी अवस० मां विशेषाधिक, तेथी पण उत्स० अवस० रहित काळमां (महावि० मां)-असंख्यगुण.

तिर्यंचगतिथी आवीने सिध्ध थयेला अल्प, तेथी मनुष्यगति मांथी नारक गतिमांथी-अने देवगतिमांथी आवीने सिध्ध थयेला अनुक्रमे संख्यगुण.

नपुं० लिंगे अल्प, तेथी स्त्रीलिंगे संख्यातगुण, ने तेथी पण पुरुषलिंगे सिध्ध थयेला संख्यातगुणा,

गृहस्थसिध्ध अल्प, तेथी अन्यलिंग सिध्ध संख्यातगुणा, अने तेथी स्वलिंगसिध्ध संख्यातगुणा,

अतीर्थसिद्ध अल्प, तेथी तीर्थसिध्ध असंख्यगुणा,

पांच चारित्र स्पर्शी सिध्ध अल्प, सामायिक वर्जचारचारित्र स्पर्शी सिध्ध संख्यातगुणा, तेथी परिहा० वर्जचारचारित्रस्पर्शीसिद्ध संख्यात

ने विद्याधरो जे पोतानी इच्छाए अन्यस्थाने जाय छे ते स्वकृत संहरण अने चारण वा विद्याधर वा कोइ देव अनुकम्पा बुद्धिवडे अथवा वैरभाव वडे उपाडीने बीजे स्थानके मूके ते परकृत संहरण. आ परकृतसंहरण सर्वेनु होतुं नथी कह्यु छेके—

समणि अवगयवेयं परिहारपुलागमप्पमत्तं च ।
चोद्दसपुव्विं आहारगं च नवि कोवि संहरइ ॥ १ ॥

अर्थः—साध्वीने, अवेदीने, परिहारविशुद्धि चारित्रीने, पुलाक लब्धिवाळाने, अप्रमत्तने, चौदपूर्वीने, अने आहारकलब्धिवालाने कोइपण संहरतुं नथी. बीजाओनुं संहरण थाय छे,

गुणा, तेथी सामा० परिहा० वर्जत्रणचारित्र स्पर्शी :सिद्ध संख्यात गुणा, तेथी छेदो०परिहा०वर्जत्रण चारित्र स्पर्शी सिद्धसंख्यातगुणा

प्रत्येकबुद्धसिद्ध अल्प, तेणी बुद्धबोधित असं० गुणा, (गंधहस्तिटीकामां संख्यगुण कह्या छे,)-(अहिं स्वयंबुध्धनुं अल्पबहुत्व दर्शाव्युं नथी तेनुं कारण श्रीबहुश्रुत जाणे.)

मतिश्रुतज्ञाने सिद्ध थयेला अल्प, तेथी चारज्ञाने सिध्ध थयेला संख्यगुण, तेथी प्रथमना त्रण ज्ञाने सिद्ध थयेल संख्यगुणा (अहिं त्रणज्ञान मति-श्रुत-अव०, अने मति-श्रुत-मनः प० एम बे प्रकारे छे तेनुं अल्पबहुत्व कह्युं नथी पण श्रीसिद्धप्राभृतमां आ प्रमाणे छे के—द्विज्ञान पश्चात्कृतसिद्ध अल्प, तेथी चातुर्ज्ञान पश्चात्कृत असं० गुणा, तेथी त्रिज्ञानपश्चात्कृतसिद्ध संख्यगुणा, एमां मति-श्रुत-अवधि पश्चात्कृत अल्प, मतिश्रुत पश्चात्कृतसिध्ध तेथी संख्यगुण. मनः प० चतुष्कपर्यन्त पश्चात्कृतसिद्ध असं० गुणा, अहिं अल्पबहुत्वना विसंवादनु तत्त्व श्रीबहुश्रुतगम्य.)

जघन्य अवगाहनाए सिध्ध अल्प, उत्कृ० अवगा० सिध्ध असं० गुणा. तेथी मध्यम अवगाहना सिद्ध असं० गुणा,

निरन्तर आठ समय सुधी सिध्ध थयेला अल्प, ने तेथी ७ न्यून न्यून समयो सुधी निरन्तर सिद्ध थयेला अनुक्रमे संख्यातगुणा

उत्कृष्ट अन्तरे सिद्ध थयेला अल्प, तेथी जघ० अन्तरे सिद्ध थयेला संख्यातगुणा. तेथी मध्यम अन्तरे सिद्ध थयेला असंख्यगुणा (अहिं अन्तर ज० १ समय ने उ० ६ मासरूप)

१ अर्थात् मतिश्रुतज्ञान पाम्या बाद अवधि मनःपर्यव पाम्या विनाज केवळज्ञान पामीने सिद्ध थयेला.

२ अर्थात् जेने केवळज्ञान उत्पन्न थया पहेलां मतिश्रुत ज्ञान ज हतां (पण अव० मन०प० न होतां) एवां.

एक समये १०८ सिद्ध थयेला अल्प, तेथी पश्चानुपूर्वीए ५० सुधी सिद्ध थयेला अनन्तगुणा, त्यांथी पुनः पश्चानुपूर्वीए २५ सुधी सिद्ध थयेला असंख्यगुणा, त्यांथी पुनः पश्चानुपूर्वीए १ सुधी सिद्ध थयेला संख्यातगुणा (अनुक्रमे एकेक हीन संख्यामां) जाणवा.

मोक्षतत्त्वना भेदो गति-इंद्रिय-कायमार्गणामां क्यां क्यां लाभे ते स्वरूप.

नरकगतिमां०—पूर्व प्रज्ञापनीय भावे (चरमशरीरनी अपेक्षाये) नरकगतिमां मोक्षतत्त्वना एक पण भेद न होय कारणके नरकगतिमांथी कोइ जीव मोक्ष पामे नहि.

तिर्यंचगतिमां०—नरकगतिवत्

देवगतिमां०—नरकगतिवत्

मनुष्यगतिमां ९—पूर्वप्रज्ञापनीय भावे मनुष्यगतिमां मोक्षना९भेद होय; कारणके मनुष्यगतिमांथीज जीवो मोक्ष पामी शकेछे.

एकेन्द्रियथी चतुरि० मां०—नरकगतिवत्

पंचेन्द्रियमां ९—मनुष्यगतिवत्

पृथ्व्यादि ५ कायमां—नरकगतिवत्

त्रसकायमां ९—मनुष्यगतिवत्

॥ समयसिद्धसंख्यायन्त्रकम् ॥

ऊर्ध्वलोके	४	उत्स० तृतीयारे	१०८
अधोलोके	२०–२२, –४०	,, १-२-४-५-६ ,,	१०
तिर्यग्लोके	१०८	अव० तुर्यारे	१०८
समुद्रे	२	,, पञ्चमारे	२०
अन्यजलाशये	३	,, १-२-३-६	१०
प्रतिविजयं	२०	नरलिंगजातनरलिङ्गे	१०८
नन्दनवने	४	शेषाष्टभङ्गेषु	१०
पंडकवने	२	स्वलिङ्गे	१०८
प्रतिकर्मभूमि	१०८	अन्यलिङ्गे	१०
प्रत्यकर्मभूमि	१०	गृहिलिङ्गे	४
५०० धनुरवगाहे	२	पुरुषलिङ्गे	१०८
द्विहस्तावगाहे	४	स्त्री लिङ्गे	२०
मध्यमावगाहे	१०८	नपुंसकलिङ्गे	१०

॥ इति श्री मोक्षतत्त्वपरिशिष्टम् ॥

॥ श्रीनवतत्त्वविस्तरार्थः

परिशिष्टयन्त्रादिपरिवृतः परिपूर्णः ॥



॥ ॐ अर्हं नमः ॥

नमः श्रीतपोगच्छाधिराजेभ्यः सूरिचक्र-
सार्वभौमेभ्यः श्रीविजयनेमिसूरिभ्यः ॥

॥ प्रक्षिप्तगाथापरिकरितं ॥

॥ श्रीनवतत्त्वप्रकरणम् ॥

॥ मूलमात्रम् ॥

जीवाऽजीवा पुन्नं, पावासवसंवरो अ निज्जरणा ॥
बंधो मुक्खो अ तहा, नव तत्ता हुंति नायव्वा ॥१॥

चउदस चउदस बाया-लीसा बासीय हुंति बायाला
सत्तावन्नं बारस, चउ नव भेआ कमेणेसिं ॥ २ ॥

(एगविह दुविह तिविहा, चउविहा पंचछव्विहा जीवा ।
चेयण तस इयरेहिं, वेय गइ करण काएहिं ॥१॥) ॥ ३ ॥

एगिंदिअसहुमिअरा, संनिअरपणिंदिया य सवितिचउ
अपज्जत्ता पज्जत्ता, कमेण चउदस जिअट्ठाणा ॥३॥४॥
(नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा ।
वीरियं उवओगो य, एयं जीवस्स लक्खणं ॥२॥) ॥५॥
(आहारसरीरइंदिय, पज्जत्ती आणपाणभासमणे ।
चउ पंच पंच छप्पिय, इगविगलासन्निसन्नीणं ॥३॥) ६ ॥
(पणिंदियत्तिबलूसा-साउदसपाण चऊ छ सग अट्ठ ।
इगदुति चउरिंदीणं, असन्निसन्नीण नव दस य ॥४॥) ७ ॥
धम्माऽधम्मागासा, तियतियभेया तहेव अध्धा य।
खंधा देसपएसा, परमाणु अजीव चउदसहा ॥४॥८॥
धम्माधम्मा पुग्गल, नह कालो पंच हुंति अजीवा ।
चलणसहावो धम्मो, थिरसंठाणो अहम्मो य ॥५॥९
अवगाहो आगासं, पुग्गलजीवाण पुग्गला चउहा ।
खंधा देसपएसा, परमाणू चेव नायव्वा ॥६॥ १० ॥
(सद्दंधयार उज्जोय, पभाछायातवेइय ।
वन्नगंधरसाफासा, पुग्गलाणं तु लक्खणं ॥ ५ ॥) ११ ॥
समयावली मुहुत्ता, दीहा पक्खा य मासवरिसा य ।
भणिओ पलिया सागर, उस्सप्पिणी सप्पिणीकालो७॥१२
(एगाकोडी सत्तसट्ठिलक्खा, सत्तहुत्तरी सहस्सा य ।
दोयसया सोलहिया, आवलिआ इगमुहुत्तंमि ॥६॥) ॥१३॥
(निन्निसहस्सा सत्तय सयाणि, तिहुत्तरं च उस्सासा ।
एग(स)मुहुत्तो भणिओ, सव्वेहि अणंतनाणीहिं ॥७) ॥१४॥

(परिणामि जीवमुत्तं, सपएसा एग खित्तकिरियाय ।
णिच्चं कारणकत्ता, सव्वगयमियरेहि अप्पवेसे ।८॥) १५ ॥
(दुण्णि य एगं एगं, पंचत्ति य एग दुण्णि चउरो य ।
पंच य एगं एगं, एएसि एय विण्णेयं ॥ ९ ॥) ॥ १६ ॥

सा उच्चगोअमणुदुग–सुरदुगपचिंदिजाइपणदेहा ।
आइतितणूणुवंगा, आइमसंघयणसंठाणा ॥८॥१७॥
वन्नचउक्कागुरुलहु, परघाऊसास आयवुज्जोअं ।
सुभखगइनिमिणतसदस,सुरनरतिरिआऊतित्थयरं९।१८

(तस बायर पज्जत्तं, पत्तेयथिर सुभं च सुभगं च ।
सूसरं आएज्जजसं, तसाइदसगं इमं होइ ॥ १० ॥) १९ ॥

नाणंतरायदसगं, नव बीए नीअसायमिच्छत्तं ।
थावरदस नरयतिगं. कसायपणवीस तिरिअदुगं१०।२०
इगवितिचउजाईओ, कुखगइउवघाय हुंति पावस्स ।
अपसत्थं वन्नचउ, अपढमसंघयणसंठाणा ॥११॥२१॥

(चक्खुदिट्ठि अचक्खु, सेसिंदिअ ओहिकेवलेहिं च ।
दंसणमिह सामन्नं, तस्सावरणं तयं चउहा ॥११॥) २२॥
(सुहपडिबोहा निद्दा, निद्दानिद्दा य दुक्खपडिबोहा ।
पयला ठिओवविट्ठस्स, पयलपयला य चंकमओ ॥१२॥)२३
(दिणचिंतिअत्थकरणी, थीणद्धी अद्धचक्किअद्धबला ।
एवं जिणेहिं भणियं, वित्तिसमं दंसणावरणं ॥१३॥) २४॥
[जावजीववरिसचउमास–पक्खगा निरयतिरियनर अमरा ।
सम्माणुसव्वविरइ–अहक्खाय चरित्तघायकरा ॥१४॥] २५

(जलरेणुपुढवीपव्वय-राईसरिसो चउविहो कोहो ।
तिणिसलयाकट्ठट्ठिअ-सेलत्थंभोवमो माणो ॥१५॥) २६ ॥

(मायावलेहि गोमुत्ति, मिंढसिंग घणवंसमूलसमा ।
लोहो हलिद्दखंजण-कद्दमकिमिरागसारिच्छो ॥१६॥) २७

(जस्सुदया होइ जिए, हास रइ अरई सोग भय कुच्छा ।
सनिमित्तमन्नहा वा तं इह हासाई मोहणिअं ॥१७॥)२८॥

(पुरिसित्थीतदुभयं पइ अहिलासो जव्वसा हवइ सो उ ।
थीनरनपुंवेउदओ, फुंफुमतणनगरदाहसमो ॥ १८) ॥२९॥

(संघयणमट्ठिनिचओ, तं छद्धा वज्जरिसहनारायं ।
तह रिसहनारायं, नारायं अद्धनारायं ॥ १९ ॥) ३० ॥

(कीलिअ छेवट्ठं इह रिसहो पट्टो अ कीलिआ वज्जं ।
उभओ मक्कडबंधो, नारायं इममुरालंगे ॥२०) ॥ ३१ ॥

(समचउरंसं१ निग्गोह२, साइ३ वामण४ खुज्ज५ हुंडे अ६ ।
जीवाण छ संठाणा, सव्वत्थ सुलक्खणं पढमं २१) ॥३२॥

नाहिइ उवरि बीअं, तइअमहोपिट्ठिउअरउरवज्जं ।
सिरगीवपाणिपाए, सुलक्खणं तं चउत्थं तु ॥२२) ॥ ३३ ॥

(विवरीयं पचमगं, सव्वत्थालक्खणं भवे छट्ठं ।
संठाणविहा भणिया, जिणिंदवरवीयरागेहिं ॥२३।)३४ ॥

(थावर सुहुम अपज्जं साहारणअथिरअसुभदुभगाणि ।
दूसरणाइज्जजसं, थावरदसगं विवज्जत्थं ॥ २४ ॥) ३५ ॥

इंदिअकसायअव्वय-जोगा पंच चउ पंच तिन्नि कमा
किरिआओ पणवीसं,इमा उ ताओ अणुक्कमसो१२।३६

काइय अहिगरणिया, पाउसिआ पारितावणी किरिआ
पाणाइवायारंभिअ, परिग्गहिआ मायवत्ती अ १३॥३७
मिच्छादंसणवत्ती,अपच्चक्खाणा य दिट्ठि पुट्ठी अ ।
पाडुच्चिअसामंतो-वणीअ नेसत्थिसाहत्थी ॥१४॥३८॥
आणवणि विआरणिआ, अणभोगा अणवकंखपच्चइआ
अन्नापओगसमुदाण-पिज्जदोसेरियावहिया ॥१५॥ ३९
समिइ गुत्ती परिसह, जइधम्मो भावणा चरित्ताणि ।
पणतिगदुवीसदसबार-पंचभेएहिं सगवन्ना ॥१६॥४०॥
(इरियाभासेसणादाणे, उच्चारे समिईसु य ।
मणगुत्ती वयगुत्ती कायगुत्ती तहेव य ॥ २५ ॥) ४१
(खुहा पिवासा सीउण्हं, दंसाचेलारइत्थीओ ।
चरिया निसीहिया सिज्जा, अक्कोसवहजायणा ॥२६) ४२
(अलाभरोगतणफासा, मलसक्कारपरीसहा ।
पन्ना अन्नाण सम्मत्तं, इय बावीस परीसहा ॥२७॥) ४३॥
(खन्तीमद्दवअज्जव, मुत्ती तवसंजमे अ बोद्धव्वे ।
सच्चं सोयं आकिं-चणं च बंभ च जइधम्मो ॥२८) ४४॥
(पढममणिच्चमसरणं, संसारो एगया य अन्नत्तं ।
असुइत्तं आसव, संवरो य तह निज्जरा नवमी ॥२९॥४५॥
(लोगसहावो बोही, दुल्लहा धम्मस्स साहगा अरिहा ।
एयाओ भावणाओ, भावेयव्वा पयत्तेणं ॥ ३० ॥)४६॥
(सामाइयत्थ पढमं, छेओवट्ठावणं भवे बीयं ।
परिहारविसुद्धीयं, सुहुमं तह संपरायं च ॥ ३१ ॥)४७ ॥

(तत्तो अ अक्खायं, खायं सव्वंमि जीवलोगंमि ।
जं चरिऊण सुविहिया, वच्चंति अयरामरंठाणं ॥३२) ४८॥

(अणसणमूणोयरिया, वित्तिसंखेवणं रसच्चाओ ।
कायकिलसोसंलीण—याय बज्झोतव होइ ॥३३॥) ४९ ।

(पायच्छित्तं विणओ, वेयावच्चं तहेव सज्झाओ ।
झाणं उस्सग्गोवि अ, अब्भिंतरओ तवो होइ ॥३४॥)५०॥

[आलोयण १ पडिक्कमणो २—मय ३ विवेग ४ मुसग्गो ५
तवछ्छेय७मूल८अणव—ट्ठया य ९ पारंचिए १० चेव
॥३५॥] ॥५१॥

(भत्ती१ बहुमाणो२ वन्न—जणणं३ भासणमवन्नायस्स४ ।
आसायणपरिहाणी५, विणओ संखेवओ एसो ॥३६॥`५२

(नाणस्स दंसणस्स य, चरणस्स य तह तिविहजोगस्स
विणओ लोगुवयारो, सत्तविहो विसयभेएणं ॥३७॥)५३।

(भत्ती तह बहुमाणो, तद्दिट्ठत्थाण सम्मभावणयं ।
विहिगहणब्भासो वि अ, एसो विणओ जिणुद्दिट्ठो ३८)५४

सुस्सूसणा अणासा--यणा य विणओ अ दंसणे दुविहो ।
दंसणगुणाहिएसु, कज्जइ सुस्सूसणा विणओ ॥३९॥/५५॥

[सक्कारब्भुट्ठाणे, सम्माणासणपरिग्गहे तह य ।
आसण अणुप्पयाणं, किइकम्मं अंजलीगहो अ ॥४०॥]५६ ।

इन्तस्स हिगच्छणया, ठिअस्स तह पज्जवासणा भणिआ
गच्छंताणुव्वयणं, एसो सुस्सूसणाविणओ ॥४१॥) ५७ ॥

(तित्थयरधम्मआयरिय--वायगे थेरकुलगणे संघे
संभोइअ किरियाए, मइनाणाईण य तहेव ॥४२॥) ५८॥

(आसायणवज्जणया, एएसिं तह य भत्तिबहुमाणो
वण्णस्स य संजलणं, होइ अणासायणा विणओ ॥४४)६०
(सामाइआइचरणस्स, सद्दहाणं तहेव काएणं ।
संफासणा परूवण—मह पुरओ भव्वसत्ताणं ॥४५)॥६१॥
(मणवयकाइअविणओ, आयरिआईण सव्वकालंपि ।
अकुसलमणाईरोहो, कुसलाण उदीरणं तह य ॥४६) ६२॥
(अब्भासत्थण छंदोणु--वत्तणं कयमुपडिकई ।
तह य कारिअमित्तकरणं, दुक्खत्तगवेसणा तह य ॥४७) ६३
(तह देसकालजाणण, सव्वत्थेसु तहाणुकूलत्त ।
लोगोवयारविणओ, सत्तविहो होइ विण्णेओ ॥४८) ६४॥
(आयरिय उवज्झाए, थेरतवस्सीगिलाणसेहाण ।
साहम्मिअ कुलगणसं -घवेआवच्चं हवइ दसहा ॥४९)६५॥
(आयरियउवज्झाये, तवस्सिसेहे गिलाणसाहूसु ।
समणुन्नसंघकुलगण--वेयावच्चं हवइ दसहा ॥५०॥)६६॥
(वायणा पुच्छणा चेव, तहा य परिअट्टणा ।
अणुप्पेहा धम्मकहा, सज्झाओ होइ पंचहा ॥ ५१॥)६७ ॥
(झाणं चउव्विहं खलु, अट्टं रुद्दं तहेव धम्मं च ।
सुक्कं पुण पत्तेयं, चउव्विहं चेव नायव्वं ॥ ५२ ॥)६८ ॥
(पढमं अट्टज्झाणं, बीअं रुद्दं इमे भवफलाइं ।
तइअं धम्मं तुरिअं, सुक्कं दो मुक्खहेऊई ॥ ५३ ॥) ।६९॥
(दव्वे गणदेहोवहि, अइरित्ता सुद्धभत्तपाणाणं ॥
उस्सग्गो भावे अह, कासायभवकम्म उस्सग्गो ॥५४॥)७०॥
बारसविहं तवो नि--ज्जरा य बंधो अ चउविगप्पो य ।
पयइ ठिइअणुभाग--प्पएसभेएहिं नायव्वो ॥१७॥७१॥

(पयइठिइरसपएसा, तं चउहा मोयगस्स दिट्ठंता ।
मूलपगइट्ठ उत्तर—पगईं अडवन्नसयभेयं ॥५४) ॥ ७२ ॥

(इहनाणदंसणावरण-वेय मोहाउनामगोयाणि ।
विग्घं च पण नव दु अ-ट्ठवीस चउ तिसय दुपणविहं५५)७३

(पड१पडिहार२सि३मज्ज४-हड५चित्त६कुलाल७भंडगा·
रीणं ८ ।
जह एएसिं भावा, कम्माण वि जाण तह भावा ५६)७४

(सरउग्गयससिनिम्मल-यरस्स जीवस्स छायणं जमिह ।
नाणावरणं कम्मं, पडोवमं होइ एवं तु ॥ ५७ ॥) ७५ ॥
(दंसणसीले जीवे, दंसणघायं करेइ जं कम्मं ।
तं पडिहारसमाणं, दंसणावरणं भवे जीव ॥ ५८) ७६ ॥
(महुलित्तनिसिअकरवाल–धार जीहाई जारिसं लिहणं ।
तारिसयं वेयणिअं, सुहदुहउप्पायसमुयाणं ॥५९॥) ॥७७॥
(जह मज्जपाणमूढो,लोए पुरिसो परवसो होइ ।
तह मोहेण विमूढो, जीवो अ परवसो होइ ॥६०) ७८ ॥
(दुक्खं न देइ आऊ, नवि अ सुहं देइ चऊसु वि गइसु ।
दुक्खसुहाणाहारं, धरेइ देहट्ठिअं जीवं ॥६१॥) ॥ ७९ ॥
(जह चित्तयरो निउणो, अणेगरूवाइं कुणइ रूवाइं ।
सोहणमसोहणाइं, लु॰चु)क्खमलु(चु)क्खेहिवण्णेहि६२)८०
(तह नामं पि हु कम्मं, अणेगरूवाइ कुणइ जीयस्स ।
सोहणमसोहणाइ, इट्ठाणिट्ठाइ लोअस्स ॥६३॥) ॥८१॥
(जह कुंभारो भंडाइ, कुणइ पुज्जेअराइ लोअस्स ।
इअ गोत्त कुणइ जोअं, लोए पुज्जेअरावत्थं ॥६४)॥८२ ॥

(जह राया दाणाइ, न कुणइ भंडारिए विकूलंमि।
एवं जेणं जीवो, कम्मं तं अंतरायंति ॥६५॥) ॥ ८३ ॥

(इति प्रकृतिबन्धः)

(नाणे अ दंसणावरणे, वेअणिए चेव अंतराए य।
तीसं कोडाकोडी, अयराणं ठिइ य उक्कोसा ॥६७॥)॥८४॥
(सत्तरि कोडाकोडी, मोहणीए वीस नामगोएसु।
तित्तीसं अयराइं, आउट्ठिइबंध उक्कोसा ॥ ६८ ॥) ॥८५॥
(बारस मुहुत्त जहन्ना, वेयणिए अठ्ठ नामगोएसु।
सेसाणंतमुहुत्तं, लहुट्ठिई स नायव्वा ॥ ६९ ॥) ॥८६॥

(इति स्थितिबन्धः)

(तिव्वो असुहसुहाण, संकेसविसोहिओ विवज्जयओ।
मंदरसो गिरिमहिरय-जलरेहासरिसकसाएहिं ॥७०॥)८७॥
(चउठाणाई असुहो, सुहन्नहा विग्घदेस आवरणा।
पुमसंजलणिगदुति चउ-ठाणरसा सेस दुगमाई ॥७१] ८८
(निवुइच्छुरसो सहजो, दुति चऊभागकढि इक्कभागंतो।
इगठाणाई असुहो, असुहाण सुहो सुहाणं तु ॥७२॥) ८९॥

(इति रसबन्धः)

(अंतिमचउफासदुगंध—पंचवन्नरसकम्मखंधदलं।
सव्वजिअणंतगुणरस—मणुजुत्तमणंतयपएसं ॥ ७३ ॥)९० ॥
[एगपएसोगाढं, निअसव्वपएसओ गहेइ जीवो।
थोवो आउतदंसो, नामे गोए समो अहिओ ॥ ७४ ॥) ९१॥
(विग्घावरणे मोहे, सव्वोवरि वेअणीइ जेणप्पे।
तस्स फुडत्तं न हवइ, ठिईविसेसेण सेसाणं ॥ ७५ ॥) ९२

(निअजाइलद्धदलिआ—णंतंसो होइ सव्वघाईणं ।
बज्झंतीण विभज्जइ, सेसं सेसाण पइसमयं ॥७६॥] ९३ ।

(इति प्रदेशबन्धः)

संतपयपरूवणया, दव्वपमाणं च खित्त फुसणा य ।
कालो य अंतर भाग, भावे अप्पाबहुं चेव ॥१८॥९४
संतं सुद्धपयत्ता, विज्जंतं खकुसुमं व न असंतं ।
मुक्खत्ति पयं तस्स उ, परूवणा मग्गणाईहिं १९॥९५
गइ१ इंदिय२ काये३, जोए४ वेए५कसाय६ नाणे अ७
संजम८ दंसण९ लेसा१०, भव११ सम्मे१२ सन्नि १३
आहारे १४ ॥२०॥९६॥

नरगइपणिंदि तस भव, सन्निअहक्खाय खइयसम्मत्ते
मुक्खोणाहार केवल—दंसणनाणे न सेसेसु ॥२१॥९७॥
दव्वपमाणे सिद्धाण जीवदव्वाणि हुंतणंताणि ।
लोगस्स असंखिज्जे, भागे एगो अ सव्वे वि २२॥९८
फुसणा अहिआ कालो, इगसिद्धपडुच्च साइओणंतो
पडिवायाभावाओ, सिद्धाणं अंतरं नत्थि ॥ २३॥९९॥
सव्वजिआणमणंते, भागे ते तेसिं दंसणं नाणं ।
खइए भावे परिणा—मिए अ पुण होइ जीवत्तं२४॥१००
थोवा नपुंसिसिद्धा, थीनरसिद्धा कमेण संखगुणा ।
इअ मुक्खतत्तमेअं, नवतत्ता लेसओ भणिआ (वुत्ता)
॥ २५ ॥ १०१ ॥

जीवाइनवपयत्थे, जो जाणइ तस्स होइ सम्मत्तं ।
भावेण सद्दहंते, अयाणमाणे वि सम्मत्तं ॥२६॥१०२
सव्वाइ जिणेसरभा--सियाइं वयणाइं नन्नहा हुंति ।
इअ बुद्धी जस्स मणे, सम्मत्तं निच्चलं तस्स२७॥१०३
अंतो मुहुत्तमित्तं पि, फासियं जेहिं हुज्ज सम्मत्तं ।
तेसिं अवड्ढपुग्गल---परिअट्टो चेव संसारो२८॥१०४

(इति श्रीनवतत्त्वप्रकरणम्)

(दव्वे१ खित्ते२ काले३, भावे४ चउह दुह बायरो सुहुमो ॥
होइ अणंतुस्सप्पिणी-परिमाणो पुग्गलपरियट्टो ॥७७]१०५॥
[पुग्गलपरिअट्टो इह, दव्वाइचउव्विहो मुणेअव्वो ।
थूलेअरभेएहिं, जह होइ तह निसामेह ७८ ॥] १०६ ॥
(उरालविउव्वातेअ-कम्मभासाणुपाणमणएहिं ।
फासेति सव्वपुग्गल, मुक्का दव्वबायरपरट्टो ॥७९॥)१०७ ॥
(उरलाइ सत्तगेणं, एग जिओ मुअइ फुसिअ सव्वअणू ।
जत्तिअकालि स थूलो, दव्वे सुहुमो सगन्नयरा ॥८०॥)१०८
(दव्वे सुहुमपरट्टो, जाहे एगेण अह सरीरेण ।
फासेति सव्वपुग्गल-अणुक्कमेणं नणु गणिज्जा ॥८१॥)१०९
(लोगागासपएसा, जया मरंतेण इत्थ जीवेण ।
पुट्ठा कमुक्कमेणं, खित्तपरट्टो भवे थूलो ॥ ८२ ॥) ११० ॥
(जीवो जइआ एगे, खित्तपएसम्मि संठिओ मरइ ।
पुणरवि तस्साणंतर-बीअपएसम्मि जइ मरइ ॥८३॥)१११
(एवमणंतरमरणेण, सव्वखित्तंमि जइ मओ होइ ।
सुहुमो खित्तपरट्टो अणुक्कमेणं नणु गणिज्जा ॥८४॥) ११२

(उस्सप्पिणीइ समया, जावइआ ते अ निअयमरणेणं ।
पुट्ठा कम्मुक्कमेणं कालपरट्टो भवे थूलो ॥ ८५ ॥) ११३ ॥
(सुहुमो पुण उस्सप्पिणि- -पढमे समयंमि जइ मओ होइ
पुणरवि तस्साणंतर—बीए समयंमि जइ मरइ ॥८६ ॥)११४
(एवमणंतरमरणेण, सव्वसमएसु चेव एएसु ।
जइ कुणइ पाणचायं, अणुक्कमेणं नणु गणिज्जा ॥८७॥)११५
[एगसमयम्मि लोए, सुहुमगणिजीएसु जे उ पविसंति ।
ते हुंतसखलोग–प्पएसतुल्ला असंखिज्जा ॥८८॥)११६ ॥
(तत्तो असंखगुणिआ, अगणिकायाओ तेसि कायठिई ।
तत्तो संजमअणुभाग–बंधठाणाणसंखाणि ॥८९॥) ११७ ॥
(ताणि मरंतेण जया, पुट्ठाणि कमुक्कमेण सव्वाणि ।
भावेण बायरो सो, सुहुमो जं कमेण बोद्धवो ॥९०)११८॥
(लोगपएसोसप्पिणि–समया अणुभागबंधठाणे य ।
जह तह कममरणेणं, पुट्ठा खित्ताइ थूलियरा ॥९१॥) ११९ ॥
(उस्सप्पिणी अणंता, पुग्गलपरिअट्टओ मुणेयव्वो ।
तेणंता तीअद्धा, अणागयद्धा अणंतगुणा ॥९२॥) १२०॥
(जिणअजिणतित्थतित्था, गिहिअन्नसलिंगथीनरनपुंसा ।
पत्तेय सयंबुद्धा, बुद्धबोहिक्कणिक्का य ॥९३॥) ॥१२१॥
(जिणसिद्धा अरिहंता, अजिणसिद्धा य पुंडरियपमुहा ।
गणहारितित्थसिद्धा, अतित्थसिद्धा य मरुदेवी ॥९४) १२२
(गिहिलिंगसिद्धभरहो, वक्कलचीरी य अन्नलिंगम्मि
साहू सलिंगसिद्धा, थीसिद्धा चंदणापमुहा ॥९५॥) १२३॥
(पुंसिद्धा गोयमाई, गांगेयाइ नपुंसया सिद्धा ।
पत्तेयसयंबुद्धा, भणिया करकंडुकविलाई ॥९६॥)॥१२४॥

(तह बुद्धबोहिगुरुबो-हिया इगसमय एगसिद्धा य ।
इगसमए वि अणेगा, सिद्धा तेणेगसिद्धा य ॥९७) ॥१२५॥
(जइआइ होइ पुच्छा, जिणाण मग्गंमि उत्तरं तइया ।
इक्कस्स निगोयस्स, अणंतभागो य सिद्धिगओ ॥९८)१२६॥
(लोए असंखजोयण-माणे पइजोयणमंगुलसंमखा ।
पइ तं असंखअंसा, पइ असमसंखया गोला ॥९९॥)॥१२७॥
(गोलो असंखनिगोओ, सोणंतजिओ जिअं पइ पएसा ।
असंखे पइपएसे, कम्माणं वग्गणाणंता ॥१००॥) ॥१२८॥
(पइवग्गणमणंता, अणू पइअणु अणंतपज्जाया ।
एवं लोगसरूवं, भाविज्जइ तहत्ति जिणवुत्तं ॥१०१) ॥१२९॥
(पुढवाईया सत्ता, सव्वे रुक्खा हवंति भूआवि ।
पाणा बितिचउरिंदी, चउहा पंचिंदिया जीवा ॥१०२ ॥१३०
(सत्तविराहणपावं, अणंतगुणियं च एगभूअस्स ।
भूअस्स असंखगुणं, एवं एगस्स पाणस्स ॥१०३॥) १३१॥
(बेइंदियतेइंदिय—चउरिंदिय तहेव पंचिंदी ।
लक्खं सहस्सं तह सय—गुणं च पावं मुणेयव्वं ॥१०४)१३२
(जीवो१संवर२निज्जर३मुक्खो४चत्तारि हुंति अरूवी ।
रूवी बंधासवपुन्न—पावा मिस्सो अजीवो य ॥१०५॥(१३३
(धम्माधम्मागासा, तियतिय अद्धा अजीवदसगा य ।
सत्तावन्नं संवर-निज्जरदुदस मुत्ति नवगा य ॥१०६)१३४॥
(अट्ठासी य अरूवी, संपइ उ भणामि जे य रूवीणं ।
परमाणुदेसपएसा, खंधा चउ अजीवरूवीणं ॥१०७)॥१३५
(जीवे दस चउ दु चउ, बासी बायाल हुंति चत्तारि ।
सय अट्ठासी य रूवी, दुतिय छसत्त नवतत्ते ॥ १०८) १३६

(हेया बंधासवपुण्णपावा, जीवाऽजीवा य हुंति विन्नेया
संवरनिज्जरमुक्खो, हवंति एए उवाएया ॥१०९॥) ॥१३७॥
(अवियाणओ पयत्थे, सद्दहणं तेसु केरिसं होइ ? ।
तम्हा वित्थरनाणे, सम्मत्तमणुत्तरं होइ ? ॥ ११० ॥) १३८
(वित्थरनाणावेक्खं, अन्नाणं एत्थ होइ दट्ठव्वं ।
तेणेह सद्दहंते, अयाणमाणेवि सम्मत्तं ॥१११॥)१३९ ॥
(एत्तोच्चिय निद्दिट्ठा, मासतुसप्पभिईओ सुदिट्ठित्ति ।
एत्तो च्चिय चारित्ती, एत्तोच्चिय सिद्धिगामित्ति ॥११२॥]१४०॥
(सम्मं च मोक्खबीयं, तं पुण भूयत्थसद्दहणरूवं ।
पसमाइलिंगगम्मं, सुहायपरिणामरूवं तु ॥११३॥) ॥१४१॥

॥ श्रीचिरन्तनाचार्यविरचितं प्रक्षिप्त-
गाथापरिकरितं
श्रीनवतत्त्वप्रकरणं संपूर्णम् ॥

अद्यावधि मुद्रिता ग्रन्थाः

एते ग्रन्थास्तदभ्यासिसाधुसाध्वीनामध्ययनेष्वमूनामर्हाणामन्येषामपि उपदीक्रियन्ते।

१ तत्त्वार्थसूत्रं—(पञ्चाध्यायीमयः प्रथमो विभागः) अनूनापूर्वदशपूर्वधरवाचकावतंस उमास्वातिपादप्रणीतः, सर्वतन्त्रस्वतन्त्रसिद्धसेनगणिप्रणीतविवृतिसमलङ्कृतः

२ अनेकान्तजयपताका—अपूर्वोऽयं न्यायग्रन्थश्चतुश्चत्वारिंशदधिकचतुर्दशशतग्रन्थसूत्रणसूत्रधारश्रीमद्धरिभद्रसूरिपादैर्विनिर्मित।

३ अष्टकप्रकरणं सटीकम्—श्रीमद्धरिभद्रसूरिपादप्रणीतं श्रीमज्जिनेश्वरसूरिप्रणीतवृत्तिविभूषितम्

४ प्रमालक्ष्यालक्षणं सटीकम्—नवाङ्गीवृत्तिकार श्रीमदभयदेवसूरि पूर्वकालवर्त्तिश्रीबुद्धिसागरसूरिविनिर्मितम्।

५ प्रमाणनयतत्त्वालोकालङ्कारः (स्याद्वादरत्नाकराभिधबृहद्वृत्तिविभूषितः—वादिदेवसूरि विनिर्मितः

६ सिद्धहैमशब्दानुशासनं—कलिकालसर्वज्ञश्रीहेमचन्द्राचार्यकृतस्वोपज्ञबृहद्वृत्तिविभूषितं, पं० कनकप्रभप्रणीतन्यासमारोद्धारालङ्कृतश्च।

७ प्रमाणमीमांसा सटीका—श्रीहेमचन्द्राचार्यप्रणीता

८ अध्यात्मकल्पद्रुमः सटीकः—श्रीमन्मुनिसुन्दरसूरिप्रणीत, पं० धनविजयगणिविनिर्मितवृत्तिविभूषितः,

९ न्यायखण्डखाद्यम्—अपूर्वोऽयं न्यायग्रन्थो नव्यन्यायशैलीसन्दृब्धः न्यायविशारद-न्यायाचार्य वाचकावतंस श्रीयशोविजयगणिविनिर्मितम् ,

१० न्यायालोकः- महोपाध्यायश्रीयशोविजयगणीविरचितः.

११ भाषारहस्यं सटीकम्. „

१२ उपदेशरहस्यम् „

१३ बृहद्धेमप्रभाव्याकरणम्—तपोगच्छाचार्य भट्टारक आचार्यश्री विजयनेमिसूरिप्रणीतम्.

१४ लघुहेमप्रभाव्याकरणम् „

१५ नवतत्त्वसाहित्यसंग्रहः—(संस्कृत प्राकृतगुर्ज्जरभाषारूपः सानुवादः) श्रीउमास्वातिवाचकाद्यनेकचिरन्तनाचार्य सन्दृब्धः,

१६ षडशीतिप्रकाश (चतुर्थकर्मग्रन्थवृत्तिः)

१७ जैनमुक्तावलिः

१८ पञ्चकल्याणकपूजादिसंग्रह.

१९ स्तोत्रमाला,

२० दण्डकविस्तरार्थः



पुस्तकप्राप्तिस्थानम्

शेठ. माणेकलालभाइ मनसुखभाइ,

शाहपुर वंगलो—अमदावाद.